श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी, सदर मेरठ
(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ
(३) श्रीमान् लाला लालचन्द विजयकुमार जी जैन सर्राफ, सहारनपुर

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तक महानुभावों की नामावली—

१	श्रीमान् सेठ भवरीलाल जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
२	वर्णीसघ ज्ञानप्रभावना समिति, कार्यालय,	कानपुर
३	कृष्णचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
४	सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
५	श्रीमती सोवती देवी जी जैन,	गिरिडीह
६	मित्रसैन नाहरसिह जी जैन,	मुजफ्फरनगर
७	प्रेमचन्द ओमप्रकाश, प्रेमपुरी,	मेरठ
८	सलेखचन्द लालचन्द जी जैन,	मुजफ्फरनगर
९	दीपचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
१०	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन,	मसूरी
११	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन,	ज्वालापुर
१२	केवलराम उग्रसैन जी जैन,	जगाधरी
१३	सेठ गैंदामल दगडूशाह जी जैन,	सनावद
१४	मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मडी,	मुजफ्फरनगर
१५	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन,	देहरादून
१६	श्रीमान् जयकुमार वीरसैन जी जैन,	सदर मेरठ
१७	मत्री, जैन समाज,	खण्डवा
१८	बाबूराम अकलकप्रसाद जी जैन,	तिस्सा
१९	विशालचन्द जी जैन रईस,	सहारनपुर
२०	बा० हरीचन्दजी ज्योतिप्रसाद जी जैन, ओवरसियर,	इटावा
२१	श्रीमती सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जनसघी,	जयपुर
२२	मत्राणी, दिगम्बर जैन महिला समाज,	गया
२३	श्रीमान् सेठ सागरमल जी पाण्ड्या,	गिरिडीह
२४	बा० गिरनारीलाल चिरजीलाल जी जैन,	"
२५	बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी,	"

२६ श्रीमान्	सेठ फूलचन्द बैजनाथ जी जैन, नई मण्डी	मुजफ्फरनगर
२७ ,,	सुखबीरसिंह हेमचन्द जी सराफ,	बडौत
२८ ,,	गोकुलचंद हरकचद जी गोधा,	लालगोला
२९ ,,	दीपचद जी जैन रिटायर्ड सुप्रिन्टेन्डेन्ट इजीनियर,	कानपुर
३० ,,	मत्री, दि० जैनसमाज, नाई की मंडी,	आगरा
३१ श्रीमती	सचालिका, दि० जैन महिलामडल, नमककी मडी,	,,
३२ श्रीमान्	नेमिचन्द जी जैन, रुडकी प्रेस,	रुडकी
३३ ,,	झब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन, चलकाना वाले,	सहारनपुर
३४ ,,	रोशनलाल के० सी० जैन,	,,
३५ ,,	मोल्हडमल श्रीपाल जी, जैन, जैन वेस्ट	,,
३६ ,,	बनवारीलाल निरजनलाल जी जैन,	शिमला
३७ ,,	सेठ शीतलप्रसाद जी जैन,	सदर मेरठ
३८ ,,	दिगम्बर जैनसमाज	गोटे गाँव
३९ श्रीमती	माता जी धनवती देवी जैन, राजागंज,	इटावा
४० श्रीमान्	ब्र० मुख्त्यारसिंह जी जैन, "नित्यानन्द"	रुड़की
४१ ,,	लाला महेन्द्रकुमार जी जैन,	चिलकाना
४२ ,,	लाला आदीश्वरप्रसाद राकेशकुमार जैन,	,,
४३ ,,	हुकमचद मोतीचद जैन,	सुलतानपुर
४४ ,,	ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन,	सदर मेरठ
४५ ,,	इन्द्रजीत जी जैन, वकील, स्वरूपनगर,	कानपुर
४६ श्रीमती	कैलाशवती जैन, ध० प० चौ० जयप्रसाद जी	सुलतानपुर
४७ श्रीमान्	* गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, बजाज	गया
४८ ,,	* बा० जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छावड़ा,	झूमरीतिलैया
४९ ,,	* सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या,	जयपुर
५० ,,	* बा० दयाराम जी जैन आर. एस डी. ओ.	सदर मेरठ
५१ ,,	× जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन,	सहारनपुर
५२ ,,	× जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन,	शिमला

नोट:—जिन नामोके पहले * ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आ गये है, शेष आने हैं तथा जिन नामोंके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नही आया, सभी बाकी हैं।

आत्म-कीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान।
मैं वह हूं जो है भगवान, जो मैं हूं वह है भगवान ॥१॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥२॥

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ॥३॥

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुंचू निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥४॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ॥५॥

•••○○•••

[धर्मप्रेमी बंधुओ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरो पर निम्नांकित पद्धतियो मे भारतमे अनेक स्थानोपर पाठ किया जाता है। आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोके बीचमे श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमे।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरमे।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रो द्वारा।
४—सूर्योदयसे एक घटा पूर्व परिवारमे एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषो द्वारा।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओ द्वारा।

पंचास्तिकायप्रवचन १, २, ३, ४, ५, ६ भाग
(प्रथम भाग)

प्रवक्ता–अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज

इदसदवंदियाण तिहुवणहिदमधुरविसदवक्काण।
अतातीदगुणाण णमो जिणाण जिदभवाण॥ १ ॥

जिनेन्द्रनमस्कार—जो धर्मपुंज शत इन्द्रोंके द्वारा वंदित हैं अर्थात् भवनवासी देवोंके ४० इन्द्र, व्यन्तर देवोंके ३२ इन्द्र, कल्पवासी देवोंके २४ इन्द्र ज्योतिषी देवोंके दो इन्द्र सूर्य और चन्द्र, मनुष्योंका एक इन्द्र चक्रवर्ती और तिर्यञ्चोंमें एक इन्द्र सिंह ऐसे १०० इन्द्रोंके द्वारा जो वंदित हैं, वंदनीय हैं, जिनका उपदेश तीन लोकका हित करने वाला है जो कि मधुर एवं स्पष्ट है, जिनमें अनन्तानन्त गुणोंका अनन्त विकाश है जो संसारसे निवृत्त हो गए हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार हो।

ग्रन्थवक्तव्यसे धर्मपालनका सम्बन्ध—यह ग्रन्थ पंचास्तिकाय है पूज्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य देवने इस ग्रन्थकी रचना की है। इसमें जीव पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश इन ५ अस्तिकायोंका स्वरूप मुख्यतासे बताया है और फिर प्रसंग पाकर संक्षेपमें जो अस्तिकाय नहीं है ऐसे कालद्रव्यका भी वर्णन किया है। वस्तुके स्वरूपको बतानेका प्रयोजन है मोह हटे, रागद्वेष दूर हो। उसका साधक है वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान। जो पुरुष वस्तुका यथार्थ ज्ञान करके उपेक्षा करने योग्य परद्रव्योंसे उपेक्षा करते हैं वे विकारभावसे निवृत्त होकर शाश्वत आनन्दका अनुभव करते हैं।

निजको निज परको पर जाननेका लाभ—निजको निज परको पर जाननेसे यह लाभ होता है कि चूंकि पर भिन्न हैं, अहित हैं असार हैं, पर ही हैं, सो उनसे तो उपेक्षा भाव कर लेना चाहिये, और निज जो अन्तस्तत्त्व है उसमें रुचि जगाना चाहिये इससे आत्मामें अनादिसे ही बसा हुआ जो सहज आनन्द है और सहज चैतन्य है उसका प्रकाश होता है। जिसके अपने ज्ञान दर्शनका पूर्ण प्रकाश हुआ है वह पुरुष परमात्मा कहलाता है। वह अनन्तानन्त गुणोंमें विश्राम लिये हुए रहता है। प्रभु सर्वज्ञ, वीतराग व कृतकृत्य हैं तभी हम आपके लिये आदर्श भगवान हैं। भगवान यदि हम आप लोगोंकी भक्तिको निहारकर तारने लग जायें, बातचीत करने लग जायें, तो भगवानका फिर आदर्श न रहेगा। फिर तो एक प्रकारके भगवान व्यापारी ही कहलाये। यहांके छोटे मोटे व्यापारी छोटी सीमामें विकल्प करते हैं, भगवान एक सबसे बड़े व्यापारी कहलाने लगे, जो जगतको लोकको रचे, विधि बनाए। प्रभु किसीपर नाराज होकर उसका विनाश करने नहीं आते। प्रभुका स्वरूप है–सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि निजानन्द रसलीन। प्रभु समस्त ज्ञेयोंके जाननहार हैं, फिर भी आत्मीय आनन्दरसमें लीन रहा करते हैं। यही है प्रभुस्वरूप। यह विकाश हमारा आपका सबका हो सकता है, और ऐसा ही करें सो ही बुद्धिमानी है।

व्यर्थका समागम व्यामोह—यह जगतका समागम प्रथम तो भिन्न है, अहित है, असार है, उसकी आकांक्षा न करो। फिर दूसरी बात यह है कि यह समागम आपके माननेसे आता भी तो नहीं है, आप तो केवल अपना भाव भर बनाते हैं उस भावके बनानेके बाद निमित्त नैमित्तिक योगसे यह सब कार्यपरम्परा चलती रहती है। समागम इष्ट मिले इसमें निमित्त कारण है पुण्य कर्मका उदय। उस पुण्य कर्मका उदय आये तब ही ना, जबकि उसका बंध हो। पुण्यकर्म

का बंध हो उसका निमित्त कारण है शुभ परिणाम। शुभ परिणामोंका कर्ता यह जीव था। निमित्तपरम्परामें तो उसका कारण भाव बना। पर भाव साक्षात् धनको कमाले, इकट्ठा करले सो नहीं होता। आत्माके भावोंका धन आदिक वैभवमें स्पर्श भी नहीं होता। जो पुरुष अपने स्वरूपको सम्हालते हैं वे ऐसे परमात्मत्वका विकास प्राप्त करते हैं।

स्याद्वादपद्धतिसे सम्यक् परिज्ञान—वस्तुस्वरूपका सम्यक् परिज्ञान स्याद्वादपद्धतिसे ही हो सकता है। जैन दर्शनकी सबसे बड़ी विशेषता है वस्तुके स्वरूपका यथार्थ प्रतिपादन। स्वरूपप्रतिपादनकी यथार्थताका कारण है स्याद्वाद का आश्रय लेना। स्याद्वादका अर्थ है अपेक्षावाद। अर्थात् अपेक्षा लगाकर स्वरूपको कहना जैसे एक पुरुषका परिचय दिया जाय तो कहते हैं कि यह अमुकका पिता है, अमुकका पुत्र है, अमुकका मामा है, अमुकका भाजा है सम एक ही आदमीमें पिता पुत्र आदिक अनेक रिश्ते बताए गए और वह सब बताना अपेक्षा लगाकर हुआ है। यदि कोई अपेक्षाको तो छोड़ दे और कहे कि यह पिता है, थोड़ी देरमें कहे कि यह पुत्र है तो यह विवादका विषय बन सकता है कदाचित् कोई कहे कि यह पुरुष पिता भी है, पुत्र भी है तो ऐसा कहनेसे बीचमें अपेक्षा आ गयी, मनमें अपेक्षा लगानेसे विवाद मिट गया, पर अपेक्षा तो जरा भी न लगाये या अपेक्षा उस शब्दकी एक ही लगाए तो विवाद हो जायेगा। जैसे मानो मोहन सोहनका पिता है और यह कहे कि यह सोहनका पिता है और पुत्र भी है, तो विवाद हो गया कि नहीं। जितने धर्म बताये जायें उतनी ही अपेक्षा लगायी जाती हैं तब यथार्थ ज्ञात होता है।

स्याद्वादपद्धतिका संक्षिप्त विवरण— अपेक्षा लगाकर धर्म लगाये तो यह स्याद्वादकी शैलीका सही रूप होता है। जैसे कहें कि यह सोहनका पिता ही है तो बात सही हो गयी। दूसरेका नाम लेकर बता दिया कि उसका पुत्र ही है, बात सही हो गयी। अपेक्षा लगाकर बातको दृढ़तासे कहना उसका नाम स्याद्वाद है। जैसे जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य ही है। कोई यदि कह दे कि जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य भी है तो गलत हो जायेगा। क्योंकि इसका अर्थ यह निकलेगा कि द्रव्यदृष्टिसे नित्य भी है और अनित्य भी है। द्रव्यदृष्टि कहते हैं–पदार्थका जो सहज स्वतः सिद्ध स्वरूप है, जिससे रचा हुआ है उस स्वभावपर दृष्टि देनेको। जैसे दृष्टान्तमें मिट्टीका घड़ा लेलो। यह मोटा दृष्टान्त दिया जा रहा है। दशाकी मोटी दृष्टिसे घड़ेके पर्यायकी दृष्टि करना सो पर्याय दृष्टि है। यह चीज मिट्टीकी दृष्टिसे सदा रहेगी, घड़ेकी दृष्टिसे सदा न रहेगी, पर्याय न रहेगी। यों ही द्रव्यदृष्टिसे जीव सदा रहेगा, पर्यायकी मुख्यताकी दृष्टिका जीव सदा न रहेगा। तब द्रव्यदृष्टिसे जीव नित्य भी है यह कहना गलत है। द्रव्यदृष्टिसे जीव नित्य ही है, यह कहना सही है। और यह जीव पर्यायदृष्टिसे अनित्य ही है यह भी सही हैं तो अपेक्षा लगाकर स्वरूपको बताना स्याद्वाद है।

स्याद्वादपद्धतिमें विरोधपरिहार स्याद्वादको शैलीमें वस्तुस्वरूपका यथार्थ परिज्ञान होता है यहां यह स्पष्ट ज्ञानमें आया कि यह स्याद्वादसिद्धांत समस्त एकांतवादियोंका विरोध मिटानेमें समर्थ है। एक प्रसिद्ध दृष्टांत है। चार अन्धे किसी हाथीका स्वरूप समझने गये। एक अन्धेके हाथमें सूंड आयी वह तो सोचता है कि हाथी मूसलकी तरह होता है, एकके हाथमें पैर आये सो वह कहता है कि हाथी खम्भेकी तरह होता हैं एकके हाथमें पेट आया तो वह सोचता है कि हाथी ढोलकी तरह होता है एकके हाथमें कान आये तो वह कहता है कि हाथी सूपकी तरह होता है। अब वे आपसमें एक दूसरेसे झगड़ने लगे। एक सूझता पुरुष आया, उसने पूछा–तुम क्यों लड़ रहे हो ? उन्होंने बताया कि हाथीके स्वरूपपर यहां विवाद हो रहा है हम लोगोंमें। अच्छा, अपनी अपनी बात बताओ तो सही। सबने अपनी अपनी बात बतायी। तो वह सूझता पुरुष बोलता है कि तुम सब सही कह रहे हो, झगड़ा न करो। हाथीके कान देखो तो उसकी दृष्टिसे सूप जैसा होता है सूंड पकड़ो तो उसकी दृष्टिसे मूसल जैसा होता है, पेट देखो तो उसकी दृष्टिसे ढोल जैसा होता है और पैर पकड़ो तो उसकी दृष्टिसे खम्भे जैसा होता है। अरे तुम्हारी सब बातोंको मिलाकर जो हो सो हाथी है। ऐसे ही जानो स्याद्वादकी पद्धति सब एकान्त धर्मोंका विवाद मिटाने वाली है।

विरुद्ध अभिमतमें भी अविरोधकी दृष्टि– बौद्ध लोग कहते हैं कि जीव अनित्य ही हैं, वेदान्ती कहते हैं कि जीव अपरिणामी नित्य ही है। उन सबका समाधान जैन दर्शन देता है। दृष्टियां लगाकर वस्तुस्वरूपके प्रतिपादन

की विशेषता जैन दर्शनमें है। कैसा यह सर्वपालक दर्शन है।

ज्ञानकी अप्रसिद्धिका कारण—जैनदर्शनमे चरित्रकी आधारशिला सत्य व अहिंसा है जो सारे विश्वको शान्त और सुखी करनेमें समर्थ है। लेकिन समयका प्रभाव है कि भले पदार्थको भला न देखकर उसकी बुराई ही नजर आती है, और चूंकि इस जैन दर्शनके मानने वाले जो लोग हैं, कषाय तो जैसी सबमें बसी है, प्राय वैसी उनमे भी बसी है। अन्याय और बेईमानी तो जैसे अन्य जन करते है वैसे ही ये भी करते हैं क्योंकि कषाय पड़ी हुई हैं। लेकिन जो इस जैन दर्शनको मानते हैं यदि औरोकी ही तरह बेईमानी दगा आदि खोटा कुछ काम करने लगे तो जैन दर्शनके मानने वालोंकी बदनामी शीघ्र होगी, क्योंकि इनका दर्शन इनका सिद्धांत पवित्र है। इससे जरा भी चलित होनेपर धर्मकी अप्रभावना जल्दी हो जाती है, एक यह भी कारण है जिससे कि यथार्थ दर्शन लोगो को दुर्गम हो गया है।

जैनदर्शनकी वर्तमान अख्यातिके अन्य कारण—दूसरा कारण यह है जैनदर्शनकी अप्रसिद्धिका कि यह जिस उपायपर चलाना चाहता है, जिसपर चलनेके कारण यह जीव सदाके लिए शान्त और आनन्दमय हो जाय वह उपाय मोहमे कठिन हो जाता है। प्रत्येक जीवको विषय कषायकी वासना बनी हुई हैं अत. ये ज्ञान ध्यानके नियम कठिन मालूम होते है, इस कठिनाईके कारण भी लोगोंने इस दर्शनका साथ छोड दिया है, आदिक अनेक कारण हैं जिससे आज इसकी प्रभावना, मान्यता, प्रसिद्धि इस परिचित दुनियामे कम है किन्तु जैन दर्शन तो वस्तुके स्वरूपको बताता है, जो वस्तुमें धर्म हैं उस ही को जिनेन्द्र देवने बताया है इस कारण नाम जैन धर्म पड़ गया, किन्तु वास्तवमे उसका नाम है वस्तुधर्म। जब वस्तु कभी मिट नही सकती, वस्तुधर्म भी कभी मिट नहीं सकता। जैसे कोई पुरुष अपने आपके आत्माको मना करे कि मैं नही हू अरे वही तो मैं हू मैं आत्मा नही हूँ ऐसी जानकारी जिसमें हो रही है, ऐसी कल्पना जिसमें उठ रही है वही तो आत्मा है। तो जैसे अपने आपकी मनाई करनेसे अपने आपका अभाव नही हो जाता ऐसे ही वस्तुधर्म अथवा जैनदर्शनकी मनाई करनेसे वस्तुधर्म अथवा जैनदर्शन समाप्त नही हो जाता। चाहे उसके जानने मानने वाले यहा एक भी न रहें, फिर भी वस्तुधर्म सदा ही चलता रहता है।

यथार्थ ज्ञानका प्रताप—अपेक्षावाद करके जो यह सिद्धात पद्धति चलती है उस पद्धतिसे वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान होता है और उस ज्ञानके फलमें मोह हटना, कषाय हटना, यह सभव हो जाता है। भला थोडी देरको आप अपना ऐसा उपयोग बनालें कि यह भी मैं नही हूँ। यह देह जड है मैं आत्मा चेतन हूँ। इस देहको मैं छोड दूंगा देह यहा पडा रह जायगा। लोग इसे गाड देंगे, जला देंगे या पशुपक्षी चीथ लेंगे। यह मैं आत्मा सुरक्षित हूँ, परिपूर्ण हूँ इस देहसे अत्यन्त न्यारा हूँ, और जब देहसे भी न्यारा हूँ तो अन्य वैभव परिजन आदिकसे भी प्रकट न्यारा हूँ, मेरा कोई भी काम किसी परमें नही जाता। यह मैं आत्मा अपने आपके भाव बनाया करता हूँ। भावोंके अनुसार ही सुख दुःख आनन्द भोगता हू। मेरा किसी भी पर पदार्थसे सम्बन्ध नही है। मैं किसी परका कर्ता नही, भोक्ता नही। यो अपने एकत्वकी रचना जीवमे है।

मोहविनाशकी यथार्थज्ञानसाध्यता—इस लोकमे सग्रन्थदशामें वर्तमान आवश्यकताओंके अनुकूल किसीसे राग करना ही पडता रहेगा लेकिन मोह करना ही पडेगा यह लाजमी नही है। भीतरमें ज्ञान जगे और वस्तुकी स्वतन्त्रताका सही पता हो जाय, ये वस्तु अपने स्वरूपसे अपनेमें ही हैं, मैं सत् अपने स्वरूपसे अपनेमे ही हूँ जहां ऐसा भान हो फिर यह विकल्प कैसे हो सकता है कि यह पदार्थ मेरा है। मोह मिट गया समझिये। लोग शान्तिके लिये अधिकाधिक सर्व प्रकारके प्रयत्न कर रहे हैं। एक यह सम्यग्ज्ञानका प्रयत्न नहीं किया गया। यह ज्ञान पुरुषार्थ इतना ऊंचा प्रयत्न है कि इस जीवका कल्याण केवल इस पुरुषार्थपर निर्भर है।

यथार्थ ज्ञान होनेपर ही अज्ञानकी अज्ञानताका प्रकाश—दुनियाकी बढाई दुनियाकी इज्जत अथवा किसी प्रकारकी स्थिति बने, पर ये सारी बातें इस जीवको कुछ भी साथ न देंगी। ये तो सब स्वप्न जैसी बातें है। जैसे

स्वप्नमे देखी हुई बातें सच मालूम होती हैं, जगनेपर पता चलता है ओह ! वह तो सब झूठ था, ऐसे ही मोहके स्वप्नमें सारी बातें यहां सही मालूम हो रही हैं यह मेरी स्त्री है, यह मेरा वैभव है ये मेरे परिजन हैं, पर जब ज्ञान जगता है तो ये सारी बातें झूठ मालूम पडने लगती हैं। अज्ञान अवस्थामें यह मानता था कि यह मेरा वैभव है, ये मेरे परिजन हैं इत्यादि, पर जब ज्ञान जगा, अज्ञान निद्राका भग हुआ तो वस्तुके स्वरूपका यथार्थ परिचय हो जाता है। ओह ! यह मैं अनादि कालसे ऐसी भूल ही भूल करता चला आया। यह सब झूठ है। तो सम्यग्ज्ञानमें यह चमत्कार है कि मोहको मिटा दे। मोह न रहे तो समझो कि हम धर्मपालन कर रहे हैं।

वस्तुस्वरूपके यथार्थ प्रतिपादनका ध्येय— इस ग्रथके रचयिता पूज्य श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य देवने आत्म-पवित्रता व जीवलोकपर करुणाके ध्येयसे ऐसे ग्रथको रचा है अत इस ग्रथमे पदार्थोंके स्वरूपका व्याख्यान किया गया है क्योंकि समस्त दुखोंके दूर होनेके उपायमे यह सर्वप्रथम आवश्यक है कि हम पदार्थोंका स्वरूप ठीक-ठीक जानलें। जितने भी क्लेश हैं वे सब मोहके हैं। मोहका अर्थ है एक पदार्थका दूसरे पदार्थसे सम्बन्ध मानना। सबन्ध माननेकी कल्पना ही तब मिट सकती है जब यह ध्यान आ जाय कि एक पदार्थका दूसरे पदार्थसे कोई सम्बन्ध नही है और वास्तवमे प्रत्येक पदार्थ अपने अपने स्वरूपमें है इस कारण किसीका किसी अन्यसे सम्बन्ध है ही नही। इस बातका परिज्ञान हो तो मोह मिटे। मोह मिटे तो क्लेश मिटे। इस कारण इस ग्रथमे पदार्थोंकी व्याख्या की जावेगी।

सम्यक व्याख्यानमे निश्चय व व्यवहारका प्रवेश—यह व्याख्या दो नयके आधीन रहेगी। निश्चयनय और व्यवहारनय, क्योंकि दोनों नयोंके आधारसे किया हुआ व्याख्यान ही सम्यग्ज्ञानकी निर्मल ज्योतिको विकसित करनेमे समर्थ है। जैसे इस देहमें विराजमान भी आत्माको यह आत्मा है, यों केवल आत्माको ही निरखना सो तो निश्चयका काम है और देहका आत्माका सम्बन्ध देखना व्यवहारका काम है। अच्छा यह बताओ कि यह मेरा आत्मा देहके बधनमे है या नही। अब इसका उत्तर जाननेके लिए दोनों नयोका आश्रय करना होगा। यदि हम निश्चय करके एकान्त करके यह जानलें कि आत्मामे आत्मा है, आत्मा देहमें नहीं है यद्यपि यह बात सही है आत्मा अपने स्वरूपमें है देहमें नहीं है फिर भी एकान्त मान लिया जाये कि किसी भी प्रकार इस आत्माका देहसे सम्बन्ध नही है तो यह बात सत्य न होगी, क्योंकि यह आत्मा देहमे बंधा है, देहसे बाहर कही जा नही पा रहा है। देहको छोडकर आगे भी जायगा तो किसी देहमे बधेगा और सुख दु ख कल्पना जाल जितने भी क्लेश है वे सब इस देहके सम्बन्धसे हैं, तो देहके बधनसे कैसे मुक्त हुआ जाय। अथवा जब यही मान लिया पहिलेसे ही सर्वथा कि मैं देहमे सर्वथा ही न्यारा हूं तो अब मोक्षकी क्या अटकी है ? जब यह बन्धनमें ही नही है तो मोक्ष किसका कराना है और मोक्षमार्ग भी क्या हुआ ? इस कारणमात्र व्यवहारमे या मात्र निश्चयके आश्रयसे किया हुआ व्याख्यान सम्यग्ज्ञानका निर्मल प्रकाश नहीं फैला सकता है। केवल व्यवहारनयका आश्रय करके इस सम्बन्धमें यह जाना जायगा कि यह आत्मा देहमे बधा है. देहमें बद्ध है, और साक्षात् करके यह मान लिया जाय कि आत्मा देहमें फंसा हो है इसके विपरीत, जैसा कि आत्मा स्वतन्त्र है अपने स्वरूपमें है, न माना जाय तो इस परिचयमे भी मुक्तिका मार्ग नही मिल सकता है। यह मैं आत्मा तो देहसे बधा हू देहके परतन्त्र हूँ देह जो कराये सो करना पडता है तो इस परतन्त्रताके भावमे मुक्तिका उत्साह कहा रहा। जिसे मुक्त करना है, जब तक उसकी असलियत न जान ली जाय, उसका एकत्व न परिचयमे आये तो मुक्ति कैसे मिल सकती है। तो इस ग्रथमे सम्यग्ज्ञानके निर्मल प्रकाशको उत्पन्न करने वाला व्याख्यान दो नयोंके आश्रयसे किया जायगा।

समयका स्वरूप— पदार्थका नाम समय है। समयके मायने समस्त पदार्थ। लोकरूढिमे समयका अर्थ काल कहा गया है, पर समयका शब्दार्थ क्या है। सम् अय। सम् उपसर्ग है, अय धातु है। सम एकत्वेन अयते गच्छति परिणमते इति समय। जो अपने आपमे अपने एकत्वरूपमे परिणमा करे उसे समय कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ अपना अपना भिन्न भिन्न अस्तिकाय लिये हुए है, और सभी पदार्थ केवल अपनेमें अपना परिणमन करते है। जैसे मानो दो भाइयोंमे बडा स्नेह है तो वहां यह नही हो सकता कि किसी एक भाईका स्नेह दूसरे भाईमे पहुँच गया हो। वे दोनो

अपनी अपनी जगहमे रहकर अपने अपने ही स्वरूपमे वसकर कल्पना जगाकर अपनेमें स्नेह परिणमन कर रहे हैं। कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थमे अपना परिणमन नही करता है प्रत्येक पदार्थ अपने ही एक स्वरूपमे परिणमा करता है, अतएव पदार्थका नाम समय है।

शब्दभेदकी विलक्षणता—भैया! जितने शब्द होते हैं उतने ही उसमे अर्थ हैं। भले ही अनेक शब्द एक ही पदार्थके वाचक हो लेकिन शब्द भेद जितने हैं उतनी ही विशेषताओसे पदार्थको देखा जाता है। जैसे मनुष्य, मानव, जन अनेक नाम हैं एक आदमीके वाचक, पर जो कम दिमागके हैं उनको मनुष्य न कहेंगे। मनुष्य उसे कहेंगे जो उत्कृष्ट मन वाला हो। जो मनसे बडी बडी समस्याएँ हल कर सके उसका नाम है मनुष्य। मानव मनुकी सतानको कहते। एक साधारण बात आयी है कि पूर्वकालमे जो १४ मनु हुए हैं उनके बीचमे जो थे, उनकी परम्परामे हम आप है। जन कहो इसका अर्थ इतना ही है जो जन्मे पैदा हो चाहे धनी हो, गरीब हो, मूर्ख हो, सब जन कहलाते हैं। एक ही आदमीके वाचक अनेक शब्द हैं, पर वे अपना भिन्न भिन्न अर्थ रखते हैं। ऐसे ही पदार्थके वाचक अनेक शब्द हैं पदार्थ द्रव्य, वस्तु, समय, सत्, जितने भी नाम हैं उन सब नामोका जुदा-जुदा प्रकाश मिलता है। पदार्थका अर्थ इतना ही है जो पद है उसका वाच्य, वह है पदार्थ। वस्तुका अर्थ है जिसमें गुण बसे हों अथवा जिसमें अर्थक्रिया होती हो। जैसे गाय वस्तु है, गायसे दूध मिलता है, अर्थक्रिया होती है, और गाय जाति वस्तु नही है। वह अनेक वस्तुभूत गायोंके समुदायमें कल्पना किया हुआ शब्द है। जातिसे काम नही निकलता। काम निकलता है व्यक्तिसे, वस्तुसे। जिसमे अर्थक्रिया हो उसे वस्तु कहते है। द्रव्यका अर्थ है जो भूत कालमें अपनी पर्यायोको प्राप्त करता रहे, आगे करता रहेगा, वर्तमानमे पर्यायोको प्राप्त कर रहा है उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य शब्द से एक त्रैकालिक पर्यायों रूप सत् है यह विशेषता ज्ञात हुई। यहाँ समय शब्द कहा जा रहा है। इसकी यह विशेषता है कि यह शब्द बतलाता है कि प्रत्येक पदार्थ अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें रहता हुआ अपने मे ही परिणमा करता है किसी दूसरेमे नहीं।

कल्याणमे सम्यग्ज्ञानका नेतृत्व—भव्य जीवोका उत्कृष्ट होनहार सम्यग्ज्ञानमे है। सब कुछ मिल जाय वैभव धन सम्पदा परिवार इष्टजन यश और एक आत्मामे सच्चा ज्ञान न जगे तो उसका सब कुछ पाना व्यर्थ है। यह कितने दिनोकी मौज है। फिर वही ससारका भटकना, अब भी वही भटकना। शान्ति न उसे इस समय है न अगले समयमें है। कोई बालक युवक पुरुष अच्छे काममें रहा करे, भगवानकी भक्तिकी और ध्यान रहे, साधुसेवामें चित्त रहे, परोपकार आदिकमे भावना बनी रहे, धर्मकार्यमें उत्साह रहे तो ऐसा जो उसका सत् आचरणकी ओर झुकना है यह झुकाव करोडो और अरबोकी सम्पत्तिसे बढकर भी सम्पदा है। कोई बहुत बडा सम्पन्न हो और उसका झुकाव व्यसनोंकी ओर हो तो उसका जीवन चिन्तामग्न रहा करता है। व्यसनोमे पर जीवोंसे सम्बध जोडना पडता है और पर जीव अपने आधीन है नही, वह अपनी कषायके अनुसार अपना परिणमन करता है तब यहाँ मनके अनुकूल बात न होने पर व्यग्रता रहा करती है। अच्छे विचार बनाना, अच्छी ओर झुकाव रहना यह बहुत बडा वैभव है। वैभवका फल लोग शान्ति ही तो चाहते हैं, पर शान्ति ज्ञानके अनुसार होती है। आनन्दका सम्बध धनसे नही है धन विशेष हो तो आनन्द मिले ऐसा नियम नही है, किन्तु आनन्द ज्ञानके ही आश्रित है। हम जैसी कल्पना करें, ज्ञान बनाएँ उस आधार पर सुख दुख अथवा आनन्द होता है। समय शब्द इस बातका प्रकाश देता है कि तुम समस्त पदार्थोंको स्वतत्र निरखो। ये सभी पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमे एकत्वमे रहा करते है। ऐसे इस समयकी व्याख्या इस ग्रथमे की जायगी जिससे मोह दूर हो परद्रव्योसे उपेक्षा हो, ज्ञानमात्र निज अन्तस्तत्त्वका आलम्बन हो।

ग्रन्थके प्रथम अधिकारमे—इस ग्रन्थमे तीन अधिकार किए जायेंगे। प्रथम अधिकारमें ५ अस्तिकायो अथवा ६ द्रव्योके रूपसे मूल पदार्थोका वर्णन चलेगा। मोही जन मूल पदार्थोंसे अपरिचित रहते हैं और जो परिणमन है साफ है उससे यों परिचित रहते हैं कि यही सब कुछ है। जिसे मूल बातका परिचय हो उसके विवाद और व्यामोह नही रहता। जैसे लोक और समाज पद्धतिमें ही इस बातको देखो कोई सा भी विवाद या झगडेका साधन हो, व्यवस्था

प्रबंध समारोह आदिका साधन हो और उस प्रसगमें मूल बातका ठीक निर्णय रहे तो विवाद नहीं हो सकता। जैसे हम आप सब लोग मिलकर एक धर्मपरम्परा बना रहे, यदि यह मान रहे कि हम लोग तो तीर्थंकर भगवानके एक छोटे छोटे मुनीम लोग हैं, क्लर्क लोग हैं हम कोई अधिकारी नही हैं, जैसे कि कुछ कमेटीके रूपमें अधिकारीके रूपमें और उसी प्रसगमे हठ बन जानी है, अपने विजयके थापनेकी जिद्द हो जानी है, सबकी बात टालकर अपनी ही बात रखनेकी मनमे आनी है। ये सब क्यो आते हैं ? मूल बातको भूल गए। अरे काम तो इतना ही है कि जिस प्रकार हो वस्तुस्वरूपके यथार्थ प्रतिपादन करनेवाले इस जैन शासनकी लोकमे ज्योति आये, लोग समझें, हमारा कल्याण तत्त्वज्ञानमें है, इसके ही लिये तो हम आपने यह परम्परा बनायी है।

अवैयक्तिक कार्यमें कार्यकी प्रधानता –हम आपका कोई महत्त्व है क्या इस पर्यायके रूपसे ? जैसे कोई सरकारी काम किया जाता है तो उसमे काम करने वाले अफसर लोग क्लर्क लोग सबको अपनी करतूतकी हठ नहीं होती हैं कि मैंने कहा इसलिये ऐसा होगा। यदि कोई हठ करे तो वह उस कार्यका कर्ता नहीं हैं। वह तो यह जानता है कि मैं अलगसे कुछ चीज नहीं हूं, सरकार है सरकारका काम है। मुझ जैसे अनेकों हैं काम चलाना है। मेरा निजी कुछ नहीं है। हम तो सरकारके भलेका कार्य कर रहे हैं ऐसी बात उनके हृदयमें जागती है, ऐसे ही हम आप सोचें कि हम आपका अलगसे इस मामलेमे कोई अस्तित्व नहीं है। जब णमोकार मन्त्रमें भी तीर्थंकरोंका नाम नहीं है जिनकी हम आराधना करते हैं उनके व्यक्तित्व का भी जब कोई स्थान नही है और हम और आप जरा जरासी बातों में अपने व्यक्तित्वकी हठ पकड जायें तो समझिये कि कितना पदसे विमुख चल रहे हैं। मूल तत्त्वका बोध न होनेसे अनेक विसम्वाद हो जाते हैं। इस ग्रन्थके प्रथम अधिकारमे ५ अस्तिकाय अथवा ६ द्रव्योंके रूपसे मूल पदार्थोंका वर्णन किया जायगा।

ग्रन्थके द्वितीय व तृतीय अधिकारमे –जब मूल पदार्थ विदित हो जायगा यथार्थतया, जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ प्रकारके द्रव्य हैं। इनमें जीव तो जीव है और शेष अजीव है तब दूसरे अधिकारमें जीव और अजीव इन दोनों पदार्थोंके पर्यायरूपसे ९ पदार्थोंका वर्णन चलेगा। सप्ततत्त्व अथवा ९ पदार्थ। इनके विशद बोधसे मोक्षका मार्ग प्राप्त होता है। जब ७ तत्त्व ९ पदार्थोंकी व्याख्या विदित हो गयी तो उस मार्गपर चलेंगे जिससे यह उत्कृष्ट मोक्षका लाभ हो सके। मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत ७ तत्त्वोंका परिज्ञान करके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चरित्ररूप आत्मपरिणमनके मार्गसे यह कल्याणमय मोक्ष प्राप्त होगा। उसकी ओर प्रतिपादित समस्त विषयोंकी चूलिकाओमे यह वर्णन चलेगा।

मूल उपदेष्टाकी लोकोत्तरता– अपूर्व कल्याणकारी महान वक्तव्यको प्रारम्भ करनेसे पहिले कुन्दकुन्दाचार्य देव मगलाचरणमें कह रहे हैं कि शत इन्द्रोंसे वदनीक और तीन लोकका हित करने वाले, मधुर स्पष्ट जिनका उपदेश है तथा जो अनन्त गुणोंके पुज हैं, जिन्होंने इस ससारको जीता है उन जिनेन्द्र भगवानको मैं नमस्कार करता हूं। आज भी जितना यह परमागम है इसका मूल स्रोत जिनेन्द्र देव हैं। पाणिनीय व्याकरणमें सबसे पहिले यह बताया है कि इस व्याख्याकी रचना और उद्भवके मूल ये १४ सूत्र है अइउण् ऋलृक् आदि। ये १४ सूत्र महादेवके डमरूसे निकले ऐसा उनका कहना है उससे यह बात प्रकट हुई है कि कोई मनुष्य अपने मुखसे बात कहे और उससे पहले कोई स्रोत न हो तो मुखसे कही हुई बात प्रामाणिक नहीं होती। कोई प्राकृतिक विलक्षण प्रामाणिक ढगसे बात हो, फिर उसके आधारमे मुखसे कितने ही बार उसको लोग बोलें टीकें वह सब प्रामाणिक हैं। १४ सूत्रोंको महेश्वरके डमरूसे निकला बताया गया है। अब जरा परमागमकी ओर दृष्टि दो जिसमे ये समस्त निष्पक्ष वीतराग मार्गका प्रकाश करने वाला जो कुछ शास्त्रका समूह है इसका मूलमे आनेका स्रोत क्या था ? तो वह है जिनेन्द्र देवकी दिव्य ध्वनि। वे जिनेन्द्र देव वीतराग, इन्द्रवन्द्य, अनन्तज्ञानी व हितोपदेशी हैं।

उपदेशकी प्रामाणिकता –कोई पुरुष यो ही बोलकर उपदेश शुरू करे और उससे पहिले उपदेशका और

कोई विलक्षण स्रोत न हो तो उसमें प्रामाणिकता नहीं आती। जिनेन्द्रदेव चार घातिया कर्मोंसे रहित वीतराग निष्कषाय केवल ज्ञानसे सब लोकालोकको जाननेवाले हैं। साथ ही उन्होंने साधु अवस्थामें या इससे पहिले जो संसारके प्राणियोंके उद्धारकी भावना की थी उसमें जो पुण्यबंध हुआ था उसकी प्रेरणासे और भव्य जीवोंके सौभाग्यसे जिनेन्द्र देवके सर्व अंगोंसे एक ऐसी विशिष्ट ध्वनि निकलती है कि उस ध्वनिको झेलनेवाले सर्वोत्कृष्ट लोकके ज्ञानी गणधरदेव ही झेलते हैं, और उस परम्परासे चला आया हुआ जो यह उपदेश है वह निर्बाध रहता है। इसी कारण मंगलाचरणमें ऐसे उपदेष्टा जिनेन्द्रदेवको प्रथम नमस्कार किया है और चार विशेषण देकर उनकी प्रामाणिकता जाहिर की है शत इन्द्रों द्वारा वंदनीक भगवान जिनेन्द्रदेवका उपदेश हितकारी है। उनमें अनन्त गुण हैं और उन्होंने संसारपर विजय प्राप्त कर ली है ऐसे जिनेन्द्रदेवको नमस्कार हो।

अनादिनियोग—अनादिसे चले आ रहे शत इन्द्रों द्वारा वन्दनीक, अनादिसे चले आरहे जिनेन्द्रदेवको हमारा शत शत नमस्कार हो। इस लोकमें धर्म और अधर्म सभी प्रकारका प्रवर्तन अनादि कालसे चला आ रहा है। यह संसारी जीव जैसे मोह मद आदि कलुषित आशयोंसे परिणमते चले आ रहे हैं ऐसे ही धर्मात्माजन धार्मिकमार्गके नेता ये भी अनादि कालसे चले आ रहे हैं, संसार अनादि कालसे चला आ रहा है। तीर्थंकर प्रभु भी अनादि कालसे होते चले आ रहे हैं, और उन तीर्थंकर भगवंतोंका विनय करने वाले इन्द्रादिक देव भी अनादिसे ही इनकी पूजा करते चले आ रहे हैं। वस्तुधर्म जैनधर्म अथवा आत्मधर्म कहो, यह भी अनादि कालसे चला आ रहा है।

धर्म और धर्मनेताकी परम्परा—धर्म नाम है स्वभावका। पदार्थमें जो स्वभाव है उस स्वभावका नाम धर्म है, और उस स्वभाव मात्र वस्तुको जाननेका नाम है धर्मपालन। ऐसा धर्म कबसे चला आ रहा है, वस्तु अनादि से है और धर्म भी अनादिसे है और इस धर्मका पालन भी अनादिसे चला आ रहा है। यह जिनेन्द्र देव यह व्यक्तिगत नहीं है, किन्तु जो रागद्वेष मोहको जीते सो जिन है। ये जिन अनादिकालसे चले आ रहे हैं और ये इन्द्र जो कि इनकी वंदना करते हैं वे भी अनादिकाल से प्रवर्तमान परम्परामें चले आ रहे हैं। इस गाथामें जो इंदसदवंदियाण विशेषण दिया है जिनेन्द्रदेव का, उसमें इतना ही जानना कि सदा काल अनादिसे अनन्त काल तक जीवोंके देवाधिदेव ये जिनेन्द्र देव हैं, और इनको सभी इन्द्र असाधारण रूपसे विशेष रूपसे नमस्कार करते हैं और ये समस्त लोकके द्वारा नमस्कार किये जाने योग्य हैं।

भगवत्तत्त्व—अभी नाम तो लो नहीं किसी भगवानका, किन्तु भगवानकी विशेषता व स्वरूप ही बताते जावो तो सब लोगोंको रुच जायगी वह विशेषता और जहां किसी भगवानका नाम ले लिया, महावीर ऋषभदेव आदि तो कुछ तो पक्षमें रहेंगे जो उनके माननेवाले है, बाकी सब हट जावेंगे। यह तो एक मजहबकी बात है। जरा नाम तो लीजिए नहीं कुछ, किन्तु बताते जाइये हमारे आदर्श ये हैं, जिनमें रंच भी रागद्वेष मोह नहीं रहा और जिनके ज्ञान इतना विराज रहा है कि समस्त विश्वको एक साथ जानते हैं। जो शुद्ध विकासरूप है परम ज्योतिस्वरूप है, अनन्त आनन्दमय है ऐसा भगवान हम लोगोंका आदर्श है पूज्य है उसकी भक्तिसे ही सारे संकट टलते हैं। सब लोग बड़े प्रेमसे सुनेंगे और इनकी ओर भक्ति जगेगी। अच्छा नाम तो लीजिए नहीं और वर्णन करते जाइये हमारा भगवान बड़ा लीलाधारी है, अनेक स्त्रियोंमें रमता है और रस रसायन चुरा चुराकर खूब मस्त होकर खाता है नाम न लीजिये किन्तु केवल बात ही बतावो तो उसे सुनना लोग पसन्द न करेंगे तो जो गुणविकास है, जो निर्लेपता है वह उपासनीय है और ऐसा उपास्य देव ही वास्तवमें देवाधिदेव है, असाधारण है, नमस्कारके योग्य है।

सत्यकी अमिट सत्यता—जो तत्त्व उपास्य है उसका नाम तो कुछ रखना पड़ेगा। शरीरका नाम नहीं, ऋषभ, महावीर, राम, हनुमान, ये नहीं फिर भी कुछ तो कहना पड़ेगा प्रभु कहो, भगवान कहो, जिन कहो। कुछ सब शब्द तो ऐसे आयेंगे। सब पक्षमें आकर उन ही शब्दोंको कोई रागद्वेषमें ढाल दे तो उसका इलाज क्या। प्रभुका अर्थ क्या है ? जो उत्कृष्ट रूपसे हो उसे प्रभु कहते हैं। प्र उपसर्ग है भू धातु है। जो उत्तम विकासरूपसे है, परम

विकासमय है उसका नाम प्रभु है। अब प्रभु किसीका नाम नहीं हुआ। भगवानका अर्थ ज्ञानवान है जो उत्कृष्ट ज्ञान वाला हो उसे भगवान कहते हैं। यह कुछ व्यक्तिका नाम नही हुआ। जिन किसे कहते हैं ? जो रागद्वेष मोहको नष्ट कर डाले उसका नाम जिन है। जिन किसी व्यक्तिका नाम तो नहीं हुआ, और जो रागद्वेष मोहको जीत चुका उस जिनने जो मार्ग बताया उसका नाम है जिन मार्ग, जिनधर्म, इसमे भी कोई व्यक्तिका नाम नही है, किन्तु ऐसा साधारण भी मार्ग किसी नामसे तो पुकारा ही जायगा, पर उसे एक विशिष्ट समूह वाला मान बैठें कोई तो यह सब मोहका ही विलास है।

वीतरागता, सर्वज्ञता व हितोपदेशिता—यह प्रभु, यह जिनेन्द्र, यह रागद्वेष मोहके विजयका उपाय और ये रागद्वेषके जीतने वाले अनादि कालसे होते चले आ रहे हैं। ये देवाधिदेव ही असाधारण नमस्कारके योग्य हैं जिनेन्द्र प्रभुमे तीन विशेषताए सक्षेप रूपमे बतायी गयी हैं। वे वीतराग है, सवज्ञ हैं और हितोपदेशी हैं याने निर्दोष हैं पूर्णगुणसम्पन्न है और हितका मार्ग बताने वाले हैं। इस ही आधारपर णमोकार मत्रमे सर्वोत्कृष्ट परमेष्ठी सिद्ध भगवानसे भी पहले णमो अरिहताण कहकर अरहतोका स्मरण किया है। प्रभु समस्त जीवलोकके लिए समस्त ससारी प्राणियोंके लिए आत्मतत्त्वकी प्राप्तिका उपाय बताते हैं इसलिए वे हितोपदेशी हैं।

उपदेशकी सार्वता प्रभुकाउपदेश एक शुद्ध आत्मतत्त्वकी प्राप्ति करानेके लिए है। तीन लोकके समस्तऊर्द्ध लोकमे देवताजन हैं, मध्य लोकमें तियञ्च और मनुष्य हैं अधोलोकमे भवन व व्यन्तदेव तथा और नीचे नारकी जाव हैं। इन समस्त जीवोके लिए इसके भलेके लिए बाधा रहित ज्ञानस्वरूप मात्र आत्मतत्त्वका उपदेश किया है। देवता लोग तो समवशरणमे आकर भगवानकी दिव्यध्वनिका उपदेश सुनते हैं, तिर्यञ्च और मनुष्य भी सुनते हैं। नारकी जीवोंको यहाके जीव जाकर, जिन नारकियोसे स्नेह है और जिस देवको उसके उद्धारकी वाञ्छा है तो वह जाकर सुनाता है। यों प्रभुका उपदेश समस्त जीवोंके हितके लिये है और वह उपदेश मधुर है। जो परमार्थ तत्त्वके रसिया हैं जिन्हें विकल्प परिहार करके निर्विकल्प निज ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिमे सहज आनन्द आता है उन परमार्थिक रसिक पुरुषोंके मनको हरण करने वाले वचन हैं, अर्थात् मनकी प्रसन्नता लाने वाले ये वचन हैं, इस कारण प्रभुका वचन मधुर है, साथ ही उनके वचन अत्यन्त विशद हैं, स्पष्ट हैं, उसमे शका आदिक कोई दोषका स्वभाव नहीं है।

भगवद्वाणीकी चरम गभीरता—भगवानका वचन हम आप लोगोंकी तरह किसी पुरुषका लक्ष्य रखकर और किसी एक प्रकरणको क्रममे रखकर नही होता है। इस प्रकारके व्याख्यान तो जिसके कुछ न कुछ राग हो वही कर सकता है किसीकी बात सुनना और उसके प्रश्नका उत्तर देना यह राग बिना सम्भव नही है। भला राग है, धर्मका अनुराग है, पर रागका कुछ अश हो तव उसके प्रश्नोत्तर हो पाते हैं और तब ही वचनविन्यास करके शब्द वर्णका क्रम बन कर बोला जाता है। प्रभु अरहतदेव वीतराग और सर्वज्ञ हैं। उनके अब मन भी नही रहा। भले ही शरीरमें द्रव्यमन रहे, किन्तु केवल ज्ञान होनेपर केवल ज्ञानके द्वारा समस्त विश्वको एक साथ स्पष्ट जानते हैं। मनका भी काम नहीं होता। तब उनके तो उपदेश देने की भी इच्छा नही है। वह उपदेश देना नही चाहते। इस सम्बधमे कोई विकल्प ही नही है पर तीर्थंकर प्रभुने पहिले समयमें पूर्व जन्ममे या पूर्व कालके ससारके समस्त प्राणियोके उद्धारकी वाञ्छा की थी, इन प्राणियोंको अपने आपके स्वरूपका बोध हो और ससारके समस्त सकटोंसे ये दूर हो जायें ऐसी जो निरन्तर वाञ्छा बनायी थी उसमे इन्हें विशिष्ट पुण्यप्रकृतिका बध हुआ था। जो दूसरोंके उपकारकी इच्छा रखता है उसके पुण्यका बध होता है, यों समझ लीजिए कि जो दूसरोके उपकारका आशय रखता है उसकी महिमा फैलती है। समस्त जन उससे स्नेह करते हैं, उसका आदर करते हैं, यही तो पुण्य हुआ। तो प्रभुके ऐसा विशिष्ट पुण्यका उदय हुआ था कि अब वीतराग होनेपर भी उस पुण्यप्रकृतिके उदयसे उनके समस्त शरीरसे मुखसे भी एक मधुर कर्णप्रिय ध्वनि निकलती है और उस ध्वनिको सुनकर लोग अपनी अपनी भाषामे अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार धर्मतत्त्वका ज्ञान करते हैं, तिर्यञ्च भी तो तत्त्वज्ञान कर लेते है दिव्यध्वनिको सुनकर और मनुष्योमे चाहे वे किसी भी भाषाको बोलनेवाले हो दिव्य ध्वनिको सुनकर अपनी योग्यतानुसार उसकी महिमा और मर्म पा लेते हैं। प्रभुके वचन तो मधुर हैं।

मधुरता व हितकरताका समन्वय—देखिये हम आप लोगो को आज के पाये हुये ठाठबाठ समागम या प्रेमीजनोंमे वार्तालाप इनमें ही समय न खोना चाहिये। यह वार्तालाप हितरुप नही है और वास्तवमे मधुर भी नही हैं, कड़वा है। कोई ऐसी औषधि हो कि खाते समय तो मीठी लगे पर थोडी देर बाद मुह कड़वा हो जाये, ऐसे ही जानो कि ये सासारिक सुख हैं। यह प्रेमीजनोंसे जो वार्तालाप होता है प्रेमका परस्पर आदान प्रदान होता है से सब कटु चीजें हैं, मधुर नही है। कुछ कालको तो भले ही सबको प्रिय लगती हैं। किन्तु इनका परिणाम कठोर है। इसही भवमे अनेक घटनायें भोगनी पडती हैं और परभवमे भी इस प्रीति के कारण यातनायें भोगनी पडती हैं। ये वचन हितकर नही हैं किन्तु प्रभु के वचन जो निष्पक्ष हैं, प्रकृतिकी प्रेरणासे उत्पन्न हुये हैं। भव्य जीवो के भाग्य से हुये हैं वे वचन मधुर हैं। उनके तो दिव्यध्वनि है। जोसर्वसाधारणके नही पाया जाती है। उनके वचन समग्र वस्तुओके यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने वाले हैं।

वस्तुस्वरूपका दर्शन जैन मार्ग मे किसी को ओर से कोई विधान नही बनाया गया, किन्तु वस्तुओमे जो बात, जो स्वरूप पाया जाता है उसका प्रतिपादन है ,और कहो यह आत्मा अपने इस आत्मस्वरूप मे आ जाये, मग्न हो जाय परम समाधि प्राप्त हो जाय उसके उपायमे परकी अपेक्षा और निजका आलम्बन जैसे बने उस विधिका वर्णन है। यहाँ पक्षका तो कहीं रच भी नाम नही है, किसी भी मनुष्यका यथार्थ मार्ग बतावो, समझावो सबको रुचेगा, अरुचिकर कोई बात ही नही है, और साथ ही शका सदेह उत्पन्न करने वाली भी कोई बात नहीं है। ऐसा हितकारी निर्मल स्पष्ट जिसका उपदेश है ऐसे जिनेन्द्रदेवको भक्तिपूर्वक नमस्कार हो।

आत्मत्वके नाते शान्तिका प्रयत्न—हम आप आत्मा हैं, हम आपको शान्ति चाहिए, तो आत्माके ही नाते से शान्तिके मार्ग मे हमारा प्रयत्न हो इस दिशामें कोई विवेकी अपने उपयोगका कदम बढ़ाये तो वह यथाथ स्वरूपका ग्रहण करके रहेगा। जहाँ मूल में ही यह आशय बना हो कि मैं अमुक मजहबका हू, अमुक कुलका हू, अमुक धर्मका हूं उसको अब आत्मासे नाता नही रहा, पर्यायसे नाता हो गया, और पर्यायका नाता रखकर ऐसा निष्पक्ष जैन धर्म भी पाये तो भी वह लाभ नही उठा सकता। आत्माका नाता रखकर चाहे कोई किसी भी कुल धर्म मजहबमे उत्पन्न हुआ हो वह सतोष मार्ग को आखिर ग्रहण करके ही रहेगा। जिन्हे कल्याणकी वाञ्छा है उनका यह कर्तव्य है कि पर्यायके नाते को भुला दें, धर्म ग्रहण करने की प्रतीतिमें और आत्माका ही नाता लगाकर उसमें बढ़े।

अनन्त गुणमयता—ये प्रभु जो आत्मकल्याण पा चुके हैं ये अनन्त गुणमय है, इनके गुणोका अन्त नही आ सकता। कैसा है इनका चैतन्यस्वभाव। यह शुद्ध ज्ञानप्रकाश चैतन्य शक्तिका विलास किसीक्षेत्र की सीमाको नही रखता। यह ज्ञान यहाँ तक ही जाने इससे आगे न जाने ऐसी सीमा भगवानके ज्ञानमे नही है। जहाँ कर्म शरीर इन्द्रिया इन सबका अभाव हो गया और जो केवल ज्ञानस्वरूप रह गया। ज्ञानका काम निरन्तर जानते रहनेका है। तो उस ज्ञानमें यह सीमा कौन डालेगा कि यह केवलज्ञान सिर्फ यह ज्ञानप्रकाश इतने क्षेत्र तक जानेगा आगे न जानेगा ऐसी सीमा हो ही नहीं सकती ज्ञानमे। हम आप लोगोके जो ज्ञानकी सीमा बनी हुई है, इतनी दूर तक की देखें सुने, जाने यह सीमा ज्ञानके नाते से नही बनी है, किन्तु ज्ञानमे बाधा डालने वाले जो रागद्वेष है उनके कारण बने हैं। प्रभुके ज्ञानमें क्षेत्रकी सीमा नही है। प्रभुके ज्ञानमें कालकी भी सीमा नही है, जैसे हम आप लोग गुजरे हुए समयकी कितने दिनकी बात जानें इसकी सीमा है। किसीका ज्ञान विशिष्ट है वह १८, २० वर्षकी जानता कोई दो वर्ष की जानता, कोई पिछले वर्षकी भी भूल जाता। हमारे आपके ज्ञानमें समयकी सीमा है क्योंकि, रागद्वेषमय वाञ्छाए हैं, उसमे उपयोग चला जानेमे यह ज्ञान शुद्ध विकासमें नही रहता है। यह औपाधिक भावोका आवरण है, अतः हम आपके ज्ञानकी कला की सीमा लग गयी है लेकिन प्रभुके ज्ञानमें समय की सीमा नही है।

असीम ज्ञातृत्व—ज्ञानका काम जानना है और जानना सत् पदार्थोंका होता है। जो भी सत् हो वह जिस

प्रकार भी पहिले रहा हो, जिस प्रकार आगे रहेगा, जिस प्रकार वर्तमानमें रह रहा है उस सबका सम्पूर्ण ज्ञान एक झलक मे जान लेता है। इससे पहिलेकी बात जाने, इससे और पहिले की बात न जाने ऐसी सीमा केवनज्ञानमें नहीं होती है। यह कालकी सीमासे भी परे है, यों उत्कृष्ट चैतन्यशक्तिका उत्कृष्ट विकास जिसमे है और इसही प्रकार आनन्द दर्शन शक्ति समग्र गुण असीम विकसित हो गए हैं, ऐसे जिनेन्द्रदेवको यहाँ नमस्कार किया है देखिये कितनी निर्मल दृष्टि लगी है प्रभु भजनमे। कोई व्यक्ति भी नही देखा जा रहा है, किन्तु एक शुद्ध ब्रह्मविकास ही निरखा जा रहा है। जो परिपूर्ण ब्रह्म विकास है वह हमारा प्रभु है। इस लगनको प्रभुभक्तिमे लगाये।

प्रभुभक्तिका जयवाद—अब आजकल जैन शब्द सकुचित बन गया है। चीज वही है जो जिनेन्द्रका स्वरूप बताया जा रहा है, और हम भी वही हैं जिसे जैन कहकर पुकारा जा रहा है, पर हम किसी भी शब्दका आलम्बन न लें, अपने आपको जैन हैं इसका भी विकल्प त्याग दें और निरखें अपने आपमे कि यह मैं ज्ञानपुज आत्मा हूँ और मेरा आदर्श मेरा सुधार ज्ञानपुज है यों यह ज्ञान ज्ञानकी भक्ति करता है। और इस प्रकार वह देव और यह भक्त कितना निकट हो जाता है। ऐसी भक्ति लोकमे जयवत हो। यह प्रभु परम अद्भुत ज्ञानके विकास वाला है अत योगियोंके द्वारा भी वदनीय ये है ऐसे देवेन्द्र योगीन्द्र नरेन्द्र सभीके द्वारा वदनीय ये जिनेन्द्रदेव हैं इनकी उपासनाके प्रसादसे भव-भव के पाप कट जाते हैं, अपने आपमें निर्मलता प्रकट हो जाती है। यह सब चिन्ता शोकका बोझ समाप्त हो जाता है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव इस ग्रन्थ रचनाके प्रारम्भमे मगलाचरणमे ऐसे निर्दोष सर्वगुणसम्पन्न जिनेन्द्रदेवको नमस्कार कर रहे हैं।

जितभवता—कुन्दकुन्दाचार्यदेव मगलाचरणमें जिनेन्द्रदेवको नमस्कार करते हुए अतिम विशेषण कह रहे हैं यह जिनेन्द्र जितभव है जिसने इस ससारको जीत लिया है, जन्म मरण रूप भवको विनष्ट कर दिया है वह जितभव कहलाता है। जितभव कहनेका यह लक्ष्य है कि यह प्रभु कृतकृत्य है। इन्होने जो कुछ करने योग्य कार्य है वह कर लिया है। करने योग्य कार्य केवल शुद्ध ज्ञाता द्रष्टा रहने का है। यह कार्य ये कर चुके हैं। शुद्ध ज्ञाता द्रष्टा निरन्तर रहा करते हैं। तो जो कृतकृत्य हो गया हो उसका ही तो शरण अकृतकृत्यपने को युक्त हो सकता है। हम आप ससारी प्राणी अकृतकृत्य हैं। जो करने योग्य कार्य है उसे नही कर पाये हैं। ऐसे जीवोंका शरण जो कृतकृत्य हो वही हो सकता है। जो जितभव हो, कृतकृत्य हो उसको एक इस दृष्टिसे देखो, इन्होंने वस्तु स्वरूपका यथार्थ ज्ञान पाया और उस शुद्ध ज्ञानका ही उपयोग बनाया इससे ये कृतकृत्य हुए हैं।

स्वतन्त्रताका निर्णय—प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र है, सहज स्वरूपमे यह ज्ञायकस्वरूप, यह पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश और यह कालाणु है, ये सब अपने स्वरूपसे है और परके स्वरूपसे नही है। ये प्रत्येक पदार्थ अपने आपके कर्ता है, किसी परके कर्ता नहीं हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपके स्वामी हैं, किसी परके स्वामी नही हैं, ऐसी यथार्थ ज्ञानदृष्टिके बलसे जिसके यह निर्णय और पुरुषार्थ बन गया है अब उसे किसी भी पर पदार्थमे कुछ काम करनेको पड़ा ही नही है। जहां यह दृष्टि बनी ऐसा निर्णय बनाया कि मैं तो केवल अपनेमे अपना परिणमन किया करता हूँ। मुझे परमें कुछ करना योग्य है ही नहीं। बस यही कृतकृत्य बननेका एक मूल साधन है। जो पुरुष इस ज्ञानकी कृतकृत्यता के प्रसाद से यथार्थ कृतकृत्य हो गए हैं वे प्रभु ही ससारी प्राणियों के लिए शरण कहे गए हैं।

इदसदवदियाण यो ग्रन्थकर्ता ने जिनेन्द्र भगवानको ४ विशेषणोंसे याद किया है यह प्रभु सौ इन्द्रोंके द्वारा वदनीक है। इस विशेषण से कई बातें जाहिर होती हैं। एक तो विशिष्ट पूजाके योग्य ये जिनेन्द्रदेव ही हैं यह सिद्ध होता है, दूसरे जिसके चरणोंमें सब जातिके इन्द्र वदना करते हैं उनके प्रति सब जीवोंका झुकाव अपने आप होता ही है इसमें भक्तिमें विशेषता बतायी गयी है।

तिहुवणहिद मधुरविसदवक्काण दूसरा विशेषण दिया गया है त्रिभुवनहित मधुरविशदवाक्य तीन

लोकोंके लिए हितकारी मधुर और विशद जिनका उपदेश है, तीन लोकके लिए उनका उपदेश हितकारी इसलिए है कि उनके उपदेशमे उस शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्तिका उपाय कहा गया है। आत्मा स्वभावतः सहज आनन्दमय है। इस शुद्ध आत्माकी दृष्टि जगे यही, शुद्ध आत्माके आश्रित हुआ ज्ञान ही इस ज्ञानमयको पायगा। ज्ञान भी ज्ञानस्वरूप है और जिसे पाना है वह भी ज्ञानस्वरूप है। उसकी दृष्टि होना, इस ज्ञानस्वरूपका ज्ञान होना यही शुद्ध आत्माकी प्राप्ति कहलाती है इसका समस्त उपाय बताया है और इस शुद्ध आत्माकी प्राप्तिके द्वारा यह कभी सर्व प्रकार से शुद्ध हो जाय। शरीरके सम्पर्क से भी मुक्त हो जाय भावकर्म से भी मुक्त हो जाय, द्रव्यकर्मसे भी मुक्त हो जाय ऐसी सर्वथा शुद्ध आत्मा की प्राप्तिका उपाय जैन दर्शनमें कहा गया है, इस कारण यह जिन उपदेश हितरूप है।

प्रभुवाणीकी विशदता प्रभुका वचन अत्यन्त विशद है। बड़े-बड़े ग्रन्थोमे सभी दर्शनके ग्रन्थोंमें जब कोई प्रवेश करता है तो उसे यह समझमे आ जायगा कि अहो यथार्थ तत्त्वका निरूपण जैन दर्शनके शास्त्रोंमे कितनी सरल शैलीसे कहा है। कठिन समास और अप्रसिद्ध शब्दोके द्वारा न कह कर जैन शास्त्रोंमें सरलसे सरल शैलीमे बताया गया है। जैन ऋषीसत जीवोकी करुणा से ओतप्रोत थे। उनका केवल यही भाव था, कि जनता को समझमे आ जाय तत्त्व और कुछ चाह न थी, ठोस तत्त्वज्ञान भी था। ज्ञानका विषयभूत जो कुछ परमे है वह भी ठोस विदित था। इस तत्त्व ज्ञान का फल है अपूर्व परम आनन्द होना इस तत्त्वज्ञानके प्रसाद से रागद्वेष रहित विकल्प रहित केवल ज्ञाताद्रष्टा रहने रूप समाधि उत्पन्न होती है। उस समाधिसे जो सहज अपूर्व आनन्द जगता है उस आनन्दके रसिक जो भव्यजन हैं उनके मन को प्रसन्न करने वाला प्रभुका उपदेश है। यह उपदेश बहुत विशद है, साफ स्पष्ट है। न इसमें कही संशय है, इसमे कोई विपर्यय है और न इसमें किसी प्रकारका अनिश्चय है।

शुद्ध जीवास्तिकायकी ख्याति—प्रभुके उपदेशमे मुख्यतया क्या बात बतायी गयी है। शुद्ध जीवास्तिकाय शुद्ध पुद्गल अस्तिकाय, धर्म अधर्म आकाश ये सदा शुद्ध ही हुआ करते हैं। इन पंच अस्तिकायोका वर्णन है, और पंच अस्तिकायोके वर्णनका प्रयोजन है एक शुद्ध जीवास्तिकायका दर्शन होना। यह मैं आत्मा अपने आप अकेला अपने सत्त्वके कारण कितने स्वरूप हू इसीको शुद्ध जीव स्वरूप कहा करते हैं। इसमे मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत सात तत्वोंका वर्णन है। प्रभुके उपदेशमे जीव, अजीव आश्रव बंध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष व्यवहार व परमार्थ दोनों विधियोसे है। जीव उसे कहते हैं जिसमे चेतना हो, जिसमें ज्ञान दर्शन हो। जो जानता देखता है उसका नाम जीव है, और इस प्रसगमे अजीवका मतलब है कर्म। आश्रव बंध आदिक यह जो पर्याय बताया है उसके मूलमे दो तत्व कहे हैं-जीव और अजीवका अर्थ है यहाँ कर्म। ये दो मूल बातें हैं। जीवमें कर्म आ जायें उसका नाम आस्रव है, और जीवमे आये हुए कर्म बहुत दिनों तक जीवके साथ रहे, उनकी स्थिति पड जाय, इसका नाम बंध है। जीवमे कर्म न आ सकें। कर्मोका आना रुक जाय इसका नाम सम्वर है और पहिलेसे बंधे हुए कर्म जीवसे अलग हो जायें, झड जायें इसका नाम निर्जरा है, और समस्त कर्मोंका जीव से सर्वदाके लिए न्यारा हो जाना इसका नाम मोक्ष है। मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत ये ७ तत्व हैं। ७ तत्वोके श्रद्धान को सिद्धान्त ग्रन्थोंमे सम्यग्दर्शन कहा है।

आत्महित—जीवका पूर्ण हित मोक्षमे है, अर्थात् जो दंद फंद लिपट गए हैं इस जीवके साथ जीवातिरिक्त अन्य चीजें जो लग गयी हैं ये अन्य चीजें जुदी हो जायें बस इसीमे इस जीवकी भलाई है। धर्म पालन करनेका उद्देश्य भी यही है कि हम इन औपाधिक तत्वोसे दूर हो जायें। हम जैसे स्वयं अपने आप है सहज वैसे ही रह जायें यही जीवकी सबसे बडी भलाई है। जब अज्ञान मोह सताता है तो इस जीवके पर द्रव्योके प्रति दृष्टि अधिक बढ जाती है और परकी चिन्ता परका शोक परकी लगन इनमे ही उपयोग गुजरता रहता है, किन्तु यह तो बतावों कि कितने अनेक पर पदार्थ हम आपने भव-भव में पाये होंगे, आज जो कुछ पाया है और जितना वैभवकी हम अपनी इच्छा मे निदान बनाते हैं इतना और मिल जाय, उससे भी कई गुणा वैभव हम आपने भव भवमें पाया है। जितने चला, लोक में कीर्ति आज चाह रहे है। उससे भी कई गुणा अधिक कीर्ति, चला हम आपने अनेक भवमें पायी हैं। जब वह भी साथ नहीं रहा तो वर्तमान का समागम वैभव चला मेरे काम क्या आयगा। इस विनश्वर तत्त्वकी दृष्टिमे हित नही है, हित

तो मोक्षमे है।

संकट व संकटनिवर्तन—यह वैभव घोरखघघा है, सार कुछ नही है। फसे तो फसना बढ़ता ही जाता है। सुलझाना कठिन हो जाता है। पर ज्ञानमें सब सामर्थ्य है। हम आप सब के पास ऐसी उत्कृष्ट निधि मिली है कि जिसके कारण हम आपको चिन्ता करने की बात नहीं रहनी है। किसी भी दिन, किसी भी समय कितनी भी कठिन परिस्थिति आ जाय और कल्पनामे कितनी भी बडी विपदा मान ली जाय, फिर भी इस विवेचक ज्ञानीमे इतनी सामर्थ्य है कि उन विभावोंको क्षणमात्रमें हटाया जा सकता है। जैसे बहुत संचित बडे इधनको जलाकर भस्म कर देने की सामर्थ्य एक अग्नि कणिका मे है इस ही प्रकार समस्त संसारके संकटोंका इधन जला देनेमें समर्थ हमारा ज्ञान है।

संकट और संकटविनाशक ज्ञान—हे शान्तिके इच्छुक पुरुषो! इस महा कल्याण भूत निजज्ञानके निकट आवो, किसी परवस्तु के निकट रहनेसे तो कुछ आनन्द न मिल पायगा। एक अपने ज्ञानस्वरूपके निकट रहें तो इसमें आनन्द मिलेगा। ज्ञानमें ऐसा चमत्कार है कि सर्व विपदावोंको दूर कर सकता है। अरे इतना ही तो जानना है कि वह मैं आत्मा अपने गुण पर्यायोरूप हू अपने ही निज प्रदेशों मे हूँ। केवल अपने भाव परिणमन का हो कर्ता हूँ और ज्ञान-शक्तिमय हूँ। यह मैं आत्मा अपने स्वरूपमे परिपूर्ण सत् हूँ। इसकी कही अरक्षा नही है। यह पूर्ण सत् है। जो सत् होता है वह कभी मिट नही सकता। मिटने का ख्याल ही मत लावो। हम कभी मिट न सकेंगे। जो पर चीज है वह कभी रह न सकेगी। जो मेरा स्वरूप है वह कभी मिट न सकेगा। ऐसे शुद्ध परिपूर्ण आकिञ्चन्य ज्ञानमात्र अपने आपका बस जाना, इससे संकट नही रहते हैं। संकट तो विकल्पोंमें हैं, कल्पनामें हैं और कल्पनामे ही आकुलता है। भव-भवमे बांधे हुए कर्मोंके उदय आते हैं, और उन उदयोंका निमित्त पाकर यहां विभावोंकी सृष्टि होती है तिसपर भी ज्ञानका सबसे अनूठा न्यारा काम रहा करता है। यदि हम इस उपयोगके फदमें उपयोगको न फसायें और ज्ञानको जागरूक बनायें रहें तो कोई क्लेश अनुभवमें न आ सकेगा। घरमे १० प्राणी हों तो दसो के साथ कर्म लगे हुए है। किसी के विपरीत कोई दूसरा कर नही सकता। जिस जीवका जो सांसारिक होनहार है वह उस जीवके कमाये हुए पाप पुण्यके अनुसार होता है, इस बात पर श्रद्धा हो तो किसी भी स्थितिमें व्यग्रता नही आ सकती है।

अपूर्व लाभका विवेक—जो बात अन्य भवमे नहीं हो सकती है उसकी सिद्धि कर लेना ही तो यहां का विवेक है। आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चार परिग्रह और इनकी वेदनाको शमन करनेके उपाय ये अनेक भवोंमें मिल जाते हैं पशु पक्षी क्या पेट भरकर मौज नही मान पाते। वे भी मौज मानते हैं। भरे पेट वाले गाय अथवा बैल बैठे बैठे अपना मुंह चलाकर कैसा मौज मानते हैं। सभी पशुपक्षी भरे पेट की हालतमें कैसी लीला केलि करते रहते हैं। यह आहारका सुख तो पशु पक्षीको भी प्राप्त है। भय संज्ञा भी सबके है। यह मनुष्य भयको दूर करनेका प्रयत्न करता है और दूर करनेके प्रयत्न मे सफलता हो जाय तो मौज मानते हैं। ऐसे ही ये पशु पक्षी भी हैं, पर कोई भय आ जाय तो इस भयको मिटानेका यत्न करते हैं और वहां यत्न बन जाय तो ये भी अपने अन्तरङ्गमे खूब मौज मानते हैं। मैथुनकी बात भी अन्य प्राणियोमे भी है, मनुष्योंमें भी है उस सम्बन्धमे कोई सिद्धिपाले तो इससे क्या हो जायगा? अरे जो बात अन्य भवोंमे न मिल सके और मनुष्य भवमे ही मिल सकती है उसके ही करने का लक्ष्य रखना।

निःसंगबुद्धिका लाभ—परिग्रह संज्ञा प्रत्येक भवमें रहती है। मनुष्य जरा विशिष्ट बुद्धि वाला है सो परिग्रहको अनेक ढंगों से रखता है। इसके लिए बैंक है, घर है, व्यापार है, अनेक तरह की प्रक्रियाएँ है। यह परिग्रहोंका संचय करलेना है पशु-पक्षियोमे जितनी योग्यता है उतनेही रूपमें वे संग्रह करपाते हैं, बन्दर इतना ही संचय कर पाते हैं कि जल्दी जल्दी मुखमें भर लिया और एक हाथमें भर लिया तीन पैरोंसे भागते जाते। इतना ही संचय कर पाते हैं बन्दर। मनुष्य ज्यादा संचय कर लेता है पशु भी केवल खाते समय जो सामने है उसको बचाते हैं कोई दूसरा जानवर बिगाडने आजाये, खाने आजाय तो थोडा सींग भी मारनेका यत्न करते हैं वे इतना ही परिग्रहण रख पाते है और कीडा मकोड़ा पेड़ वगैरह जो सामने आया बस उसी का परिग्रहणकर पाते हैं, परपरिग्रह संज्ञासे छूटा कोई नही है, यह चीजभी

भव-भवमे मिल जाती है, इसके बढावेमें भी क्या बडप्पन है। बडप्पन तो अपने उस तत्त्वमे है जो यहा ही सिद्धहोपाता है अन्यभवमे नही, वह तत्व है शुद्ध जीवस्वरुपका गाढ परिचय होना, और पर द्रव्यकी उपेक्षा कर लेना। यह बात यदि न प्राप्त कर सके तो दु खी कौन होगा यह खुद ही दु खी होगा।

सुगम सत्य मार्गका ही शरण—भैया! होनहार ठीक है तो सबको सीधे सच्चे रास्ते पर आना पड़ेगा। जैसे लोकमे कोई पुरुष हठकरे तो वह आखिर यह कब तक यों करेगा? उसे भी सीधेरास्ते पर आना ही पडता है और तब ही उसका गुजारा और शान्ति हो सकती है ऐसेही यहापर वस्तुओकी चिन्ता, शोक भवम, उदण्डता हो तो कहाँ तक यह जीव इनको निभा सकेगा। अन्तमें सीधे सरल सत्य मार्गपर इसे आनाही पडेगा जब यह सुखी हो सकता है। प्रभुका उपदेश ऐसेही सप्ततत्त्व और ६पदार्थ आदि के वर्णनका पूरक है और इस ही तत्त्वज्ञान से हम आप शान्ति लाभले सकते है। अतः यह समस्त कथन विशद है और सर्व जीवोके लिए हितकारी है। जीवमें ये कर्म आते है तब यह जीव मोह राग और द्वेष करता है। जितनी डिग्री में जितनी तीव्रता मे यह जीव मोह राग द्वेष करता है उतनी ही अधिक स्थितिके कर्म बधते हैं, जिन्हे कर्मबन्ध न चाहिए उनका कर्तव्य है कि वे सम्यग्ज्ञान बनाएँ और कषाय मद करें। इससे कर्मोंका सम्बर होगा. कर्म का आना रुक जायगा और इस ही अपने शुद्ध आत्मतत्त्वके उपयोगसे पहिलेके बधे हुए कर्म खिर जायेंगे और खिरते-खिरते निकट ही कोई समय ऐसा आयगा इस सम्यग्दृष्टि जीवका कि सारे कर्म दूर हो जायेंगे।

पूजा और अभिप्रायका समन्वय—भला बतलावो तो सही जो कर्मोंसे अत्यन्त दूर है। निष्कर्म है, अकिञ्चन हैं ऐसे भगवान की तो हम पूजा वदना करने आयें और चिन्ता यह बढायें कि कैसे मेरा घर बढे, परिजन बढे, इज्जत बढे, यश बढ़े तो यह कितना विरुद्ध काम है। यह सब ढोंग धतूरा हुआ कि नहीं? पूजते तो हैं निर्मलको और मल सचय की धुन बनाये हैं तो वह पूजना किस कामका हुआ? कुछ तो ध्यान दीजिए। इसके पूजनेका यही तो प्रयोजन है कि यह भावना बनाएँ कि हे प्रभो! अपूर्व शान्ति और आनन्दकी स्थिति तो तुम्हारी है। मुझे यह स्थिति कैसे कब प्राप्त होगी। शुद्ध देवकी पूजा अपनी शुद्धताके लिए है यही लक्ष्य बनायें प्रभुदर्शनमे। हे प्रभो! सत्य आनन्दमय तुम ही हो। मेरेमें यह आनन्द शीघ्र प्रकट हो। मेरी ऐसी ही सद्बुद्धि बने कि मैं मोह रागद्वेषसे रहित होकर ऐसे ही उत्कृष्ट आनन्दको पाऊँ। इन सब परमार्थभूत तत्त्वोंका उपदेश प्रभुने किया है। उनके निर्मल और स्पष्ट वचन है। ऐसे तीनो लोकका हित करने वाले उपदेशके नायक जिनेन्द्रदेवको मेरा बारम्बार नमस्कार हो। इस प्रकार मगलाचरणमे कुन्दकुन्दाचार्य देव निर्दोष प्रभुका ध्यान कर रहे हैं।

सर्वभाषामयता—भगवान की वाणी स्पष्ट रहा करती है मुख्य भाषाएँ ६ हैं। कर्णाटिकी, मागधी माडवी, लाट, गौण और गुजरात। इन ६ भाषावोमे जरा विशेष विशेष फर्क डालकर इनमे सम्बधित तीन भाषाएँ और हो गयी हैं। जैसे कर्नाटिकी, तैलगू और तामिल आदि मिलती जुलती हैं ऐसी प्रत्येक बडी भाषामे तीन-तीन भाग हैं, यों १८ तो महा भाषायें हैं और १८ मुख्य भाषावोंमे सम्बधित छोटी-छोटी ७०० भाषाएँ हो गयी हैं। इन ७०० भाषावो के अन्दर बहुत सी भाषावोके रूपसे एक साथ सभी जीव अपने-अपने भव में भगवानकी वाणीका स्पष्ट अर्थ ग्रहण करते हैं इसलिए प्रभुकी वाणी अत्यन्त स्पष्ट है। भाषाएँ कभी-कभी समय पाकर इतना आदल बदल बना देती हैं कि एक नई भाषा बन जाया करती है।

सर्व भाषामे स्पष्टता—आजसे ढाई हजार वर्ष पूर्वकी यह बात कही जारही है कि ऐसी-ऐसी भाषएँ थीं, और किसी-किसीके मतसे तो भगवान महावीर स्वामीको हुए १४ १५ हजार वर्ष हुए भगवान महावीर स्वामीके समय के सम्बन्धमे दो तीन धारणाएं हैं जैसे धवलामें उल्लेख किया है, एक सिद्धान्तसे तो १४–१५ हजार वर्ष हो जाया करते हैं। इस सिद्धान्तसे तो ५–६ हजार वर्ष रह गये हैं पचमकालके। और मुख्य तो ढाई हजार वर्ष ही प्रसिद्ध है। अब तो नई नई अनेक भाषाएँ हो गयी है। सर्वजीवोंको भगवान की वाणी उन-उनकी भाषामे स्पष्ट ज्ञान कराती है इसलिए प्रभुका वाक्य स्पष्ट है।

सर्वहितकारिणी वाणी—प्रभुकी वाणी तीन लोकका हित करने वाली मधुरताको लिए हुए है। प्रभुकी वाणी सब आत्मावोंके हितके लिए है जहाँ मनुष्योंको उपदेश देकर ज्ञान और वैराग्यकी वातमें बढाकर मनुष्योंके हितकी वात भरी है वहा मनुष्योको दयाका उपदेश देने के कारण जो कीडा मकोडा और स्थावरोंका भी रक्षा होती है तो भगवानकी वाणी उन कीडों मकोड़ोंके हितके लिए भी हुई। यों प्रभुकी वाणी समस्त आत्मावोंके लिए हितकारी होती है। भगवानकी दिव्यध्वनिमें वर्ण और अक्षर हम आप जैसे नही निकलते हैं। ऐसे वर्ण अक्षरों का निकलना राग और विकल्प विना सम्भव नहीं है। इसलिए प्रभुकी वाणीनिरक्षर बतायी गयी है जिसकी धुन है ओंकार रूप, निरक्षर मय महिमा अनूप जिसकी ध्वनिमें गम्भीर ऊँ की आवाज है।

प्रभुकी वीतरागता—कहा तो प्रभुकी इतनी बडी वीतरागता दर्शायी गयी है और कहां लोग यह कहते है कि प्रभु लोगोके पीछे भागने फिरते हैं उनको प्रभु वचाते हैं, उनकी रक्षा करते हैं। कही छिपे-छिपे कर रहे हैं, कहीं प्रकट कर रहे हैं, ये सब खेल कराये जाते हैं। भगवान ऐसे कोई खेल नहीं करते हैं पर भक्तजन कल्पना मे भगवानके ऐसे खेल कराया करते हैं। प्रभुमें तो इतनी उत्कृष्ट वीतरागता है कि वह हम आपकी तरह वचन अक्षरोसे बोलते तकभी नहीं हैं। वर्णोंसे अक्षरों से बोलेंतो उसमें राग और विकल्प सिद्ध होता है। कोई प्रश्न करे और प्रभु उस प्रश्नका उत्तर दें तो यह तो एक रागकी बात हुई। जब किसी चर्चामें आनन्द माना है तभी तो सुनेगे और फिर उसका जवाब दें तो कुछ प्रेम है आपसे प्रीतिहै, वात्सल्य है तभी तो जबाव देते हैं किन्तु प्रभुमें न राग है न द्वेष अब वे न किसीका प्रश्न सुनते है और न किसीको उत्तर देते हैं। प्रभुका स्वरूप तो यों समझो जैसे हम मन्दिरमे पाषाण आदिक की मूर्ति देखते हैं तो यह मूर्ति न कुछ बोलती है न उठती है हम आपको ऐसी मूर्ति दिखती है जैसे मानो कुछ चेष्टा न करती हो, ऐसे ही प्रभु भी कोई राग भरी चेष्टा नही करते। सिर्फ इतना अन्तर समझनो कि मूर्तिसे दिव्यध्वनी नहीं खिरती और प्रभुके दिव्यध्वनी खिरती है।

प्रभुकी चरम निर्दोषता—प्रभुसे कोई कुछ बात करें, निजी व्यवहार करें एसा नही है पुराणोंमे जो आता है-श्रेणिकने भगवान से यो प्रश्न किया और उन्होंने यह उत्तर दिया, तो ऐसा नही होता श्रेणिकने प्रश्न किया गौतम गणाधरसे। उत्तर दिया गौतम गणधरने किन्तु जिसकी समाजमें कोई पहुच है नाम उसीका लिया जाता है जो वडा है, जिसका मडप हैं, जिसकी सभा है, उसमें भगवानके गणधरसे कोई पूछें तो कहा यो जायगा कि भगवानसे पूछा और भगवानने उत्तर दिया, एक वात। दूसरी वात यह है कि श्रेणिकने भगवानसे ही प्रश्न किया हो तो वहाँ भगवानकी दिव्यध्वनी सुनकर श्रेणिक को अपने आप अपनी भाषामे उत्तर मिल जाता है किन्तु यह कहा जा सकता है कि श्रेणिक ने भगवानसे प्रश्न किया और प्रभुने उत्तर दिया। वीतरागतामें आँच रंच भी नहीं आ सकती। ऐसे ही अपने को उनके बारेमें सोचो तो वात ठीक बैठ सकती है।

प्रभुदेहकी सहज ध्वनि—प्रभुकी ध्वनि जब खिरती है उस ध्वनिमे जैसे अन्य अगोंसे ध्वनि निकलती है इस ही प्रकार मुखसे भी निकलती है वह ओंठ चलाएँ, ओठोसे बोलें, मुह चलाए यह बात नही होती। उनका उपदेश किसी वाञ्छा को लेकर नही होता, अथवा वे उपदेश किसी इच्छासे नही किया करते हैं। उनकी वाणीमें पूर्वापर कहीं दोष नही है। कोई यथार्थ घटनाका वर्णन करे तो उसे कहीं न हिचक आयेगी, न सोचना पडेगा और न कभी पूर्वापर विरोध आयेगा कोई किसी छोटी घटना को किसी अन्य रूपमें पेश करना चाहे तो उसे कोई जगह अटक भी आयेगी सोचना पडेगा और उसमे पूर्वापर विरोध भी आयगा। पहिले क्या कहा था और अब क्या कर रहे हैं। प्रभुवीतराग हैं वैसा ही उनकी दिव्यध्वनिमे वर्णन है. इस कारण कोई दोष नही हैं जैसे हम आपकी वाणीमें स्वासोच्छ्वासके कारण कही क्रम रुक जाता है। कोई लगातार ५ मिनट बोल नही सकता, आधा मिनट बोले फिर रुके फिर बोले विना स्वास के बाहर किए कुछ भी वोला नहीं जा सकता। केवल वोलते रहनेमें एक मिनटमे ही दम घुटने लगतीहै। स्वांस ले ली फिर ३०-४० सैकेण्ड तक वोलते रहते हैं। पर भगवान के तो दिव्यध्वनि खिरते रहनेका ६ घडी लगातार, मेघगर्जनावत् प्रभुकी दिव्यध्वनि खिरती रहती है। ६ घडी सुबह, ६ घडी दोपहर, ६ घड़ी साय और ६ घडी रातको भी दिव्य-

ध्वनि खिरती है। अगर रातको भी दिव्यध्वनि खिरती है तो वह उनके बोलनेका दोष नही है क्योंकि उनके तो सर्वांग ध्वनि खिरती है। उनके तो शरीरका लगाव नही रहा, यहां तो शरीरका बन्धनहै। भव्य जीवोकी भक्ति है और पुण्य प्रकृतिका उदय है।

प्रभुदर्शनमहिमा—जहा प्रभु विराजे हुए हैं उस स्थानके निकट जो जीव पहुंचता है। वह समस्त सकटोसे छूटकर एक आनन्द के स्थानमें पहुँचता है उसे चिन्ता तक आदि नही रहते हैं, और कोई साधारण रोग हो, बुखार हो, सिरदर्द हो तो भी दूर ही जाता है। अब किसीकी टाग टूटी हो, सम्भव है कि वह भी ठीक हो जाता हो। तो जिसकी इतनी महिमा है, जिसकी वाणीमे इतना ओज है कि जिसका ध्यान करके भक्तिका प्रारम्भ ही किया जाये तभीसे अनेक चमत्कार होने लगते हैं। ऐसी प्रभुकी वाणी विशद है। तीन लोकका हित करने वाली है और मधुर है।

सर्वज्ञता—प्रभु अनन्त गुण सम्पन्न हैं, हमारे ज्ञान गुणकी सीमा है कि कितना भूत काल और भविष्यकालकी जान सकें, कितने क्षेत्र तककी जान सकें। यह सीमा है, क्योंकि आवरण साथ लगा है रागद्वेष साथ है। कर्मोदय साथ है, किन्तु प्रभु भावकर्म और घातियाकर्मोसे दूर हो गये हैं। अत उनका ज्ञानगुण असीम हो गया है। वह तीन कालकी समस्त बातें जानते हैं। देखिये जाननेका जब हम उद्यम करें तब कुछ हो जाय प्रकट, मगर पूर्ण प्रकट नहीं हो सकता। हम जानने का उद्यम छोड दें पूरी तरहसे तो ऐसी स्थितिमे हमारा ज्ञान हमारे केन्द्रपर आ जायगा और उस पुरुषार्थमे यह बल है कि मेरा ज्ञान असीम फैल जाता है। भगवानको अनन्त ज्ञान गुण वाला बतानेसे यह जाहिर हो जाता है कि प्रभुकी सेवामे बडे-बडे ऋद्धिधारी गणधरदेव आदिक इन्द्र भी पहुचते हैं और उनकी वदना करते हैं। ऐसे ये ससारसे विमुक्त हुए जिनेन्द्रदेव ही हम आपके शरण हैं। जिनेन्द्र किसे कहते ? ससारके अनेक समस्त विषय व्यसन विपरीत सकटोको जो जीतते उसे जिन कहते हैं, और जिनको जिनेन्द्र कहते हैं। इस गाथामे प्रभु जिनेन्द्रको नमस्कार किया गया है।

प्रभुवन्दनमे नयदृष्टियां—मैं भगवानको नमस्कार करता हूं ऐसी दृष्टिमें उस भक्त और भगवान इन दो का सम्बध बना है और दो को सम्बध बनकर जा कथन होता है उसे व्यवहारनय कहते हैं। व्यवहारनयसे भक्त भगवान का वदन करता है और निश्चयनयसे क्या करता है ? निश्चयनय एकको निरखता है, व्यवहारनय दो को निरखता है। निश्चयनयसे भक्त क्या कर रहा है इसका उत्तर पानेमे यह कोशिश न करें वर्णन करनेका कि वह भगवानका कुछ कर रहा है यों तो व्यवहारनय बन जायगा। यह भक्त भगवानके सम्बधमे अपने ज्ञान परिणमन से ज्ञानकी महिमा जान रहा है और उस गुण महिमाको जानकर अपने मे एक अद्भुत आल्हाद उत्पन्न कर रहा है। भक्त सुख उत्पन्न कर रहा है तो उसमें जो प्रमोद हुआ, जो आनन्द हुआ उस आनन्द रूप परिणमन कर रहा है। यह है अशुद्ध निश्चयनय से भगवान की वदना। अशुद्ध निश्चय क्यों कहा कि वह जो खुशी होती है, गुणोमे प्रमोद होता है वह प्रमोद भी अशुद्ध अवस्था है। शुद्ध अवस्था तो रागद्वेष रहित केवल ज्ञानप्रकाशकी होती है और उस समय किसी सम्यग्दृष्टि भक्त के जिस अशमे यह शुद्धोपयोग प्रकट होता है इस शुद्धोपयोमें बने रहनेका नाम है एक देश शुद्ध निश्चयनयकी वदना। इन तीन प्रयोसे तो वदना की बात कही जाती है और जो सर्वदेश शुद्ध निश्चयनय है उसमे वदना ही नहीं है, क्योंकि सर्वदेश शुद्ध हैं अरहत भगवान। वे वदनाका कहा विकल्प करते हैं। परमशुद्ध निश्चयनयमे भी वदना नही है। परम शुद्ध निश्चयनय वस्तु के स्वभावको देखता है, उसमें विकल्प ही नही है। वहा वदना ही क्या होगी। नयोकी दृष्टिसे वदना इस तरह होती है इस वदनासे हम यह भाव ग्रहण करते हैं कि जैसे अनन्त ज्ञान आदिक गुणोमे युक्त प्रभु कृतकृत्य और आनन्दमय हुए हैं और उनका जैसा शुद्ध जीवहितकार्य है जैसी उनकी आत्मभूमि है यह ही वास्तवमे उपादेय है, और ऐसा होना हमारे स्वभाव में पडा हुआ है।

वक्तव्यका दिग्दर्शक प्रारंभिक बोधकी आवश्यकता- मगलाचरणमे केवल मगलकी ही बात नहीं निरखना चाहिए, किन्तु इसमे यह भी देखो कि इस ग्रन्थके प्रारम्भमें जो मगलाचरण रूपको बात कही गयी है उनमे इतनी बात भी जाहिर होती है इसमे निमित्त क्या है, इसका हेतु क्या है इत्यादि जैसे इस ग्रन्थका प्रारम्भ किया है तो आपको

जब तक ग्रन्थके निमित्त हेतु नाम परिणाम व कर्ता कौन है, क्या है, बात न ज्ञात हो तो इस ग्रन्थके बारे में कुछ विशद परिज्ञान नहीं हो सकता। जैसे अपने शरीर के बारेमे जितनी अधिक बातें ज्ञात हो उतना ही भेद विज्ञानमें इससे मदद मिलती है। मल मूत्र, हड्डी, पीप, कैसे कैसे नसाजाल, अग अवयव ऐसी विचित्रता अच्छी प्रकार ज्ञात हो तो लो ऐसे इस ढाचे से भिन्न यह ज्ञान प्रकाशमात्र जीव द्रव्य है ऐसा सोचने मे विशेष स्पष्टता होती है। यों ही किसी उपदेश के बारेमें मगलसहित और बातें ज्ञात हो तो उस ग्रन्थकी महिमा और उस ग्रन्थका वक्तव्य जानकर स्पष्टता रहती है। इस बातका भी वर्णन किया जायगा।

मगल—अब प्रथम मगलकी बात देखिये। मगल नाम है जो मगको ला देवे। मग मायने सुख। जैसे लोग कहते हैं हम तो चगेभगे हैं। चगे मायने स्वस्थ मगे मायने सुखी। जो मगकोलादेवे उसे मगल कहते हैं, अथवा जो पापो गला देवे पाप गलयति इति मगल। लोग नमस्कार करते हैं तो तीन प्रकार के देवतावोंमें से नमस्कार करते हैं। कोई देवता इष्ट है, कोई अधिकृत है, कोई देवता अभिमत है इष्ट देवताके मायने वह जो जिसे अपने सुखमें रुच गया है, जो इसे लाभप्रद है वह है इष्ट देवता। अधिकृत देवता का अर्थ है कि जो अपनी कुल परम्परा से चला आया है। लोक परम्परामें प्रत्येक घरसे कोई एक विशिष्ट देतवा मान लिया जाता है कि पहले उसकी मनौती करलें वह अधिकृत देवता है और अभिमत देवता वह है जिसे श्रद्धापूर्वक मानते हैं अपने कल्याण के लिए ज्ञानी जीवोंको तो जिनेन्द्र देव ही इष्ट देवता हैं। यह ही अधिकृत देवता हैं और यह ही अभिमत देवता हैं।

मगलाचरणका प्रयोजन व विधान - ग्रन्थोंकी आदिमे मगलाचरण करनेके अनेक प्रयोजन होते हैं। प्रथम तो यह है कि यदि किसी प्रभुका स्मरण किया तो इसमे नास्तिकता नहीं रहती। श्रद्धा तो है, किसी देवकी ओर दृष्टि तो है, जोयथार्थ देव हो उस पर दृष्टि पहुँचे तो नास्तिकता दूर हो जाती है। दूसरी बात शिष्टाचार की पूरी होती है। तीसरी बात पुण्यकी प्राप्ति होती है, और चतुर्थ बात है उस कार्यकी निर्विघ्न प्राप्ति होती है। यद्यपि अच्छा काम करने के लिए कोई मगलाचरण भी करे या करे तो भी ठीक है। कुछ गलत नही है, क्योंकि अच्छा काम तो स्वय मगलरूप है, उस मगलके लिए क्यो मगलाचरण करना। लेकिन जब श्रद्धा विशेष होती है तो मगलीक कामके लिए भी मगलाचरण किया जाता है। जैसे सूर्य स्वय प्रतापी और तपस्वी है लेकिन नन्हा सा दीपक जलाकर सूर्यकी आरती लोग उतारते हैं। कोई पूछे कि भाई सूर्य तो स्वय तेजस्वी है। तुम उसके आगे जरा सा दीपक क्यों जलाते हो ? श्रद्धा तपस्वीसूर्यके आगे भी दिया जलवा देती है। समुद्र पानी से भरा हुआ है। फिर भी लोग समुद्रके बीच समुद्रका ही जल समुद्र को ही चढाकर करता है तो यह भक्तिकी बात है। तो ऐसे ही मगलीक जितने कार्य हैं उन कार्योंमें भी मंगलाचरण किया जाता है। तो यह ग्रन्थ सारा मगलरूप है, क्योंकि इसमे मोह सकटोंसे छुटकारा पानेका उपाय बताया है। इस ग्रन्थको बनानेके पहिले आचार्य देव यह मगलाचरण कह रहे हैं।

त्रिविध नमस्कार—यहां जिनेन्द्रदेवको ग्रन्थकर्ताने नमस्कार किया है। नमस्कार तीन तरह से होता है—एक आशी नमस्कार, एक वस्तु नमस्कार और एक नमस्कारके रूपसे नमस्कार। आशी नमस्कार तो आशीर्वाद लेने अथवा आशीर्वाद देने का नमस्कार है। पर आशीर्वाद देनेकी हालतमें जिनके प्रति पूज्यता और बड़प्पन का भाव रहता है उनको नमस्कार किया जाता है। हे जिनेन्द्र ! जयवत हो। तो भगवानको अपने लोग आशीर्वाद दे रहे हैं हे भगवान जयवत हो। भगवान तो जयवत है ही, उनको जयवत होनेका जो आशीर्वाद भक्त देता है, वह पूज्यतासे प्रभावित होकर देता है, छोटा मानकर नहीं देता है। उनके गुणोंको निरखकर मन ही मन प्रसन्न होना यह भी नमस्कार है और हाथ जोड़कर सिर नवाकर वचनों द्वारा विनय प्रदर्शित करना यह भी नमस्कार है।

मगलाचरणमे अनेक प्रतिबोधन—मगलाचरणमे अनेक बातें और भी स्पष्ट हो जाती हैं। यह ग्रन्थकर्ता किस पद्धतिसे किस विषयको कहेगा यह बात उसके मगलाचरण में ही झलक जाती है। जिस देवत्वको नमस्कार किया जा रहा हो उसके अनुकूल ही व्याख्यान होगा, यह बात पहिले से जच जाती है। मंगल दो तरहके होते हैं-एक मुख्य

मंगल और एक गौण मंगल। मुख्य मंगलाचरण तो जो मंगलमय आत्मा है, संतोषपूर्ण विकासमय उन दोनोंके बीच विनय स्मरण मे सब मुख्य मंगल हैं और लोकमें जो बात मगलरूपसे प्रसिद्ध है, जैसे मगल कलश रखना, वदनवार दरवाजे पर बनाना ये सब गौण मगल है। जैसे पूजापाठ विधानोंके अवसरमे लोग मुख्य मगल भी अनेक करते हैं। सजावट करना, मगलकलश उत्पन्न करना आदिये गौण मंगल भी होते हैं, और मुख्य मगल तो है ही। मुख्य मगल न पाकर तो इस गौण मगल की कीमत नही है।

मंगलाचरणके लाभ—मगलाचरण मगलरूप अपना आचरण या मगलमय प्रभुका स्मरण यह तो ग्रन्थकी आदि मे ही क्या करना। आदि में करना, मध्यमे भी करना, अन्तमे भी करना, जब चाहे तब करना, और मगलाचरण की जरूरत उत्कृष्ट धार्मिक कार्योंमें उतनी अधिक नही है जितनी अन्य कामोमे प्रसगमें है। धार्मिक कार्य तो स्वय मगलरूप हैं। घर गृहस्थीके अनेक काम-दूकान करना, मकान बनवाना विवाहकार्य प्रारम्भ करना और घरमे अनेक काम होते हैं उन सब कामो मे उस प्रभुस्मरण की अत्यन्त अधिक आवश्यकता है, क्योंकि वे सब अमंगल काम हैं, और अमगल कामोंमे हमारे आत्माकी सावधानी रहे एतदर्थ वहा मंगलकी अधिक आवश्यकता है। मगलमयका आश्रय होनेसे अनेक विघ्न दूर हो जाते हैं, क्षुद्रदेव वहां विघ्न नही कर सकते हैं। अभीष्ट तत्त्वकी प्राप्ति होती है प्रभुको गुणोका कीर्तन करने से। कोई छात्र विद्याभ्यास करता है तो उसे विद्या प्रारम्भके पहिले भी मगल करना चाहिए, जिससे कि उसके कार्यमे कोई विघ्न न आये। मध्य मध्यमे भी मगलाचरण करना चाहिये ताकि प्रगति हो और जब विद्याका फल फल पाया है तो उस कृतज्ञतामें भी मगलाचरण करना चाहिए।

मगलाचरणका उद्देश्य व प्रतीक—मगलाचरणका उद्देश्य है कि उस मगलमय ज्ञायकस्वरूप निज अतस्तत्त्वको पहिचानू, उसकी ओर दृष्टि बनाऊ, यही मात्र एक मुख्य प्रयोजन है, जो इस प्रयोजनकी ओर ले जाने का प्रतीक हो, जिसके देखनेसे हमें अपने आत्माकी सुध हो वह सब लोकके मगल कहे जाते हैं। जैसे पूर्ण कलश पानीसे भरा हुआ हो वह घड़ा यह याद दिलाता है कि जैसे यह जलपूर्ण कलश भरपूर बीचमें जहाँ रच भी शून्य नही रहा इसप्रकार भरा हुआ है ऐसे ही यह आत्मा ज्ञानरससे पूर्ण भरा हुआ है, बीचमें एक प्रदेशमात्र भी शून्यता नही है तो आत्माकी सुध दिलाने का कारण हो सकने से यह जलसे भरा हुआ कलश माना जाता है।

मगल वन्दनमाला—वदन माला जो घर पर लटकायी जाती है वह शब्द मात्रसे वदनका स्मरण दिलाती है। उस बदनमालाके नीचेसे जाय अर्थात् घरमें प्रवेश करे तो जिनेन्द्र देवका वदन करें। जब नीचेसे निकले तब प्रभुकी वदना करना चाहिए और जब घरसे बाहर निकले तो बदनमालाके नीचे से ही निकलना होगा तब प्रभुकी वदना करना चाहिए, इसी कारण अपने घरके मुख्य दरवाजेपर बदनमाला लटकानेका अब तक रिवाज है। अब आधुनिक ढगमें तो लोग नही लटकाते हैं, उससे पत्ते गिरेंगे, कभी कुछ कूड़ा होगा या कोई भाई पुराने टाइपके लोग कहेंगे बुद्धू कहेंगे इससे अब दरवाजे पर वदनमाला नहीं लटकाते, पर यह पुराना रिवाज है और यह स्मरण कराती है कि तुम घरमे प्रवेश करो तो प्रभुवदन करके करो। घरसे बाहर निकलो तो प्रभु वदन करते हुए निकलो।

छत्रादिक मगल—छत्रको भी लोग मगल कहते हैं। यह छत्र भी सिद्धालयका स्मरण कराती है। सिद्धशिलाका का आकार छत्राकार है और उसके ऊपर सिद्ध भगवान विराजे हैं, तो सिद्ध प्रभुके स्मरणका एक जरिया होनेसे छत्र भी लोकमे मगल माना जाता है। किन्तु यह सब गौण मगल है। मुख्य मगल तो अपनी आंतरिक श्रद्धासे जो प्रभुके गुणोंका स्मरण होता है वह कहा जाता है, उसमें भी प्रयोजन प्रभुका स्मरण है। और साक्षात् मगल भी करते है उसमे भी प्रयोजन प्रभुके स्मरणका है।

निबद्ध मगल—इस ग्रन्थ मे जो यह मगलाचरण है यह निबद्ध मगल है। किसी ग्रन्थको बनानेसे पहिले नवीन बनाकर भी मंगलाचरण किया जासकता है या अन्य प्रसिद्ध किसी ग्रन्थका मगलाचरण करके भी ग्रन्थ प्रारम्भ

किया जा सकता है। जो स्वयं मंगलाचरण बनाकर ग्रन्थका प्रारम्भ किया जाय उसे निबद्ध मंगल कहते हैं, और जो किसी ग्रन्थका मंगलाचरण करके अपनी रचना की जाय उसको अनिबद्ध मंगल कहते हैं।

मंगलाचरणकी आवश्यकता—कोई जिज्ञासु ऐसा प्रश्न कर सकता है, कि मंगलाचरण करनेकी जरूरत क्या है? जो बात कहना है, उसे तुरन्त शुरू कर देना चाहिए उसके उत्तरमें कुछ लोग यह कह सकते हैं मंगलाचरण करनेसे विघ्नोंका नाश होता है। इस पर शंकाकार यह कह रहा है कि कोई मंगलाचरण करते हैं तो उनको भी विघ्न आ जाता है और कोई मंगलाचरण न करे तो उनको भी विघ्न नहीं आता जिस कामको उन्होंने ठाना है उसमें वे सफल हो जाते हैं इसलिए नमस्कार मंगलचरण करने का क्या जरूरत है? समाधान उसका यही है कि मंगलाचरणमें पुण्यकी वृद्धि है और कषायोंपर विजय होती है जिससे समता भाव प्रकट होता है और उस समता परिणामके साथ जिस रचना का हम प्रारम्भ करेंगे उसमें विघ्न न आयेंगे। विघ्न प्रायः दूसरे लोगोंसे नहीं आता है, किन्तु खुदके चित्तमें अधीरता हो जाय, खुदका ही चित्त किसी कषायसे भर जाय तो विघ्न आया करते हैं। तो मंगलाचरणसे कषायोंकी मंदता और समता का विकास पैदा होता है, इस तरह मंगलाचरण विघ्नोंका नाशक है, फिर मंगलाचरण करके तो पुण्यबंध किया। अब कदाचित् किसी कार्य में विघ्न आ जाय तो वह पूर्वकृत पापोंका ही प्रसाद है। यों तो देवनमस्कार और पात्र दान पूजा आदि कर्तव्योंके करने पर भी विघ्न हो जाते हैं। वहाँ यह जानना चाहिए कि यह पूर्वकृत पापों का ही फल है, धर्मदोष नहीं है। और जब कभी नमस्कार दान पूजा आदि किसी भी प्रकार का धर्म नहीं किया जा रहा वहाँ भी उनका कार्य निर्विघ्न होता हुआ दिखता है तो समझना चाहिए कि उनका पूर्वजन्मकृत्य: धर्मका फल है पापका फल नहीं है। यों मंगलाचरण आवश्यक है। उसी लोकनीतिको लेकर कुन्दकुन्दाचार्य देवने भी इस शास्त्रकी आदिमें यह मंगलाचरण किया है।

ग्रन्थका निमित्त—हाँ यह संकल्प किया गया था कि ग्रन्थके बारेमें ६ बातों पर प्रकाश अवश्य होना चाहिए। एक मंगल दूसरा निमित्त तीसरा हेतु चौथा परिणाम ५वाँ नाम और छठवां कर्ता। इन ६ बातोंमें से मंगलका तो वर्णन किया गया है, अब निमित्तका वर्णन सुनिये। यह ग्रन्थ रचना जो की जा रही है। इस शास्त्रोंकी जो रचना की जा रही है इसका निमित्त क्या है? वीतराग सर्वज्ञकी दिव्यध्वनि भी एक शास्त्र है, वह महाशास्त्र है, उसका कारण तो है भव्य जीवोंका पुण्य और उनकी ही बाँधी हुई जो तीर्थंकर प्रकृति आदिक पुण्य वर्गणाएं हैं उनका उदय। तो मूल निमित्त तो भव्य जीवका पुण्य है और हम लोगोंके बीच जो शास्त्र आए हैं इन शास्त्रोंका निमित्त गणधरदेव हैं। उनका निमित्त है भगवानकी दिव्यध्वनि। इस तरहसे इस विशुद्ध निमित्तकी परम्परा है।

ग्रन्थका हेतु—इस ग्रन्थकी रचनामें कारण क्या है। तीसरी बात पूछी जा रही है, तो कभी ऐसा होता है कि कोई साधुमहाराज किसी साधुपर या श्रावकपर प्रसन्न होकर उसके उद्धारके अर्थ, उसके प्रतिबोधन के अर्थ शास्त्रकी रचना करते हैं और उस शास्त्र रचनासे वे लाभ उठाते हैं, और जो जो उसका अध्ययन करते हैं वे भी सब लाभ उठाते है और जो जो उसका अध्ययन करते हैं वे भी लाभ उठाते है। यह पचास्ति नामक ग्रन्थ कुन्दकुन्दाचार्य देवने शिवकुमार महाराजको समझाने के लिए बनाया है। जैसे ज्ञानार्णव की शास्त्रकी रचना भर्तृहरीके प्रति बोधके लिए शुभचन्द्राचार्य ने बनाया है, तो यह इसका निमित्त हुआ।

ग्रन्थका फल—अब इसके बनानेका प्रयोजन अथवा फल क्या है? फल २ प्रकारके हुआ करते हैं-एक प्रत्यक्षफल और एक परोक्षफल। ग्रन्थका प्रत्यक्षफल तो यह है कि ज्ञान दूर हो जाय। ग्रन्थका वक्तव्य सुनने से उसी समय क्या मिलता है? अज्ञान दूर हो गया वस्तु के स्वरूपका वर्णन किया तो वस्तुके विषयमें जो अज्ञान लगा था वह मिट गया। यह तो प्रत्यक्ष फल है और परोक्षफल अर्थात् आगे होने वाला फल मोक्ष और स्वर्ग आदिक है किसी को स्वर्गकी प्राप्ति होती है किसीको मोक्षकी प्राप्ति होती है। जिसको अब स्वर्गको प्राप्ति हुई है उसको कुछ समय बाद मोक्ष की प्राप्त हो जायगी। यह तो मोक्ष है परोक्षफल और केवल स्वर्ग की प्राप्ति ही फल नहीं। मनुष्यों में भी सम्राट चक्री ऊँचे

ऊंचे कोई नायक हो जाना यह भी इस ज्ञान का फल है। इस तरह हेतु का वर्णन हुआ।

ग्रन्थका परिमाण और नाम:—परिमाण क्या है, अर्थात् कितने श्लोकप्रमाण इस ग्रन्थकी रचना है। इस पचास्तिकायग्रन्थमे कुल १७० गाथाए हैं। १७० गाथा प्रमाण इस ग्रन्थका प्रमाण है, इस ग्रन्थका नाम रक्खा है पचास्तिकाय। नाम दो प्रकारसे रक्खे जाते हैं। जिसका नाम रक्खा जा रहा है उसमें जो गुण हों उस गुणके अनुरूप नाम रखना और एक अपनी इच्छासे नाम रख देना। जैसे कोई है तो बडा कमजोर और नाम रख दिया बहादुरसिंह सो यह इच्छासे रक्खा हुआ नाम है। जैसे गुण है वैसा नाम धरना अन्वर्थ है। जैसे सूर्यका नाम तपन रक्खा है। सब कुछ उससे तप जाता है सडक, मकान आदि सो यह अन्वर्थ नाम है। कोई है तो भिखारी और नाम रख दिया लक्ष्मीचद अथवा कोई है तो धनिक और नाम रख दिया फकीरचद तो यह अन्वर्थ नही है। इस ग्रन्थका नाम है पचास्तिकाय। यह इच्छानुकूल रक्खा हुआ नाम नहीं है, किन्तु अन्वर्थ नाम है, इसमें ५ अस्तिकायों का मुख्यरूपसे वर्णन है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश इनका मुख्य रूपसे वर्णन है, कालद्रव्यका भी इसमें वर्णन है यो छहो द्रव्योका वर्णन है पर मुख्यरूपसे जीवके लिए वर्णन करना था जीव अस्तिकाय है। अत. इसका नाम सब द्रव्योका वर्णन करके भी अस्तिकायकी मुख्यतासे पचास्तिकाय है।

ग्रन्थका कर्त्ता.—अब छठवी चीज है कर्त्ता। इसका कर्त्ता कौन है। कर्त्ता ३ प्रकारके होते हैं। मूल कर्त्ता, उत्तर कर्ता और उत्तरोत्तर कर्ता। मूलकर्ता तो इस काल की अपेक्षा श्री वर्द्धमान भगवान हैं। आज जो कुछ भी जैन शासन का तीर्थ चल रहा ह यह सब महावीर प्रभुका है। कर्ता महावीर स्वामी हुए। करीब ढाई हजार वर्ष हो गए हैं तथापि जब तक ऐसा यह धर्म चलेगा तब तक तीर्थ महावीर स्वामी का कहलायेगा। यह पचम काल है इसके अन्त तक जैन शासन रहेगा।

कुशल:—इसके बाद छठा काल आयगा। छठे कालमे लोकमें बिल्कुल अनाचार फैल जायगा। अग्नि नही रहेगी। रोटी बनानेका सिस्टम खतम हो जायगा। फिर लोग कैसे गुजारा करेगे ? तो पशु लोग कैसे गुजाराकर लेते हैं। क्या कभी गाय बैल अपना पेट भरने के लिए रोटी पकाते है ? तो जैसे पशुवोका जीवन चलता है वैसे ही मनुष्यो का जीवन चलेगा। मारना खाना बस यही जीवन रहेगा और इस जीवनका प्रारम्भ तो अबसे ही चालू है देखिये मछलियों को, बकरा बकरियोंको यो ही पकड़कर लोग मार देते हैं ये सारी चीजें छठे कालके स्वागतकी तैयारी की सूचक है। यह पचमकाल है। इस कालके पहिले चतुर्थ कालके अन्तमें महावीर स्वामी हुए, और उनकी देशना की परम्परामे यह जैन शासन चल रहा है, तो मूल कर्ता तो समस्त दोषोसे रहित केवलज्ञान केवलदर्शन अनन्तसुख अनन्तशक्ति से सम्पन्न भगवान महावीर है, और उत्तर कर्ता श्री गौतम स्वामी गणधर देव हैं। यह गणधर देव चारो ज्ञानके धारी थे, सातों ऋद्धियो के धारी थे। उत्तरोत्तरकर्ता तो अनेक आचार्य हुए हैं। इस ग्रन्थके रचयिता श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव उत्तरोत्तर कर्ता कहलाते है। इस प्रकार इन ६ ज्ञातव्योका वर्णनमे अन्तिम ज्ञातव्यकर्ता का व्याख्यान किया है।

कर्ताकी प्रमाणतासे वचनकी प्रमाणता:—कर्ताके प्रमाणसे उसके वचन भी प्रमाणिक है। कोई किसी पुस्तकको लेकर पढ़ने बैठता है तो पढ़ने वाला उस पुस्तकके पढनेके पहिले यह जाननेकी जिज्ञासा करता है कि इस पुस्तकको लिखा किसने है बिना इस बातको जाने उसे उस पुस्तकके पढ़नेमे मन नही लगता है। पुस्तकके ऊपर किसी अच्छे लेखक का नाम पढ़ लिया तो वह उस पुस्तकको बड़ी उत्सुकतासे खरीद लेता है, क्योंकि उसके मनमे बैठ जाता है कि यह अच्छी ही पुस्तक होगी। ऐसे ही धार्मिक ग्रन्थोके कर्ताका नाम मालूम हो कि इसे किसने बताया है तो यदि किसी योग्य प्रमाणिक व्यक्तिका नाम पडा है तब तो वह उस ग्रन्थको छुवेगा, उसे पढ़ेगा और यदि किसी योग्य प्रमाणिक व्यक्तिका नाम उसमें नही पडा है तो वह उसे न पढेगा। कर्ता की प्रमाणिकता आनेमे वचनोंमें भी प्रमाणिकता आती है। इस प्रकार नमस्कारके रूपमें यह प्रथम गाथा सम्पूर्ण हो रही है। इस मगलाचरण के बाद अब आचार्य देव किस बातका वर्णन करेंगे, उस वक्तव्य विषयका सकेत देते हुए द्वितीय गाथाको कह रहे हैं।

समणमुहुग्गदमट्ठं चदुग्गदिणिवारणं स णिव्वाणं ।
ऐसो पणमिय सिरसा समयमियं सुणह वोच्छामि ॥२॥

सद् वचन रत्न—वीतराग सर्वज्ञदेवोंकी दिव्यध्वनिकी परम्परासे वीतराग श्रमणजनोंके मुखसे निकले हुए अर्थको अर्थात् वस्तुके प्रत्येक प्रतिपादित वचनोंको सिरसे प्रणाम करके मैं इस समयको कहूंगा, हे भव्य जीवो ! तुम उसको पूर्वक सुनों ' यह ऋषि सतोंका वाक्य चार गतियोंके दु खका निवारण करने वाला है, और निर्वाण की प्राप्तिका उपायभूत है । प्रणाम करने के लिए वही कहा जाता है अथवा पूजा जाता है जिसके मार्गके अनुसार चलकर अपनेको सफलता प्राप्त होती है । ये प्रभु वीतराग सर्वज्ञदेव जिनकी मूर्ति स्थापित करके हम रोज पूजते हैं, अभिनन्दन करते हैं उन्होंने जो मार्ग अपनाया था अहिंसा महाव्रत सत्यमहाव्रत अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत और परिग्रहत्याग महाव्रत, इन ५ महान् व्रतोंसे और अनेक तपश्चरणोंसे अपने आत्माको सयत करके अपने आपके स्वरूपको केन्द्रित करके जिसने आत्मविकास पाया है उन प्रभुके मार्गपर जो चलेगा वही निहाल होगा ।

सर्वज्ञोपदेशमे हितकारिताके कारण -आप सर्वज्ञदेवका उपदेश इसलिए हितकारी है कि उनके उपदेशमें वही बात कही गयी है । जिस बातका पालन करके उन्होंने स्वयं विकास पाया है । कोई नदी को पार करके दूसरे पार पहुच जाय तो उसको अधिकार है कि वह उस पार खडे हुए लोगों को मार्गका इशारा करे । इस रास्तेसे चलना तो तुम इस पार आ जावोगे । जो नदीमें कभी घुसा भी नही, देखा भी नही, उसे क्या अधिकार है कि मुसाफिरोंको बताये कि देखो इस रास्तेसे निकलना तुम उस पार पहुच जावोगे । प्रभु अरहत देव और वीतराग श्रमण साधुसत जन यह मार्ग अपनाकर उस पार पहुच चुके व जारहे हैं उनको अधिकार है कि हम सब ससारी प्राणियोंको एक मार्ग बतायें कि इस मार्गसे जावो । श्रमणोंमें महाश्रमण तो है सर्वज्ञ वीतराग और साधुसतजन भी श्रमण कहलाते हैं । यह आगम वास्तविक स्वरूपका प्रतिपादन करता है । यह यद्यपि अनेक शब्द रचनावों से भरा हुआ है तो भी इसके बनानेका मर्म केवल वस्तु स्वरूप है ।

आप्तवचनोंके आश्रयका महत्त्व—जो इस आगमके अनुसार अपनी प्रवृत्ति करते हैं उनके नरक, तिर्यंच मनुष्य और देव चार गतियोका निवारण हो जाता है । अत आगमका अध्ययन सफल है । साक्षात् फल तो यह है कि जब वस्तु स्वरूपपर दृष्टि पहुचती है तो परतन्त्रता दूर हो जाती है, और शुद्ध आत्मत्व की उपलब्धिरूप निर्वाण की प्राप्ति होती है, स्वतन्त्रता मिल जाती है । आचार्य देव कह रहे हैं कि इस ग्रन्थमे पदार्थोंका स्वरूप बतावेंगे । जिस स्वरूपको सुनकर आपका उपयोग ऐसा निर्मल होगा । ऐसे विविक्त आत्मत्वकी ओर अभिमुख होगा कि चार गतियोका भोगना छूट जायगा । आगममे मुक्तिका उपाय दिखाया गया है इस द्रव्यागमको प्रणाम करके तुम सुनों इस शास्त्रको प्रणाम करके मैं कह रहा हूं ।

समयकी त्रिविधता—समय का प्रतिबोध तीन प्रकारसे है शब्दसमय, अर्थसमय और ज्ञानसमय । समयका मतलब है वस्तु । वस्तु इतना शब्द बोल दिया जाय तो यह हुआ शब्दसमय । जिस समय वस्तु शब्द एक कागजपर लिखकर आपसे पूछें कि बतावो यह क्या है ? तो आप क्या कहेंगे ? यह वस्तु है । पर वह वस्तु तो नहीं है । वह तो लिखा हुआ है । वह शब्द वस्तु है । चीज उठाकर पूछें कि यह क्या है ? तो आप कहेंगे कि यह वस्तु है । यह है अर्थ वस्तु । और वस्तुके सम्बधमे जो ज्ञान किया जाता है वह है ज्ञानवस्तु । प्रत्यक बात तीन प्रकार से होती है, शब्द अर्थ और ज्ञान । जैसे घर, घर भी तीन प्रकारसे हैं । शब्दघर, अर्थ घर और ज्ञानघर । घ और र ऐसे दो वर्ण लिखे जायें कागज पर और पूछा जाय कि बतावो यह क्या है ? आप कहेंगे घर है ? तो रह लो उस घरमें, रोटी बना लो । अरे वह तो शब्द घर है, और यह जो मिट्टी पत्थरका बना हुआ है यह क्या है ? यह है अर्थ घर, इसमे अर्थ क्रिया होगी । रह लो, ठहरा लो यह सब कुछ इस घर में होगा, और इस घरके बारेमें जो समझ बनी है, कि यह घर है ऐसी समझका भी नाम घर

है। यह समझ है ज्ञानघर।

अपना सम्बन्धित समय—अच्छा भैया ! यह बतलावो कि आपका प्रेम शब्द घरसे होता है यह या अर्थ घरसे होता है, या ज्ञान घरसे होता है ? वह प्रेम आपका शब्दघरमें है क्या जो कागज मे घ और र लिख दिया इसमे प्रेम है क्या ? इस शब्दघरसे कोई प्रेम नही करता तथा यह ईंट चूनेसे उठा हुआ जो घर है इस घरसे तो प्रेम कोई कर ही नही सकता। यह आपका भ्रम है जो मानते हो कि हमारा घरसे प्रेम है, इस ईंट पत्थर से आपका प्रेम हो ही नही सकता, क्योकि आप पृथक एक आत्मपदार्थ हैं। यह घर पृथक् पौद्गलिक स्कध है। एक पदार्थका काम दूसरे पदार्थमें नही होता, आपका जो प्रेम पर्याय है, जो भीतरमे प्रेमरूप परिणमन होता है यह प्रेमरूप परिणमन आपमें ही सकता है; आपकी कोई परिणति, आपका कोई प्रेम आपको छोडकर दूसरे वस्तुमें नही जा सकता है। यह पदार्थके स्वरूपकी विशेषता है। तो आप अर्थ घरमे प्रेम कर ही नही सकते। तब जितना भी आप प्रेम कर रहे हैं वह ज्ञान घरमें प्रेम कर रहे हैं, अर्थात् घरके बारेमे जो अपनेमे कल्पना बनायी है उस कल्पनासे आप प्रीति कर रहे हैं। ऐसे ही सभीमे घटा लो पुत्र तीन तरहके होते हैं-शब्द पुत्र, अर्थ पुत्र, ज्ञान पुत्र। जो दो टांगका है आप के घरमे, जो उछलता, मचलता है वह है अर्थपुत्र। और पु और त्र एक कागजपर लिख दिया जाय तो वह हुआ शब्द पुत्र और पुत्रके बारेमे जो आपकी कल्पना हुई है, यह मेरा पुत्र है, इस प्रकारका जो ज्ञान बना है यह है ज्ञान पुत्र। अब यह बतलावो आपको प्रेम किस मे है ? शब्द पुत्रमे तो है नही जो कागजमे लिखा है, और अर्थ पुत्रसे तो आप प्रेम कर ही नही सकते। यह आपका भ्रम है कि जो यह मानते हो कि मैं अर्थ पुत्रसे प्रेम कर रहा हूँ। आप एक स्वतत्र पदार्थ हैं। यह आत्मा एक स्वतत्र पदार्थ है। आपकी कोई भी परिणति आपका द्रव्य आपकी शक्ति आपकी पर्याय कुछ भी आपके प्रदेशको छोडकर बाहर नही जा सकती है। यह है वस्तुका अटलस्वरूप, तो आपमे जो प्रेम होता है वह प्रेम आपके चारित्र गुणकी विकृत पर्याय है। वह प्रीतिरूप परिणमन आपमें ही समायेगा। आपसे बाहर किसी भी जगह आपका प्रीतिरूप परिणमन नही पहुँच सकता है। आप अर्थ पुत्र से कभी प्रेम कर ही नहीं सकते। चाहे आप कितना ही विकल्प करें और कितना ही आप अपना भाव बनाएँ, अर्थ पुत्रमे आपका प्रेम कभी हो ही नहीं सकता। फिर आप कहेंगे-वाह सारी दुनिया पुत्रसे प्रेम कर तो रही है ? कोई नहीं कर रहा है। एक किसी पदार्थ का ख्याल बनाकर अपने आपमे जो कल्पना जाल रचा है उस कल्पना जालमे प्रेम किया जा रहा है, दूसरेसे कोई प्रेम कर ही नहीं सकता।

ज्ञानकी निकटता—भैया ! आपका निकट सम्बध इस ज्ञानसे है, न शब्द से है न पदार्थसे है, पर काम तीनोंसे पड़ता है। शब्द घरके माध्यमसे अर्थ घर बताया जाता है ज्ञानघरकी प्रसिद्धि के लिए। याने उसे कल्पना जाल कैसा रच रहा है इस बातके बतानेका माध्यम शब्द है और वस्तुकी ओर सकेत है। ऐसे ही इस शास्त्रमे अर्थ समयका व्याख्यान होगा अर्थात् जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल इन ६ द्रव्योका वर्णन चलेगा। किसलिए ? एक इस ज्ञानकी सिद्धिके लिए ? हम वस्तुके स्वरूपका सही ज्ञान करें और यथार्थ जानकर परद्रव्योसे उपेक्षा करके अपने आपके निज अतस्तत्त्वकी अनुभूति करें, इस वास्ते इस ग्रन्थमे ५ अस्तिकायों और ६ द्रव्योका वर्णन चलेगा।

आगमका प्रसाद—इस आगमके प्रसादसे हम अपने यथार्थ मर्मको जाननेमें समर्थ हो जाते हैं और फिर रागद्वेष रहित होकर निर्विकल्प ज्ञानस्वभावमे ठहरकर चारो गतियोके दु:खोको दूर कर लेते हैं, उससे निर्वाणकी प्राप्ति होती है, निर्वाणमे ही अनन्त आनन्द है, इस कारण अनन्त आनन्दका कारणभूत होनेसे इस जैन शासनको नमस्कार करना बिल्कुल युक्त है। हमे प्रभुकी भक्तिमे प्रभुमें साक्षात् भक्ति तो करना ही है, पर प्रभुका जो उपदेश आदिक है उसे रुचिपूर्वक सुनना यह भी प्रभुकी भक्ति है और प्रभुके मार्गपर जो चल रहे हैं ऐसे साधुसतोकी सेवा करना यह भी प्रभुभक्ति ही है, हम आपको चाहिए कि प्रभुकी वाणीका प्रतिदिन कुछ न कुछ स्वाध्याय करें, सुने, और जो ग्रन्थ हमारी समझमे सुगमतया आ जायें उन ग्रन्थोंका स्वाध्याय करें। क्योंकि, ग्रन्थको लेकर बैठ जानेसे कोई सिद्धि न होगी, आपका दिल उचट जायगा, आप उसमें फिर उत्साहहीन हो जायेंगे। आप ऐसे ग्रन्थोंका स्वाध्याय करें जिससे आपको तत्काल बोध

हो और सन्मार्गके लिए प्रेरणा मिले।

सदवचनश्रवणका लाभ—एक कोई पुरुष जैन धर्मसे ईर्ष्या रखने वाला यह नियम बनाये था कि मैं कभी भी जैन ग्रन्थोंकी बात न सुनूँगा अपने घरसे बाजरकी रास्तामे जाने से एक जैन मदिर पड़ता था। वहाँ प्रायः सुबहके समय शास्त्र होता था। एक दिन वह बाजार जा रहा था तो जैसे मन्दिर के सामने कानोंमें अगुली लगाकर निकलता था वैसे ही उस दिन भी निकल रहा था, ताकि कोई शब्द न सुन पड़ें। समयकी बात कि उसके पैरमें एक काँटा लग गया। उस काँटे को हाथसे निकालने के लिए वह बैठ गया। कानोंसे अगुली हटाली तो उसे कुछ शब्द सुननेमे आ गए—क्या ? देवतावोंके शरीरकी छाया नहीं पड़ती है। भूतप्रेत आदिक भी देवता हैं इनके शरीर की छाया नही पड़ती। जैसे अपना लोग धूपमें या प्रकाशमें चलते हैं तो छाया पडती है ऐसी छाया उनके नही पड़ती, इतनी बात उसने सुन लिया और आगे बढ गया। भाग्यकी बात कि उसी दिन रातको उसके घरमें चार चोर आए चोरी करने और वे भूतप्रेत जैसा चेहरा बनाकर आये यह जताते हुए कि हम भूत हैं। पहिले तो वह डरा लेकिन बादमें उसने देखा कि इनकी तो छाया पड रही है, ये भूत नहीं हैं, ये तो चोर हैं। वह बलवान तो था ही। डडा उठाया और सब चोरोंको भगा दिया। तो वह सोचता है कि एक दिन जैन शास्त्रके कुछ शब्द कानमें पडे तो उसके फलमे आज हमने अपनी सम्पदाकी रक्षा करली, नही तो आज पूरे लुट जाते। हम तो भूत के डर से घर छोडकर बाहर होते और ये सब कुछ लूट ले जाते। तो जैन शास्त्रोंको हमें प्रतिदिन सुनना चाहिए उससे हमें अनेक लाभ होंगे। फिर उसने जैन शासन ग्रहण किया और प्रतिदिन शास्त्र सुनने लगा।

जिनशासनका अपूर्व लाभ—अब आप पूछेंगे कि जैन शासनके जैन आगमके सुननेसे और अधिक लाभ क्या होगा, दूकान चल रही हैं, सब काम अच्छे चल रहे हैं, और लाभ क्या होगा, अरे और लाभ यह होगा कि आपको अपने आत्माके यथार्थस्वरूपका भान होगा, परद्रव्योंसे उपेक्षा होगी, अपने आपमें आत्ममग्नता होगी। भव-भवके कर्म झडेंगे, पुण्यरस बढ़ेगा, पापक्षय होगा। स्वर्ग और मुक्तिके निकट पहुचेंगे। शान्ति सतोष आनन्द से भरपूर हो जायेंगे, इससे बढ़कर और क्या चाहिये है ?

दुःखका मूल कारण—जीवको दुखका कारण केवल एक मोह है, यह मोह अनेक विषयोंमें हुआ करता है। किसीका घरमें मोह है, किसीका इज्जत नाममें मोह है, किसीका यश कीर्तिमें मोह है, किसी का काम काजमें मोह है, लेकिन ये समस्त मोह इस मोही जीवको बरबाद करनेपर तुले हुए हैं। प्रथम तो हम आपको इस शरीरमें मोह है। एक इस शरीरमें मोह न रहे तो आपको किसी भी वस्तुमें मोह न रहेगा।

शरीर त्यागमे भी शरीरमोहकी सभवता—यहा प्रश्न किया जा सकता है कि जो सुभट जन बिना वेतन वाले खुशी खुशी एक अपनी किसी की भक्तिसे सग्राममें लड़ते हैं, पुराणोंमें बहुत-बहुत लिखा गया है। बड़े बड़े सग्राम हुए, राम रावणके समयमें अनेक राजा अनेक सेवक मिल गये थे, क्या उन्हें वेतन दिया जाता था ? वे उल्टो अपना ही खर्च करते थे। सेवा सहित आकर किसी पक्षमें मिलकर वे लड़ाई लड़ते थे, सग्राम करते थे। सग्राममें अपनी जान तक गवा देते हैं। उन्हें तो शरीर का मोह नही है ना। उन्हे भी शरीरके मोहके कारण ही मोह होता है। वे अपने बारेमें शरीरमें दृष्टि लेकर ऐसा बराबर समझ रहे हैं। सग्राममें यदि जान चली जाय तो जाय पर नाम तो अमर रहेगा। किसका नाम ? इस शरीर को ही दृष्टिमें लेकर नामकी कल्पना की तो शरीर का ही तो सम्बध हुआ।

देशप्रेममे बलि होनेमे शरीरमोहकी सभवता—अच्छा यह भी बात नहीं हो, किन्तु यह हो कि हमारा देश सुरक्षित रहेगा, हमारे देशोपर किसी शत्रुका अधिकार क्यों हो, इस ख्यालमे भी सोचिए कि मूलमे शरीरका किस प्रकारसे मोह है—यह हमारा देश है, यह भाव तभी बनेगा जब इस शरीरको मानेंगे कि यह मैं हूँ। देशके पीछे भी कुरबानी करनेमे शरीरके मोहकी बात आ ही गई है। जिसका जितना भी मोह किया जाता है वह सब शरीरके मोहके

आधारपर है। शरीरका मोह न रहे तो फिर किसी भी वस्तुमें मोह नहीं हो सकता है। इस कारण इस मोहके महान् सकटोको मिटानेके लिए शरीरके मोहके त्याग करने का यत्न करें।

मोहत्यागकी भेदविज्ञानसाध्यता—मोह का त्याग भेद विज्ञानसे ही हो सकेगा। यह शरीर जड है। अनेक परमाणुवोसे बना हुआ है। अपरमार्थ है, मैं आत्मा इस मूर्त शरीरसे न्यारा अमूर्त केवल ज्ञानघन हूँ। ऐसा अपने आपमे ज्ञानस्वरूप की प्रीति करना यह उपाय है शरीरका मोह त्यागनेका ये कामादिक चाहे करने पडे, चाहे किसी ढगसे रहना पडे, प्रत्येक परिस्थितिमे यह कर्तव्य है कि शरीर और उन वस्तुवोसे कामोह छोड़कर अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूप को देखो और उसे यह मैं आत्मा हूँ ऐसा मानो। ज्ञानभावनाके बिना यह मोह सकट दूर नहीं हो सकता है इसलिए इस ज्ञानभावनाको तब तक भाते जाइए जब तक इन शरीरादिक परद्रव्योसे न्यारे न हो जावो।

अमृत तत्त्व—यह भेद विज्ञान एक अमृत है। लोग कहा करते है कि अमृत पी लो तो अमर हो जावोगे। वह अमृत कैसा होता होगा, कोई पेय पदार्थ पानी जैसा है या कोई फल जैसा है या सतुवा जैसा है, न जाने कैसा होता होगा। लोग कहते हैं कि उसके खा लेने से अमर हो जावोगे। अरे उसे खा लिया गया तो वह तो खुद मर गया। जो खुद मर जाये वह दूसरेको क्या अमर करेगा। अमृत मायने जो खुद न मरे। अरे अमृत कोई अन्य चीज नहीं है। अमृत तो एक ज्ञानभावना है। मैं ज्ञान मात्र हूँ, ऐसी बराबर भावना करके अपने आपको मात्र ज्ञानस्वरूप ही अनुभवना इस ही का नाम है अमृतका पीना है, जो मरे नहीं वह है अमृत, अ और मृत, इसी को मिलाकर अमृत बना है। जो मर जाय उसका तो नाम मृत है और जो न मरे वह अमृत है। मेरे आत्माका जो सहज ज्ञानस्वरूप है वह ज्ञानस्रूप कभी भी नहीं मरता है। वह अनादि अनन्त सदा एक स्वभाव रूप रहता है, ऐसा अविनाशी एक स्वभावरूप ज्ञानतत्त्व का अनुभव करना यही वास्तवमें अमृतका पान करना है। इस अमृत तत्त्वका पान इस ग्रन्थमे कराया जायगा। एक निज शुद्ध ज्ञानस्वरूपकी भावनाका उपदेश होगा। अत. ऐसा अपूर्व लाभ देने वाले इस जिनेन्द्र उपदेशको मन, वचन, काय शुद्ध करके ध्यान पूर्वक सुनो ऐसा आचार्यदेव इस द्वितीय गाथामे कह रहे हैं।

समवाओ पचण्ह समउत्ति जिणुत्तमेहिं पण्णत्त।
सो चेव हवदि लोओ तत्तो अमिओ अलोओ ख॥३॥

शान्ति और अशान्तिका साधन—ससारके प्रत्येक जीव शान्ति चाहते हैं। शान्तिका जो सत्य उपाय है उस ही का नाम धर्म है। शान्तिका सत्य उपाय क्या हो सकता है इस सम्बधमे इस तरह विचार करो कि आखिर अशान्ति क्यों है। किन कारणो से हमे अशान्ति है? उन कारणोको न होने देना यही तो है शान्ति का उपाय और यही है धर्म जीवोको अशान्ति जो बात जैसी है उसको वैसा न मानकर उल्टा माननेके कारण है। अशान्तिका उपाय मिथ्याज्ञान है। पदार्थ मेरा नहीं है उसे मानें कि यह मेरा है तो वह तो मेरा रहनेका है नहीं क्योंकि मेरा है ही नहीं। भिन्न द्रव्य है, स्वरूप न्यारा है, यहा हम मान बैठे हैं कि मेरा है, तो जब उसका विपरीत परिणमन हुआ तो हम दु.खी होगे ही। दूसरी बात यह मन, यह उपयोग किसी पर पदार्थमें जाय तो इतने ही मात्रसे दु ख होने लगता है। पर पदार्थो में अपना उपयोग गया इसही मे दु ख हो गया, वे चाहे अपने अनुकूल भी रहे पर उस उपयोगका जाना दु खका कारण है। हमे ऐसा साधन मिले, ऐसी बुद्धि जगे कि पदार्थ जैसे हैं वैसे ही हमारे ज्ञानमें रहे, बस यही धर्म है, इसका विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थमे किया गया है।

वस्तु स्वातन्त्र्य—ससारमे जितने भी पदार्थ हैं जो भी सत् है वे अपने ही स्वरूपसे सत् है, किसी दूसरे पदार्थका गुण शक्ति परिणाम उधार लेकर कुछ सत् नहीं होता, जो भी है वह अपने ही कारण अपने ही स्वरूपसे अपने ही आपमें परिपूर्ण रूपसे है, यही है वस्तुका स्वरूप। मैं आत्मा हूँ तो अपनेही अस्तित्व के कारण अपने ही स्वरूपसे अपने आप हूँ। किसी दूसरे पदार्थकी आशा और दया पर मेरा अस्तित्व नहीं हैं, ऐसे ही हम आप सब जितने भी जीव

हैं इनका सत्त्व अपने आपके कारण अपने आपमे परिपूर्ण रूपसे है।

पुद्गलोकी स्वतत्रता—ऐसे ही जगतमें दिखने वाले ये भौतिक पदार्थ जिनका नाम पुद्गल है ने सब स्वय सत् है पुद्गल शब्दका अर्थ है जो मिलकरके पूर जाय, बडा हो जाय और विघुड करके गल जाय, खण्ड-खण्ड हो जाय छिन्न भिन्न हो जाय उसे पुद्गल कहते हं। ये दृश्यमान सभी पदार्थ मिलकर बडे हो जाते हैं बिछुडकर खण्डित हो जाते हैं। ये सब पुद्गल है इनमें वास्तविक चीज एक एक अणु है जो कभी मिटता नही है। ये सकल सयोग समूह स्कन्ध तो मिट जाते हैं ये पदार्थ नही हं। इनमे रहने वाले जो एक एक अविभागी अणु हैं वे पदाथ हैं, वे प्रत्येक परमाणु अपनेही स्वरूपसे अपने आपमें परिपूण रूपसे हैं ऐसा पदाथ का स्वतन्त्र स्वरूप ह, इसी कारण किसी पदार्थका कोई पदार्थ मालिक नही। कोई भी जीव किसी भी पदार्थका कर्ता एव भोक्ता नही है। प्रत्येक पदाथ अपने स्वरूपमे अपना ही काम करते हैं।

परके भोक्तृत्वका अभव—जिस समय हम आप भोजन करते हैं भोजनके समयमें जो भोजनके रसका ज्ञान हुआ उस रसमें है हमारा अनुराग सो हम उस रसके ज्ञानके कारण खुश हो रहे हैं। वहाँ हमने अपने ज्ञानको भोगा, भोंजनको नही भोगा है, क्योंकि मैं आत्मा अमूत हूं। आकाश की तरह, उसमे भोजन चिपकता भी नहींहं। यह तो उस समय केवल ज्ञानका करने वाला रहता हे। यह मीठा हैं यह खट्टा है ऐसी यह केवल कल्पना बनाता है, साथ ही लगा है इसके अनुराग तो उस रागसे उस कल्पनाका सुख भोगता हैं चीज का सुख नही भोगता है, प्रत्येक जीन केवल अपने भाव को करते हैं और अपने भावको भोगते हैं। कितना वैभव हो यह जीव वैभव को नही भोगता, किन्तु पूर्वकृत पुण्यका उदय है यह वैभव समागम निकट आया है इस स्थिति मे वैभवके सम्बन्ध मे जो यह जीव कल्पना बनाता है, उचित है, बहुत है, कम है, मेरा है, उन कल्पनावों का कर्ता यह जीव है, बाह्यपदार्थो का कर्ता नहीं है। इन ही कल्पनावो को भोगने वाला यह जीव हैं, धन वैभव सम्पादका भोगने वाला यह जीव नही है।

स्वातन्त्र्यविज्ञानसे मोहविनाश—प्रत्येक पदाथ जिस रूपभी परिणमता है वह अपने स्वरूपमें परिणमता है, ऐसी स्वतन्त्रताका जब ज्ञान होता है तो वहाँ मोह नही रहता है। मेरा दुनियामें क्या है ? यह देह तक भी मेरा नहीं है। ये राग और द्वेष जो मुझमें उत्पन्न होते हैं ये भी मेरे नही हैं, होते हैं और मिट जाते हैं। मैं तो शाश्वत रहने वाला सत् पदार्थ हू। यो जब पदार्थका भली भाँति ज्ञान होता है तो शान्ति मिल जाती है।

शान्तिमुद्रा—हमारे आदर्श प्रभु हैं। इन प्रभुकी मूर्ति शान्तिप्रधान मुद्रामे होना चाहिए। प्रभु मूर्तिके समक्ष उनकी शान्तमुद्रा निरखें। यद्यपि मूर्ति पाषाण की है, धातु की है पर हम केवल मूर्तिपर ही दृष्टि नहीं देते हैं। मूर्तिको नही पूजते हैं किन्तु जिनकी मूर्ति स्थापित की हैं उनका ख्याल करके उनहीको पूजते हैं। शान्तमुद्रा निरखने से मनमे यह भाव जागृत होता है, ओह ! शान्ति है तो इस अवस्थामें है। जब तक पर पदार्थकी कल्पनाएं चलती रहेंगी, व्यग्रता बनी रहेगी। ये प्रभु पूर्वमें सम्राट थे, तीर्थंकर थे, चक्रवर्ती थे, हजार हजार इन्द्र और देवेन्द्र राजा महाराजा सभी उनकी सेवामें रहा करते थे किन्तु वहां उन्होने वास्तविक सुख नहीं पाया है इस कारण वे सबसुखसमृद्धि त्यागकर एक आकिञ्चन्य केवल ज्ञानस्वरूपमे उपयोग लगाने लगे, शान्त अपने आपमे मग्न हुए। शान्तिका मार्ग तो यही है। इतनी बात जब अपने मनमें उत्पन्न होती है तो आप अनुभव करने लगेंगे कि शान्ति मिलती है अथवा नहीं।

आत्मसयमनमे आनन्द—बाह्य पदार्थोंमें हमारे तृष्णा जगे, रागद्वेष जगे तो वह अकल्याणके ही लिए है। उससे सुख नही मिल सकता है हम किसी भी परिस्थितमें हो कही बैठे हो, लेटे हो, जिस क्षण भी आखे बन्द करके समस्त इन्द्रियोका व्यापार रोककर बाह्य समस्त पदार्थोंसे अपने को भिन्न निरखकर जब ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभवेंगे उस समय जो आनन्द मिलेगा उस ही आनन्दमें यह सामर्थ्य है कि भव-भवके पापकर्मों को दूर कर देंगे। इसका उत्थान इसके परिणामोंके आधीन है। किसी दूसरे से मिन्नत करके, प्रार्थना करके चाहें कि कोई दूसरा मेरा उत्थान

करदे तो वह नहीं कर सकता है प्रभुका तो यह उपदेश है कि हे भव्य जीवो यदि तुम शान्ति चाहते हो तो मेरा भी ख्याल छोड़ो मानो प्रभुकी ओर से यह सन्देश है, यद्यपि पहली अवस्थामें मेरा ध्यान मेरी शक्ति करोगे तो तुम्हें सहारा मिलेगा लेकिन यह भी एक रागकी परिणति है ध्यानभी करता रहेगा कोई भक्त तो वह उत्कृष्ट समाधिमें नहीं आसकता क्योंकि उसकी दृष्टिमें कैसे आ गया मैं पूज रहा हूँ भगवान को इस भक्तका उपयोग अन्य जगह बना है इस कारण उत्कृष्ट समाधि उसे नहीं मिलती है प्रभुका तो यह उपदेश है कि उत्कृष्ट शान्ति यदि चाहते हो तो मेरा भी आलम्बन छोड दो और एक शुद्ध ब्रह्मस्वरूप का आलम्बन ग्रहण करो।

स्वयमें विधान - जब पदार्थका स्वरूप विदित होता है तो शान्तिका मार्ग मिलता है। इसी कारण जैन दर्शनमे अध्यात्मकी प्रधानता है। जो पदार्थ जिस तरह का है उस तरह से वर्णन करने की इसमें प्रधानता है। जैन दर्शन कोई नियम अलगसे बनाकर या कोई बात अलगसे बनाकर या कोई बात अलगसे गढकर भक्तोंसे पालन नहीं कराता है किन्तु भक्तको स्पष्ट बताता है कि तुम देख लो, सोच लो, जान लो कि पदार्थ किस स्वरूपमे है। तुम क्या हो और किस चक्रमें पडे हो, कौन से बन्धन लगे हुए हैं। वे बन्धन कैसे लगे है, उनसे छूटनेका उपाय क्या है ? सब कुछ विचार लो, इन सबके चिन्तवनसे तुम्हे मदद मिलेगी। करता है अपनेमे अपना ही काम अपनी शान्तिके लिए।

सत् सेवा – लोग कहा करते हैं कि भगवान घट-घटमे विराजमान है। वह घट-घट क्या है ? हम आप सब इन सबमे जो विराजमान भगवान है, प्रभु है, ऐसी प्रभुता हम आप सबमें मोजूद है। प्रभुके गुणोका स्मरण करके और प्रभुके पथ पर जो चल रहे है, ऐसे साधुसतोंकी सेवा करके हम अपने आपमे अपने अतस्तत्त्वको देखें, इसकी उपासनामे रहें, यही है शान्ति पानेका उपाय। यह शिक्षा हमें देव, शास्त्र, गुरु की सेवासे मिल जाती है। ऐसी प्रभुता पानेका जो उद्यम करता है रागद्वेषको तजकर समता भावसे जो रहा करता है जिसका ज्ञान ध्यान और तपस्या ही प्रयोजन है, सदा इस शुद्ध ज्ञानानन्द स्वभाव पर ही दृष्टि दिया करता है, ऐसे साधु सतोकी हर प्रकारसे सेवा करके एक उत्साह जगता है कि हम भी विकल्प त्यागकर निर्विकल्प ज्ञानानन्दघन परम अमृत रसका पान करें तो सुखी होंगे। यदि वैभव सम्पदा मे ही निरन्तर ध्यान बनाये रहे तो उनकी बुद्धि व्यग्र हो जायगी, और कुछ क्षण सारे परिग्रहका बोझ उतारकर अपने ज्ञानसे अपने आपमे से इन सब वैभवोका परिग्रहोका बोझ उतार दें और केवल ज्ञान ज्योतिस्वरूप अपनेको निहारलें तो उससे कल्याण होगा समझिये।

बहुप्रदेशीमे अस्तिकायपना—इस ग्रन्थका नाम है पञ्चास्तिकाय, ५ अस्तिकाय हैं। अस्तिकायका अर्थ है बहु प्रदेशी पदार्थ। जैसे जीव, यह अगुलीसे लेकर सिर तक बड़े विशाल क्षेत्रमें फैला हुआ। यह एकप्रदेशी नही है, एक-प्रदेश नाम है सबसे छोटे आकाशके हिस्सेका, जिसका दूसरा हिस्सा न हो सके। जैसे एक इच है तो अभी १० हिस्से उसके और हो सकते हैं एक सूत भरके १० हिस्से और हो सकते हैं। यों हिस्से करके जो अविभागी हिस्सा रह जाय, जिसका दूसरा हिस्सा न हो सके उसे कहते है एक प्रदेश। जो बहुप्रदेशी हो उसे अस्तिकाय कहते है। ये पदार्थ, ये भौतिक सब चीजें ये बहु प्रदेशी हैं, ये अस्तिकायें हैं।

धर्मास्तिकाय—जीव और पुद्गल ये सब गमन करते हैं तो इनके गमनमें सहायक जो एक सूक्ष्मस्कंध है धर्मद्रव्यनामका वह सहायक होता है। वह समस्त लोकमें फैला हुआ है। यदि ऐसा ईथरतत्त्व न हो, धर्मद्रव्य न हो तो हम आप चल फिर न सकें। हम आप अपनी ही शक्तिसे चलते हैं पर जैसे मछली में चलने की क्रिया बिना जलके नही आ सकती ऐसे ही बिना धर्मद्रव्यके हम आपमें चलने की क्रिया नहीं आ सकती। मछलीके चलने में जल प्रेरणा नही करता, पर जलके निमित्त से मछलीमें चलने की शक्ति आ जाती है। जल मछलीको चलानेमे सहायक है। स्पष्ट दीखता है कि जलके बिना मछली नहीं चलती है ऐसे ही लोकमे हम आप जीव और पुद्गल अजीव नाना क्रियाए कर रहे है। ये सब अपने आपके परिणमनसे अपनी शक्तिसे क्रियाए करते है, ठीक है, फिर भी यदि धर्मद्रव्य न हो तो हम आप चल नहीं सकते है। हमारे ऋषि-संतोंने अपने ज्ञानसे यह सब कुछ बताया है और इस सम्बन्धमे वैज्ञानिक लोग भी ऐसी

सम्भावना करते हैं।

अधर्मास्तिकायादिक.— इस ही तरह चलते हुए जीव पुद्गल जब ठहरना चाहते हैं तो उनका निमित्त सहायक अधर्मद्रव्य है, यह भी लोकाकाश भरमे व्यापक है, असख्यात प्रदेशी है, यह भी अस्तिकाय है। आकाश यह भी अस्तिकाय है, बहुप्रदेशी है, असीम है, एक काल नामका द्रव्य जो एक-एक प्रदेश पर एक-एक ठहरा हुआ है, वह एक-एक प्रदेश ही है, वह अस्तिकाय नही है यों ६ जातिके पदार्थ इस दुनिया के अन्दर हैं।

छह द्रव्य जातियां—जीव जाति वे पदार्थ इनमें जितने भी जानने देखने की शक्ति रखने वाले पदार्थ हैं वे सब जीव जाति मे आ जाते हैं। पुद्गल जाति के पदार्थ जितने भी जो पदार्थ रूप रस, गध, स्पर्श वाले हैं, चाहे वे हमें मालूम पडे या नही, पर जिनमे रूप, रस, गध, स्पर्श हैं वे सब पुद्गल जाति के पदार्थ हैं। काम मे ये दो ही पदार्थ आ रहे हैं अधिक-जीव और पुद्गल। फिर धर्मद्रव्यकी जाति का पदार्थ एक ही है, वही जाति है, वही व्यक्ति है, धर्मद्रव्य नामका पदार्थ भी एक ही है और काल नामक द्रव्य एक-एक परिपूर्ण यो असख्यात है। आकाश असीम है। ये समस्त पदार्थ अपने आप ही स्वय अपना परिणमन करते हैं। पदार्थ का ऐसा स्वरूप है।

मूल श्रद्धानका परिणम—भैया ! वस्तु की स्वतन्त्रता जब ज्ञात होती है तो यह जीव मध्यस्थ हो जाता है। किस में राग करना। किसी पदार्थ में क्यो राग करना। ये पदाथ मुझ से भिन्न हैं, इनका मुझ से सम्बन्ध नहीं है। मेरे परिणमन करने से ये परिणमते नही है। मै इनसे न्यारा हूँ, ऐसा अपने आपकी ओर ही यह रहता है। रागद्वेष नहीं करता। प्रयोजनवश चू कि पर गृहस्थीमे कमाना भी पडता है रागद्वेष भी आता है तिस पर भी धन्य है वह ज्ञानी गृहस्थ जो अपने अन्तरगमें यह समझ रहा है कि ये सब पदार्थ असार और भिन्न हैं, किन्हीं पदार्थोंपर मेरा स्वामित्व नहीं है। रक्षा करते हुए भी, सचय करते हुए भी उनको अपनेसे भिन्न मानना यह यह कितना स्वच्छ ज्ञान है और इस ज्ञानके प्रतापसे यह जीव सुखी रहता है।

त्रिविधसमयका समन्वय—कल गाथामे समयका अर्थ टाइम नहीं किन्तु समय मायने समवाय समूह। इस ग्रन्थमें शब्द समवाय के द्वारा इस ज्ञानस्वरूप ज्ञानसमवायकी प्रसिद्धिके लिए पदार्थसमूह का वर्णन किया जायगा। हम किन्ही भी पदार्थोंको जानेंगे तो उसका माध्यम शब्द है। उन शब्दोके द्वारा हम समझाते हैं, समझते हैं और अपने अन्तरगमें इन शब्दोंका अन्तर्जल्प भी करते हैं और मिथ्यादर्शनका विनाश होने पर हमें पदार्थका सही सही बोध हो जाता है इसका नाम है ज्ञान समय और जिन समग्र वस्तुवोका बोध किया जाता है ये सब हैं अर्थ समय। यों पदार्थका स्वरूप जानना सही जानना अत्यन्त आवश्यक है। कोई पुरुष अपने धर्म मे हुए किन्ही पुराण पुरुषोंका सम्बन्ध भी न रखे, उनका ध्यान उपासना भी न रक्खे और यहां जो कुछ वस्तु है उस वस्तुके सही स्वरूपके जाननेमे रत रहे तो वह भी धर्मपाल रहा है। रूढ़िवाद या दादावाक्य प्रमाण का स्थान नही है। जो यथार्थ बात हो उसे जान लो, इस ही का नाम धर्म है।

आत्मपदार्थ—मैं क्या हू ? कोई एक ज्ञान वाला पदार्थ हू। यह मैं कहां से आया हूँ ? लोग तो यों जानते हैं कि यह कुछ दिनों को ५० वर्ष से ६० वर्ष से जिसकी जितनी आयु है यह आया है। अरे इतने वर्षो से उस मनुष्य-भव में आये हैं, किन्तु इससे पहिले भी मैं कुछ सत् था, अचानक कहीं से किसी दिन आ गया होऊ यह बात नहीं है। कुम्हार घडा बनाता है तो उस घडे का उपादान जा मिट्टी है वह तो पहिले से थी। कोई भी चीज बन उसका उपादान भूत कुछ न कुछ किसी भी रूपमें पहिले से होता ही है। जो एकदम असत् है, है ही नही उसका सत् क्या बने। जो नही है इसमें से किसी जाति का सत् बने यह व्यवस्था ही नही है।

समवाय मे असमवाय—समस्त पदार्थ लोक और अलोक दो भागों में विभक्त है। लोक में तो सब कुछ आ गया और अलोक में केवल आकाश ही आकाश है। यों इतना ऊपर लोकाकाश के बीच यह लोक है। इस लोक के बीच मध्यलोक है, जिसमे हम आप बस रहे हैं। यह सब पदार्थों का झमेला चल रहा है जिसपर भी कोई पदार्थ किसी

दूसरे पदार्थरूप बनकर नहीं रहता है। ऐसी स्वतन्त्रता का ज्ञान हो जाय इसी के मायने है धर्म पालन।

विवेक और विवेकका लाभ—धर्मपालन से फल क्या मिलता है ? मैं सब पदार्थों से जुदा अपने आपकी श्रद्धा कर रहा हू और मैं ज्ञानसे रचा गया हूँ, आनन्द से रचा गया हूँ सो ज्ञान और आनन्द ही मात्र अपने को जान रहा हूँ, और ऐसा सबको जानता हुआ निजमे रम जाऊ मग्न हो जाऊ, अन्य किसी पदार्थ में मैं न मग्न होऊं तो यही इसका सच्चा आचरण है। ऐसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र के प्रसाद से यह जीव सकटो से छूटता है, और अपने शुद्ध आनन्दको भोगता रहता है। सभी जीव शान्ति चाहते हैं। शान्ति होगी भेदविज्ञान से। मैं सबसे न्यारा हू, अकिञ्चन हूँ, मेरा कहीं कुछ नही है। ज्ञानानन्द स्वरूपमात्र अपने आपको जानें तो शान्ति मिलेगी। किसी पर पदार्थ की पकड करे तो उसे शान्ति नहीं मिल सकती है। इस शुद्ध लाभका प्रयोजन भगवानकी मुद्रासे मिल जाता है। हम बडी शुद्ध निगाह से प्रभूके दर्शन करें और अपने आप में यह भाव भरें कि हे प्रभू ! मेरा कब वह समय आये कि सर्व विकल्प कल्पना जालो से छूटकर केवल आत्मारामभे ही मग्न होऊँ।

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आयास।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइआ अणुमहता ॥४॥

अस्तिकायत्व—इस गाथा में ५ अस्तिकायो की जाति के नाम बताये गये हैं, जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश। ये ५ अस्तिकाय हैं। ये अपने-अपने अस्तित्व में नियत है और अपने अस्तित्व से अभिन्न है, अर्थात् उन की सत्ता सदा उनसे जुदी नही है। कहने में आता है कि जीवमें अस्तित्व है पर इस तरह नही है जैसे कि मटके में दही है, मटका न्यारी चीज है, दही न्यारी चीज है, इस तरह न जानना कि जीव एक अलग बात है और उसमें अस्तित्व भरा है। जीव है इस ही विशेषताका नाम जीवका अस्तित्व है, जैसे इस पुस्तकमे अस्तित्व क्या है ? क्या यह पुस्तकसे अलग है ? तद्रूप है। तो सभी पदार्थ अपनी सत्तामें तन्मय है, इसमे जो अनेक प्रदेश हुये उन्हें अस्तिकाय कहते हैं, कालद्रव्य सिर्फ एक प्रदेशी है, लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य ठहरा है। वह एकप्रदेशी है और परमाणु भी एक प्रदेशी है लेकिन उसे अस्तिकायमे गिना है। कालद्रव्य भी एक प्रदेशी है, उसे अस्तिकायमें नही गिना। परमाणु एक प्रदेशी है उसे अस्तिकाय उपचार से गिना है, वास्तवमे नहीं है, याने अनेक कालद्रव्य मिलकर एक स्कन्ध बन जायें यह नहीं हो सकता और अनेक परमाणु मिलकर एक स्कन्ध बन जायें यह हो जाता है तो स्कधो की दृष्टि से पुद्गल को अस्तिकाय कह दिया।

विभावव्यञ्जनपर्यायमे पृथक पृथक अस्तिकायपना—जीव द्रव्य अर्थात् जो कुछ भी चैतन्यस्वरूप है वह जीव अस्तिकाय है। कैसा यह एक पिंडरूप विलक्षण पदार्थ है कि जो बिखरता नही है, चैतन्यस्वरूप है एक अखण्ड रहता है, चिदात्मक है, जिसमे ज्ञानका परिणमन चलता हैं और रागादिक भावोका भी परिणमन चलता है। कभी रागादिक भाव भी होते हैं जिनमें ये सब भावात्मक विकास विकार हो रहे हैं। वही जीव है जो जो कुछ यह दृश्यमान है और जो दृश्यमान हो सकता है यह सब पुद्गल अस्तिकाय है जीवको जीवसे कोई हानि नही होती। इस जीव मे पुद्गल मिल जाय, जीवके विकार मे पुद्गल तत्त्व आये तो उससे जीवकी हानि है। जीव-जीव कई मिलकर एक पिंडमें नहीं आते पर जीव और पुद्गल ये मिलकर कभी एक पिंड मे आ जाते हैं। यद्यपि परमार्थ दृष्टि से जीवमें पुद्गल नही पुद्गलमें जीव नहीं, पर बन्धन दिख रहा है कि जीव शरीर कर्म ये तीनो पर्यायरूपमें एक बन्धन रूप हैं। पर एक जीव दूसरे जीवसे मिलकर बन्धन रूप हो जाय यह नही होता है।

जीवसभ्रम—अब जीवका भ्रम देखिये। जीव कभी दूसरे जीवसे एक हो नही सकता व्यवहार दृष्टि से भी। लेकिन इस जीवको जीवमें मोह है। पुद्गलसे भी बढ़कर जीवका जीवमे मोह है, स्त्री पुत्रादिकमे मोह है, तो घर वैभव

सभी मे मोह होता रहता है, तो जैसे जीवसे कभी कुछ भी सम्बन्ध हो ही नहीं सकता, अत्यन्त न्यारा रहता है उसमें कितना व्यामोह है, जीवको अन्य जीवमें व्यामोह होने का कारण है कि इस जीवको अपने शुद्ध स्वरूप का परिचय नहीं है। यह अपने को भी यथार्थ जीवस्वरूपमे मानता नहीं है, इसे शुद्ध अपने आपमें भ्रम है। यह शरीररूप अपने को मानता है या जो विचार विकल्प तर्क वितर्क उत्पन्न होते हैं उनरूप अपने को मानता है। कभी कषायरूप अपने को मानता है। जब अपने स्वरूप का परिचय ही नहीं है तो उसे अपने में संतोष कैसे होगा जब संतोष इसे हो नहीं सका और संतोष इसे चाहिये है तो अब यह बाहरी पदार्थों में संतोष ढूंढता है। बस उन बाहरी पदार्थों में हमारे सरीखे ये जीव हैं, जिन के वचन सुनकर प्रीति बढ़ाते हैं, और ये पुद्गल द्रव्य चूंकि ये हमारे इन्द्रियज्ञानमें आश्रय हैं, विषय साधनों के आश्रय है अतएव इनमे मोह होता है अपने आपका परिचय न होना ही पर पदार्थों मे व्यामोह होनेका कारण है। हम आपका निकट सम्बन्ध व्यावहारिक सम्बन्ध जीव और पुद्गलसे है। धर्मद्रव्य की कौन खबर रखता है।

निष्क्रिय और सक्रिय द्रव्य व क्रियाका निमित्त —न धर्म अधर्म, आकाश और काल ये विपरीत हैं जीव और पुद्गलसे। जो क्रियाशक्ति हो ये दोनों द्रव्य है जीवऔर पुद्गल अन्यद्रव्य न चलते है न गतिपूर्वक ठहरते है। जीव में क्रिया है और पुद्गलमे क्रिया है। जीव और पुद्गल की क्रिया मे जो उदासीन निमित्त है वह धर्मद्रव्य है। धर्मद्रव्य लोकाकाश मे स्थिरतासे व्याप्त है। जैसे पानी मछली को चलानेमें सहायक है, पर पानी चलकर मछली को चलानेमें सहायक हो सो नहीं। इस प्रकार धर्मद्रव्य पुद्गलके गमनमें सहायक है, पर यह खुद चलकर जीवको चलाता नहीं है। धर्मद्रव्य अमूर्तिक है, खुद जानता नहीं है, ऐसा जीव नहीं है, इसमें रूप, रस गंध स्पर्श नहीं है इस कारण पुद्गल भी नहीं है। पुद्गल होता है रूप, रस, गंध, स्पर्श वाला। यह धर्मद्रव्य अमूर्तिक है और अपने स्वरूपमें निरन्तर परिणमता रहता है। यह किस तरह परिणमता है यह बताने के लिए कोई शब्द नहीं है। आगममें बताया है कि षड्गुणवृद्धिहानि रूपसे परिणमता है। एक यह वैज्ञानिक तथ्य है कि कुछ भी चीज किसी दूसरे रूप बदलती उस बदल के समय बहुत उथल पुथल होती है। अनेक बार वृद्धि और हानि होती है। एक शकल से दूसरी शकल तक पहुँचने में अनेक वृद्धि हानियाँ हो जाती हैं। वे कभी तो समझमे आती है कभी नहीं आती है। सो यों धर्मद्रव्य निरन्तर प्रतिसमय परिणमता रहता है और उसका यह परिणमन अपने अगुरुलघुत्व वृद्धि हानिरूप है। केवल अन्दाजसे यह जान लो कि कोई भी चीज चाहे समान रूप परिणमे और चाहे असमान रूप परिणमे पर प्रत्येक परिणमन के लिये यह षड्गुण हानि वृद्धि होती है, एक बहुत बड़ी उथल-पुथल हो जाती है जो हम आपको विदित नहीं हो पाती।

अधर्मास्तिकाय—अधर्मद्रव्य चलते हुए जीव पुद्गलके ठहरने मे सहायक है। अधर्मद्रव्य का स्वभाव दूसरा है, धर्मद्रव्यका स्वभाव दूसरा है, पर जैसे धर्मद्रव्य अमूर्तिक है ऐसे ही अधर्मद्रव्य अमूर्तिक है, जैसे धर्मद्रव्य लोकाकाश में व्याप्त है ऐसे ही अधर्मद्रव्य लोकाकाश मे व्याप्त है। जैसे धर्मद्रव्यका षड्गुण हानि वृद्धिरूप परिणमन है ऐसे ही अधर्मद्रव्यका षड्गुण हानि वृद्धि रूप परिणमन है। सारी बात एक समान होकर भी निमित्त भेदसे भेद है। धर्मद्रव्य तो जीव और पुद्गल के गमनमें सहकारी है और अधर्मद्रव्य जीव और पुद्गलको ठहरान में सहकारी है। ये पदार्थ ऐसे नहीं हैं कि इन्हे लोग जल्दी जान जायें इन्हे तो साधु संतो ने अपने ज्ञान से समझकर बताया है।

आकाशास्तिकाय—५वां अस्तिकाय है आकाश। आकाश अवस्तुका नाम नहीं नथिंग नहीं, किन्तु वह सत्तात्मक है। उसमें परिणमन है। उसका प्रदेश है। यों जल्दी दिखने में लगता है कि आकाश तो इस पोलका नाम है जहाँ कुछ नहीं है, उसी का नाम आकाश है, पर आकाश कुछ नहीं का नाम नहीं है। आकाश अमूर्तिक है, अनन्त प्रदेशी है। उसमें भी निरन्तर परिणमन होता रहता है, वह सद्भूत चीज है। यह आकाश एक है, जितने आकाश के क्षेत्रमें जीव पुद्गल आदि सभी द्रव्य रहते हैं उसका निमित्त है लोकाकाश। और जहां सभी द्रव्य नहीं हैं केवल वही आकाश है उसका नाम है अलोकाकाश।

लोकाकाश का प्रमाण—लोकाकाश का प्रमाण ३४३ घनराजू है। जहाँ हम बसते हैं यह जम्बूद्वीप है। यह एक लाख योजन के विस्तार का है। २ हजार कोशका एक योजन होता है, उससे दूना एक तरफ समुद्र है। समुद्र इस द्वीपको घेरे हुये है। सभी द्वीप समुद्र अपने-अपने पूर्ववर्ती द्वीप समुद्रको घेरे हुए है। उससे दूना द्वीप, उनसे दूना समुद्र, उससे दूना द्वीप उससे दूना समुद्र यों बनते जाते हैं और ऐसे द्वीप समुद्र है अनगिनत। गिनती की जहाँ तक हद है अनुमान रुपसे भी उससे भी ज्यादा। अब कितना विस्तार हो गया। इतना सारा विस्तार एक राजू अभी नहीं है एक राजू से थोड़ा कम है, ऐसा एक राजू तो एक ओर रहा एक ही राजू मोटा हुआ, एक ही राजू चौड़ा हुआ, एक राजू लम्बा हुआ इतने का नाम है एक घन राजू। ऐसे-ऐसे ३४३ घन राजू प्रमाण लोक हैं और इससे बड़ा लोकाकाश है, जब कोई ठोस चीज है तो उस ठोस चीजका कहीं न कहीं अन्त जरूर है। ठोस चीज असीम नहीं हो सकती। जब यह पृथ्वी ठोस है तो इसका कहीं अन्त जरूर है। यह सारा विश्व समूह ठोस है, बीचमें पोल भी है। यह ठोस चीज पड़ी हुई है तो इसका कहीं न कहीं अन्त अवश्य है। जिसके आगे कोई ठोस न मिले उतना है लोकाकाश और उसके बाद है अलोकाकाश इस लोकमें ठीक बीचो बीच एक त्रसनाली है। यह एक राजू प्रमाण मोटी, १४ राजू लम्बी है, इसके आसपास बाकी ३४३ मे से १४ राजू घटाने पर ३२९ घन राजू जो बचता है क्षेत्र उसमें केवल स्थावर जीव है, त्रस जीव नहीं, उस त्रसनाली में जो ठीक मध्य क्षेत्र है असंख्यात द्वीप समुद्र वाला उसमे केवल ढाई द्वीपमें मनुष्य है, उसके बाहर तिर्यञ्च है। ऐसी यह विराटरचना लोककी प्राकृतिक है।

है, अरे हरे रूप ही आम है, ऐसे ही जीवमें ज्ञान अलग नही हैं। जीव ज्ञानमय ही है, जीवकी सत्ता अलग नही है। सत्तामय ही जीव है। एक कहने का ढग है। द्रव्यार्थिक दृष्टि तो अभिन्नतासे प्रतिपादन होता है और पर्यायार्थिक दृष्टि भिन्नतासे प्रतिपादित होती है। जीवमे ज्ञान है यह पर्यायका कथन है और जीव ज्ञानमय है यह द्रव्यदृष्टिगत कथन है। जीव सत्तामय है यह द्रव्यदृष्टिका कथन है जीवमें अस्तित्व है यह पर्यायदृष्टिका कथन है पर्याय नाम भेदका है, द्रव्य नाम अभेदका है। जितने उपदेश होते हैं वे सब दोनों नयोंके आधीन होते हैं। कोई द्रव्यदृष्टिका ही हठ करले अपने वणन में तो वह जैन पद्धतिका उपदेश नही है। पर्यायदृष्टिसे अस्तित्व गुण कथञ्चित भिन्न निरखे तो द्रव्यदृष्टिसे तो अस्तित्व न्यारा नही है, किन्तु यह पदार्थ स्वय ही सत् होता हुआ अस्तित्व वाला है। सत्ता से सब अभिन्न है।

कायत्वका विवरण—ये जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश अस्तिकाय हैं। इस अशमे अस्तित्वका तो वर्णन किया और कायका अर्थ यहाँ बहुप्रदेशी है। यह अणुवोसे महान है। सक्षिप्त अशका समुदाय है। जैसे किसीका बुखार थर्मामीटर से मापा १०१ डिग्री बुखार है तो उसका अर्थ है कि बुखार मे एक-एक अश माना जाय तो ऐसे-ऐसे १०१ अश बराबर-बराबर हैं, मगर किसीका बुखार एक अश भी बराबर रहा, कभी ५० अश भी रहा, ६० अश भी रहा फिर भी गरमी का माप है। जिसके १०१ डिग्री बुखार है उसमें एक अश कुछ माप होता होगा। एक और एक मिलकर २ अश हो गये। इस प्रकार १०१ अश ऐसी ही जीवमें असख्यात प्रदेश हैं। कभी यह जीव एक दो आदिक प्रदेश रूप नही रह सकता। सदा असख्यात प्रदेशी रहेगा। वहाँ प्रदेश का अर्थ है आकाश के एक छोटे हिस्से बराबर जिसमे केवल एक परमाणु रह सके, ऐसे-ऐसे असख्यात प्रदेश हैं, मानो इस समय पैरो से लेकर सिर तक इतने लम्बे चौड़े मे हमारा आत्म है। तो यह जीव कितना लम्बा चौड़ा है, इसको कोई यह कहेगा कि यह १० फुटका है नाप के हिसाब से तो उसमें एक फिट कुछ चीज है। एक फिट मे एक इच कोई माप है। एक इच में एक सूत कोई माप है और एक सूतमें भी अनगिनते माप हो माप हो सकते हैं। उनमे सबसे छोटा जो माप हो, जिसका कोई दूसरा भाग न हो सके उसका नाम एक प्रदेश है ऐसे-ऐसे अनगिनते प्रदेशों वाला यह जीव है। यही सब आगे बतावेंगे। यों प्रदेश समूह रूप होने का नाम है अस्तिकाय। ये ५ द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं।

अणुमहत्त्व—अस्तिकाय का दूसरा नाम अणुमहान् है। अणुका अर्थ यहाँ प्रदेश लिया है। चाहे वह मूर्त पदार्थ हो चाहे अमूर्त पदाथ हो उनका जो निर्विभाग अश है वह कहलाता है अणु। अणु शब्द का अर्थ निर्विभाग अश है शब्दकी दृष्टि में। ये सब पदार्थ लोकाकाश में ह। धर्मद्रव्य में असख्यात अणु हैं, अधर्मद्रव्य में असख्यात और आकाश में अनन्त, सबमें अणु कह सकते हैं, पर रुढ़ि हो जाने से कुछ अचक ही मालुम होती है। तो अणुका अर्थ है प्रदेश। उन प्रदेशों में जो महान् है अर्थात् प्रचयात्मक है उसे अणुमहान् कहते हैं। अणुमहान् का अर्थ है अस्तिकाय। जो अणुवो में महान् है ऐसा अर्थ करने पर दो अणु वाला स्कध नही आया। जो प्रदेश से महान् है वह अणुमहान् पर इसका अर्थ यों भी कर सकते कि जो दो अणुवो से महान् है, इसमे दो पुद्गल परमाणुवों का स्कध है वह अणुमहान् हुआ, अस्तिकाय हुआ। तीसरा अर्थ यों लगाया कि जो अणु हैं, और महान् हैं उन्हें अण महान् कहते हैं। जो निर्विभाग अशों से अशों का प्रचयात्मक है उसे अणुमहान कहते हैं। ऐसा अर्थ करने पर व्यक्ति और शक्ति दो चीजें आ गयी तो जो शुद्ध परमाण है पुद्गल का वह व्यक्ति रूपसे तो अणु है और शक्तिरूप से महान् है, क्योंकि उणु में ऐसी शक्ति है कि वह स्कध बन सकता है। यों जो जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश में ५ पदार्थ अस्तिकाय हैं, अणुमहान् हैं।

कालद्रव्यकी एकप्रदेशिता—इन ५ अस्तिकायो से छूट गया जो काल द्रव्य है वह अस्तिकाय नहीं है। यद्यपि वह अस्ति है ? है, वास्तवमें है, लेकिन कालद्रव्यमें प्रदेशप्रचय नहीं हैं न तो कालद्रव्य जीवादिक पदार्थोंके हैं न व्यक्तिरूप प्रदेश प्रचयात्मक है और न परमाणुकी तरह शक्तिरूपसे प्रदेश प्रचयात्मक है। कालद्रव्य न तो एक प्रदेशसे अधिक वाला है और न कभी भी कालद्रव्य मिलकर प्रचय रूप बन जायें ऐसा है। कालद्रव्यके स्वरूप को जाननेके लिए रत्नोंकी राशिका दृष्टान्त दिया है। जैसे रत्नोंकी राशि एक जगह घुल मिलकर पास पास पडी है, पर एक रत्न दूसरे

रत्नरूप नही हो पा रहा है ऐसे ही कालद्रव्य, लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक कालद्रव्य है। वे कभी भी मिल जायें पर पुद्गल स्कधकी तरह या जीवके विभाव व्यञ्जन पर्यायकी तरह एकमेक नही हो सकते है। इस ही कारण कालद्रव्य को अस्तिकायमें ग्रहण नही किया है। वह अस्ति तो है पर काय नही है। अब इन ५ अस्तिकायोंमें अस्ति शब्दका क्या अर्थ है और काय शब्दका क्या अर्थ है, इस विशेष कार्यको बतला रहे हैं।

जेसिं अत्थिसहाओ गुणेहिं सह पज्जयेहिं विविहेहिं।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्ण जेहिं तइलुक्क ॥५॥

पदार्थकी अविभागिता—जिन पदार्थोंका नाना गुणो और नाना पर्यायोंसे सहित अस्तित्व भाव है वे ५ अस्तिकाय होते हैं, जिनके द्वारा ये तीन लोक उत्पन्न होते हैं। अस्तिकायोमें नाना गुण और नाना पर्यायोमे साथ आत्म-भाव है, अभिन्नता है पदार्थ तो प्रत्येक एक पूण स्वतत्र है और वह अविभागी है, एक का कभी विभाग नहीं होता और एकसे पहिले कोई सख्या नही है। आधा चौथाई ऐसा जो मान्यता है वह वास्तविक एक आधा चौथाई नहीं है, किन्तु वह एक जो अनेक से मिलकर कल्पनामे आया है इसका आधा चौथाई किया जाता है। तो पदार्थ प्रत्येक अविभागी हैं और वे अपनी शक्तिमे अपनी परिणतियोंमें तन्मय हैं।

द्रव्यकी गुणपर्यायमयता—पदार्थ है तो उसका कोई न कोई स्वभाव होना ही चाहिए। वह ही स्वभाव गुण है और जब गुण है, शक्ति है तो उसका कोई न कोई परिणमन होना ही चाहिए। वह परिणमन पर्याय है तो पर्याय भी पदार्थसे जुदी नही है। हालाकि पर्याय अगले समयमें न रहेगी, अगले समयमें नवीन पर्याय होगी फिर भी जब जो पर्याय है, तब वह पर्याय उस पदार्थ उस पदार्थमे तन्मय है, अथवा यो कहो कि पर्यायका पदार्थसे अलग सत्त्व नहीं है, वह पदार्थ जिस देशरूप वर्त रहा है उस देश का नाम पर्याय है। पर्यायसे जुदा सत्त्व नही और गुणका भी पदार्थ जुदा सत्त्व नहीं। पदार्थ जिस स्वभावको लेकर रहता है उस ही का नाम गुण है, इस कारण गुणका भी पदार्थसे कोई जुदा अस्तित्त्व नही है और कभी तत्व पर्यायोंसे जुदा द्रव्यका अस्तित्त्व नही है। द्रव्यका लक्षण जैन दर्शनमे गुण पर्यायवद्द्रव्य कहा है। गुण पर्यायात्मक परद्रव्य होते हैं इस त्रितयमे से किसी एक को जुदा स्वतत्र नहीं ठहराया जा सकता है। द्रव्य अलग हो, गुण अलग हो, पर्याय अलग हो, इनकी सत्ता जुदी-जुदी हो ऐसा नही है।

भेदवादका एक स्रोत—भैया किन्ही सिद्धान्तो ने माना है कि द्रव्य अलग पदार्थ है, गुण अलग पदार्थ है और क्रिया अलग पदार्थ हैं। वैशेषिक लोग ७ पदार्थ मानते है-द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य विशेष समवाय और अभाव। ये सातों के सातों एक पदार्थरूप हैं। ये भिन्न-भिन्न नही है, पर लोगोंको समझाने के लिए उस पदार्थ की जो विशेषता बतायी जाती है वह विशेषता इन ६ रूपो में है। गुण क्रिया समान्य विशेष समवाय और अभाव, पदार्थ एक ही है, जैसे एक जीव पदार्थ ले लीजिए। जीव पदार्थमें जो ज्ञान दर्शन आदिक गुण हैं यह गुण पृथक पदार्थ नही हैं, जीव स्वय ज्ञान स्वरूप हैं। ज्ञान जीवसे अभिन्न है। उस भिन्न तत्त्वको समझाने के लिये जो भेद करके कहा जाता है वह व्यवहार दृष्टि से गुण कहलाया।

द्रव्यकी गुणपर्यायमयता—जीवका गुण जीवसे न्यारा नहीं है और जीवका जो गुण है वह प्रतिसमय किसी न किसी रूप परिणमता है। जैसे ज्ञान गुणसे अमुक पदार्थ जाना इसी प्रकार जो ज्ञान गुणका परिणमन है उसका नाम क्रिया है। पर्याय कहो या क्रिया कहो, एक ही अर्थ है। क्रिया नाम केवल चलनेका नहीं है, किन्तु कुछ भी परिणमन बनाना चाहे वह क्षेत्र क्षेत्रान्तर का परिणमन हो या उस ही क्षेत्र में रहकर एक परिणमन को त्यागकर दूसरे परिणमन रूप हो वह सब क्रिया कहलाती है, जीवकी क्रिया जीवसे भिन्न नही है, पर नाम तो जुदा-जुदा है। गुणक्रिया इसका अर्थ जुदा है, इसके लक्षणको जुदा देखकर वैशेषिको ने अलग-अलग तत्त्व मान लिया है।

द्रव्यकी सामान्यविशेषात्मकता—और तो क्या, सामान्य और विशेष इन दो को उन्होंने जुदा-जुदा माना

है, पर कहीं निर्विशेष मनुष्य देखा है किसी ने या विशेष देखा है किसीने। चीज है, उसको ही सामान्य दृष्टि से देखते हैं तो वहा सामान्य प्रतिभास होता है, विशेष दृष्टि से देखते हैं तो वहाँ विशेष प्रतिभास होता है। जैसे सब मनुष्य बैठे हैं सभी वर्ण के, जाति के, धर्म के बैठे हैं उन सबको यदि केवल सामान्य रूपमे निरखा जाय तो वहाँ मनुष्य सामान्य नजर आता। और वहा कारण वश, प्रयोजनवश मे अमुक वर्ण के हैं, ये सेठ हैं ये बाबू हैं आदिक रूपसे देखा जाय तो वही विशेष बन गया। अब उन सब लोगों को छोडकर सामान्य कुछ अलग बात है क्या। अथवा उन लोगो को छोडकर विशेष क्या अलग बात है ? वह ही सब सामान्य रूपसे देखने पर सामान्य है और विशेष रूपसे देखने पर विशेष है। सामान्य और विशेष भी पदाथ से जुदी चीज नहीं है।

समवायकी कल्पना—एक पदार्थ समवाय माना गया है वह भी जुदी चीज है,इसकी कल्पनाएँ देखिये थोड़ा सा भी शब्दके माध्यमसे भेदका अवसर पाये तो यह भेदमें बढ़ जाता है। जीव स्वतन्त्र पदार्थ है, गुण स्वतन्त्र पदार्थ है क्रिया, सामान्य आदि स्वतन्त्र पदार्थ हैं जब ऐसा वैसेसिकों द्वारा मान लिया गया तो वहां यह प्रश्न होता है कि जब ये दो पदार्थ जुदे हैं, जीव जुदा हैं, ज्ञान जुदा हैं, तो जैसे यह चौकी जुदी हैं मैं जीव जुदा हूँ, तो मुझमे यह चौकी प्रवेश नही कर जाती ऐसे ही जब ज्ञान जुदा मान लिया और जीव जुदा मान लिया तो जीव में ज्ञान क्यों प्रवेश करेगा। उस के समाधान रूपमें समवाय नामका पदार्थ माना है। समवाय नाम है सर्वव्यापी का। उस समवायके कारण जीव और ज्ञान का अभिन्न सम्बन्ध हो जाता हैं। कोई चीज एक बार झूठ कह दी जाय तो उस झूठको साबित करने के लिये अनेक झझट उठाने पड़ते हैं। मूलमें झझट यह हुआ कि द्रव्य जुदा हैं, गुण जुदा हैं, पर्याय जुदी हैं तो अब और-और भी मानना पडा।

जैनदर्शनकी उदारदृष्टि जैन दर्शन कहता है कि परम र्थसे तो वह सब एक हैं, पर संज्ञा लक्षण प्रयोजन सामान्य आदि व्यवहार धर्म चलाने के लिये द्रव्य गुण पर्याय ये जुदे बताये गये हैं। जैसे मिट्टी का घड़ा है और उस घडे को फोड दिया, खपरिया बन गई तो घडा पर्याय कहां गया, किस जगह विलीन हो गया। बाहर निकलकर नष्ट हुआ या मिट्टी में अब भी पडा हुआ है खपरियाँ बन जाने पर घडे की हालत क्या हुई है ? क्या बतावोगे। घड़ा बाहर भी जाकर नही नष्ट हुआ, घड़ा मिट्टीमें भी मौजूद नही हैं और वह जो कुछ घडा कहलाता था वह मैटर घडेमें भी नहीं हैं, ऐसा भी नही कह सकते। ऐसा त्रिलक्षणात्मक पदार्थ हैं कि उसको केवल समझाने के लिये ही अलग बताया जाता हैं। वस्तुत यह तत्त्व अलग-अलग नहीं हैं। इन समस्त द्रव्यों में गुण और पर्याय द्रव्यसे अभिन्न हैं। गुण नामतो हैं जो अन्वय रूपसे रहे और पर्याय नाम हैं जो व्यतिरेक रुपसे रहे। हैं य दोनो वस्तुके विशेष जैसे ज्ञानशक्ति-यह जीव पदार्थमें अनादि से अनन्तकाल तक सदा एक रुप रही आयी है, और उस ज्ञानमें जो परिणमन चलता हैं वह व्यतिरेकी हैं। जो इस समयका ज्ञान हैं वह अगले समयमे नही। प्रत्येक समयमें भिन्न-भिन्न चलता जाता हैं।

अभावपदार्थ की कल्पना—एक वस्तुका दूसरी वस्तुमे अभाव होना जानकर अभावन त्मक पदार्थकी कल्पना भी भेद वादमें होती हे, किन्तु अभाव कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। पदार्थका अपने स्वरुपमे ही होना अन्य पदार्थोका अभाव हे। समस्त वक्तव्य सप्रतिपक्ष हैं। विवक्षित पदाथ हैं यह "है पना" अविवक्षित पदार्थों के अभावका समर्थक हे। एक वस्तुमें अन्य समग्र वस्तुवोंका अभाव उस वस्तुके सद्भावरूप है।

उत्पादव्ययध्रौव्यकी एकाधिकरणता—गुण और पर्याय से अभिन्न होने के कारण वस्तु उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक कहा जाता है। एक पर्याय विलीन हुई, नवीन पर्याय उत्पन्न हुई और वह पर्याय जिस शक्ति मे बनती है वह शक्ति अन्वयरूप रहती हैं। सो गुणकी दृष्टिसे ध्रुव हुई। यों पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक हैं। देखिये पदार्थमें यह स्वरूप पडा हुआ हैं कि वह प्रति समय नवीन दशा अपनी बना ले और पुरानी दशाको विलीन कर दे, और ऐसा उत्पादव्यय ध्रौव्य होकर भी स्वयका कभी अभाव नहींहोता। जिसमें यह उत्पादव्यय होता हैं वह पदार्थ ध्रुव रहा करें। प्रत्येक

पदार्थ अपने ही स्वरूपसे हैं, इसका विश्वास हो जाय तो मोह नहीं ठहर सकता हैं। प्रत्येक पदार्थ केवल खुदमे ही परिणमता है, दूसरेसे नहीं।

मोहका अनवकाश—प्रत्येक पदार्थ अपने अपने सत्त्वसे सदा सुरक्षित हैं, दूसरे की आशा पर नहीं। ऐसे ही मैं हू, मैं अपने उपादान मे अपनी योग्यताके अनुकूल अपने आपमे परिणमता रहता हू। मैं किसी अन्यको पहिचानता भी नहीं, यों ही दूसरे पदार्थ भी अपने ही गुणोंके वे अपनेमे ही परिणमते हैं। वे मुझमे नही आते, तब मोह किस बात पर करना। तब कोई वस्तु मेरा नही है मैं किसीका नही हूँ। परिणमन स्पष्ट जुदा जुदा है त्रिकाल भी सम्बध हो नही सकता। वस्तुके सत्ताके कारण ही यह दृढ व्यवस्था हैं, ऐसा परिज्ञान होने पर फिर कैसे माना जा सकता है कि यह पदार्थ इसका हैं। जब स्वरूपसत्त्व स्वतन्त्र हैं तो किसीको किसीका कुछ मान लेना यह कभी हो नही सकता। प्रत्येक पदाथ अपने अपने ही गुण पर्यायसे अभिन्न हैं।

उत्पादव्ययध्रौव्यकी अविनाभाविता—पर्याय अलग वस्तु हैं, द्रव्य अलग वस्तु हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि कोई चीज नष्ट हो गयी, कोई दूसरी चीज उत्पन्न हो गयी, कोई दूसरा ध्रुव है तो क्या है, कोई ऐसा पदार्थ जो बने और बिगडे नहीं और बना रहे ? है क्या कोई ऐसा पदार्थ जो बना रहे, और बने बिगडे नही ? बनना, बिगडना बना रहना इन तीनोका अविनाभाव है। इन तीनोमें से कोई एक न माना तो बाकी दो भी सिद्ध नहीं हो सकते हैं। तो कि सब पदार्थ गुणपर्यायात्मक हैं। यह तो अस्तित्वका अश सिद्ध किया। अब ये काम क्यो कहलाते है दूसरी बात सुनिये।

प्रदेशकी दृष्टि और अस्तिकायत्व की सिद्धि—ये ५ काय क्यो कहलाते हैं। इन ५ पदार्थोंके जो अवयव हैं, अविभागी अश हैं, प्रदेश हैं वे प्रदेश यद्यपि न्यारी-न्यारी सत्ता लिए हुए नहीं हैं, लेकिन एक-एक प्रदेश को न्यारा-न्यारा ज्ञानमें न लेनेपर असख्यात प्रदेश कैसे कहेगे। जीवमे असख्यात प्रदेश हैं, तो असख्यात की किसी रूपमें भी गणना तो तब सिद्ध होगी जब इतना जान लिया कि एक इतना है, एक यह है और ये सब मिलकर असख्यात हैं। देखिये निश्चय और व्यवहारका। कैसा सम्बन्ध उपयोगमें रखना पडता है। निश्चयसे पदाथ अखण्ड है, उसमें असख्यात प्रदेश और अवयव नही हैं, पर दिखता है कि पदाथ दोनोमे पड़ा है तो प्रदेश अवश्य हैं। वे प्रदेश परस्पर व्यतिरेकी भी है। जैसे दृष्टान्तके लिए एक चौकी लो। यह डेढ़ फिट लम्बी चोड़ी, इसमे एक-एक सूत स्थान कितने पडे है। तो मान लो कि हजारो लाखो हो गए। अब एक सूत स्थान सूत दूसरे सूत वाले स्थानसे जुदा है कि नहीं ? है। अगर उन प्रत्येक सूतोंको व्यतिरेकी न मानें तो सारी चौकी एक सूत बराबर कहलायेगी। यह सारी चौकी मान लो हजार सूत प्रमाण है तो यह तब ही बन सकती है जब कि प्रत्येक सूत व्यतिरेकी हो जुदा-जुदा हो। ऐसे ही आत्मा असख्यात प्रदेशी है तो उसके प्रत्येक प्रदेश जुदे-जुदे हैं, फिर भी सत्व जुदा नहीं है वह सब एव अखण्ड द्रव्य हैं। ऐसा उन असख्यात प्रदेशोका द्रव्य जीव है, यों जीव कायवान होता है। जो पदार्थ अस्ति है और कायवान है उसे अस्तिकाय कहते हैं। इन ५ अस्तिकायोंका वर्णन इस ग्रन्थमे मोह हटाने के लिए किया जा रहा है कि हम उन पदार्थोंकी स्वतन्त्रता जानें और इस ज्ञानबलसे हम परसे मोह हटाकर अपने आपके स्वरूपमे मग्न रहा करें।

आत्मश्रद्धान—पदार्थोंके स्वरूपका वर्णन चल रहा है। जीवका कल्याण पदार्थके यथार्थस्वरूपके ज्ञानसे ही होगा। जीवको शान्तिका उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके सिवाय अन्य कुछ नहीं है। जो पदार्थ जिस रूपसे हैं उन पदार्थोंके रूपसे श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है। जैसे यह मैं आत्मा अमूर्त ज्ञान दर्शन शक्ति आनन्द का पिड सबसे न्यारा सत् हूँ। यह ही अनेक परमाणुवोसे मिलकर बना हुआ स्कध है। यह देह विघट जायगा, यह मैं आत्मा अखण्ड सदा अपने ही स्वरूप रहने वाला हू। जगतमे जो भी जीव दिखते हैं उन सबकी यही परिस्थिति है। उनमे रहने वाला जीव ज्ञानानन्दपुज है। और यह दृश्यमान शरीर अनन्त पुद्गल परमाणुवोका पिड है। शरीर से यह जीव अत्यन्त न्यारा है। मुझसे सब जीव और समस्त पुद्गल धर्मादिक द्रव्य सब न्यारे है। मैं अपने ही द्रव्य क्षेत्र काल भावसे सत्

हू। परिपूर्ण हू, अपने ही स्वरूपसे अपने मे परिणमता रहता हू। ऐसी स्थिति प्रत्येक पदार्थकी है। ऐसा सत्य श्रद्धान होता है तो पर पदार्थों से मोह दूर होता है।

मोहसकट—जीवको जितनी भी परेशानी है वह सब मोह की परेशानी है अन्यथा सोचो आज जीवन है, अचानक मरण हो गया तव यहाँ की क्या कोई चीज अपने काम आयगी? अरे यहा का सब ठाठ भूल जायगा। जहा अगले भवमे जावेंगे वहा के आश्रयसे विकल्प चलेंगे। यहाँ तो व्यर्थ ही विकल्प बनाकर दुखी होते हैं। सम्यग्ज्ञानमे यह प्रताप है कि पर पदार्थोंको पर और निजको निज जानने के कारण मोहका सकट नही रहता है।

वस्तुका पुन निर्देशन—वस्तु स्वरूपका यह सक्षिप्त वर्णन चल रहा है। पदार्थ ६ जातिके होते हैं-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जिसमे जानने देखनेकी शक्ति है, रूप, रस, गध स्पर्शसे रहित है वह तो जीव द्रव्य है। जिसमें रूप, रस, गध, स्पर्श पाया जाता है वे सब पुद्गल द्रव्य हैं। चाहे कोई पुद्गल दिखनेमें आये अथवा न आये, सूक्ष्म हो अथवा स्थूल हो, जितने भी पुद्गल है वे सब रूप, रस, गध, स्पर्श वाले हैं। जीव और पुद्गलके गमन करनेमें जो सहायक सत् है उसे धर्मद्रव्य कहते हैं। यहाँ धर्मद्रव्यसे मतलब पुण्यसे नहीं है, धर्म करने से नहीं है, किन्तु धर्म नामका एक ऐसा द्रव्य है कि जो न हो तो जीव पुद्गल को गमन नहीं मिलता है। जैसे मछली के चलनेमें जल सहायक है, जल जबरदस्ती मछलीको चलाता नही है, पर मछली चले तो उसमें जल कारण है। ऐसे ही हम लोगोंको यह धमद्रव्य जबरदस्ती चलाता नही है, पर हम लोग चलें तो यह धर्मद्रव्य सहायक है। धर्मद्रव्य, रूप, रस, गध, स्पर्शसे रहितहै, इस कारण किसी इन्द्रियके द्वारा ज्ञात नहीं होता है। किन्तु, वीतराग ऋषीसतोंने यह सब सूक्ष्म तत्त्व भी बताया है और आज कल वैज्ञानिक लोग भी ऐसा अनुमान करते हैं कि आकाशमे ऐसे सूक्ष्म तत्व हैं जिनसे चलनकी मार्ग मिलता है। उनके तरग है। उनके आश्रयसे चला करते हैं, वह धर्मद्रव्य है और जीव पुद्गलके ठहरनेमें जो सहायक हो वह अधर्म द्रव्य है। समस्त पदार्थ जिस स्थानमे रहें उसका नाम आकाश द्रव्य है, और कालद्रव्य जिसके कारण पदार्थ परिणमता रहें, बदलता रहे उसका नाम काल द्रव्य है।

स्वस्वविस्तार—इन ६ पदार्थोंमे से काल द्रव्य तो निरवयव है। केवल एक प्रदेशमात्र है। अस्तिकाय नहीं कहलाता है, शेष जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये अस्तिकाय कहलाते हैं। जीव जितने विस्तारमे है, जितने घेरे को लिए हुए हम आप अपनेमें सुख दुखका अनुभव करते हैं वह जीवका विस्तार है। उसमे असख्यात प्रदेश हैं। पुद्गलमें जो वास्तविक परमाणु पदार्थ हैं वे तो निरअवयव हैं। वे एक प्रदेशी है। उसका विस्तार नही है। पर पुद्गल में ऐसी शक्ति है कि वह परमाणु मिल जुलकर एक बडे स्कध बन सकते हैं, अन्य द्रव्य आपस में मिलकर स्कध नही बन सकते। जीव जीव १०, २०, ५० आपसमें मिलकर एक पिंड बन जायें सो नही बन सकते हैं। सब जीव न्यारे-न्यारे ही रहेंगे। धर्म, अधर्म, आकाश ये भी न्यारे न्यारे ही रहेंगे। काल तो न्यारा है ही। पुद्गलमें एसी विशेषता है कि बहुत से स्कध मिलकर एक बडा रूप पा लेते हैं। अथवा बहुप्रदेशी होनेकी शक्ति है इस कारण पुद्गलको अस्तिकाय कहा है।

सावयवमे अस्तिकायपना—इस प्रकरणमे यह जिज्ञासा हो सकती है कि हमको तो पुद्गल अस्तिकाय मालूम होते हैं क्योंकि कभी परस्पर मिलकर बडे हो जाते हैं, कभी बिखरकर छोटे हो जाते है। उसमे तो मालूम होता है कि वह अस्तिकाय हैं, किन्तु अन्य जो जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, नामके अमूर्त पदार्थ हैं उनमें बहुप्रदेशी क्या? पुद्गलमें तो साफ नजर आता है कि अब यह बडा स्कन्ध हो गया, अब यह छोटा स्कन्ध रह गया। यहा तो अस्तिकाय का होना ठीक जच रहा है, पर जीवमें क्या, जीव तो एक है, वह बहुप्रदेशोंका मिलकर कैसे बना? आकाश एक है, अनन्तप्रदेशी है उसमे अनन्त प्रदेश है। ये कैसे आये सामाधान यह है कि यद्यपि वे अमूर्त हैं और उनके प्रदेशोका कभी विभाग भी नहीं हो सकता, फिर भी वे अवयव सहित हैं।

अखण्ड आकाशमें सावयवता—जैसे इतना बडा आकाश है वह एक है। आकाश अनेक नहीं हैं, एक है,

फिर भी उस आकाश में हिस्सोंकी कल्पना हो जाती है। यह घडेका आकाश है, यह कमरेका आकाश है। यद्यपि आकाश के इस तरह से विभाग नहीं होते फिर भी चीज बडी हो तो उसमें विभागकी कल्पना बनती है। यह आकाश असीम अनन्त है, उसमे विभाग बन गए, ऐसे ही यह जीव एक है, फिर भी इसका विस्तार है। देखोना इस देहमें सर्वत्र सुख दु खका अनुभव होता है कभी हाथमे फोड़ा फुसी हो जाय, क्लेश बढ जाय तो ऐसा लगता है कि बडा कष्ट होता है, पर कष्ट कहाँ कहा हो रहा है ? इस देह भरमे जो आत्मा फैला हुआ है उस सम्पूर्ण आत्मामे कष्ट हो रहा है। ऐसा नही है कि हाथके कलेश जो आत्माके प्रदेश हैं उनमे कष्ट होता हो बाकी जगह कष्ट न होता हो। जीव तो एक अखण्ड है। वह जो कुछ भी अनुभव करता है अपनेमें समस्त प्रदेशोंमे अनुभव करता है। यों ही समस्त अमूर्त द्रव्योंको जान लेना चाहिए। यदि इन अमूर्त पदार्थोंमे अवयव अ शकी कल्पना न की जाय। प्रदेश न माना जाय तो यह एक प्रदेशमात्र रह जायगा। जैसे आकाशका टुकडा नही होता ठीक है, फिर भी उसमें अ श न माना जाय कि यह घडे का आकाश है, और यह सदूकका आकाश है तो इसका अर्थ यह है कि जो घडे का आकाश है वही सदूकका आकाश बन गया। फिर घडा क्या रहा, सदूक क्या रहा ? तो अविभागी भी पदार्थमे प्रदेशकी कल्पना होती है। केवल एक कालाणु काल द्रव्य ही अस्तिकाय नही है, बाकी समस्त पदार्थ अस्तिकाय हैं।

धर्मपालनमे वस्तुविज्ञानका सहयोग—भैया ! पदार्थका स्वरूप बताना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि धर्मपालनका साधन वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान है। भगवानसे मोक्षकी भीख मांगनेसे मोक्ष न मिल जायगा। प्रभुसे सुख की भीख मागने से दु ख न मिल जायगा, किन्तु प्रभुका जो स्वरूप है उस स्वरूपको निरख-निरखकर अपने आपमे अपनी शक्तिका उत्साह बनाया जाय और अपने गुणोंका अनुराग किया जाय तो उसमें अपने ही ज्ञान गुणके अनुभवसे मोक्षका मार्ग मिलेगा और अपने ही शुभ परिणामोके अनुसार सुख मिलेगा। भगवान तो हमारे ध्यानमें आश्रयभूत हैं। यही उनकी करुणा है पर हम खुद चलें उल्टा, विपरीत श्रद्धा रक्खे। पापका परिणाम करें और भगवानसे रोज अपनी माफी मागते रहें तो यो माफी नही मिलती है। खुदकी मलिनता करके किए गए पापोंकी माफी खुदके निर्मल परिणामों पर ही सम्भव है यह सब निर्मलता हमारी तब प्रकट होगी जब हम अपने स्वरूपकी ओर झुकें, इससे ही निर्मलता पा सकेंगे। इसी प्रयोजन के अर्थ वस्तुके स्वरूपका वर्णन इस ग्रन्थमे किया जा रहा है।

त्रैलोक्य—इन समस्त द्रव्यों से यह तीनलोक बना हुआ है। जैसे एक नगर में हजारों घर हैं उन हजारो घरोको एक समूचे रूपसे देखा जाय उसका नाम नगर है ऐसे ही अनन्त जीव और उनसे भी अनन्तगुणे पुद्गल एक धर्म-द्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और असख्यात कालद्रव्य इन सब पदार्थों का जो समूह है उसका नाम तीनलोक है। यह तीनलोक से निष्पन्न हुआ, तीनलोक के रूपमें निष्पन्न हुआ यह समस्त अस्तिकाय है।

वस्तुस्वरूपमे स्वातन्त्र्य की सिद्धि—ये सभी पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्य करके सहित हैं जैन सिद्धान्त में तत्वार्थसूत्रमें बताया है उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तसत् पर दृष्टि द तो यह मालूम पडेगा कि अन्य समस्त व्याख्यान इस सूत्रका विस्तार है। पंचम अध्यायमें एक सूत्र आया है, उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्ता सत्। सत् किसे कहते हैं, पदार्थ किसे कहते है ? जो उत्पादव्यय और ध्रौव्य करके सहित हो। इसमें क्या मर्म आया है। जो भी पदार्थ हैं वे अपने स्वरूपके कारण अपने आपमे उत्पन्न होते हैं और अपने ही सत्त्वके कारण पुरातन पर्यायको विलीन कर देते हैं, और अपने सत्त्वसे सदा ध्रुव बने रहते हैं, यह पदार्थमे उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त होने का परिणाम पाया जाता है, स्वरूप पाया जाता है, अब कोई भी पदार्थ एक भी समय बिना परिणमे रहेगा नही, प्रति समय परिणमते रहते हैं। तब बतलावो दूसरा कैसे परिणमायेगा ? प्रत्येक पदार्थमें खुदके परिणमन का सामर्थ्य बसा हुआ है इस कारण कोई पदाथ किसी अन्य पदार्थ को परिणमा ही नही सकता है। कितनी स्वतन्त्रता है, हम आप कितने निर्लेप हैं। किसी भी वस्तुसे कुछ सम्बन्ध नही है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नही है मेरा अस्तित्व मेरेमे ही है, परका स्वरूप परमे ही है, कोई पदाथ किसी दूसरे पदार्थ का स्वामी नहीं हो सकता। जब प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभाव से निरन्तर परिणमते रहते हैं तब मैं किसी पदार्थ को

परिणमाने वाला कैसे हू। मैं अपने आपका हो कुछ से कुछ बन सकता हू, किसी दूसरे पदार्थ का मैं कुछ भी नही बना सकता। हा कोई किसी दूसरे के परिणमाने में निमित्त भले ही हो जाय पर कोई भी पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका कुछ करने वाला नहीं है।

धर्मार्थ जीवन भैया ! पूर्वकृत पुण्यके उदयसे आज कुछ वैभव मिला है, सामग्री मिली है तो इसमें मोह ममताका हो जाना यह तो इस जीवन पर बड़ी विपदा है। यह धन वैभव तो पुण्यके उदय से आता है। न हो किसीके पुण्यके उदय तो कितने भी विकल्प मचा डाले पर धन वैभवकी प्राप्ति नही हो सकती है। ज्ञानी जीवको किसी भी बात का कभी विकल्प नही होता है उसने तो अपना सारा जीवन धर्म साधना के लिए माना है, बाह्य वस्तुओ के विकल्प के लिए उसने अपना जीवन नही माना है। यह प्रभु अरहत देव जिनकी हम आप मूर्ति बनाकर पूजते हैं उन्होंने भी समस्त परके विकल्पका परित्याग कर अपने को आकिञ्चन्य स्वरूप निरखा था। यही पाठ सीखने के लिए तो हम आप उन अरहत प्रभुकी मूर्ति बनाकर उसकी स्थापना करके पूजते हैं।

मूर्तिका माध्यम —मूर्ति स्वय भगवान नही है, उसमें तो प्रभूके गुणोका एक सकेत है, जैसे कागज के नोट चलते हैं तो उस कागज का कुछ भी मूल्य नही है मूल्य तो उस चिन्हका है जो कि उसमें छपा हुआ रहता है। सरकार की विधिमें आज उसकी मान्यता चल रही है। हम आप ग्रन्थ में ये अक्षर पढ़ते हैं, जो मुखसे शब्द बोले जाते हैं उनकी यह मूर्ति है, उनकी मूर्ति बना ली गई है, स्थापना हो गयी है। ऐसा आकार बनाया तो उसका नाम अक्षर है, वह अक्षरमें मूर्ति है। जितने शब्द हम आप बोलते है स्वर और व्यञ्जन वहाँ मूर्ति ये अक्षर हैं, तो मूर्तिके बिना किसीका काम भी नही चल पाता है। हम आप लोग साधुसतो की फोटो उतार लेते हैं। वह उनकी मूर्ति हैं, उससे पहिचान होती है कि यह अमुक साधु हैं। तो व्यवहारमे किसी न किसी रूपमे यथार्थ वस्तुकी मूर्ति ही जाती है।

प्रभुत्व—जिन भगवान की इस मूर्तिमें स्थापना की गई है वह भगवान क्या है ? केवल ज्ञान, केवल दर्शन अनन्त सुख और अनन्त शक्तिके पिण्ड हैं। हम जिसे चाहें उसे भगवान मान लें तो ऐसा कैसे हो सकता है। जिसके ध्यान करने से जिसके स्मरण करने से रागद्वेष दूर हो उस भगवान की मान्यतासे लाभ हैं और जिसके स्मरण से राग-द्वेष बढ़े उसके भगवान मानने से क्या लाभ है ? प्रभु का स्वरूप स्वय समता का पुंज हैं। उनके ध्यानसे समता का पाठ मिलता है यह प्रभु शुद्ध गुण शुद्ध पर्याय के पिण्ड हैं।

निजास्तिकायका सुप्रतिबोध—प्रत्येक पदार्थ अपनी शक्ति और अपनी पर्यायमें तन्मय हैं। ये सब अस्ति-काय हैं। इस जीवको पता अपने को बहुत जल्दी हो जाता है, पर धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य इनका पता नही पड सकता है। कारण कि ये अमूर्त हैं और यह मैं आत्मा अमूर्त हूँ पर मैं खुद हू ना, मेरी बात मुझ पर ही बीतती है, और मैं खुद, खुदको ही न जान पाऊ यह कैसे होगा। हम अपने आपमें यह बराबर देख रहे हैं कि हम इतने बडे विस्तार वाले हैं अस्तिकाय है ऐसा धर्म और अधर्म तथा आकाशद्रव्य अस्तिकाय है।

जीवकी विस्तारशक्ति और अस्तिकायोंका निर्देश—जीव कितना बड़ा है प्रदेशकी दृष्टि से ? तो अनु-मान कर लीजिये। चींटीके शरीरमे जीव पहुँच गया तो उस समय भी उतना ही बडा है। एक स्थिति होती है सयोगके वली भगवानकी केवली समुद्घात मे लोकपूरण की स्थिति। जिस समय भगवानके प्रदेश समस्त लोकाकाशमें पूर्ण व्याप कर फैल जाते हैं तब समझो ओह ! यह जीव कितने विस्तार वाला है- असख्यात प्रदेशी है, और पुद्गल द्रव्यमें तो इस के स्कधो को देखकर यह अन्दाज हो जाता है कि यह इतने बडे विस्तार वाला है, अस्तिकाय है। यों अस्तिकाय के प्रकरणमें अस्ति और कायका अर्थ बताया गया है। जो हो उसे अस्ति कहते हैं और जो प्रदेश प्रचयात्मक हो उसे काय कहते हैं। जीव और पुद्गल दोनो अस्तिकाय हैं। धर्म, अधर्म और आकाश भी अस्तिकाय है।

सकटहरण सम्यक् दर्शन—जो पदार्थ जैसा है वैसा ही मान लो तो आज ही सारे सकट खतम है। यह मैं आत्मा त्रिकाल समस्त पदार्थोंसे न्यारा हूँ। जिस समय यह मोही जीव सारे पदार्थोंको अपना ही मान रहा है उस समय भी सारे पदार्थोंसे यह न्यारा है। जब यह जीव सम्यक् परिज्ञान करके समस्त पर पदार्थोंसे अपनेको न्यारा निरखता है उस समयभी यह जीव निर्मल है और जब सर्व कर्मबन्धनसे छूटकर केवल एक असम्पृक्त रह गया तबभी यह जीव निर्मल है यह जीव धन वैभव इत्यादि समस्त परसे न्यारा है देह तक से भी न्यारा है। यों मैं सबसे न्यारा हूँ ऐसा अकिञ्चन ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभव करेंगे तो शान्ति मिलेगी। पुण्य बढेगा, जो जो बात सोच रक्खी हों उन सब से न्यारे अपने को आकिञ्चन्यस्वरूप ज्ञान मात्र निरखनेसे सारी सिद्धि हो जातीं है।—

जीवो पुग्गल कायो धम्म अधम्मो तहेव आयासँ।
ते चेव अस्थिकाय परियट्टणलिङ्गसँजुत्ता ॥६॥

द्रव्य समूहः—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये अस्तिकाय तथा परिवर्तन के चिन्हसे जाना जानेवाले कालद्रव्यकर सहित ये सब द्रव्य होते हैं। ये समस्त द्रव्य तीन काल परिणमन कर रहे हैं, फिर भी नित्य हैं। इस गाथामें छहो द्रव्योंका वर्णन आया है। द्रव्य गुण पर्यायोंका अभिन्न आधार होते हैं। जो भी पदार्थ है उसमे कोई न कोई परिणमन अवश्य है तथा उस परिणमनका आधारभूत शक्ति अवश्य है, शक्तिका नाम गुण है, परिणमनका नाम पर्याय है। जो भी सत् है उसमें गुण पर्याय अवश्य होती है। गुण न हो केवल पर्याय हो ऐसा कुछ नही है, पर्याय न हो, केवल गुण हो ऐसा भी कुछ नहीं है। जो भी सत् है वह नियमसे गुण पर्यायोंका आधारभूत है। युक्तिसे भी विचारलो। कोई चीज है तो उसका कोई रूपक तो होना ही चाहिए। कोई दशा, ढग, परिणति उसकी होनी ही चाहिए, और दशा है वह एक वर्तमानरूप है अगले समयमें और कुछ रूप हो सकती है, होती ही है।

प्रतिक्षण परिणमन—यदि ऐसा माना जाय कि जो रूपक जो दशा जिस द्रव्यकी है वही दशा सदा रहेगी सो भी नही बनता है। शुद्ध पदार्थोंमें ऐसी प्रतीति होती है कि जो दशा हुई है वही सदा काल रह रही है किन्तु, सूक्ष्म दृष्टिसे वे सब दशाएं समान होकर भी भिन्न-भिन्न हैं, अर्थात् यह अमुक समयमे अवस्था है, उसमे षड्गुण हानि वृद्धि होती ही रहती है, जितने भी पदार्थ हैं वे सब प्रतिक्षण अपना परिणमन करते रहते हैं।

परिणमनशीलता के कारण एक वस्तुका दूसरेमें अभाव—पदार्थोंमें परिणमन करते रहने का स्वरूप सहज पाया जाता है। यही कारण है कि किसी पदार्थके द्वारा किसी अन्य पदार्थका परिणमन नही होता है। कोई पदार्थ यदि दूसरे पदार्थको परिणमाये तो यह बताओ कि नपरिणमते हुए को परिणमाता है या परिणमते हुए को परिणमाता है। यदि वह न परिणमता हुआ है तो कोई शक्ति ऐसी नहीं है कि जो परिणमता नहीं है उसे परिणमा दे। यदि परिणमते हुए को परिणमाता है तो वह तो स्वभावत, परिणमता हुआ ही है। उसे दूसरा क्या परिणमाये। प्रत्येक पदार्थ यह स्वरूप रखता है कि वह प्रति समय परिणमता है, परिणमता रहेगा। द्रव्य त्रैकालिक पर्यायोंका पिंड है। पर्यायोंका प्रतिषेध करदो तब द्रव्य किसे बतावोगे? पर्यायोंसे भिन्न निराला कुछ द्रव्य न समझमे आयगा। जसे एक यह जीव द्रव्य है तो जो प्रति समय जाननहार या स्वभाव विभाव जब जो परिणमता है उस परिणाम रूपसे परिणमता रहता है। वही तो जीव है।

परिणमनोंसे द्रव्यत्वकी सिद्धि—परिणमनोंसे न्यारा द्रव्य स्वीकार करे तो फिर वह द्रव्य कैसा। जैसे एक अगुली है, यह सीधी है, टेढ़ी है, किसी भी न किसी रूपमे रहेगी। इस अगुली की कोई दशा हम स्वीकार न करें न गोल न अन्य किसी प्रकार और भी कोई अगुली हो यह कैसे होगा। जो पदार्थ सत् है वह किसी न किसी दशामे अवश्य रहता है यह वस्तुका स्वभाव है, तो पदार्थ अनादिकालसे है अनन्त काल तक रहेगा, तो इसमे अनादिसे प्रति समय पर्यायें होती आयी है। प्रत्येक वर्तमानमें वर्तमानमें वर्तमान पर्याय होती ही है। भविष्यमे अनन्त कालमें प्रति समय पर्यायें होती

रहेंगी। उन पर्यायोंके स्वरूपसे परिणत होनेके कारण इन अस्तिकायोंको द्रव्य कहा गया है। यों पदार्थ पर्यायोंसे अभिन्न रहता है। कुछ भी दशा न हो और सत हो ऐसा कुछ हो ही नही सकता है। यदि पर्यायें न हो और पदार्थ मानते रहें तो वह कोरी कल्पना भर है। जैसे कि माताएँ बच्चेको हउवा हउवा कहा करती हैं। वह हउवा क्या चीज है? कल्पना में जिसमें भय हो जाय, अस्थिरता हो जाय बस वही उनका हउवा है। हउवा कोई पदार्थ नहीं है। वह जीव है या अजीव है, किस आकारका है। हउवा कोई चीज नहीं है कल्पना मात्र है, ऐसे ही ऐसा ब्रह्ममाने कि जिसमें त्रिकाल कभी परिणमन होता ही नही है, तो वह ब्रह्म तत्त्व कुछ नहीं है।

स्याद्वादकी प्रतिपादनपुष्टता—स्यद्वाद ही वस्तुके स्वरूपको बतानेमें समर्थ हो सकता है, तब ये पक्ष आ जाते हैं, एक पक्ष ब्रह्मको अपरिणामी मानता है और एक पक्ष प्रतिसमय नवीन-नवीन ब्रह्म उत्पन्न होते है यों मानत। है, ऐसे दो पक्ष आते हैं। उनमें एकान्त पक्ष हुआ है। उनका समन्वय स्याद्वाद कराता है। चीज तो वह एक है, वह है द्रव्य गुणपर्यायात्मक। द्रव्य द्रष्टिसे यह ब्रह्म अपरिणामी है अर्थात् यह ब्रह्म चैतन्य स्वभावको त्यागकर अचेतन रूप त्रिकाल नही हो सकता, इस दृष्टिसे उसमे रच भी परिणमन नहीं है, किन्तु कोई भी पदार्थ हो, परिणमन बिना रह नहीं सकता, तो इस ब्रह्मकी जो प्रतिसमय पर्यायें होती हैं वे पर्यायें अनित्य हैं और उन पर्यायों सहित ब्रह्म प्रति समय नया नया होता है, ब्रह्म उत्पन्न नही होता, किन्तु जिसे हम आप कह सकते हैं किसी मनुष्यको कि यह बालक मनुष्य मिट गया, जवान मनुष्य मिट गया, वृद्ध मनुष्य मिट गया, एक मनुष्य होकर भी अवस्था सहित नाम लगाने से उसे समूचा ही उत्पन्न हुआ कह सकते हैं। उसमे पर्यायोंकी मुख्यता है। यों प्रत्येक पदार्थ गुण पर्यायात्मक है, गुणोंकी दृष्टिसे वह नित्य है और पर्यायोंकी दृष्टि से अनित्य है। ऐसे ये समस्त द्रव्य नित्यानित्यात्मक हैं।

अनित्य होनेपर भी नित्यता—यहाँ यह शका नहीं करना है कि जब इस द्रव्य मे भूतमें भी परिणमन हो, भविष्यमे भी परिणमन होगा, वर्तमान मे भी परिणमन चलता है तो ये पदार्थ अनित्य हो गये। अनित्य नहीं हैं यद्यपि अवस्था की दृष्टिसे अनित्य है तो भी उन समस्त पर्यायोंमें पदार्थ अपने प्रतिनियत स्वरूपका कभी परित्याग नहीं करते हैं इस कारण नित्य हैं।

प्रतिपाद्य विषय– इस ग्रन्थमें मुख्यतया ५ अस्तिकायोंका वर्णन है, पर इसके साथ काल द्रव्यके वर्णनकी गुन्जायश क्या निकली? यहां यह शका हो सकती है कि जब ग्रन्थ का ही नाम पञ्चास्तिकाय है और ५ अस्तिकायोंका वर्णन है तो कालद्रव्यका हम वर्णन करें ऐसी गुन्जायश कैसे निकल आयी है। जिसका नाम रख लिया है उस ही का वर्णन करते रहना चाहिए। समाधान यह है कि ये ५ अस्तिकाय प्रतिसमय परिणमते रहते हैं, उनके परिणमनका निमित्त कारण क्या है? यह जिज्ञासा होती है। उसका उत्तर है कालद्रव्य। लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक-एक कालद्रव्य अवस्थित है और उस कालद्रव्यपर उस प्रदेशपर जो भी पदार्थ हैं उन पदार्थोंके परिणमनका कारण उस कालद्रव्यकी समय नामक पर्याय है। मोटे रूपमें यह सोच लीजिए कि यदि समय न गुजरे तो पदार्थका परिणमन कैसे होगा। जैसे किसीको कानपुर से बम्बई जाना है, ८ बजे से वह जा रहा है तो कुछ समय गुजरेगा तब ही बम्बई पहुँच सकेगा। ८ बजे चले चले और ८ ही बजे पहुच जाय ऐसा तो कभी हो नही सकता है। इस प्रकार यह तो चलने की बात कही है। रखी-रखी चीज पुरानी हो जाय, तो समय गुजरेगा तब ही तो पुरानी होगी। पदार्थोंके परिणमनमें कारण समयका गुजरना होता है। ५ अस्तिकायोंका परिणमन जो बताया गया है उस परिणमनका कारण क्या है? उसके उत्तरमें कालद्रव्य का प्रतिपादन करना पडा।

परिवर्तनलिङ्गता–पुद्गल आदिका पदार्थों के परिणमन का कारण यह काल द्रव्य है एक बात। दूसरी बात यह है कि पुद्गल आदिकका जो परिवर्तन होता है उस परिवर्तनसे काल द्रव्यकी पर्याय ज्ञात होती है। जैसे समय गुजरे तो कोई मनुष्य १० कोश पहुँच गया। और १० कोश पहुचेगा तो यह ज्ञान होगा कि कितना समय हो गया है इन दोनोंका परस्परमे ज्ञान कराने का सहयोग है। समय गुजरा तब परिणमन हुआ तो उससे यह जाना कि समय

गुजरा। जैसे दिनवे १२, १४ घटे गुजरते हैं तो उनमेसे सूर्य पूर्वसे पश्चिमीमे पहुच जाता हैं, और समय गुजरता हैं यह हमने कैसे जाना कि जब सूर्य पूवसे पश्चिममे पहुँचेगा तब ख्याल होता है कि ओह ! १२-१३घटे समय गुजर गया है, इस काल द्रव्यको यो छोडा नही जा सकता। इसका वर्णन आवश्यक है करना। यह काल बहुप्रदेशी नही है इस लिए अस्तिकाय नही माना है।, पर समस्त पदार्थोके परिणमनमे कारणभूत यह काल द्रव्य है। कालद्रव्वका समयनामक परिणमन जीव के परिणमनमे कारण है। पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश इन सबके परिणमनमे कारण है और साथ ही कालद्रव्यके परिणमन मे भी कारण है। कालद्रव्य अपने भी परिणमनमे कारण है।

आकाश द्रव्यकी अखण्डता—आकाश एक है, अखड है, इसके व्यवहारसे दो भेद कर डाले हैं, लोकाकाश और अलोकाकाश। जितने अकाश मे समस्त द्रव्य रहें उतने आकाशका नाम लोकाकाश है और इससे बाहरके आकाशका नाम अलोकाकाश है। इतने सम्बधके भेद कर देनेसे कही आकाशके दो टुकडे नही हो जाते हैं। वह एक अखण्ड है। अब यहां एक यह जिज्ञासा हो सकती है कि लोकाकाशमें कालद्रव्य है ही नहीं, वहा तो केवल आकाश हो आकाश है। तो वहाँ के आकाशका परिणमन कैसे होगा। यह आकाश अमूर्त है। यह आखों दिखता नही है। दिखने वाली चीज मूर्तिक होती है। केवल पुद्गल ही आँखो देख सकते हैं, अन्य कोई द्रव्य आखों कही दिखते है, उसपरभी आकाश वास्तविक सत् है, उसमें अविभागी अनन्त प्रदेश हैं उनका प्रति समय परिणमन होता है। वह एक अखण्ड आकाश है। उसके बारेमे यह जिज्ञासा होती है कि लोकाकाशका परिणमन कैसे होगा क्योकि वहां कालद्रव्य है नही अर्थात् पदाथके परिणमनके लिए यह आवश्यक नही है कि उस पदार्थके चारो ओर निमित्त रहे, निमित्त किस ओर हो, किस ढगसे हो वह परिणमन मे निमित्त होता हैं।

अखण्ड अनुभवन—जैसे पैर मे कांटा चुभ जाय तो सारे जीव प्रदेशमें दु ख होता है। यहाँ यह आवश्यक नहीं है कि जीव जितना बड़ा है सब ओर से एक साथ कांटा चुभे तब दुःखी हो उस कांटे के चुभने का वह किसी एक तरफ है। कैसा ही निमित्त हो वह तो दुःख का सर्व प्रदेशो में कारण होता है, क्योंकि यह जीव अखण्ड है ना। जो पिण्ड अखण्ड नहीं है उसके लिए तो जहा निमित्त होगा वहा परिणमन है। जैसे यह चौकी पदार्थ है, यह एक अखण्ड चीज नही है, अनन्त परमाणुवों का यह पिण्ड है, इस कारण जिस खूँट मे अग्नि लगी होगी वही खूँट जलेगा, कही सारी चौकी न जलेगी, कि चौकी एक पदार्थ है ही नही, अखण्ड है ही नहीं, जो अखण्ड पदार्थ है उसके लिए निमित्त किसी भी ओर हो, समूचे पदाथ के परिणमनके लिए निमित्त होता है। चू कि यहाँ कालद्रव्य है और यह निमित्त आकाश के परिणमनमे है तो समूचा आकाश एक साथ एक परिणमनसे परिणमता रहता हैं।

षड्द्रव्य—यो काल द्रव्य पुद्गल आदिक के परिवर्तनमें कारण है और पुद्गल आदिकके परिवर्तनसे कालद्रव्य का ज्ञान होता है, इस कारण अस्तिकायसे इसका निनिमित्त नैमिमित्तक सम्बन्ध है इसी कारण इस कालद्रव्य को यहा बताया जा रहा है, और साथ ही इसका नाम धरा परिवर्तनलिंग। चाहे काल कहो, चाहे परिवर्तनलिङ्ग कहो दोनो एक दोनों एकार्थक हैं। परिवर्तनलिङ्ग का अथ यह है कि जो समग्र पदार्थों के परिणमनमें कारण हो। यों काल सहित ५ अस्तिकाय षड्द्रव्य कहलाते हैं।

भेदविज्ञानका शिक्षण—इस प्रकारसे हमें यह जानना है कि इस लोकमें अनन्तानन्त जीव हैं, अनन्तानन्त पुद्गल हैं। एक धर्मद्रव्य एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य असख्यात कालद्रव्य हैं, इन सब द्रव्यो मे एक यह निज जीवास्तिकाय ही उपोदय है, यह जीवास्तिकाय मेरे ही देहके अन्तर्गत है। कल्याण का निधान, आनन्दका धाम प्रभुतासे सम्पन्न यह भगवान अपने देहमे विराजमान हैं, पर मोहका कैसा नशा छाया है कि यह स्वय अपने आपको नहीं जान पा रहा है। जो इन्द्रिय आदिक साधन मिले हैं भूलमे भटकने और बहकाने के लिए उन साधनोके द्वारा हम बाह्य मे देखा करते हैं, और जो कुछ नजर आता है उसे हम सही मान लेते हैं। झूठ को यथार्थ मानने के कारण राग और द्वेष बढते

हैं, इस जीवपर संकट है तो राग और द्वेषका है, अन्य कुछ नहीं है ? इस जीवको अपने सही स्वरूप का विश्वास नहीं है, सो जबरदस्ती आशा करके भिखारी बनकर परपदार्थों के अपनाता है, यह मेरा है, यह मेरे मन माफिक रहें ऐसी बुद्धि बनाये है इसी कारण क्लेश होता है। इस मोहीको यह अपनी खबर नही है कि यह मैं आत्मतत्त्व इस देहमे बसकर भी देहसे निराला शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप हू ।

मोहका बोझ—कोई अपने आपमें मोहका बोझ लादले तो यह ससार में ऊपर तिरता रहता है। जीवपर मोहका बहुत बड़ा बोझ है। कभी-कभी आप ऐसा भी अनुभव करते होंगे कि जब हमारे मोह राग चिंता बहुत सताती है तो ऐसा लगता है कि स्वय बड़े वजनदार हैं। यद्यपि मोहमे वजन नही होता, मोहकी कल्पनावों से यह जीव बोझल हो जाता है और अपने को हल्का ज्ञान ज्योति स्वरूप आनन्दस्वरूप नही मान सकता है। आनन्दके अनुभवन के समय यह जीव अपने को हल्का अनुभव करता है और मोहकी परिणत के समय अपने को बोझल अनुभव करता है। यह मोह हटे और यह भाव बने कि मैं सर्व से विविक्त हूँ। किसी पर न मेरी मालिकाई है न कर्तृत्व है, न भोक्तृत्व है, न अधिकार है। सभी अपने स्वरूपसे हैं, परके स्वरूपसे नही हैं, फिर ऐसे सहज स्वतन्त्रपदार्थ में यह मानने की जबरदस्ती करना कि यह इनका है, यह मेरा है, इससे मेरा हित है, इससे मुझे सुख है आदिक मान्यताऐं बनाना यह तो जीव के लिए अहितकारी ही बात है।

समाधिशरण—भैया ! इन समस्त पदार्थोंमे छाट लो-तुम्हारे लिये शरण क्या है ? तुम्हारे लिये मंगल क्या है ? शरण है मेरे लिये मेरे ही शुद्ध ज्ञायकस्वरूपका अनुभव। इसके अतिरिक्त सभी उपयोग मेरे को दुःख के ही कारण हैं। यह मैं शुद्ध जीवास्तिकाय स्वसम्वेदन ज्ञानसे ही जाना जा सकता हूँ, पाया जा सकता हूँ। ज्ञानसे ही जिस का समस्त स्वरूप भरा हुआ है, ऐसे इस शुद्ध जीवास्तिकायको मैं ऐसे ज्ञानसे जानूंगा जो ज्ञान सहज अपूर्व उत्कृष्ट आनन्द सहित रहता है। जिस ज्ञानके साथ अधीरता व्यवस्थित रहती हो उससे हम अपने स्वरूपको नहीं पहिचान सकते हैं। जो ज्ञान सहज आनन्द लेता वर्त रहा है उससे मैं अपने आपको अनुभव सकता हूँ। ऐसा ज्ञान समाधि भाव से उत्पन्न होता है। समाधि तब होती है जब रागद्वेष क्षीण होते हैं। रागद्वेष क्षीण तब होंगे जब हम रागद्वेष रहित केवल ज्ञाताद्रष्टा निजस्वरूपका श्रद्धान करें, इसही का ज्ञान करें, और इसके ही ज्ञानमें हम रमण करें, तो इसमें समाधि उत्पन्न होगी, सहज आनन्द जगेगा, और उस आनन्द के ही साथ इस ज्ञान के द्वारा अपने आपका अनुभव कर लेगा।

संकटहारी अनुभव—यह जीव प्रति समय अपने को किसी न किसी रूप अनुभव करता रहता है। कोई यों अनुभव करता है कि मैं अमुक घर का हूँ। अमुक वर्णका हूँ। अमुक नामका हूँ, अमुक पोजीशन का हूँ। ये सब अनुभव ससार बढाने के कारण हैं। बजाय इसके ऐसा अनुभव चले कि मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूँ, आनन्दघन हूँ, सबसे निराला हूँ, अपने स्वरूप हूँ। इस प्रकार शुद्ध निज स्वरूप मात्र अपनी प्रतीति बने तो उसमें ऐसा आनन्द प्रकट होता है कि जिससे भव-भवके बांधे हुये कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। इसके लिये हमारा यह यत्न हो कि जो हमने अब तक देखा सुना या भोगा, ऐसे समस्त परद्रव्योंके आलम्बनसे अहित माने। और आहार, निद्रा, भय, मैथुन, परिग्रह इन सज्ञावों मे अपना उपयोग न फसायें। ये अहितरूप ही हैं। मेरा आत्मतत्त्व मेरे शुद्ध स्वरूपका उपयोग ही मेरे लिये हितरूप है, इस तरह की प्रतीति में रहें तो हम निज शुद्ध जीवास्तिकायको पा सकते हैं। समस्त प्रदेशोंका सार और प्रयोजन इतना ही है कि सर्व विकल्प सकल्पोंसे हटकर निज ज्ञानस्वरूपमें अपना उपयोग स्थिर रहे, जिसके होने से सर्व संकट दूर होंगे।

अण्णोण्ण पविसता दिता ओगासमण्णमण्णस्स ।
मेलता वि य णिच्च सग सगभाव ण विजहति ॥७॥

क्षेत्रसंकरता होनेपर भी विविक्तता—अनन्त जीव द्रव्य और उनसे भी अनन्त गुणे पुद्गल द्रव्य एक

धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाश द्रव्य और असख्यात काल द्रव्य ये समस्त पदार्थ अपने स्वरूप चतुष्टयसे है परके स्वरूपसे नही हैं। ये पदार्थ यद्यपि एक ही जगहमे पाये जाते हैं। लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेशपर छहोद्रव्य उपस्थित हैं, यो कहो कि एक दूसरेमें प्रवेश किए हुए हैं। बाह्य क्षेत्रकी अपेक्षा आकाशके उस प्रदेश पर ही सर्वद्रव्य अवस्थित हैं और जब उस ही प्रदेशपर अवस्थित है तो एक दूसरेमे प्रवेश किए हुए हैं। और यहाँ तक कि निमित्त नैमित्तिक बन्धनमे जीव कर्म और शरीर ये विशेषतया एक दूसरेमे प्रविष्ट हैं, इतने पर भी कोई भी पदार्थ अपने स्वभावको छोडता नही है। सभी पदार्थ न्यारे-न्यारे हैं।

पदार्थोंका स्वातन्त्र्य—पूर्व गाथामे यह बताया था कि ये पदार्थ प्रतिक्षण परिणमते रहते हैं तिस पर भी शुद्ध दृष्टि से देखा जाय तो वे नित्य है अनित्य नही, विनाशीक नही, इस ही तरह इस ही कारणसे इन समस्त पदार्थोंमे एकत्वका प्रसग नही होता है। जीव और कर्ममे व्यवहार दृष्टिसे एकत्व है, परस्परमे बधे हुए है, मूर्त हैं, फिर भी परस्परमें एक दूसरे के स्वरूपको ग्रहण नही करते हैं। एक ही जगहमे कोई पदार्थ आ जाय तो उसे सकर कहा करते हैं ऐसा बाह्य सकरता आनेपर भी उस स्थितिमें एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका प्रवेश नहीं है सब अत्यन्त व्यतिकर रहा करते हैं। ऐसे एक ही जगह सब पदार्थ होने से सकर और व्यतिकर की आपत्ति हो सकती है पर यहा यह आपत्ति नही है, क्योकि पदार्थ अपने अपने सत्त्वसे ही रहता है, पर के सत्त्वसे नही।

सक्रिय और निष्क्रिय समस्त पदार्थोंकी परस्पर विविक्तता—इन पदार्थोंमें जीव और पुद्गल तो सक्रिय पदार्थ है, जीव और पुद्गल दोनो एक जगह से दूसरी जगह चल देते हैं, इनमे क्रिया पायी जाती है, किन्तु शेषके चार द्रव्य धर्म अधर्म, आकाश और काल ये जहाँ है तहा ही अनादिकाल से हैं। और अनन्तकाल तक वहाँ ही रहेगे। इन चार द्रव्योंमे क्रिया नही पायी जाती है, ऐसे ये सक्रिय और निष्क्रिय पदार्थ एक ही क्षेत्रमें पाये जाते हैं फिर भी सब एक दूसरे से भिन्न ही है। जैसे आप हम जिस जगह बैठे हैं, जितने प्रदेशमे हमारा आत्मा है उनके प्रदेशमे यह शरीर भी तो हैं शरीर अलग पडा हो आत्मा अलग जगह बैठा हो ऐसा तो नही है। दूध और पानीकी तरह है। जैसे दूध और पानी एक स्थानपर होकर भी भिन्न-भिन्न हैं। ऐसे ही शरीर और आत्मा हैं तो एक स्थानपर, परन्तु शरीर शरीर की जगह है और आत्मा आत्माकी जगहहै। एक ही स्थान में होकर भी परस्परमे अत्यन्त भिन्न हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप त्रिकाल भी नही हो सकता है। ऐसी तो वस्तुकी स्थिति है, किन्तु मोहीजन इस दृढ दुर्गको न समझकर यह एक दूसरे का स्वामी निरखता है, एक का दूसरे पर अधिकार निरखता है। बस यही भ्रमबुद्धि ही कर्म बन्धनका कारण है।

समस्त अर्थोंमे सार तत्त्व—इन द्रव्योके बीचमें सारभूत द्रव्य क्या है ? हम किस पर अपनी निगाह रक्खा करें कि हमे कल्याण मिले, शान्ति मिले, ऐसा सारभूत तत्त्व क्या है। जो कुछ यह दृश्यमान है वैभव समागम परिजन घर ये सब मायारूप स्कध हैं, ये तो स्वयमे ही परमार्थ नही हैं, मेरे लिए तो क्या परमार्थ बनेंगे। जो कुछ दिखता है यह सब मेघ और बिजलीकी तरह चचल है। ये सब एक दिन विघट जायेंगे। जैसे मेघ कितने ही रूप रख लेते हैं- हाथी, घोडा, मकान, इत्यादि, और देखते-देखते ही वह आकार विलीन हो जाता है। तो जैसे ये मेघ क्षणिक हैं, चचल हैं इसी तरह जो कुछ भी यहाँ दिखता है सब चचल है। ऐसे इन दृश्यमान स्कधोमे कोई सार भूत चीज है ही नहीं। धर्म, अधर्म आदिक अमूर्त आदिक पर द्रव्योंसे हमारा कोई व्यवहार चलता ही नही, हम उनपर क्या निगाह करें। केवल हमारे लिए सारभूत शरणभूत पदार्थ है तो वह है निज शुद्ध जीवास्तिकाय, अर्थात् अपने आपका जो अन्त. स्वरूप है, विशुद्ध चैतन्यमय है उस विशुद्धस्वरूपकी दृष्टि करना यही सारभूत और शरण तत्त्व है। यह अपने आपके अन्दर मौजूद है।

सार शरण अनुपम परमात्मतत्त्व—अहा, कैसा यह विलक्षण परमात्मतत्त्व है कि इसे देखने की विधि जिसे मालूम हो सो तो देख सकता है, और जिसे देखने की पद्धति नही मालूम है वह अत विराजमान होने पर भी इस प्रभुता को निरख नही सकता है। जिसे शुद्ध द्रव्यार्थिक नय अथवा शुद्ध पर्यायार्थिकनयसे देखना चाहिए। अपने

आपको जितना अकेला अनुभव करेंगे उतना ही हम प्रभुके मर्ममें पहुँच जायेंगे। अपने आपको इस प्रभुताको इस भगवत् तत्त्वको निरखने की यही एक पद्धति है कि हम अपने को अकेला निरखा करें। उस अकेले की बात नही कह रहे हैं जिसके आगे पीछे कोई नही है, जिसकी कोई पूछ भी नही करता है। वह तो पर्यायदृष्टि से शरीर सहित अपने को निरखता हुआ अकेला कह रहा है, किन्तु अपने आपमें अनादि अनन्त विराजमान जो शुद्ध चैतन्य स्वभाव है उस भगवत् तत्त्वके दर्शन हो सकेंगे। इस प्रभुताके दर्शनमें अनन्त आनन्द बसा हुआ है।

शान्तिका सुगम स्वाधीन उपाय— देखो भैया! कितना सुगम स्वाधीन शान्तिका उपाय है, पर ये राग-द्वेषकी ज्वालाएँ यह मोहका पक कलक इस प्रभुताके ऊपर आवरण रूप पडा हुआ है जिन आवरणोंसे यह स्वय प्रभु होकर भी अपने आपकी प्रभुताका दर्शन नही कर पाता है। इसके दर्शनकी विधि यही है, अपने को शरीर सहित न अनुभव करो। मैं शरीरसे न्यारा हूँ। जो रागद्वेष विचार विकल्प वितर्क उठ रहे हों उन रूप अपनेको न तको। मैं उन विचार वितर्कोंसे न्यारा हूँ। ऐसा अपने आपके एकत्व स्वरूपको देखो। जितना अपन आपको अकिञ्चन अकेला निरखोगे उतना ही अपना ही अपने आपके मर्मको पावोगे। यह शुद्ध जीवास्तिकाय परमात्मस्वरूप ज्ञान और आनन्दसे भरपूर है। इसे स्वसम्वेदन ज्ञानसे ही जाना जाता है। जानने वाला यह मैं जब इस जानने वालेको ही निरखने लगूँ उसे कहते हैं स्वसम्वेदन ज्ञान, ज्ञान ज्ञानके ही स्वरूपको जानने लगे तो वहाँ जानने वाला भी ज्ञान रहा और जो जाननेमें आया वह भी ज्ञान रहा यों ज्ञान-ज्ञान दोनों ज्ञाता ज्ञेय हो जानेसे एक निर्विकल्प अवस्था हो जाती है। स्वसम्वेदन ज्ञानसे ही यह आत्मतत्त्व जाना जाता है, इसीको कहते हैं शुद्ध परमपारिणामिक भावको ग्रहण करने वाला उपयोग।

शाश्वत स्वभावका आश्रयण—जो हममें परिणतियां होती हैं उनपरिणतियो को न निरखकर उनपरिणतियोंका आधारभूत जो एक स्वभाव है उस स्वभावका उपयोग करें उस उपयोगके द्वारा शुद्ध जीवास्तिकाय सम्विदित होता है। यह स्वसम्वेदन ज्ञान जिस समय हो रहा होगा उस समय यह जीव समतारससे भरपूर रहा करता है। उस परम समतामें शुद्ध आत्मीय आनन्द रहा करता है। यह परम आनन्द निर्विकल्पदशामें उत्पन्न होता है। इस स्थितिमे किसी प्रकारका सकल्प विकल्पकी तरग वहा नही उठती है।

द्वैतबुद्धिकी तरङ्ग—यह आत्मा स्वभावत. शान्त है, किन्तु इसमें जैसे ही कोई विकल्प और वितर्क की कल्लोल उठी कि बस यही फिर त्रस्त और सक्लिष्ट हो जाता है। ये सकल्प विकल्प उठा करते हैं पर द्रव्योंका आलम्बन करनेसे। खूब अनुभव कर लीजिए। अपने आत्मतत्त्वके सिवाय किसी भी पर द्रव्यका जब हम आलम्बन करते हैं तो उस उपयोग मे ही ऐसी खासियत है कि इससे विकल्पजाल उत्पन्न हो जाते हैं। यह द्वैत, भेदकर दिया ना। मैं कौन हूँ और किसी दूसरे पर दृष्टि गयी। इस द्वैतभावमे विकल्प हुआ, कष्ट हुआ, यह सब प्राकृतिक बात है।

पराशाका क्लेश—यह जीव पर द्रव्योंका आलम्बन करता क्यों है? इसको किसीन किसी प्रकार के इन्द्रिय के विषय अथवा मनके विषयोंमे वाञ्छा रहा करती है। मनका विषय है ख्याति, लाभ, पूजा का मेरा बढ़प्पन बढ़े, सारी दुनिया मुझे जान जाये, यह कितनी मोहकी दृष्टि है, अरे यह सारी दुनिया का मानव समूह स्वय मायामयी है, विनाशीक है, दुखी है, कर्मोंका प्रेरा है। इन दुःखी और भिखारी पर द्रव्योमे मोह रखने वाले इन जीवोंमे मैं अच्छा कहलाऊ ऐसा भावका क्या अर्थ है? जैसे कोई कहे कि मैं बदमाशोंका बादशाह कहलाऊ तो यह अच्छी भावना तो नही है? पूछ होगी तो यह तो कोई भली बात नहीं है। इस ही तरहसे कर्मोंके प्रेरे जन्म मरणके दु खसे दु खी निरन्तर विकल्प की ज्वालावोसे जल रहे इस ससारके प्राणियोंमें मैं कुछ अच्छा कहलाऊ इस प्रकार की इच्छा होना यह कितनी बडी कलुषता है। यही है मनका विषय। अब सोच लीजिए कि मनका विषय भी कितना गदा और भूलमें भटकाने वाला विषय है।

मनका उद्वेग—मोही जीव निरन्तर यह चाह रहे कि मुझे अमुक चीजका लाभ हो जाय, अमुक चीज प्राप्त

हो जाय ऐसी लाभकी बातोंका बहुत-बहुत विचारना यहही तो मनका विषय है, पर सोचो तो सही तेरा आकाशवत् अमूर्त चैतन्यस्वभाव, उसमें किसी पर वस्तुका प्रवेश भी हो सकता है क्या ? अनहोनी बातको होनी बनानेकी इच्छा करना यह तो बुद्धिमानी नही है, और देखिये इन्द्रियके विषय जिन विषयोंको देखो उनकी ही तो चाह होती है अथवा जिन विषयोंको भोगा है उन विषयोंकी ही तो चाह होती है ऐसी इष्ट श्रुत और अनुभूत विषयोंकी जो वाञ्छा है, इसही कारण कृष्ण, नील, कपोत आदिक जो खोटे परिणाम हैं उन परिणामोंसे प्रेरित होकर यह जीव परद्रव्योंका सहारा तकता है और जहां इस जीवने अन्त श्रद्धासे किसी परद्रव्यका सहारा तका कि बस यह दु खी हो जाता है । इन सब क्लेशजालों से छूटनेकी सामर्थ्य एक सम्यक्त्व मे है ।

सम्यक्त्वका प्रताप—सम्यग्दर्शन होनेपर अनन्त कर्मोंका बन्धन शिथिल हो जाता है । सच पूछो तो जितनी स्थितियाँ कर्मोंकी और जितने अनुभाग कर्मो के सम्यक्त्व होनेपर खिर जाते हैं इनके खिरने पर फिर तो ये बहुत हल्के बोझ वाले हो जाते हैं, यो समझिये कि एक सम्यग्दर्शन प्राप्त करने पर हमने ९९ प्रतिशत काम कर लिया है, अब केवल एक प्रतिशत काम और रह गया है । किसी भूली भटकी स्थिति मे सही मार्गकी झलक आ जाय तो वह सबसे बड़ा कार्य है । अब चलनेका रहा तो चला लिया जायगा ।

सम्यक्त्वके प्रतापपर एक दृष्टान्त—एक दृष्टान्तमे सद्दर्शनका प्रताप सुनिये । कोई पुरुष किसी गावको जा रहा था । शाम हो जानेसे उसे सही रास्ता न मिला, वह भटक गया अधेरी रात्रिमे एक जगलमे फस गया । अब वह मुसाफिर ९, १० बजेके लगभग मे विचार कर रहा है कि मैं बहुत फस गया हू । यदि बढ़ता हो चला गया तो भूल बढ़ती ही जायगी । वह वही ठहर गया । हिम्मत बना ली, मर जायेंगे तो मर जायेंगे, अथवा जो दशा होनी होगी हो लेगी करीब १२ बजे रात्रिको क्षण भरको एक बिजली चमकी । उस क्षणिक बिजली की चमकमे उसे दिख गया वह रास्ता जो एक मुख्य मार्ग था । उस मार्गके देखते ही उसके मनमे बड़ा सतोष आ गया । फसा है यद्यपि जगलमे और सिर्फ एक मार्गकी ही झलक तो हुई, उस मार्गकी झलक के कारण उसे पूर्ण सतोष हो गया । अब उसे डर नहीं रहा । चिन्ता शोक नही रहा । उसे यह निर्णय हो गया कि तीन चार घटे और रह गये हैं । रात्रि गुजरने दो, इस ही रास्तेसे चलकर सुबह पहुँच जावेंगे । तो आप सोचो कि क्षण भरकी झलक कितना बड़ा काम देती है । ऐसे ही इन इन्द्रिय विषयो से, मनके विषयोसे निवृत्त होकर हम अपने आपके स्वरूपकी कुछ क्षण झलक कर पायें तो यह कितना काम देगा ।

सम्यक्त्वमे आशयकी स्वच्छता—सम्यक्त्वका अचिन्त्य प्रभाव है । सम्यक्त्व बिना ही यह जीव अब तक संसारमे भ्रमण करता चला आया है । सम्यक्त्वमे यही तो एक विश्वास बनता है । सर्व परिपूर्ण हैं, सर्व अपने द्रव्यत्वगुणके कारण अपने आपमें निरन्तर परिणमन किया करते हैं । सभी पदार्थ अपने आपके ही कर्ता और भोक्ता होते हैं । इसी विधिसे ही सर्व पदार्थोंका सत्व बना हुआ है ऐसी स्थितिमें कहा गुंजाइस है कि कोई पदार्थ किसी का स्वामी बन जाय, कर्ता भोक्ता बन जाय । यह स्वरूपका किला बड़ा मजबूत है । इसमें विघटन नही हो सकता है । ऐसे एक इस स्वतत्र स्वरूपकी श्रद्धामें यह सम्यक्त्व हो जाता है । सम्यक्त्वसे वास्तविक मायनेमें जैनका प्रारम्भ हुआ । सही दृष्टि से यह कबसे जैन कहलायेगा ? जबसे इसे सम्यक्त्व हो । सम्यग्दृष्टिको चिन्ता आकुलता व्याधि शोक ये कुछ नहीं हुआ करते हैं । वह अपनेको अकिञ्चन परिपूर्ण सुरक्षित निरख निरखकर अन्त प्रसन्न रहा करता है ।

स्वरूपदर्शनकी बाधाहरता—इस गाथा में वस्तुका यथार्थ स्वरूप बताया गया है, जिसको देखनेसे जीवको कोई बाधा नहीं रहती है । देखो ये अनन्तानन्त द्रव्य एक ही जगह भी रहें, परस्पर मे एकरता भी हो जाय तो भी अपने अपने प्रतिनियत स्वरूपसे यह च्युत नही होता है । अपने इस अमिट स्वरूपको अपनेमें ही लिए रहा करता है, एक दूसरे का स्वरूप ग्रहण नही करता है । इस चीजको अपने आपपर लाजमाय, जितने कुछ ये पिण्ड हैं, जिसे यह मोही प्राणी मैं मैं कहा करता है इस पिण्ड मे इस व्यञ्जनपर्याय में जीव तो एक हुआ और इसके साथ अनन्ते तो पुद्गल परमाणु लगे हैं और अनन्ते कर्मोंके परमाणु लगे हैं । इस समय एक के साथ ये अनन्तानन्त द्रव्य चल रहे हैं, निपट रहे

हैं जिससे यह ससारमे रुल रहा है। लेकिन जब इसे सही तत्त्वका बोध हो जाय तो ये अनन्तानन्त भी पुद्गल परमाणु इसके साथ लगे हुए यो शोभा देगे जैसे किसी समर्थ हाथीके पीछे छोटे-छोटे अनेक कुत्तोंके बच्चे भौंकते हैं। वह हाथी गम्भीर ही रहता है, उसको रच भी क्षोभ नही होता है, वह अपनी ही धुनमे अपनी गज चालसे चलता ही जाता है। ऐसे ही, ज्ञानी जीव किसी ससार की किसी परिस्थिति तक इसके साथ अनन्त आपत्तिया और दंदफंद पक्ष लग रहे हैं, किन्तु जिसने अपनी ज्ञान गम्भीरता का निर्णय किया है वह गम्भीर और धीर होकर अपने ही स्वरूप पथपर चलता जाता है।

ज्ञानपद्धति—भैया! अपना कर्तव्य है कि हम जिस किसी को भी जानें, इस ढगसे जानें कि एक स्वतन्त्र पदार्थ है, वह अपने सत्त्वके कारण परिणमता रहता है, इसमे मेरा स्वामित्व नही है। इस तरह वस्तुकी स्वतन्त्रताको निरख-निरखकर जो अपना ज्ञानबल पुष्ट किया करता है ऐसा पुरुष ही परम समतामें आता है। इस समतारसका स्वाद लेकर जो एक स्वसम्वेदन ज्ञान बना है उस ज्ञानसे यह भरपूर और उस ज्ञानसे गम्य अपने आपको निरन्तर अनुभवता रहता है। इससे बढ़कर धर्म करनेका अन्य व्यवसाय नहीं है। उस अपने आपमें विराजमान अपने ही चैतन्यस्वरूपको निरखना, यही वास्तविक मायनेमें धर्मपालन है और इस धर्मपालन फलमें अवश्य ही निर्वाण प्राप्त होगा।

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरुवा अणतपज्जाया।
भगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का ॥८॥

अस्तित्वका स्वरूप—इस गाथामें अस्तित्व का स्वरूप कहा गया है। अस्तित्व कहो या सत्ता कहो एकही अर्थ है, जिसे हिन्दीमें है कहते हैं। है बना सर्व पदार्थोंमें मौजूद है। है का जितना भाव है उस दृष्टिसे सब पदार्थोंमें वही बात है। है में है का रहना सबमे एक समान है। उस है मे जो विशेषता आता है अर्थात्‌अमुक पदार्थ अमुकरूप है, पदार्थ इस प्रकार परिणमने वाला है इस तरह है में जो और विशेषताएँ होती हैं वे अन्य गुणोंके कारण होती हैं। "है" सब पदार्थोंमें हैं और एक ही वस्तुके समस्त गुणोंमें है, इसी कारण सत्ता सर्वरूप है। कहाँ सत्ता नहीं है। जो है सो 'है' ही तो हैं। है की दृष्टिमे सब द्रव्य एक समान हैं। जैसे हम जीव जीवमें ही विशेषता जानना चाहते है तो शुद्ध यह सिद्ध भगवान है पर जीवदृष्टिसे सिद्ध ससारी सब एक चितस्वरूप हैं। इसी प्रकार जीव और अजीवमें हम 'है पना' हो जावेंगे तो परमाणुका 'है पना" और सिद्ध का "है पना" सभी एक समान हैं।

अस्तित्वका सादृश्य.—हम आप चूकि कर्मोंके प्रेरे हैं, इनसे छूटना चाहते हैं, शान्तिलाभ लेना चाहते हैं इस कारण हम आपकी दृष्टिमें सिद्धप्रभुका महत्व है, सिद्ध अनन्त सुखी है, परिपूर्ण सुखी हैं, यों सिद्ध प्रभु का महत्व है, किन्तु एक परमाणु और सिद्ध और सभी एक सामान्यरूपसे देखा जाय, अस्तित्वकी दृष्टिसे देखा जाय तो वह सब एक ही समान है। परमाणु भी है, सिद्ध भी है और जितने भी, शुद्ध द्रव्य है वे सब ही हैं। इस दृष्टिसे सबकी बराबरी हैं। है पना शुद्ध हो, अशुद्ध हो, समस्त पदार्थोंमें एक रूप रहता है इसकारण सत्ता सर्व विश्वरूप है।

अस्तित्वकी सर्वव्यापकता—जो लोग ऐसा मानते हैं कि ब्रह्म सर्वव्यापक हैं, जो कुछ दिखते हैं चेतन अचेतन पदार्थ ये सब वही एक ही हैं ब्रह्म, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। यह दृष्टि उनके एक सादृश्य अस्तित्व मात्रको लेकर होती तो इसमे कोई अड़चन न थी। यदि कोई ब्रह्मनामक व्यापक एक अर्थक्रियाकारी सत् मान रहे हों, अलग एक व्यक्तिका रूप और उसे सर्वव्यापक तथा इन दृश्यमान परिस्थितियों के रूपमें उखड़ने वाला मानते हो तो वहां विरोध है, परन्तु सत् ही यदि ब्रह्म है तो इसमें कोई विरोध नी है। समस्त विश्व एक सद्ब्रह्मरूप हैं। सत्त्वसे कुछ न्यारा क्या है।

अस्तित्वकी एक रूपता—यह सत्ता अनन्त पर्यायों रूप है। जितने भी भूतकाल के परिणमन हुये हैं तथा भविष्यकाल के परिणमन होंगे समस्त परिवर्तनरूप हैं, सब परिणनों में यह अस्तित्व बराबर बना रहता है। यह अनन्त

पर्यायोंरूप है। वहां भी तिर्यक्रूप से देखा जाय तो जितने भी पदार्थ है उन पदार्थों में प्रत्येक गुणमें परिणमन हो रहे हैं इस तरह यह सत् अनन्त पर्यायोंरूप हैं यह सत्ता किस रूपमे कहां मिलेगी, इसका स्पष्ट रूपक किसी एक व्यवस्था मे नहीं नियत किया जा सकता है। यह सत्व ऐसे ही बिना ही परिणमें, किसी पदार्थमें रह जाता हो सो रह नही सकता। सत्व है तो उसमें ये तीन अवस्थाएँ अवश्यभावी हैं कि वे किसी नवीन परिणमनरूप मे होवें और पुराने परिणमन के रूप मे विलीन हो जायें। तथा समस्त परिणमनो का आधारभूत वही एक रहा करे। इस प्रकार उत्पादव्यय ध्रौव्यरूपसे यह सत्ता प्रवर्तती है इन सब दृष्टियों से देखा जाय तो सारा विश्व एक सत्तात्मक है। यहां प्रदेशोंपर दृष्टि न दो, व्यक्ति पर दृष्टि न दो, किन्तु जो सत्वका स्वरूप है उस स्वरूपपर दृष्टि देकर निरखो तो स्वरूपसे कोई पदार्थ किसी पदार्थ से भिन्नता नही रखते है। सर्वसत् स्वरूप हैं। यो यह सत्ता एक रूप हैं।

सत्तामे सप्रतिपक्षता—सत्ता सम्बन्धमे अब तक जितनी बातें कही गयी हैं उन सब बातोंसे उल्टा स्वरूप भी यह रखता है अर्थात् सत्ता प्रतिपक्ष सहित है। जैसे बताया गया था कि सत् सर्व पदार्थों में है तो उसकी यह भी एक विशेषता है कि वह सर्व पदार्थों में एक नही है, किन्तु प्रत्येक पदार्थमे भिन्न भिन्न सत्ता है। दूसरा विशेषण बताया था कि यह सत्ता विश्वरूप है तो उससे उल्टी बात भी पाई जाती है कि सत्ता व्यक्तिगत भी है। यदि व्यक्तिगत सत्ता न रहे तो कोई काम बन ही नहीं सकता। जैसे बोझ ढोना, व्यापार आदिक करना इन सबको मनुष्य जाति करती है या व्यक्तिगत मनुष्य किया करते हैं? और उन सब करते हुये मनुष्यों को समुदाय रूपमें कल्पना से हम मनुष्य जाति मान लेते हैं, तो व्यक्तिगत सत्त्व है। तीसरे विशेषण मे बताया था कि सत्ता अनन्त पर्यायात्मक है। लेकिन वे प्रत्येक पर्यायें चूंकि अपना-अपना स्वरूप न्यारा रखती है इसलिये वे व्यतिरेकी हैं इस कारण सत्ता एक पर्यायरूप है। सत्ताका चौथा विशेषण कहाकि सत्ता उत्पादव्यय ध्रौव्यस्वरूप है, लेकिन इसमे भी एक-एक अंशका जो स्वरूप है उस स्वरूप पर दृष्टि देकर निरखा जाय तो ये तीन स्वरूप हैं, इस कारण सत्त्व भी प्रत्येक स्वरूपमे प्रत्येक स्वरूप हैं। ५वें विशेषण में कहा था कि यह एक है, तो इससे उल्टी बात भी है कि सत्ता अनेक हैं, सत्ता अनेक न हो तो प्रतिवस्तु में परिणमन और अनुभवन हो ही नही सकता। इस प्रकार सक्षेपरूप में इस गाथामें अस्तित्वको ही कहा गया है।

सत् की नित्यानित्यात्मकता—अस्तित्व नाम सत् का है। सत्के भावको सत्ता कहते हैं। न केवल नित्य हो वह सत् है। केवल क्षणिक हो वह सत् है, किन्तु नित्यानित्यात्मक उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक जो वस्तु है उसे सत् कहते हैं, क्योंकि सर्वथा नित्य वस्तु हो तो चूंकि सर्वथा नित्य माना है अर्थात् अपरिणामी माना है तो उस पदार्थ में क्रमभावी कोई बात हो ही नही सकती। जब क्रमभावी परिणमन न होगा तो उसमेविकार कैसे होगा, अर्थात् काम कैसे होगा। कोई भी पदार्थ बिना कामके नही है। लोकव्यवहार मे भी कहते हैं कि जो भी चीज है वह बिना कामके नही है, किसी न किसी काममें आती है। चाहे उसका उपयोग हमें न मालूम हो। यह तो है लौकिकबात पर वास्तविक बात यह है कि जो भी वस्तु है अपनी अर्थक्रिया प्रतिसमय करती ही रहती है। यदि परिणमन न हो, अर्थक्रिया न हो तो वह पदार्थ ही नही रह सकता। यो सर्वथा नित्य वस्तुको सत् नहीं माना। सर्वथा नित्य वस्तु है नही, ऐसे ही यदि सर्वथा क्षणिक माना जाय तो जो सर्वथा क्षणिक है उसमें अब प्रतिभिज्ञान हो ही नही सकता। फिर उसमे एक सतानपना कैसे रहेगा। प्रत्यभिज्ञान कहता है यह वही वस्तु है जो पहिले थी। इस प्रकार का पूर्व और अपर पर्यायो मे एकत्वका भान करना, ज्ञान करना सो प्रत्यभिज्ञान है। हम आपको रोज देखते हैं आप वही हैं जो कल थे और वैसा ही व्यवहार कर के सारी व्यवस्था बनी हुई है। यदि सर्वथा क्षणिक हो बात- तो आप कल कैसे भी थे, आज आप अत्यन्त भिन्न हैं, तो क्या व्यवस्था बनेगी। क्या व्यवहार होगा, फिर एक सतानपना ठहर नहीं सकता। सर्वथा क्षणिक वस्तु मानने पर प्रत्यभिज्ञान न होने से एकसतानपना नही रहता है, इस कारण प्रत्यभिज्ञान का कारणभूत कोई स्वरूप अवश्य है यह मानना चाहिये, और क्रमसे प्रकट होने वाली पर्यायोका भी स्वरूप अवश्य है जिससे कि नवीन पर्याय उत्पन्न होती है और पुरानी पर्याय विलीन होती है।

सत् की उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकता—उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये तीनो लक्षण पदार्थमें एक ही समयमें रहा करते हैं। पदार्थ मे ध्रुवता तो निरन्तर ज्ञानमे आना सुगम ही है कि यह सदा रहा करता है। अब इसमें प्रति समयमें एक एक नवीन-नवीन दशा हो जाती है। यह सत् प्रतिसमय नवीन परिणमनात्मक चलता रहता है। अब उस नवीन परिणमनमे ये दोनों बातें एक साथ गर्भित है। नवीन पर्याय का उत्पाद और पुरानी पर्यायका विलय, जैसे ८ बजकर एक समयके बाद जैसे ही दूसरा समय लगा तो ८ बजकर दूसरा समय में उत्पाद और ८ बजकर पहिले समयकी परिणतिका विलय येदोनो एक साथहैं जैसे अन्तिम सयोगऔर वियोग येदोनो एक साथ हैं। जैसेकिसीको आपस्टेशनपहुचाने जायें और वहस्टेशनसे आगे चला गया। आप स्टेशनसे लौट आये। आपसे पूछा जाय कि तुम्हारा उससे वियोग कहा पर हुआ था ? तो आप कहेंगे कि स्टेशन पर हुआ था। अरे स्टेशन पर तो सयोग था, वियोग कहा से हो। अंतिम सयोग और वियोग दोनों एक ही बात है जैसे मिट्टीका एक खिलौना बनवाया या एक दिया ही बनवाया तो दिया बनाने से पहिले जैसा पिंड रूपमे थी वह मिट्टी, दिया बनाने पर दियाका तो उत्पाद होगया और उस मृत्पिण्डका विनाश हो गया। ये दोनों एक साथ हुए। जैसे सीधी अगुली को टेढी किया जाय तो टेढ़ीका उत्पाद हुआ, सीधा का विलय हुआ। ये दोनो एक साथ हुए। क्या कभी ऐसा होता कि अगुली पहिले तो सीधी मिट जाय, इसके बादमें फिर टेढ़ी हो, ऐसा कोई कर सकेगा क्या ? अरे टेढी होने का ही नाम सीध मिटना है।

जीवन मरणकी तरह उत्पाद व्ययका एक समय—किसी जीवके मनुष्य आयु चल रही है। मानो यह मनुष्य आयु अमुक नियत दिनमें ठीक १० बजे तक चलेगी तो १० बजे तक तो मनुष्य आयुका उदय है और १० बजकर पहिले समयमें मानो देव आयुका उदय आ गया तो हमे यह बतलावो कि यह मनुष्य १० बजे मरा या १० बजकर पहिले समयमें मरा यदि यह कहा जाय कि वह मनुष्य १० बजे मरा तो गलत बात है। १० बजे तो मनुष्य आयुका उदय चल रहा है। मनुष्य आयुका उदय रहते सन्ते मनुष्यका मरण कहा जा सकता है क्या ? १० बजकर पहिले समयमे जब कि वह देव आयुके उदयमे है उस समय मनुष्यका मरण कहलायेगा। तो नवीन आयुका उदय हो और पुरानी आयुका क्षय हो इन दोनोंका एक समय है। यो अनेक दृष्टान्तोंसे समझते जायें कि उत्पाद और व्ययका एक ही समय है, इसमे अपेक्षा भाव है ना। उसही पर्यायका उत्पाद और उसही पर्यायक विनाश एक समयमें नहीं कहा जा रहा है, किन्तु नवीन पर्यायका उत्पाद और पुरानी पर्यायका विनाश में दोनों बातें एक समयमें हुआ करती हैं। यों उत्पाद व्यय और ध्रौव्य इन तीनों अवस्थावोंको एक साथ धारण करने वाला पदार्थ जानना चाहिए। इससे यह जानो कि सत्ता उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है।

सत्ता और सत्तावानमे अभेद—सत्ता और सत्तावानमें दो पदार्थ कुछ अलग-अलग नही है। जैसे मेरा अस्तित्व और मैं वे दो न्यारी न्यारी चीजें नही है। यदि दो न्यारी न्यारी चीजें हो तो ये मेरी हो ही नहीं सकती। जैसे लोग कहते हैं कि यह मेरा पैन हैं। ये दोनो बातें विरुद्ध हैं। कैसे यह पैन मेरा है जब कि यह मैं और पैन यह एक ही बात नही है। अरे मैं चेतन हूं यह पैन जड है, भिन्न-भिन्न पदार्थ है। और, जब भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं तो फिर मेरा क्यों कह रहे हैं। वह भिन्न कलम मेरा हो ही नही सकता। जो मेरा है वह मुझसे अभिन्न है। जो मुझमें अभिन्न नही है वह केवल कहने का और कल्पनाका ही मेरा है। तो सत्ता और सत्तावान में दोनों न्यारे नही हैं, किन्तु भाव और भाववानका भेद किया जा रहा है। जैसे इन्सानियत और इन्सान में क्या दो अलग-अलग चीजें सत्त है, एक ही चीज है, सिर्फ भाव और भाववानका इसमें एक भेद बताया गया है समझने के लिए, यों भाव और भाववान कथञ्चित् एक स्वरूप है, इस कारण वह उत्पादव्ययध्रौव्य रूप वह विलक्षणात्मक सत्ता समस्त वस्तुवोमे सदृश्यता का सूचक होनेसे वह एक है। में क्या अन्तर है ?

सत्त्वसामान्य और सत्त्वविशेष—जैसे कहा जाय कि जरा एक मनुष्यको लाना, तो लाने वाला किसी भी मनुष्यको लाये, बूढ़ेको ला दे तो भी यह नहीं कह सकते कि इसे तू क्यों लाया। अरे ! तुमने मनुष्य कहा था, यह

कहेंगे कि एक पर्याय रूप हैं।

सत्ताकी सप्रतिपक्षताका मुख्य आधारः— सत्ता दो तरह की होती है एक महासत्ता और एक आवान्तर सत्ता। सत्ता मायने है पन। जैसे यह वस्तु है तो है के मायने क्या हैं, है के मायने सत्ता, मौजूदगी। तो सत्ता दो तरह की है एक महासत्ता एक आवन्तर सत्ता। सब पदार्थों में यह पदार्थ है है, केवल है की ही दृष्टि रक्खी जाय तो वह है, सब पदार्थोंमे है। उस सामान्य 'है" का नाम महासत्ता है, और एक-एक चीज, यह पुस्तक है, ऐसी एक एक चीज जो है वह आवान्तर सत्ता है जैसे पुस्तककी सत्ता पुस्तकमे ही है, चौकी मे नहीं है और सत्ता सामान्य सबमें है और यह बालक है, यह जवान है, यह बूढा है, इस तरह जो विशेष सामान्य है, वह सबमें नहीं है। समस्त पदार्थोंमे रहे ऐसी सत्ता तो यह महासत्ता कहलायेगी। माने सदृश्य अर्थ तत्वकी सूचना देती है महासत्ता और प्रत्येक पदार्थ मे उस ही की जो सत्ता है वह पदार्थके स्वरूपका सूचक है। वह आवान्तर सत्ता है।

दृष्टिकी सामान्यविशेषरूपता एक मनुष्यके बारेमें जो जवान है, उसके बारेमे हम दो दृष्टि लगा सकते हैं जिस दृष्टिमे सब मनुष्य बराबर हैं यहा। और एक यह जवान है, बलशाली है, पुष्ट है ऐसी एक जवान की भी सत्ता लगा सकते हैं। अब इतनी दृष्टिमे उस मनुष्यके बारेमें दो तरहकी सत्ता समझमे आयी, एक मनुष्य सामान्य और एक जवान सामान्य। तो मनुष्य सामान्य कहकर जैसा है समझमे आया है ऐसा है जवानमे नहीं है और जवान मनुष्यमें जैसा है समझ में आता है वैसा सामान्य मनुष्यमे नहीं है। तो सामान्य मनुष्यकी सत्ता विशेष मनुष्यकी असत्ता उस ही मे है। विशेष मनुष्यकी सत्ता और सामान्य मनुष्यकी असत्ता उस एक मे है। यों समझिये- जैसे मिट्टीका घड़ा बनाया, उसमे जो मिट्टीका ढग होता है वह तो सामान्य है और जो घडेका ढग है वह है विशेष। तो घडेका ढग मिट्टीके ढग में नहीं है, मिट्टीका ढग घडेके ढगमें नहीं है यों वही चीज है भी है और नहीं भी है। महासत्ता आवान्तर सत्ताके रूपसे असत् है और आवान्तर सत्ता महासत्ताके रूपसे असत् है। इस तरह सत्ताका प्रतिपक्षी असत् हुआ।

सत्तामे त्रैलक्षण्यकी सप्रतिपक्षता—अब त्रिलक्षणमें देखिये। पदार्थ नवीन पर्यायसे उत्पन्न होता है और पुरानी पर्याय उसमे विलीन होती है, और पदार्थ वही का वही रहता है। जैसे घडा है, फोड़ दिया, खपरियाँ बन गयी तो खपरियों का तो उत्पाद हुआ और घडेका विनाश हुआ और मिट्टी वही रही। यह विषय कठिन है पर जैन दर्शन का तो एक परिज्ञान निचोडरूप यही तत्त्व है जो सर्वत्र न मिलेगा। पदार्थ का स्वरूप सही जानने मे न आये तो आपको शान्तिका उपाय नहीं मिल सकता। मोह हटानेका उपाय एक सही ज्ञान है। सही ज्ञानके बिना आप कितने ही उपाय करलें मोह नहीं मिट सकता है।

सम्यग्ज्ञानके अतिरिक्त अन्य उपायोमे मोहक्षयकी असफलता—जैसे कोई चाहे कि हमारा स्त्री पुत्र से अधिक मोह है तो मैं ऐसी लडाई छेड़ दू कि हमारा मोह ही मिट जाय। जब दिल खट्टा हो जायेगा तो मोह दूर हो जायगा। तो इससे भी मोह दूर न होगा। प्रथम तो उस स्त्री पुत्रसे भी मोह दूर न होगा, और ढगसे उसके बारेमे कल्पना जगेगी। मोह की तरग राग भी है और द्वेष भी है। मोहसे केवल राग ही होता हो सो नहीं। मोहसे द्वेष भी होता है। तो उस द्वेषका कारण मोह है और यह मोह द्वेषको बढायेगा रागको न बढ़ायेगा, इतना ही अन्तर आयेगा। किसीसे झगडा बनने से इतना अन्तर आयगा कि उसका मोह द्वेष के रूपमें होता है, रागरूप नहीं, पर झगड़ेसे मोह न मिट जायगा। दूसरी बात यह है कि झगडा बननेसे कदाचित् एक पदार्थसे मोह न मिट जाय तो अन्य पदार्थ मे मोह चलने लगेगा, क्योकि अज्ञान बसा हुआ है। मोहका मिटाना सिवाय सम्यग्ज्ञानके किसी उपाय से हो नहीं सकता है।

मोहक्षयमें ज्ञानका सहयोग—मोह मिटानेमे इतनी ही दृष्टि तो चाहिए कि यह पदार्थ पूर्ण स्वतन्त्र है। उसका गुण, उसका परिणमन, उसकी शक्ति, उसका प्रभाव, उसका स्वामित्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सब उसमें ही होता है। सभी पदार्थ अपने स्वरूपरूप हैं, तब त्रिकाल भी मेरे भी करनेसे दूसरा कुछ बनता नहीं तो फिर मेरा कुछ

क्या बनता या बिगडता है।

दवियदि गच्छदि ताइ ताइ सब्भावपज्जयाइ ज।
दविय त भण्णते अराण्णभूद तु सत्तादो ॥९॥

क्लेशविनाशका कारण स्वरूपरिच्छेदन—जीवोको जो दुःखका कारण है उस कारण को मेटनेकी परम आवश्यकता है। दुःखका कारण क्या है ? मोह। परपदार्थ दुःखका कारण नही है, परपदार्थ अपनी सत्तामे है, अपनी परिणतिमे है, अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है, उससे मुझमे क्या आयगा ? वह मुझमे क्या परिणमन करता है ? कोई परपदार्थ किसी दूसरे का परिणमन नही करता, परतु परवस्तुवोके सम्बन्धमे जो कल्पना जगती है, मोह जगता है, बस यह ही अज्ञानभाव दुःखका कारण है। तो इस मोहको मिटाया कैसे जाय ? बिल्कुल सीधा उत्तर है। पहले यह बताओ कि मोह होता क्यो है ? मोह नाम किसका है ? मोह नाम है परपदार्थमे अपना लगाव रखना। तो बस उत्तर हो गया। मोह मिटाना है ना, तो परपदार्थोमे अपना लगाव न रखो, मोह मिट गया। परपदार्थोमे लगाव न रखें—इसकी तरकीब क्या है ? इसकी तरकीब यह है कि यह ज्ञानमे लायें कि परकी सत्ता अलग और मेरी सत्ता अलग, पर मेरा कुछ नही और मैं परका कुछ नही, यह समझ हो तो मोह मिटेगा। यह समझ कैसे हो ? इसके लिए पदार्थोके स्वरूपका परिचय बनायें। इससे पहली गाथामे सत्ताके सम्बन्धमे बात चली थी। सत्ता सब पदार्थोमे है; सर्वरूप है, सर्वपर्यायोमे है, प्रतिपक्षसहित है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमे है, सो कही वह सत्ता पदार्थसे अलग चीज नही है। सत्ताका वर्णन करना पदार्थका ही वर्णन कहलाता है। सत्तासे अलग गुण मानने वाले योग आदिक है जो सत्ताके सम्बन्धसे पदार्थको सत् मानते है। पर ऐसा नही है। सत्ता और पदार्थमे अभिन्नता है, भिन्न दो चीजे नही है। जैसे बोरेमे गेहू या चने वगैरा भरे हो ऐसी कही पदार्थमे सत्ता पडी हो सो बात नही, क्योकि सत्ताका सम्बन्ध लगानेसे पहले पदार्थ है या नही, यह बताओ। अगर सत्ताका सम्बन्ध जोडनेसे पहले पदार्थ है तो अब सत्ताके सम्बन्ध की जरूरत क्या रही ? वह तो है ही और अगर नही है तो क्या असत्मे सत्ता जोडी जा सकती है ? फिर तो खरगोशके सीग और आकाशके फूल आदिकमे भी सत्ता जुड बैठेगी, सो ये भी सत् बन जायेंगे। तो सत्ता पदार्थसे अलग नही। जब पदार्थका वर्णन किया तो सत्का वर्णन हो गया। पदार्थका सही-सही स्वरूप जान लेंगे तो मोह मिट जायगा।

अज्ञानान्धकारमें मोहलीला—यह अज्ञान क्यो बसा है जीवको कि जो घरमे बालक हुआ है उसकी तो शकल सूरत बडी इष्ट लगती है और ऐसा मान लेते कि यह तो मेरा है, उससे भी अच्छे बालक हो तो उनके प्रति भाव ही नही जाता कि ये मेरे हैं। ऐसा क्यो है ? मोहवश। अज्ञान है, स्वपरका विवेक नही है, पदार्थोके स्वरूपका भान नही है। एक सेठके

यहाँ नई नौकरानी आयी। उस सेठका बच्चा एक स्कूलमे पढता था। उस दिन वह बच्चा अपना खाना न ले गया। उसी गांवकी वह नौकरानी थी तो सेठानीने कहा उस नौकरानीसे कि जावो यह मेरा डिब्बा ले जावो, इसमे खाना रखा है, इसे मेरे बच्चेको अमुक स्कूलमे दे आवो। तो नौकरानी बोली कि हम तो आपके बच्चेको पहचानते ही नही, तो सेठानी गर्वसे बोली कि अरे मेरे बच्चेको क्या पहिचानना ? उस स्कूलमे सारे बच्चोमे जो सबसे प्यारा बच्चा लगे उसे दे आना। उस सेठानीको यह गर्व था कि बस सबसे अच्छा तो मेरा ही बच्चा है। नौकरानी चली। उसने उस स्कूलमे दृष्टि दी, कौन है वह प्यारा बच्चा जिसको खाना दे। देखते-देखते उसी स्कूलमे नौकरानीका लडका भी पढता था, उसे तो वह ही बच्चा प्यारा लगा और खाना उसीको देकर घर लौट आयी। अब सेठका बच्चा शामको लौटकर घर आया तो बोला माँ जी ! आज तुमने हमारे लिए खाना क्यो नही भेजा था ? तो सेठानी बोली—भेजा तो था। नौकरानीको बुलाकर पूछा—क्या तूने मेरे बेटेको खाना नही दिया ? तो नौकरानी बोली—मालकिन दिया तो था। तुमने ही तो कहा था कि उस स्कूलमे जो सबसे प्यारा बच्चा लगे उसे खाना दे आओ, सो मुझे तो सबसे प्यारा मेरा ही बच्चा लगा सो उसीको खाना दे आयी थी। सो घर घर बात देखो, सबकी रुचि न्यारी-न्यारी है, जीव सब समान है, एक स्वरूप वाले है, सब अपने-अपने सत्त्वमे ही रहते है तो यह क्या है ? सबसे पूछ लो तुम्हे कौन प्यारा लगता है ? तो सबका उत्तर वही होगा। सब अपना-अपना बतायेंगे, औरोके प्रति सद्भावना ही नही जगती। तो यह क्या है ? मोहान्धकार। यह मोहान्धकार कैसे मिटे ? पदार्थोके स्वरूपका सही सही निर्णय होनेसे मोह मिटता है।

मोहविनाशका उपाय, पदार्थोंकी परस्पर विविक्तताके तथ्यका परिचय—मोहविनाशका अमोघ उपाय जैनशासनमे बडी अद्भुत सही शैलीसे कहा है। द्रव्यके बारेमे स्पष्ट एकत्वविभक्त स्वरूप याने प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमे तन्मय और अन्य सर्वपदार्थोसे त्रिकाल न्यारा है, ऐसा स्पष्ट स्वरूप जैनशासनमे है। बच्चे लोग भी प्रारम्भसे ही पढते है ना कि द्रव्य ६ प्रकारके होते है—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पर वे बच्चे उन ६ प्रकारके पदार्थोका महत्त्व क्या समझें ? बल्कि उन बच्चोंके पढाने वाले भी ठीक-ठीक नही समझते। यह धर्म प्रवेशका प्रारम्भिक परिचय है। उन ६ प्रकारोमे तो क्या, व्यक्ति व्यक्तिमे अर्थात् जीव जातिमे अनन्तानन्त जीव हैं। वे प्रत्येक जीव अन्य जीवोसे भिन्न अन्य सर्वपदार्थोसे भिन्न अणु-अणु समस्तसे भिन्न है, इसके लिए द्रव्य गुण पर्यायकी विधि समझनी होगी। पदार्थ किसे कहते हैं, जो अपनी परिणतियोको प्राप्त करे उसे द्रव्य कहते है। द्रव्य अपनी परिणतियोको ही पाता है, अन्यकी परिणतियोंसे नही। परिणति अपने स्रोतमे ही होती है, परमे नही। द्रव्यके लक्षणसे ही ये सब तथ्य ज्ञात हो रहे है। यहाँ कह रहे है—द्रवति गच्छति, जो अपनी पर्यायको द्रवे,

जावे, पावे उसे द्रव्य कहते है। यद्यपि द्रवतिका ही अर्थ है गच्छति, फिर भी आचार्य महाराज ने जो दो शब्द दिये है उससे यह ध्वनित होता है कि स्वभावपर्यायको तो द्रवे और विभाव-पर्यायको पावे। यह एक शब्दभेद जब यहाँ पड़ा है तो उससे तथ्य निकालनेकी कलासे समझना, और इस आशयमे द्रवनेका अर्थ सहजस्वभावमे से सहजस्वभावके अनुरूप उसमे मिला हुआ एक पर्यायकी व्यक्ति होना, और पानेका नाम क्या है? जो पाना है व जो कुछ पाया जाता है उसमे विषमता होती है, कुछ अलग लक्षणका भान होता है। तो जो विभाव पर्यायें है वह विपरीत परिणमन है, इसलिए उनके बारेमें 'पाना' बोलते है। द्रव्य स्वभावपर्यायसे तो द्रवता है और विभावपर्यायको पाता है, यह बात इस सूत्रमे द्रवति, गच्छति दो शब्द बोलने से समझा जा रहा है। वहाँ मूल सिद्धान्तसे ऐसा एकान्त नही है, क्योकि द्रवति दोनो पर्यायो के लिए आता है। तो प्रत्येक पदार्थ अपनेमे अपनी अवस्थाओको व्यक्त करता है, यह बात इस गाथामे समझनेकी है। अब इसको हर जगह घटाते जाइये—आप अपनेमे अपनी पर्यायोको प्रकट करते है। एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यपर कुछ अधिकार भी क्या? जो अधिकारका भ्रम लग रहा है, मेरा इस मित्रपर अधिकार, बालकपर अधिकार, अमुकपर अधिकार, सो यह तो पुण्य योग, कषायकी अनुकूलता, एक प्रकारकी भावना वालोका सग, ये सब कारण है, जो अनुकूल बाते हो सी जाती है, पर वहाँ भी प्रत्येक जीवका भाव अपना-अपना है। एकका दूसरेसे कोई सम्बध नही है, अधिकार नही है।

पदार्थोंकी परस्पर विविक्तताके परिचयका दृढ़ प्रभाव—पदार्थोंकी परस्पर विविक्तता का तथ्य जब विदित होता तो मोह नही रहता। भले ही पहले अज्ञानसंस्कारके कारण राग रहेगा, लगाव रखेगा, सम्बध भी बनायेगा, पर समझ सब जायगा कि है कुछ नही यह। ज्ञानी पुरुष जब चाहे एक साधारण घटनाका ही निमित्त पाकर मोहको त्यागकर, गृहवास तजकर दीक्षा लेनेमे जो विलम्ब नही रखते और दूसरे लोग समझायें तो भी अपने निर्णयसे नही चिगते, इसका कारण है कि उनको स्पष्ट विशुद्ध ज्ञान जग गया है। अब किसीके बहकावेमे, फिर पुरानी आदतमे वे नही आ सकते। जैसे बहुत दूर कोई रस्सी पडी हो और कोई उसे साँप समझ ले तो जब तक वह साँप समझ रहा था तब तक उसे आकुलता है, बेचैनी है, भय है, प्रयास करता है, दूसरोको बुलाता है, और कदाचित् थोडा ऐसा ख्याल रखे कि जरा देखे तो निकट जाकर कि कैसा यह साँप है, निकट गया, कुछ ऐसा लगा कि यह तो कोई चीज पडी है, और निकट गया, खूब देखा तो भली-भाँति समझ गया कि यह तो रस्सी है और हाथसे उठाकर निर्णय भी कर लिया कि यह तो रस्सी ही है, उसके बारेमे जब ज्ञान हो गया कि यह रस्सी ही है, साँप नही, तो अब ऐसे ज्ञान वाले पुरुषको कोई दूसरा अगर बहकाये—कहे कि वह तो साँप है, मान लो साँप है। पहले वाली बातपर जरा आ जाओ, तुम जरा वैसा अपना

डर तो बनाओ, तुम जैसा भय पहले करते थे जरा वैसा भय करके तो दिखाओ तो क्या वह दिखा सकेगा ? नही दिखा सकता। जब ज्ञान हो गया कि यह साँप नही है तो पहले जैसे भ्रमको वह कैसे ला दे ? वह किसी दूसरेके बहकावेमे आ नही सकता, तो ऐसे ही समझ लो कि प्रत्येक पदार्थका स्वरूपास्तित्व आवान्तर सत्त्व प्रत्येकका उस ही प्रत्येकमे है। एकका दूसरेमे कुछ नही, तो कैसे फिर यह बहक सकता है ? दूसरेके भुलावेमे भी कैसे आ सकता है ? तो पदार्थोके स्वरूपका निर्णय मोहको मिटानेका उपाय है।

पदार्थोंकी गुणपर्यायमयता व परिपूर्णता—पदार्थ याने जो है सो। सत्का वर्णन किया जा रहा है। जो अपने सत्को याने गुणोको और क्रमभावी याने पर्यायोको जो पाये वह द्रव्य। द्रव्यमे गुण और पर्यायोका परिचय कीजिए। कोई पदार्थ है, है तो उसका स्वरूप है ना, स्वभाव है ना, वह एक रूप है। जो भी है अवक्तव्य है, पर उस एकरूप स्वभावको जानने के लिए भेददृष्टिसे गुणोका कथन होता है और व्यवहारसे तो निश्चयमे समझी जाने वाली बातका परिचय मिलता है। आत्मा है, वह एकस्वभावी है, चैतन्यस्वरूप है। उसको समझाने के लिए कहा गया है कि जो जाने सो आत्मा, जो देखे सो आत्मा, जो रमे सो आत्मा। यहाँ कोई गुण अलग-अलग पडे हुए नही है, क्योकि वह एक सत् है, एक सत् है तो एक स्वरूप है, एक स्वरूप है तो एक पर्याय है, पर उस एक परिणतिको समझनेके लिए व्यवहारसे भेद करके नाना पर्यायें कही जाती, जिनसे कि शक्तियाँ समझी थी, तो ऐसा जो शक्तियोसे और पर्यायोसे अभिन्न है वह पदार्थ है, वह पदार्थ सद्भूत है, स्वय सत् है, उससे सत्ता न्यारी नही। है बस 'है' को समझना है। जो भी है वह कैसा है ? अपनेमे परिपूर्ण है। यहाँ कुछ काम अटका नही है किसीका। किसी भी मनुष्यका, जीवका कोई काम नही अटका ऐसा कि कुछ बात अधूरी रह गई, हमारा अस्तित्व अधूरा रह गया, निर्माण पूरा नही बना, ऐसी कुछ बात तो है नही, यह जीव अनादिसे पूर्ण अस्तित्व वाला है, अनादिसे यह परिपूर्ण है अन्यथा यह बतलावो कि पुद्गलको तो कोई अधूरापन नही है कि इसका अभी कोई काम बाकी रह गया। प्रत्येक पदार्थ है, परिणम गया जिसरूप परिणम गया। चौकी है, जल गई तो जल गई, रखी है तो रखी है। जिस किसी भी अवस्थाको प्राप्त हो, उसमे अधूरापन तो कही भी नही है कि यह चीज अभी आधी है। चौकी है तो वह भी पूरी, जल गई तो भी पूरी है। जो पदार्थ जिस किसी अवस्थाको प्राप्त है वह पूरा है। वहाँ अटका कुछ नही है। यही बात जीवकी है। जीव भी हर समय पूरा है, इसको अटका कुछ नही, जिस चाहे अवस्थाको प्राप्त हो, मगर यह जीव चेतने वाला है, विकल्प करता है, समझ बनाता है तो उसका दुरुपयोग कर रहा है विकल्प करके और उस विकल्पमे अपनेको अधूरा मान रहा। यह काम न बना तो मैं अधूरा ही रहा, यह अधूरा हो है। असतोप ज्ञानीको क्यो नही है कि वह जानता है कि मैं परिपूर्ण

हू, मुझमे अधूरापन है ही नही, अज्ञानीको सतोष क्यो नही होता ? वह हर जगह समझता कि मै अधूरा हू, मेरा यह काम हो जाय तब मै पूरा कहलाऊँ। जब तक यह काम न बन जाय तब तक हम कुछ न कहलायेंगे, इतनी बाहरमे बात बन जाय तो हम कृतकृत्य हो गए। ऐसा अपनेको अधूरा मानता है, यह ही जीवको कष्टकी चीज है। लो देखो भैया ! जैसे कहते है ना कि कभी-कभी वरदान भी अभिशाप बन जाता है, तो ऐसे ही देखो इस जीवका ज्ञान-स्वरूप है ना तो इस मोहीके लिए अभिशाप बन गया, विकल्प बन गया, है पवित्र स्वरूप, मगर दुरुपयोगकी यह हालत है।

पदार्थोंके साधारण गुणोके परिचयसे ही भेदविज्ञानकी शिक्षाका प्रारम्भ—प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्यमे है, अपने प्रदेशमे है, अपने गुणोमे है, अपनी अवस्थामे है। द्रव्यके समझनेके जो ६ साधारण गुण है वे साधारण गुण ही भेदविज्ञानका प्रकाश करा देते हैं, फिर असाधारण गुणोसे ही प्रकाश बढाया। पहले तो साधारण गुणोको ही देख लीजिए। यह जताते हैं कि प्रत्येक पदार्थ एक दूसरेसे अत्यन्त निराले है। जैसे पहला गुण है अस्तित्व। "है" यह एक वस्तुपरिचयका प्रारम्भ बनाता। पहले कोई चीज है तब तो उसके बारेमे आगे चर्चा बढ़ाये। तो पहले यह तो निर्णय बनायें कि पहले पदार्थको अस्तित्व गुणने बताया, पर इसमे कुछ स्पष्ट भान न हो सका, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ न्यारे-न्यारे है, यह बात समझमे आये तो स्पष्ट भान होगा, उसको बताया वस्तुत्व गुणने। जो अपने स्वरूपसे हो, परके स्वरूपसे न हो वह पदार्थ अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सत्तासे हो, परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सत् न हो, ऐसी व्यवस्था वस्तुत्व गुणने बताया। देखो इसका कैसे प्रकाश दिया ? तो जो बात वस्तुमे है वह बतानी पडती है। तीसरा गुण है द्रव्यत्व। पदार्थ है तो निरन्तर परिणमन करता रहता है, एक भी समय, किसी भी समय परिणमे नही, तो वह पदार्थ है भी नही रह सकता, यह द्रव्यत्व गुण बता रहा है। अच्छा, प्रत्येक पदार्थ निरन्तर परिणमता रहेगा, जानते तो है सब, मगर एक इस क्रममे अभी तक यह बात आयी कि पदार्थ परिणमता है, कोई पदार्थ किसी दूसरे रूप भी परिणम जाय, इसका तो कोई निषेध नही हो पाया अब तक। तो इसमे अगुरु-लघुत्व गुण ही यह व्यवस्था बनाता है, क्योंकि वह पदार्थ न गुरु बन सकेगा, न लघु। जो है सो ही रहेगा। इस कारण पदार्थ किसी दूसरेके परिणमनको नही करता। अगर एक पदार्थ दूसरेके परिणमनको कर दे तो इसका अर्थ है कि खुद तो हो गया हल्का। अपना परिणमन दूसरेको दे दिया और दूसरा हो गया वजनदार, ऐसा कोई गुरु, लघु नही बनता। प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी परिणतिसे परिणमता है, भले हो निमित्तनैमित्तिक सम्बध कितना ही कठिन हो, अनिवार्य हो, लेकिन परिणमता खुद-खुद ही है, एक दूसरे रूप नही परिणमता। इसीको कहते है कि एक दूसरेकी परिणतिको नही करता। यह बात जब स्पष्ट समझमे आये तो वहाँ मोह-

भाव नही रहता।

अकिंचनभावकी आराधनामे सिद्धि समृद्धि—अब रह गई यह बात कि मोह न रहे, फिर भी उसका लगाव रहता है कभी कुछ समय तक। वह तो एक परिस्थितिकी बात है, पर अन्त.प्रकाश बना हुआ है कि एक दूसरेका कुछ नही है। इससे अपनेको क्या बात लेनी है कि सबसे न्यारा अपनेको केवल ज्ञानमात्र निजस्वरूप मात्र निरखना है, मै ज्ञानमात्र हू, सहज स्वभावमात्र हू, अपने प्रदेशोमे हू, अपनेमे ही अपनी परिणति करता हूं, इसके बाहर मेरा कुछ नही है, मेरा कही कुछ घर नही है, मेरा कही कुटुम्ब नही है, मेरा ही प्रदेश यह मेरा घर है, मेरा ही स्वभाव, मेरा ही गुण यह सब मेरा सर्वस्व है। जब मैं इस पर्यायको छोडकर जाऊँगा तो जो मेरा है वह मेरे साथ जायगा, जो मेरा नही है वह मेरे साथ न जायगा। यद्यपि इस ससारी जीवके साथ कर्म भी जाते हैं, पर कर्म उम नातेसे नही जाते कि वे जीवके स्वरूप हैं, इसलिए जाते। यो तो परिस्थिति है, बधन है, निमित्तनैमित्तिक योग है, वहाँ भी निश्चयसे कर्म कर्ममे रहकर जाते है, जीव-जीवमे रहता हुआ जाता है। निमित्तनैमित्तिक योग जरूर ऐसा है कि अनादिसे बँधे है, परम्परा उनकी चल रही है और साथ जाते है, जैसे कार्माण वर्गणाका शरीर। जो मेरा है सो मेरे साथ हे, जो मेरा नही वह मेरे साथ नही। सबका स्वरूप जुदा-जुदा है, सत्ता न्यारी न्यारी है। बच्चोको भी देखकर, वैभवको भी देखकर बेहोशी न लायें। ये ही मेरे सर्वस्व है—इस प्रकारकी असावधानी बनाकर रहेगे तो उतना ही दु खी होना पडेगा। पदार्थोंका स्वरूप भिन्न-भिन्न निरखें तो मोह मिटेगा और सकट इससे दूर होगे।

दव्व सल्लक्खणाय उप्पादव्वयधुवत्तसजुत्त।
गुणपज्जयासय वा ज त भण्णति सव्वण्हू ॥१०॥

द्रव्यकी सल्लाक्षणिकता—द्रव्य क्या होता है, वस्तु कैसी होती है, पदार्थ कितने-कितने हुआ करते है? इस बातकी समझपर कल्याणकी निर्भरता है, पदार्थका सही स्वरूप जाने बिना न मोह हटेगा और न आत्मामे रमण हो सकता है। तो इस गाथामे द्रव्यका स्वरूप बताया जा रहा है, द्रव्य सत् लक्षण वाला है, सन्मात्र है। द्रव्य सन्मात्र है, यह भी कथन सही है। द्रव्य सत् लक्षण वाला है, यह भी कथन सही है। सन्मात्र कहनेमे अभेद दृष्टि है, सत् लक्षण कहनेमे भेददृष्टि है। यह द्रव्य है, इसका लक्षण सत् है। इस लक्षणके कहनेसे क्षणिक एकातका निराकरण हो जाता है, असत्की उत्पत्तिका निराकरण हो जाता है। जो सत् है उस ही मे अवस्थायें होती है। न असत् उत्पन्न होता, न असत्मे अवस्थायें होती। हाँ पर्यायदृष्टिसे चूंकि जो पर्याय उत्पन्न हुई है वह पहले न थी, इस कारण असत्की उत्पत्ति कही जा सकती है, मगर वह पदार्थ ही बिल्कुल न था और एकदम असत्का उत्पाद हुआ यह है क्षणिक एकान्तका

सिद्धान्त और इतना ही नही उत्पन्न हुआ और दूसरे समयमे असत् हो गया, सत् केवल एक समयका माना जाता है क्षणिक सिद्धान्तमे। यदि द्रव्य सत् लक्षण वाला नही है, किन्तु एकदम असत्का ही उत्पाद हो, ऐसा क्षणिक एकात माना जाय तो न मोक्षमार्ग बनेगा, न दुःखोसे छूटनेका उपाय बनेगा, धर्मका लोप ही हो जायगा, धर्मपालनका फिर कोई अर्थ न रहेगा। धर्म करने वाला कौन ? एक समयको तो आत्मा रहा, कदाचित् उसने धर्म किया तो वह तो धर्म करके मिट गया, असत् हो गया। अब दूसरा उसका फल पायगा। तो क्या यह कोई पदार्थके स्वरूपकी निशानी है ? द्रव्य सत् है, अनादिसे सत् है, अनन्तकाल तक सत् होगा। यो द्रव्य सत् लक्षण वाला है।

द्रव्यकी उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तता—द्रव्य सत् लक्षण वाला है, इतनेसे कोई न समझे तो दूसरा लक्षण कहा जा रहा है कि द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त है। जो है उसमे नियमसे अगली अवस्थायें होती है, पहली अवस्थाये विलीन होती है और दोनो अवस्थावोका, समस्त अवस्थाओका आधारभूत वस्तु ध्रुव रहा करता है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होना पदार्थमे स्वाभाविक है, किसी उपाधिके कारण नही है, उपाधिके कारण विशेष उत्पाद विशेष व्यय, ये तो बनेंगे मगर उत्पादमात्र, व्ययमात्र, ध्रौव्यमात्र ये वस्तुके स्वाभाविक धर्म हैं। चूंकि वस्तु है अतएव नियमसे व्यय ध्रौव्य होगा ही। इस लक्षणके कहनेपर नित्य एकान्तका परिहार हो जाता है। जो लोग मानते है कि पदार्थ नित्य ही है, उसमे परिणमन ही नही होता तो प्रथम तो यह बात बनती ही नही, क्योकि परिणाम बिना, पर्याय बिना, व्यक्ति बिना हम उस द्रव्य को समझें क्या ? कोई भी पपार्थ अवस्थाशून्य नही होता है तो उसकी अवस्थाये है कोई और अवस्था है तो उसमे अनित्यता आयी। नित्य होकर भी अनित्य है, अनित्य होकर भी नित्य है। ऐसा नित्यानित्यात्मक पदार्थ होता, यह बात उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक लक्षणके समझनेसे एकदम स्पष्ट होती है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते किसके है ? उस ही पदार्थका, उस ही के स्वरूपका विरोध न रखकर उस ही स्वरूपमे, उस ही द्रव्यमे क्रमसे होने वाले जो परिणाम हैं, अवस्थाये है उन अवस्थाओमे पूर्वभावका विनाश होता है, उत्तर भावका उत्पाद होता। किन्तु अपनी जातिका त्याग नही होता। यो उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त पदार्थ है। पदार्थ अपनी पर्यायमे ही उत्पन्न हो पाता, अन्य द्रव्यकी पर्यायमे नही। पदार्थ अपनी ही पर्यायका विनाश करता, दूसरेकी पर्यायका विनाश नही करता। पदार्थ अपने आपके स्वरूपमे ही सदा रहता है, दूसरे पदार्थके स्वरूपमे नही रहता। यह बात भी उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्तके परिचयसे ज्ञात हो जाती है। द्रव्यका सही लक्षण जाननेपर मोह ध्वस्त होता है। वह इसी तरह तो हुआ। जब उसका उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य उसके ही स्वरूपमें है, उसके ही प्रदेशोमे है अन्दर अन्यके प्रदेशोमे है तो एक पदार्थका दूसरे पदार्थसे नाता क्या रहा ? जब यह बात स्पष्ट

विदित हो रही तो उसके मोह तो न रहेगा। यह हो नही सकता कि पदार्थके इस सत्यस्वरूप का सही परिचय हो जाय, निर्णय हो जाय और मोह रहे। भले ही परिस्थितियाँ राग करने को बाध्य करें, राग और द्वेष चलते हो, पर स्वरूपनिर्णयके बाद मोह तो नही रह सकता। मोह नाम किसका है ? स्वरूपका अनिर्णय, निज और परमे भेदका अज्ञान रहना। सो जहाँ वास्तविक ज्ञान हुआ वहाँ यह अज्ञान नही ठहरता। मोह तो रहना नही और मोह न रहना एक बहुत मौलिक पवित्रता है, जो आगेकी पवित्रताओंका बीज है और इस प्रकारकी समझ बनानेमे कष्ट क्या होता है ? आनन्द ही मिलता है। सही बात जान लिया। मोह न रहेगा तो झझट न रहेगा। तो पदार्थका लक्षण दूसरा यह बताया है कि वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसे सयुक्त है।

द्रव्यकी गुणपर्यायाश्रयता—तीसरा लक्षण है द्रव्य गुण पर्यायका आश्रय है अथवा कहो—गुण पर्यायवान है या यो कहो कि गुण पर्यायमय है। जैसे दूसरा लक्षण कहा था उत्पाद व्यय ध्रौव्य, तो उत्पाद व्ययके लक्षण द्वारा तो पर्याय समझा गया और ध्रौव्य लक्षण द्वारा गुण समझा गया। ये लक्षण परस्पर व्यञ्जय-व्यञ्जक भावको धारण करते हैं। जैसे कभी कोई बात कहता है—कोई बात समझनेमे कठिन पड गई तो मायने, याने, अर्थात् कहकर जैसे स्पष्टीकरण किया जाता है, ऐसे ही इन तीन लक्षणोंमे द्रव्यके स्वरूपका स्पष्टीकरण करें और साथ ही इसमे तथ्य है, द्रव्य, गुण, पर्यायका आश्रय है याने द्रव्यमे अनादि अनन्त शाश्वत रहने वाली शक्तियाँ है। वह तो गुण है, और उन शक्तियोका अथवा प्रदेशोका जो एक व्यक्त रूप बनता है, आकार परिणमन बनता है वह सब पर्याय है। द्रव्यसे गुण पर्याय यह अलग चीज नही है, किन्तु एक द्रव्यका ही व्यक्त रूप है, द्रव्य गुण पर्याय वाला है, ऐसा कहनेसे उस एकान्तका निराकरण होता है, जो गुण और पर्यायोको भिन्न मानते हैं। मीमासक सिद्धान्तमे ६ पदार्थ माने गए है—(१) द्रव्य, (२) गुण, (३) कर्म, (४) सामान्य, (५) विशेष और (६) समवाय। और इतना ही तक नही, एक ७वाँ माना है अभाव। ६ पदार्थ तो भावात्मक है और एक पदार्थ अभावात्मक है, ऐसे ७ पदार्थ हैं, पर ७ कहाँ ? वह तो एक ही है। यो पदार्थ ६ या ७ नही, किन्तु पदार्थ तो एक द्रव्य शब्दसे कहागे या मात्र है। गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय—यह तो द्रव्यमे खोजी गई चीजोका परिचय है, मगर आज इस कलयुगमे इस पवित्र जैनशासनकी जो प्रभावना विशेष नही है, लोगोमे इसकी विशेष ख्याति नही है तो उसके मुख्य कारण तीन बताये है समन्तभद्राचार्यने। एक तो कलिकाल, लोगोका पतनकी ओर प्रकृत्या झुकाव रहता है, व्रत सयमसे घबडाते हैं, बनना चाहते हैं ऊँचे। तो व्रत सयमके दोष बखाने बिना इस आशाकी पूर्ति कैसे हो सकती है ? और साथ ही जब जैन शासनके प्रति श्रद्धा नही रहती और बडप्पन चाहते है तो और और भी ऐब बस जाते है।

एक तो जैनशासनकी महिमा न बढनेका कारण है कलिकाल। दूसरा कारण है वक्ताओंको नयोका परिचय निर्णय, श्रद्धान नही है, जो बात अनायास या किसी प्रकार एक बार समझमे आयी उसका एकान्त हो जाता है।

अपूर्व किसी एक तत्त्वकिरणके मिलनेपर भावुकताका अतिशय होनेपर विडम्बना— एकांतकी भावुकतामे कितनी विडबनायें होती है, उसका सिर्फ एक उदाहरण ही देख लीजिए। सिद्धान्त तो यह है कि जिससे कोई इन्कार नही हो सकता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका त्रिकाल कर्ता नही है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यसे अत्यन्त भिन्न है। तो हाँ किसीको एकदम एक द्रव्य दूसरेका कर्ता नही, एक द्रव्य दूसरेसे भिन्न है यह जचा और यह भावुकसे जचा। सो निमित्त-नैमित्तिक योग जिसका फल यह सब ससार है, उसके भी निराकरणका प्रयत्न किया, निमित्त कुछ चीज ही नही। पदार्थमे बात होती है, निमित्त खडा हो जाता है। खैर सिद्धान्त तो ठीक था मूलमे कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका परिणमन करने वाला नही है याने एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के परिणमन रूपसे नही परिणमता। पर यह बात जैनशासनकी सही बात एक बात अनोखी दृष्टिमे आयी तो उससे इतनी प्रसन्नता बढी कि भावुकतामे बढकर निमित्तनैमित्तिक योगका भी निराकरण किया, और इतनेसे भी सतोष न हो सका तो यो कहनेमे आ गया—देखो द्रव्यमे गुण अनन्त है ना। तो वे सभी गुण सत् है, भिन्न-भिन्न है, एक गुण दूसरे गुणपर कुछ नही करता। एकका दूसरा गुण कुछ नही है, और इसी प्रकार अनन्त पर्यायें है, वे सब पर्यायें स्वतत्र है, स्वतत्र सत् है, पर्यायोका गुण कुछ नही, द्रव्य कुछ नही। द्रव्यका गुण कुछ नही, पर्याय कुछ नही, सब स्वतत्र सत् है, भावुकतामे कह तो डाला, मगर यह ख्याल गुल हो गया कि जो सत् होता है उसमें ये दो बातें मुख्यतया होती हैं, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त होना और गुण पर्यायमय होना। उन अनन्त गुणोमे से कौनसा गुण उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है, क्यो नही है कि गुण सत् है नही, पर्याय सत् है नही। वस्तु सत् है। ये गुण पर्यायमे भिन्न-भिन्न सत् नही हैं। हाँ जो सत् है उसीको गुणको कह लो, वह ध्रुव है और उस ही सत्को पर्याय कह लीजिये, पर्यायको कह लीजिए उत्पाद व्यय, पर द्रव्य सत् है, गुण सत् है, पर्याय सत् है, यह बात जैनशासनमे कही भी न मिलेगी। हाँ यह तो आया कि एक सत् ही द्रव्य है, सत् ही गुण है, सत् ही पर्याय है, ये शब्द तो आते है याने जो एक वस्तु सत् है उसीको अन्वयदृष्टिसे देखें तो द्रव्य है, अन्वयशक्तिसे देखें तो गुण है, व्यतिरेकदृष्टिसे देखे तो पर्याय है। तो अज्ञानवश या छलवश कहो शब्दका परिवर्तन बन गया कि बात तो यो है कि सत् द्रव्य है, सत् गुण है, सत् पर्याय है। अब उस पहले कहे गए सत् शब्दको बादमे रखना, द्रव्य सत् है, गुण सत् है, पर्याय सत् है, कितनी विडम्बना बढी, कितना अन्तर आया, जैनशासनके विरुद्ध हो गया। ऐसा तो मीमासकोने कहा—द्रव्य सत् है, गुण सत् है, कर्म सत् है, हाँ बात ठीक समझना

चाहिए। वस्तु गुण पर्यायमय है। कुछ लोग वस्तुको नित्य ही मानते, कुछ लोग वस्तुको अनित्य ही मानते, कुछ लोग नित्य अनित्य दोनो मानते तो हैं, पर निरपेक्ष रूपसे मानते है। जैसे कारणपरमाणु नित्य है, कार्यपरमाणु अनित्य है, तो ऐसे इन एकान्तोका निराकरण द्रव्यके इन लक्षणोसे हो जाता है।

द्रव्यके ही सत् होने व गुण पर्यायके सत् न होनेका कारण—द्रव्य है, साथमे यह भी जानें। जरा विस्तार बना लीजिए। जो वस्तु होती है उसमे ये ६ बातें पायी जायेंगी। क्या ? उसमे साधारण गुण होते है। जो भी पदार्थ है उसमे साधारण गुण होते है। साधारण गुण मायने अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व, याने ये छहो गुण प्रत्येक द्रव्यमे पाये ही जाते हैं। जहाँ ये ६ गुण नही वह पदार्थ नही। जो भी चीज है वह ६ साधारण गुणोंसे युक्त है, पहली बात। दूसरी बात—जो भी द्रव्य है वह असाधारण गुण वाला है। असाधारण गुण उसे कहते है कि जो किसी खास द्रव्यमे ही गुण हो, अन्य द्रव्यमें न हो। जैसे चैतन्य जीवमे ही है, पुद्गल आदिकमे नही, मूर्तत्व पुद्गलमे है अन्यमे नही। तो जो भी है उसमे असाधारण गुण अवश्य होता। तीसरी बात—जो भी पदार्थ है वह उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक होता है याने क्षण-क्षणमे नई-नई अवस्थायें बनायें, पुरानी अवस्थायें विलीन करें और स्वय मूल तत्त्वको सदा शाश्वत रखें। चौथी बात—जो पदार्थ है उसका आकार अवश्य होता। चाहे एक प्रदेशरूप हो, चाहे बहुप्रदेशरूप हो। ५वी बात—जो भी चीज है वह उसके अलावा अन्य सबसे भिन्न प्रदेश रखेगी। जो भी कुछ हो, एक जीव है, जो भी है वह अन्य सबसे भिन्न प्रदेश वाला होगा। आप जीव है, अन्य सब जीवोंसे आपके प्रदेश भिन्न है, पुद्गल आदिकसे भिन्न है, इसे कहते है प्रविभक्त प्रदेश, ऐसी ये बातें गुणोमे तो घटित नही होती, क्योकि गुण पदार्थ नही। गुण तो पदार्थका व्यवहारनयसे समझा गया अश है। गुणो मे ६ साधारण गुण हैं। ज्ञानगुण हो, दर्शन गुण हो, कोई गुण हो, क्या उन गुणोमे असाधारण गुण रहते है ? वे स्वय ही गुण हैं, गुणमे गुण नही रहते। गुणोका कोई आकार होता है क्या ? या गुण पर्यायसे और द्रव्यसे भिन्न प्रदेश रखता है क्या ? जब एक यह भ्रम बन गया कि द्रव्य सत् है, गुण सत् है, पर्याय सत् है तो पर्यायके प्रदेश जुदे होने चाहिएँ, द्रव्यके गुण जुदे हो, पर ऐसा तो नहीं है। फिर ये सब स्वतत्र सत् कैसे हो सकते है ? स्वतत्र सत् तो द्रव्य द्रव्य ही है, और वह द्रव्य गुणपर्यायात्मक है, उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है, ऐसे इन तीन लक्षणोंसे द्रव्यकी पहिचान होती है। इनमेसे एक भी लक्षण कहो तो वही अन्य दो लक्षणोकी सूचना दे देता है। ये परस्पर विरुद्ध लक्षण नही है, किन्तु एक दूसरेके पूरक हैं। ऐसे द्रव्यके लक्षणके परिचयमे यह स्पष्ट हो जाता कि प्रत्येक द्रव्य जो कि अपनी गुण पर्यायमे ही है वह प्रत्येक द्रव्य मेरेसे अत्यन्त भिन्न है, कोई सम्बध नही, कुछ उपग्रह नही। सिद्ध भगवन्त,

अरहत भगवन्त किनका नाम है ? आत्मा सबसे निराला है, ऐसा निराला हो जाना कर्म, शरीर, विकार सबसे ही भगवन्तपना है। अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमे निरन्तर लीन हो जानेका ही नाम तो भगवान है, वह मेरे स्वरूपमे है, उसकी जानकारी नही है तब तक अज्ञान है, मोह है, परको यह जीव अपनाता है, यो दुखी होता है। तो पदार्थके स्वरूपका परिचय करना यह एक समस्त धर्मपालनका एक मूल सोपान है, पहली सीढी है, उसीका इस गाथामे वर्णन किया।

उप्पत्ती व विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो।
विगमुप्पादधुवत्त करेंति तस्सेव पज्जाया ॥११॥

द्रव्यकी पर्यायमयता—लोकमे जो कुछ है वह कैसा है उसके स्वरूपका निर्णय चल रहा है। जो भी पदार्थ है उसमे दो बातें अवश्य है। एक सदा रहने वाला तत्त्व और दूसरा—उसकी प्रति समय होने वाली अवस्था। है और अवस्थायें बनाता रहता है। जो भी पदार्थ है उसमे तीन बातें अवश्य है—(१) बनना, (२) बिगड़ना और (३) बना रहना। ये तीन बातें किसीकी समझमे आयें तो, न आयें तो, होती सबमे है। यह अनिवार्य बात है। द्रव्य और पर्याय इनके बिना सत्त्व नही होता। अगर है कुछ तो सदा रहेगा और अपनी अवस्थायें बनाता रहेगा। यह है प्रत्येक पदार्थका इतिहास। यह ही अनादिसे प्रत्येक पदार्थ करता आया है। अनन्तकाल तक यह ही करता रहेगा। तो द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु है। जैसे जीवद्रव्य क्या है ? जो त्रिकाल रहने वाला चैतन्यस्वरूप है एक द्रव्यदृष्टिमे ज्ञात हुआ। पर्याय क्या है ? तो पदार्थकी पर्यायें दो प्रकारसे होती है—एक तो आकार रूपमें और एक गुण परिणति रूपमे। दोनो ही प्रकारकी पर्यायें प्रत्येक पदार्थमे है। जैसे परमाणु वह एक प्रदेशाकार है, बहुप्रदेशी नही है। जो भी एक प्रदेश है वही उसका आकार है, और गुण परिणमन क्या है ? स्पर्श, रस, गध, वर्ण ये बदलते रहते है, ये उनकी गुणपर्यायें है। जीवमे क्या है ? नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव ये आकार पर्यायें है। जिस शरीरमे जीव जाता उस ही आकारमे जीव प्रदेश रहते है। जीव एक अखण्ड है, प्रदेश भी अखण्ड है, मगर उस अखण्ड प्रदेशका इतना विस्तार हो जाता है कि उसे अगर प्रदेशके रूपसे नापें तो असख्यात प्रदेश कहलाता है। कही ये असख्यात प्रदेश एक-एक अलग-अलग हो और उनको जोड़-जोड़कर बनाया हो, ऐसा नही है। वह निश्चयसे अखण्डप्रदेशी है, किन्तु उसका विस्तार होता है, सकोच होता है तो समझा कि वह बहुप्रदेशी कहलाता है। जैसे प्रकाश खाली प्रकाशमात्र वह तो एक स्वरूप है, मगर उसके फैलावकी दृष्टिसे देखो तो कोई दो हाथ दूर तक प्रकाश है, कोई १० हाथ तक, कोई ५० हाथ तक। तो फैलावकी दृष्टिसे बहुप्रदेशी है और स्वरूपकी दृष्टिसे वह अखण्ड है। जीव भी अखंड-प्रदेशी है वस्तुत, किन्तु उसका कारण पाकर सकोच विस्तार होता है तो वह एक ही वहा,

एक ही घटा। उस घटा-बढीमे जो नाप बना वह बहुप्रदेशी है, और ऐसे कितने प्रदेश हैं ? तो यह कल्पना करो कि अगर जीव फैले तो कितनी दूर तक फैलेगा ? पूरे लोकमे फैलेगा। तो लोकमे जितने प्रदेश है उतने प्रमाण आत्माके प्रदेश हैं, इस प्रकार जीवके प्रदेश लोक प्रमाण असख्यात कहे गए है। धर्मद्रव्यका आकार-परिणामन क्या है ? जितना लोकाकाश है वही तक धर्मद्रव्य है, उतना ही अधर्मद्रव्य है। आकाश भी अनन्तप्रदेशी है, आकाश एक अखण्ड है। उस आकाशमे जितनेमे समस्त द्रव्य रहते है उसका नाम रखा है लोकाकाश और उसके बाहर मे जो आकाश है उसका नाम है अलोकाकाश। लोकाकाशकी सीमा है, अलोकाकाशकी सीमा नही है। वस्तुत आकाशके दो भेद नही हैं, आकाश तो एक ही है। जैसे एक मैदानमे आकाश है उसमे किसीने एक बडा मकान बना लिया तो अब सम्बधसे दो भेद कर दो, एक मकानमे रहने वाला आकाश और एक मकानसे बाहरका आकाश। पर आकाशके क्या दो टक हो गए ? वह अखण्डप्रदेशी है, सभी पदार्थ अखण्डप्रदेशी हैं। कालद्रव्यका क्या आकार है ? कालद्रव्य एकप्रदेशी होता है। लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक कालद्रव्य स्थित हैं, उसका भी एक प्रदेशाकार है। प्रत्येक पदार्थमे आकार होता है। आत्माको निराकार जो कहा है तो अमूर्त होनेसे कहा है, पर फैलावकी दृष्टिसे आत्मा भी साकार है, प्रत्येक पदार्थ साकार है। उनका कोई निज-निज प्रदेश है और उस प्रदेशमे फैलाव होता है। यो प्रत्येक पदार्थमे आकार का परिणामन है और सभी पदार्थोंमे गुणका परिणमन है। जो भी जिसका असाधारण गुण है उनका प्रति समय परिणमन होता रहता है, इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य पर्यायवान है।

उत्पादव्ययध्रौव्यमयताके परिचयसे हितकी शिक्षा—अब वस्तुको द्रव्यकी दृष्टिसे देखो तो पदार्थ सदा काल रहता है और पर्याय दृष्टिसे देखो तो प्रति समय अपनी नई अवस्था बनाता रहता है, पुरानी अवस्था विलीन करता है। ये बाते सभी पदार्थोंमे पायी जाती है। इसके परिचयसे अपनेको क्या शिक्षा मिलती है कि भाई सभी पदार्थोंका ऐसा ही स्वरूप है। प्रत्येक पदार्थ है और वह अपनी नई-नई अवस्था बनाता रहता है। कोई पदार्थ किसी दूसरे की अवस्था नही बनाता। कोई पदार्थ अपने प्रदेशसे हटकर किसी दूसरे पदार्थमे नही जाता। इसलिए उसका किसी भी पदार्थसे कुछ भी सम्बन्ध नही। दूसरी बात उसकी जो परिस्थिति बन रही है, जो दु खभरी स्थिति है यह स्थिति मिट सकती है क्या ? हाँ मिट सकती है। क्यो ? यो मिट सकती कि आत्माका स्वरूप है ऐसा कि पुरानी अवस्था विलीन करे और नई अवस्था बनाये। जिन सिद्धान्तोका यह मत है कि जीव तो एकान्तत. नित्य है, परिणमता नही। उनका जीव दु खी है तो दु खी रहेगा, सुखी है तो सुखी रहेगा, वहाँ तो परिणमन नही माना, तो उनकी कल्पनामे जो मतव्य है उस पदार्थसे दु.ख नही मिट सकता, पर ऐसा नही है। मैं जीव हू, प्रति समय अपनी अवस्थायें बनाता रहता हू। मैं अपनी दुःखमयी अव-था

मिटा दू और आनन्द अवस्थाको लाऊँ यह मेरी प्रकृति है, ऐसा मै कर सकता हू। इस बात की हमको उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वाले स्वरूपसे शिक्षा मिलती है।

अवक्तव्य अखंड वस्तुमें भेददृष्टि, उत्पाद व्यय व ध्रौव्यका परिचय—प्रत्येक पदार्थ द्रव्यस्वरूपसे न उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है, किन्तु पर्याय ही उत्पाद व्यय और ध्रौव्यपने को प्राप्त होती है। देखिये ये तीनो ही बाते पर्यायदृष्टिसे कही गई है। तो उत्पाद व्ययकी बात तो भली प्रकार समझमे आयगी कि हाँ पर्यायदृष्टिसे प्रत्येक पदार्थ नया नया बनता रहता है, मगर ध्रुवपना कैसे आता है ? तो देखो जहाँ द्रव्यदृष्टि है वहाँ अखण्ड सत्का परिचय है। उसमे उत्पाद है, व्यय है, ध्रौव्य है। ये तीन अश व्यवहारनयसे किए जाते है और अशका ही नाम पर्याय है। पर्याय अशादिक अर्थोंमे पर्याय शब्दका प्रयोग है, तो उस दृष्टिसे पर्याय ही ध्रुवपनेको, पर्याय ही उत्पाद व्ययको प्राप्त होती है। अब इससे यह बात समझना कि जो पर्याय विशेष है, क्षण-क्षणमे जो पर्यायें है उस दृष्टिसे तो पर्याय विशेष है, क्षण-क्षण मे जो पर्यायें है उस दृष्टिसे तो उत्पाद व्यय है और जो पर्याय सामान्य है, सर्वपर्यायोमे पर्यायपना तो है ही उस पर्याय जातिकी दृष्टिसे वहाँ ध्रुवता भी है। पर्याय होती ही रहेगी। इस तथ्यको तत्त्वार्थसूत्रके एक सूत्रमे बताया गया है—तद्भावाव्यय नित्य। पदार्थके होनेका, होते रहनेका, व्यय न होनेका नाम नित्य है, याने अवस्थायें निरन्तर होती ही रहे ऐसी धारा बनी रहनेका नाम नित्य है। कोई भी पदार्थ ऐसा नित्य नही होता कि उसमे उत्पाद व्यय न हो। ऐसा यह मैं जीवतत्त्व द्रव्य दृष्टिसे तो सद्भावरूप हू, अखण्ड हू, पर्यायदृष्टिसे मेरेमे उत्पाद है, व्यय है और ध्रौव्यपना है। ऐसा यह मैं परिपूर्ण अखण्ड आत्मा जगतके समस्त पदार्थोंसे निराला हूँ।

विकल्पविच्छेदपर आत्मानुभवकी निर्भरता—जैसे सबका घाट एक होता है। मरना सबको होता है। ससारमे जीवन भी सबका एक ढगसे चलता है। आयुका उदय सो जीवन, आयुका क्षय सो विनाश, ऐसे ही शान्ति और कल्याणका लाभ भी एक ही विधिसे होगा। जिसे आत्मानुभव चाहिए उसे बहुत-बहुत त्याग करना होगा। जैसे भीतरमे जितनी कल्पनायें बनती उनका त्याग करना होगा, उनके संस्कारका त्याग करना होगा। ऐसा जब सहज उदार हो जाय तो वहाँ आत्मानुभव जगता है। देखो मैं किस जगह बैठा हूँ, यह थोडा बहुत भी याद रहेगा तो आत्मानुभव न बनेगा। मैं किस वक्त बैठा हू, कौनसा समय है, कितने बज गए है ? यह बात जब तक थोडी भी चित्तमे रहेगी आत्मानुभव न जगेगा। मै मनुष्य हू, व्यापारी हू, वैश्य हूँ, जैन हू, गृहस्थ हू, साधु हू, परिवार वाला हूँ, बालबच्चो वाला हूँ, मैं उच्च कुलका हूँ, ऐसी कोई भी बात, कुछ भी सस्कार जब तक चित्तमे ऊधम मचायगा तब तक आत्मानुभव न जगेगा। व्यवहार धर्मकी प्रवृत्तिका मूड दूसरा होता है और आत्मानुभवकी

वृत्तिका मूड दूसरा होता है। कैसी व्यवहारसे परे है यह आत्मानुभवकी स्थिति ?

व्यवहारधर्मका प्रयोजन आत्मानुभवकी अपात्रतासे बचाव रखना—आत्मानुभवकी स्थिति व्यवहारसे परे है, इसके मायने यह नही है कि जब व्यवहारका मार्ग बिल्कुल जुदा है व आत्मानुभवका मार्ग जुदा है और निश्चयनयका मार्ग आत्मानुभवमे ले जाता है तो व्यवहार क्यो किया जाय ? छोड दो। हाँ हाँ भाई छोड दो। कब छोड दो ? जब इतनी पात्रता है कि हम सहजदृष्टिसे स्वतन्त्रता इतनी पा गए हो, इतना समर्थ हो कि हम आत्मानुभवमे गर्त रहा करते हो, तो छोडोगे क्या, वह तो छूट ही जायगा, किन्तु जब तक आत्मानुभवकी स्थिति नही पायी तब तक आप कुछ करेंगे तो सही। मन, वचन, काय ये ठाली न रहेंगे, इनकी प्रवृत्ति रहेगी, वह कैसी प्रवृत्ति रहेगी ? आप कहेगे कि आत्मानुभव करनेके लिए धुन बन जाय, सोचा करे, यह प्रवृत्ति बन जायगी, बस यह ही व्यवहारधर्म है। आप कहेगे कि उस आत्मानुभवकी गाथा गाया करें, शास्त्र पढें, पढायें, अध्ययन करें, चर्चा करे, किसी भी प्रसग के रूपमे हम आत्मानुभवकी गाथा बनाये रहे, बनाइये, यह हो तो व्यवहारधर्म है। शरीरसे प्रवृत्ति क्या करेंगे ? भाई जिन्होने आत्मानुभवका फल पाया है उनकी वदना करेंगे। जो आत्मानुभवके कार्यमे लगे है उनकी सेवा करेंगे। करो, यह ही तो व्यवहारधर्म है। सब जीवो मे हम उसी स्वरूपको निरखेंगे जैसा कि मैंने अपनेमे अनुभव किया है और उस स्वरूपको जब निरख लूगा, सब जीवोंमे मैं उस चैतन्यस्वरूपको निरखूगा तो उसके प्रति आदर भी करेंगे वह फिर हिंसा कैसे कर सकेगा ? हिंसा न करेगा, किसीको दुर्वचन न बोलेगा, दुर्व्यवहार न करेगा। हाँ तो करेगा ऐसा, यह ही तो व्यवहारधर्म है। तो व्यवहारधर्म आत्मानुभवके लिए पात्रता बनाये रखता है। कही यह उल्टा न हो जाय, व्यसनी न हो जाय, पापी न हो जाय, एकदम पतित न हो जाय, अज्ञान न आ जाय—इन सब बातोका बचाव व्यवहारधर्म करनेसे होता है। मगर आत्मानुभवकी दशामे व्यवहारधर्म छूटकर एकमात्र शान्त सनातन सत्य, कल्याणमय एक शुद्ध चित्प्रकाश अनुभव होता है। यह बात हो सकती है, इसका सकेत मिल रहा है इस कथनसे कि प्रत्येक पदार्थ उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त है। जो पर्याय मिला है यह पर्याय मिट सकता है। अज्ञानदशा तो मिटेगी, ज्ञानदशामे आयगी। इस पर्यायको मिटाना दो उपायोसे होता है—एक तो व्यावहारिक और दूसरा नैश्चयिक। व्यवहारिक उपाय यह है कि बाह्य पदार्थोका सम्बन्ध यह हमारी ममताका कारण बनता है। इसका त्याग करें। नैश्चयिक उपाय यह है कि अपने आत्माके उस ध्रुव चैतन्यस्वरूपको ज्ञानमे लेना, मैं यह हू।

परमार्थपुरुषार्थ—कोई कठिन बात है क्या निज परिचयकी ? आप कुछ न कुछ अपने बारेमे विचारते है कि नही कि मैं यह हू, मैं गृहस्थ हू, साधु हू, बाबू हू, श्रावक हू, उच्च कुली

हू। रास्तेमे जाते है और कुछ छोटी जातिके लोग जब वहासे निकलते है तो आप उन्हे छोटा मानकर उनसे बचकर चलते है, क्यो आप ऐसा करते है ? इसलिए कि आपने अपनेको भीतर में कुछ समझ रखा है कि मै यह हू, और जब कोई अपनी पार्टीका दिख जाता है तो आप उसे अपनी ओर खीचते है, अपने पास बुलाकर अपने पास बैठाते है, आप उसका आदर करते हैं, बाकी और जीवोको आप उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते है, क्योकि आपने कुछ समझ रखा है पर-मे कि मैं यह हू। निरन्तर यह ध्यानमे रखते है कि मैं यह हू। मैं होनेको कभी नही भूलते। बस जो मैं हू उसे नही भूलना है, किन्तु सही तो जाने कि मैं क्या हू ? जो जो कल्पनायें की जाती है वे मैं नही हू। मै सहज चैतन्यस्वभावमात्र हू, कैसा निस्तरग, धीर, गम्भीर, उदार, शाश्वत, अनवरत, अन्तःप्रकाशमान ऐसा मै चैतन्यस्वरूप हू, ऐसा 'मै' होनेका बोध रहे, लगा रहे तो प्रतिक्षण कर्मनिर्जरा होती है। बडे-बडे तपश्चरणोका तथ्य और है क्या ? जिस किसी भी प्रकार इस अन्तःस्वरूपमे रमण हो जाय। अगर तपश्चरण नही कर सकते, जो समझमे देखनेमे आता है—अनशन करना, ऊनोदर करना, रस त्याग, काय क्लेश, विविक्त शय्यासन आदिक नही बनता, उनके करनेको समय नही मिलता और यह अन्तस्तत्त्वकी दृष्टि दृढतया बन गई तो तपश्चरणका फल पा लिया। उसे तपश्चरणकी क्या अनिवार्यता ? इसके मायने यह नही कि तपश्चरण अनावश्यक हो गया। अनावश्यक भी है, आवश्यक भी है। जो परमार्थ पदमे प्रविष्ट नही हैं उन्हे आवश्यक है और जो प्रविष्ट है, परमचैतन्यस्वरूपका अनुभव कर रहे हैं वे तो इस तपश्चरणसे भी ऊँचा तपश्चरण कर रहे है, जिसे कहते है चैतन्यस्वरूपका प्रयत्न। यह स्थिति बने, बस इसके लिए समस्त प्रवचन हैं, आगम है, सम्बोधन है। वही शिक्षा हमको पदार्थोंके स्वरूपके निर्णयमे मिलती है।

द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टिसे पदार्थका परिचय—पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यवान है, द्रव्य स्वरूपसे नही, पर्यायरूपसे। द्रव्यस्वरूपसे कैसा है ? सत् स्वरूप अखण्ड अवक्तव्य। ओह ! उत्पादव्ययध्रौव्यवान होकर भी अखण्डकी दृष्टिमे है यह जीव और अखण्ड होनेपर भी उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी दृष्टिमे है यह जीव। जो जीव उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी बात सुन रहा है, समझ रहा है वह अखण्ड होकर भी समझ रहा है, और जो अखण्डकी बात सुन रहा है, समझ रहा है, अखण्ड स्वरूपमे प्रवेश कर रहा है वह उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूपसे रहता हुआ ही प्रवेश कर रहा है, इन दो बातोमे किसको असत्य कहा जाय ? पदार्थका स्वरूप सत्य है, उत्पादव्यय ध्रौव्य यह सत्य है और अखण्ड है, यह असत्य है, यह नही कहा जा सकता। अखण्डता नही है तो उत्पादव्ययध्रौव्य न बनेगा और जहाँ उत्पाद व्यय ध्रौव्य नही हो रहा वहाँ अखण्ड तत्त्व ही नही। किसके आश्रयमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य हो ? तो ये दो किनारे जैसे वस्तुके होते ही है लाठीमे या रस्सीमे या अन्य चीजोमे, ऐसे ही प्रत्येक पदार्थमे दो बातें होती ही है। पदार्थ

द्रव्यरूप है, पदार्थ पर्यायरूप है, द्रव्यपर्यायात्मक वस्तु होती है। मेरा द्रव्य पर्याय मुझमे समाप्त है, मेरेसे बाहर नही। प्रत्येक अणु मुझसे भिन्न है। कितना भिन्न ? पूरा भिन्न। प्रत्येक परजीव मुझसे भिन्न है। कितना भिन्न ? पूरा भिन्न। जो इस श्रद्धामे कमी रखेगा उसके सम्यक्त्व नही है। घरमे रहने वाले जीव पुत्र पुत्री और और सब ये जीव ये तो कुछ मेरे लगते हैं, ऐसी श्रद्धामे बात होगी तो वह अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, ससारमे जन्ममरणकी परम्परा बढाने वाला है। हम राग न छोड सकें, यह बात तो क्षम्य है, पर श्रद्धा यदि ऐसी बनी है कि ये तो मेरे है, बाकी अन्य जीव मेरे कुछ नही, तो यह अक्षम्य अपराध है। इसका फल तो कुगतियोमे जन्ममरण है। अज्ञान हटनेके बाद जो राग रह जाता है उसमे तो बडे-बडे पुण्यबध भी होते है, किन्तु अज्ञान रहते हुए यदि कुछ धार्मिक क्रियावोका भी राग चलता है तो वहाँ तो पापबन्ध होता है, मिथ्यात्वका असर विशेष होता है और आपके शुभ मन, वचन, कायकी क्रियावोका तेज न होगा। भीतर देखो तो यह बात हमको यह द्रव्यस्वरूपका परिचय करती है कि हम अज्ञान अवस्थामे मत रहे। इस अवस्थाको बदलकर ज्ञान अवस्थामे आयें और अपने ध्रुवस्वरूपकी दृष्टि बनावें।

पज्जयविजुद दव्व दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूद भाव समणा परूविंति ॥१२॥

विस्तृत परिचयसे प्रायोजनिक परिचयमे स्पष्टता—पदार्थोंके स्वरूपकी कथनी चल रही है। हम आपको जो ससर्ग मिलता है उस ससर्गमे कभी सुख मानते, कभी दु ख मानते। सो ससर्ग सुख नही दे रहा, दु ख नही दे रहा, किन्तु अपने आपके जो ज्ञानविकल्प हो रहे है वस्तुस्वरूपके विपरीत उनसे सुख और दु ख होता है, यह कैसे समझमे आये ? इसके लिए पदार्थोंके स्वरूपका वर्णन किया गया है। बात तो थोडी ही है, मगर जानना पडेगा बहुत, तब यह थोडी जानकारी बनेगी। कोई कहे कि भेदविज्ञान करना है, जीव अलग है, शरीर अलग है, कुटुम्बके लोग अलग है, मै अलग हू, इतना जान ले तो बेडा पार हो जायगा। बात तो ठीक कह रहे, मगर इतनी जानकारी बनानेके लिए बहुत जानना होगा तब इतनी जानकारी बन पायगी सही तरीकेसे। एक सेठके यहाँ एक मुनीम था और कई पल्लेदार थे। तो मानो मुनीमको तो मिलते थे १००) रु० माहवार तनख्वाहके और मजदूरोको कोई ३०-३० रुपये माहवार मिलते थे। तो एक बार वे मजदूर सेठजी से बोले कि सेठजी आप तो हम लोगोके साथ बडा अन्याय कर रहे हैं। कैसे ? देखिये—मुनीम जो बैठे-बैठे सिर्फ कलम चलाता रहता है, उसे तो आप १००) रु० माहवार वेतन देते हैं और हम लोग जो रात-दिन बडा बोझ ढोते है उन्हे सिर्फ ३०) रु० माहवार देते हैं, तो ऐसा क्यो ? तो सेठने वहाँ सोचा कि इनको इस तरहसे समझानेसे समाधान न मिलेगा, कोई प्रयोगात्मक घटना बने तब इनको

समाधान मिल पायगा। आखिर कुछ ही दिन बाद एक घटना घटी। क्या, कि सडकपर कोई बारात खूब सज-धजकर जा रही थी तो वहाँ सेठने एक पल्लेदारको भेजा कि जावो जानकारी करके आवो कि सडकपर क्या चीज जा रही है, तो पल्लेदार सडकपर पहुचा और पूछकर जान लिया कि बारात जा रही है तो झट वापिस आया और सेठजी से बताया कि बारात जा रही है, और कुछ विशेष विवरण वह न दे सका। उसके बाद मुनीमको भेजा उसी जानकारीके लिए। मुनीम पहुचा सडकपर, सब प्रकारकी जानकारी कर लिया कि बारात कहाँसे आ रही है, कहाँ जा रही हे, किसके यहाँसे आ रही है, किसके यहाँ जा रही है, कितने बजे फेरे पडेंगे, किस सवारीसे आ रहे है आदि, और आकर सेटजी से सारा हाल कह सुनाया। तो सेठने सभी पल्लेदारोको बुलाकर समझाया कि देखो तुम लोगोमे और मुनीममे इस बात का अन्तर है कि शब्द तो हमने उतने ही दोनोसे कहे कि जावो जानकारी करके आवो कि सडकपर क्या जा रहा है, तो पल्लेदारने तो सिर्फ इतना ही बताया कि बारात जा रही है और मुनीमने सारी बात पूरे विवरणके साथ बताई, तो तुम दोनोमे बुद्धिका अन्तर है। इस कारण तुम्हारी तनख्वाहमे भिन्नता है। तो एक भेदविज्ञान करो, इतनीसी बात कह दिया कि द्रव्य भिन्न है, कोई किसीका कर्ता नही है, सब अपने-अपनेमे परिणमते है, बस ये बाते जरा करने लगे। दो-तीन दिनकी कुल पढाई है, भेदविज्ञानकी बात करनेके लिए कौनसे शब्द है उन्हे रट लिया और बोलने लगे तो इतनेसे भेदविज्ञान स्पष्ट आ पाया क्या समझमे ? उसके लिए पदार्थोंका स्वरूप विस्तारपूर्वक जानना होगा तब इतनी बात समझमे आयगी कि प्रत्येक पदार्थ एक दूसरेसे अत्यन्त भिन्न है। अभी किसीका झगडा घरमे ही हो रहा हो भाई-भाईमे या पडौसीमे हो रहा हो और कोई कहे कि देखना क्या बात है ? तो एक व्यक्ति पहुचा तो वह यह जानकारी करके आया कि भाई-भाईमे लडाई हो रही है, और कुछ न बता सका, और दूसरा व्यक्ति पहुचा तो वह सब जानकारी कर आया कि भाई-भाईमे लडाई हो रही हे, किस बातकी लडाई है, कौन अन्याय कर रहा है, किसका पक्ष सही है आदि। तो इसी तरह समझो कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यसे अत्यन्त भिन्न है। मैं आत्मा शरीरके अणु-अणुसे अत्यत भिन्न हू। मैं आत्मा अपने आपके सहज चैतन्यस्वरूपमे हू, यह बात कब समझमे आयगी जब तक कि पदार्थके स्वरूपका विस्तारके साथ परिचय पायें।

सयुक्तिक विस्तृत परिचय और वैराग्यभावमे भेदविज्ञानका सही परिचय—विस्तारसे वर्णन भी सुन लिया, समझ लिया, इतनेपर भी वैराग्य परिणति हो तो समझमे आयगा कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यसे अत्यन्त भिन्न है। यह समझ किस प्रकार होती ह ? तो उसके लिए प्रथमानुयोगका स्वाध्याय करें, करणानुयोगका स्वाध्याय करें, करणानुयोगसे जब लोकका, कालका बहुत वर्णन मननमे आये, ऊँची-ऊँची बातें कर्मोकी सब मननमे आयें तो कई वजह है,

ऐसी कि जिन कारणोसे इसके वैराग्य बढता है, आचार्योंके प्रति भक्ति बढती है, वे जो कह रहे सो सही है ऐसा भान होता है, ये सब बातें वैराग्यकी मजबूत करने वाली है। प्रथमानुयोगमे बडे पुरुषोका चरित्र समझें, उसके अनुसार अपनी बुद्धि बने, अपनेमे वैराग्यभाव बढे तब कहियेगा कि इसके भेदविज्ञानको अब समझा। अब समझ लो कितना पौरुष चाहिए कि हम आपके भेदविज्ञान बने, उसी सिलसिलेमे यह पदार्थोंके स्वरूपके विस्तारकी चर्चा चल रही है। कोई भी काम हो, जी जान लगाकर करें तब उसमे सफलता मिलती है। इतना तो समझ ही रहे ना। आप दूकान करते है तो खूब उपयोग लगाकर, मेहनत करके, कष्ट उठाकर सब तरहके व्यवहार बनाकर चलना होता है, उसके लिए साहस है, उसके लिए सकल्प है, और मोक्षका काम कितना महान है, कितना महत्त्वपूर्ण है कि हो जाय तो सदाके लिए सकट मिटें। तो मोक्ष क्या है ? अपने आपका जो विविक्त सहज चैतन्यस्वरूप है वह यथावत रह जाय, यही तो मोक्ष है। यह पाया जिन्होने उन्हे अनन्तआनन्द, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति प्राप्त होती है, और मोक्षमार्गके पानेके प्रसगमे इतना महत्त्वपूर्ण कार्य है कि इसके लिए तन लगे, मन लगे, धन लगे, वचन लगे, प्राण लगें, सब कुछ लगनेपर भी यदि ज्ञानमे अपने आपके सहज ज्ञानस्वरूपका अनुभव बने तो बस बेडा पार है, ये सब बातें पदार्थोंके स्वरूपकी जानकारीमे मिलेंगी।

पदार्थोंकी अखण्डद्रव्यपर्यायमयता—सत्मे द्रव्य और पर्याय, दो बातें तो माननी पडेगी ही। चीज है, सदा काल रहती है, अच्छा यह बात तो मान ली, पर उसकी अवस्थायें भी बनती रहती है। पर्यायें बनती रहती है, यह भी बात है कि नही। इसी बातको इस गाथामे स्पष्ट किया है कि पर्यायसे रहित द्रव्य नही, द्रव्यसे रहित पर्याय नही, इस प्रसगमे एक बात और समझना, बहुत ऊँचे अभेददृष्टिके ख्यालसे बढकर चलें तो एक बार गुणोको तो मना कर सकते हो, गुण नही, और मना करके उसके एवजमे क्या जानें ? स्वभाव। और गुण क्या है कि स्वभाव है वस्तुमे अभेददृष्टिमे परखा जाने वाला एक अभिन्न लक्षण और गुण है, उसी स्वभावको समझनेके लिए उस स्वभावके भेददृष्टिसे अनेक खण्ड कर देना। खण्ड न करना, मत करें, द्रव्य है, स्वभाव है उसका। इतना तो मानना ही होगा। इतना माने बिना तो आगे न बढ सकेंगे और साथ ही यह भी मानना पडेगा कि प्रत्येक समयमे द्रव्यकी कोई न कोई अवस्था रहती है, उसका नाम है पर्याय। अब इस पर्यायको कोई विशेष न जाने तो परिणमन है सामान्य परिणमन, इतना तो मानना ही होगा और जो एक परिणमन है वह अवक्तव्य परिणमन है, जिस दृष्टिमे गुणोको स्वीकार नही किया। हमे न चाहिए भेददर्शन, हम अभेददृष्टिसे चलकर अपनेमे परखेंगे, परका द्रव्य अभेद है, अवक्तव्य है, अखण्ड है, हाँ ठीक समझ गए, पर पर्याय बिना नही है कुछ। वह पर्याय भी अवक्तव्य अखण्ड अभेद, यो निरखा

जायगा। पर्यायमें विशेष तब निरखा जायगा जब गुण मानकर चलें। यह अमुक पर्याय है, यह अमुक पर्याय है, यह बात तब कह सकेंगे जब गुण मानकर चले। हम गुण नही मान रहे, हमारी दृष्टि अभेद है, इस द्रव्य और स्वभावको समझ रहे है अखण्ड अवक्तव्य। तो पर्यायको अखण्ड अवक्तव्य मानना होगा हर समय। प्रतिसमय वस्तुमे प्रत्येक अखण्ड है, अवक्तव्य है। अगर कुछ बताया जा रहा है तो पूरी बात नही कही जा रही, अश कहा जा रहा। जीवकी इस समय भीतरमे क्या अवस्था बन रही ? उसका पूरा विवरण आप दे सकेंगे क्या ? नही दे सकते। वह अवक्तव्य है, अखण्ड है याने तिर्यक् खण्ड भी नही है, और जब यह कहते कि वाह क्रोध है, मान है, लोभ है, शान्ति, समाधि, ज्ञानदृष्टि लगन ये सब हो रहे हैं, तो इनमेसे कोई भी आप एक बात कहे वर्तमान अवस्थाकी, उसमे से एक अश ही तो आपने बताया। तो इतना तो मानना ही पडेगा—द्रव्य और पर्याय, गुणको छोड दो, उसकी चर्चा न करें, पर अखण्ड कोई वस्तु है शाश्वत और उसका प्रति समय परिणमन है, वह परिणमन अभेद है, अखण्ड है, इन्ही दो की चर्चा चल रही है कि पदार्थ द्रव्यपर्यायात्मक है। द्रव्यसे रहित पर्याय कुछ होती ही नही, पर्यायसे रहित द्रव्य कुछ होता ही नही।

दृष्टान्तपूर्वक द्रव्य व पर्यायकी अविनाभाविताका निरीक्षण—दृष्टान्त लो गोरस, मायने गायका जो निकला हुआ दूध है वही दही बन गया, घी बन गया, मावा बन गया, छेना बन गया, जो जो भी बना, यह बताओ कि उन सब अवस्थाओमे गोरस होता कि नही ? आप घी दिखाओ, दही लावो, लेकिन गोरस न होना चाहिए। तो क्या आप ला सकेंगे ? न ला सकेंगे, क्योकि गोरस तो उन सब अवस्थाओमे व्यापक है। दूध है तो गोरस, दही बना तो गोरस, मट्ठा बना तो गोरस, गोरस बिना इनमेसे कुछ भी नही है। न दूध मिलेगा, न दही। तो गोरससे रहित दूध दही कही मिलेगा क्या ? न मिलेगा। और दूध, दही घी, छाँछ, छेना, मावा आदिक इनके बिना गोरस आपको कही दिखेगा क्या ? न दिखेगा। आप सोना चाँदीमे यह घटना ले लो। स्वर्ण द्रव्यके बिना डला, बिस्कुट अगूठी, करधनी आदिक सारी पर्यायोके नाम ले लो। ये सब मिलेंगे क्या ? न मिलेंगे। और इन सबके बिना स्वर्ण मिलेगा क्या ? कोई कहे कि देखो न तो पिण्ड लाना, न कोई आभूषण लाना, सिर्फ सोना लाना, तो वह ला सकेगा क्या ? नही ला सकता। स्वर्ण द्रव्य बिना ये अलकार आदिक नही और अलकार आदिकके बिना स्वर्ण द्रव्य नही है। स्वर्ण द्रव्य तो कोई न कोई अवस्थामे होगा। है अवस्था जरूर तो कोई वस्तुकी ही तो अवस्था है। इस प्रकार द्रव्य बिना पर्याय नही, पर्याय बिना द्रव्य नही। ये दोनो ऐसे अनन्यभूत है।

वस्तुस्वरूपके परिचयसे भेदविज्ञानीकी शिक्षा—यहाँ बात क्या समझनी है कि जो भी वस्तु है वह द्रव्यपर्यायरूप है। सो अपने द्रव्यपर्यायरूप है। मुझमे उसका कुछ नही, मैं

जो हू सो अपने द्रव्यपर्यायरूप हू। मेरा अन्यमे कुछ नही। अब तत्त्वज्ञान बने और वैराग्य की वढवारी बने ये दो ही इस जीवके रक्षक है। ये दो बातें न हो तो जीवकी कही रक्षा नही है। झगडा-फसाद, लडाई आपत्ति याने नारकीय लीला जहाँ भी हो, जिस घरमे हो, जो करने वाला हो, उसका आधार क्या है ? वस्तुस्वरूपका ज्ञान नही। स्व परका भान नही, सो यह सब गडबडी चल रही। निजको निज परको पर जान, यह बात नही है वहाँ विसम्वाद है। तो सर्व पदार्थ पृथक्-पृथक् है, यह बात कब स्पष्ट झलकी ? जब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव गुण पर्याय सब नजरोंसे यह ज्ञान होगा कि प्रत्येक वस्तु अपने आपके स्वक्षेत्रमे है और उसमे ही उसकी सारी फैक्टरी है, उससे बाहर मेरा कुछ नही है। वस्तुके सहज स्वातन्त्र्यके ज्ञाता को मिलेगा तत्त्वज्ञान।

निर्वाध हितयात्राका साधन प्रभुशासनप्रदीप—देखो इस जीवनमे क्लेशके गड्ढे बहुत खुदे है, एक यात्रा हो रही है अपनी याने समय गुजर रहा और समय-समयमे हम पग वढा रहे है, परिणमन तो हो ही रहा ना, यही है हमारी यात्रा। इस यात्राके पथमे जगह-जगह गहरे-गहरे क्लेशोके गड्ढे खुदे हुए है। एक तो यह आपत्ति, दूसरे अज्ञान पापका अधकार फैला हुआ है। अब लौकिक उदाहरण ले लो कि आपको कही बाहर जाना है और अधेरी रात है, और जिस मार्गसे जाना है उसमे बडे-बडे गड्ढे जगह-जगह खुदे है, जाना तो आपको पडेगा, ऐसी मजबूरीमे तो अच्छी तरह आप जा सकें, इसके लिए आप लोगोको कोई उपाय समझमे आया कि नही ? आप जा सकते हैं किस उपायसे ? हाथमे दीपक ले लो, बस बेधडक चले जावोगे। एक ही तो उपाय है, अगर कठिन उपाय हो तो चिन्ता करो, क्यो चिंता करते, एक ही सीधी बात है—हाथमे दीपक लो और पार कर जावो उस रास्तेको। इसी तरह हम आपके इस जीवनपथमे बडे-बडे कष्टके गड्ढे खुदे है। वस्तुत अब भी कष्टकी कोई बात भी है क्या ? अच्छी तरह बैठे हैं, स्वस्थ भी है, सारी बात है, मनमे कल्पना जगी तो कष्ट हो गया। कोई छोटा बच्चा है, आपके पास बैठा है, आप उसे अपनी गोदमे बैठाये है, उसे चिपटाये भी है, कोई चीज वह बच्चा मांगे तो आप उसे देनेको तैयार है, खाना मांगे तो खाना तैयार है खिलौना मांगे तो खिलौना तैयार है। खेल भी रहा है, अब उस बच्चेके मनमे आ जाय कि घर जाना है और आप नही उसे घर लिए जा रहे तो वह बच्चा बडा कष्ट मानता है, रोता है। बताओ उसे किस बातका कष्ट है ? कोई उसे मारपीट नही रहा, कोई कुछ कह नही रहा फिर उसे कष्ट किस बातका ? बस दु ख है उसकी कल्पनाका, अज्ञानताका। तो जैसी बात उन बालकोकी है ऐसी ही बात हम आप सबकी है। कोई कष्ट नही है, आनन्द है। दो रोटियां खानेको मिल ही जाती, तन ढकनेको कपडे मिल ही जाते, सब सुविधा है, सारी बात है, मगर कल्पना जगी तो सब कुछ रहते हुए भी आनन्द तो पाया नही। कष्ट ही मिला।

कल्पना जगी, उसकी ओर दृष्टि बनी जो कल्पनामे आया और वर्तमानमे जो सुख-सुविधा साधन है उनका सब खातमा हो गया। तो क्लेशके गड्ढे कितने खुदे है जीवनपथमे और इसके अतिरिक्त पाप अज्ञानका अधकार छाया हुआ है, कुछ नही सूझता, ऐसी विकट परिस्थितिमे आप अपना भविष्य ठीक बना सकते है क्या ? कोई उपाय है क्या आपके पास ? उस लौकिक गमनका तो उपाय मिल गया था, वहाँ तो दीपक आप ले लेंगे, पर बतलाओ इस जीवनपथमे जो क्लेशोके गड्ढे खुदे हैं, अज्ञान और पापका अधकार छाया है, कुछ सूझ नही रहा है, ऐसी हालतमे कोई उपाय है आपके पास है क्या कि आपकी यात्रा अच्छी बने और आपको सुख शान्ति सतोष हो ? उसका उपाय यह है कि जिनवाणीरूपी रत्नका दीपक तत्त्वज्ञान आप हाथ मे ले ले, पदार्थका सही-सही बोध उस ज्ञानको लेकर चलें तो कही आपको कष्ट नही। सारे काम आप अच्छी तरह निभा लेंगे।

औपाधिक मायासे हटकर परमार्थ सहज चित्प्रकाशमे आनेकी भावना—सकल संकट-हारी एक मौलिक ज्ञानकी बात चल रही है। भेदविज्ञान कैसे बने ? अज्ञान अधकारसे हटकर ज्ञानप्रकाशमे कैसे आयें ? करे प्रार्थना, किससे ? भगवानसे। किस भगवानसे ? अतर्भगवानसे। क्या करे ? तमसो मा ज्योतिर्गमय, हे अन्तर्नाथ ! मुझको अधकारसे तो दूर करो और ज्योति मे ला दो। इस अन्तर्नाथका मायारूप जो परिणाम है वह अधकार है और सहज स्वभावरूप जो भाव है वह परमप्रकाश है। इस ही प्रभुकी माया और इस ही प्रभुका ब्रह्मस्वरूप है। माया से हटाकर इस ब्रह्मस्वरूपमे ले जावो। यह कब प्रेरणा मिलेगी ? कैसे इस ओर हमारी गति चलेगी ? तत्त्वज्ञानसे। वह तत्त्वज्ञान है इस जिनवचनमे। पदार्थके स्वरूपके सम्बधमे कहा जा रहा है कि जो है वह द्रव्यपर्यायात्मक है। द्रव्य नही तो पर्याय नही और पर्याय नही तो द्रव्य नही। ऐसा समस्त पदार्थोका स्वरूप निश्चित हो रहा है ताकि यह स्पष्ट रहे कि प्रत्येक पदार्थ अन्य समस्त प्रत्येक पदार्थोसे अत्यन्त जुदा है। यह बात तब ही तो मालूम पडेगी जब उनका वह गठित स्वरूप हमारी दृष्टिमे आये। टोकरीमे १० फल रखे है तो आपने १० फल कैसे जान लिया ? प्रत्येक फलका अपना-अपना गठित स्वरूप खुद ही मे है, दूसरेमे नही। तब आपने १० जान लिया। एक दूसरेसे अत्यन्त भिन्न है तब ही तो बनी समझ। तो ऐसे ही प्रत्येक जीवका, प्रत्येक अणुका, प्रत्येक पदार्थका द्रव्यपर्यायात्मक स्वरूप है। दृष्टिमे हो तो यह ध्यानमे जगेगा कि प्रत्येक पदार्थ अन्य समस्त पदार्थोसे जुदा है।

पर्यायरहित द्रव्यको तथा द्रव्यत्वरहित मात्र पर्यायको मानने वालोके सिद्धान्तकी शोधना—प्रकरण यह चल रहा है कि पर्यायोसे रहित द्रव्य नही होता और द्रव्यसे रहित पर्याय नही होती। इस बातको सुनकर यह शका रख सकते है कि क्या कोई ऐसा भी पुरुष है जो यह मानता हो कि पर्यायसे रहित द्रव्य है और द्रव्यसे रहित पर्याय है ? जब कोई इस

विचारके लोग हो तब तो यह बात कहना भला है, अन्यथा कहनेका क्या अर्थ है ? सो यह शका ठीक है । उत्तर यह है कि हाँ है ऐसे लोग जो पर्यायसे रहित द्रव्य मानते हैं और द्रव्यसे रहित पर्याय मानते है । मायने बात दो है ना—तीन काल रहने वाली वस्तु और उसकी अवस्था । हर जगह घटा लो । कोई भी अगर पदार्थ है तो वहाँ दो बाते आप समझेंगे—तीन कालमे रहने वाला पदार्थ और उसकी अवस्था । तो कोई दार्शनिक ऐसे हैं कि तीनो काल रहने वाला पदार्थ तो मानते है, पर अवस्था नही मानते । अवस्था कोई होती ही नही । ऐसे कौन लोग है ? नित्य एकान्तवादी, ब्रह्मवादी, जो कहते है कि है एक ब्रह्म, पर वह परिणमता नही है । परिणमन जो है, यह प्रकृतिकी चीज है । साख्य भी यही कहते हैं । तो कुछ दार्शनिक हैं ऐसे कि जो पर्यायरहित द्रव्य मानते है और कुछ लोग ऐसे हैं कि जो द्रव्यरहित पर्याय मानते है याने तीन कालमे रहने वाली वस्तु कोई नही होती । जो कुछ है सो तुरन्त पैदा हुआ और तुरन्त मिट गया । अब समय-समयमे जो-जो बात सामने आयी, बस वह एकदम आ गया । उसका कोई लगार पहले न था, वस्तु ही न थी, वह तो नई वस्तु उत्पन्न हुई है और उत्पन्न होते ही मिट जाती है । ऐसे वे लोग कौन है ? क्षणिक एकान्त वाले । तो ऐसे अभिप्रायके लोग हैं और जो प्रकट नही हैं अन्य दार्शनिक रूपमे, ऐसे जैनधर्मके ही शासनमे चलते हो उनका भी कभी-कभी ख्याल हो सकता किसीके, इसलिए कुन्दकुन्दाचार्यने गाथामे यह बताया कि पर्यायरहित द्रव्य नही होता और द्रव्यरहित पर्याय नही होती । तो क्या है ? जो है वह द्रव्यपर्यायात्मक है, द्रव्यसे पर्याय अनन्यभूत है, अलग नही है । वही एक पदार्थ परिणमता हुआ चला जा रहा है अब तक । किसी भी भाषामे समझ लो—इस तरह पर्याय और द्रव्यमे भेद नही । तो जैसे इस गाथामे बताया कि द्रव्य और पर्यायमे भेद नही, ऐसे ही अगली गाथा में कह रहे है कि द्रव्य और गुणमे भेद नही ।

दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण सभवदि ।
अव्विदिरित्तो भावो दव्वगुणाण हवदि तम्हा ॥१३॥

द्रव्य और गुणका तादात्म्य और अविनाभाव—द्रव्यके बिना गुण नही होते, इसी प्रकार गुणोंके बिना द्रव्य सम्भव नही । यो द्रव्य और गुणमे परस्पर अभेद है । बात क्या कही जा रही है ? दो बातें द्रव्य और गुण । द्रव्य क्या कहलाता है ? अखण्ड वस्तु, पूर्ण वस्तु जो त्रिकाल रहता है । अनादिसे अनन्त काल तक है, ऐसे वस्तुको कहते हैं द्रव्य । अब जो भी द्रव्य है उसका कोई न कोई स्वरूप जरूर है । स्वरूप न हो तो उसका अभाव हो जायगा । तो जो स्वरूप है वही स्वभाव है । तो द्रव्य अनादि अनन्त है । उसका स्वभाव अनादि अनन्त है । अब उस स्वभावको पहिचाननेके लिए अभेददृष्टिसे गुणभेद करके बताया जा रहा है । जैसे आत्मा चित्स्वरूप है, बस बात समाप्त । इसके आगे अब गाडी नही चल

रही। इतने से तो कोई समझा नही, गाडी तो चलानी पडेगी अन्यथा तत्त्व ही न समझा जा पायगा। तो लो अब व्यवहारनयसे उस स्वभावमे भेद करके समझाया जा रहा है। जहाँ स्वभावमे भेद किया और भेद करके जो समझमे आया उसका नाम गुण है। देखो यह गुण समझाया तो गया भेददृष्टिसे, किन्तु असत्य नही है। जिस प्रकार बताया है उस प्रकारसे वस्तु तक पहुचा जाता है। अगर कोई बात असत्य हो तो उसके सहारे सत्यपर कहाँ पहुच जायेंगे, उस अखण्ड वस्तु तक कैसे पहुच जायेंगे ? इसलिए एक स्वभावके भेद करके गुण बताये गए कि वे गुण भी अनादि अनन्त है।

अब यहाँ द्रव्य और गुणोकी परस्पर चर्चा है। द्रव्यके बिना गुण नही, गुणके बिना द्रव्य नही। जैसे कोई समझ लो पुद्गल द्रव्यका दृष्टान्त लो—पुद्गल परमाणुका लक्षण क्या है ? रूप, रस, गध, स्पर्श। पुद्गलका लक्षण जिसमे रूप, रस, गध, स्पर्श हो। पुद्गल द्रव्य न हो तो रूप, रस, गध, स्पर्श कहाँसे होगा ? रूप, रस, गध, स्पर्श न हो तो पुद्गलद्रव्य कहाँसे होगा ? और दृष्टान्त लो जीवद्रव्य और उसके गुण क्या हैं ? ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द वगैरह। अगर एक जीवपदार्थ नही है तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी कहाँसे हो ? अगर दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदिक नही है तो द्रव्य भी नही रह सकता। क्या है कोई ऐसा द्रव्य जो गुणरहित हो, जिसमे साधारण असाधारण कोई भी गुण न हो ? मायने न अस्तित्व है, न वस्तुत्व है, न द्रव्यत्व है न कोई असाधारण है। पदार्थ हो जाय तो कभी नही हो सकता। तो क्या निष्कर्ष निकला ? द्रव्यके बिना गुण सम्भव नही और गुणोके बिना द्रव्य सम्भव नही। जैसे कोई फल खरीदा तो उसमे रूप, रस, गध, स्पर्श चारो हैं कि नही ? चारो है। फल न हो तो ये चारो हैं क्या ? नही हैं। ये चारो न हों और कोई ऐसा फल लाकर दिखाओ जिसमे रूप, रस, गध, स्पर्श कुछ न हो। चलो बाजारसे आज ऐसा कोई अनहोना फल लाकर दिखाओ। कैसा फल चाहिए, जिसमे रूप, रस, गध, स्पर्श ये कुछ न हो। ऐसा कोई आर्डर दे सकेगा ? हाँ दे सकेगा। ... कजूस (हँसी) तो द्रव्यके बिना गुण नही और गुणके बिना द्रव्य नही। तो द्रव्य गुण ये कोई ऐसे भिन्न-भिन्न नही है जो अलग-अलग पडे हो। है बात एक ही तदात्मक है। गुणमय ही द्रव्य है, मगर अपेक्षा के वशसे उनमे भेद किए जाते है। तो भेद तो कर दिया कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदिक गुण है और द्रव्य बता दिया, पर उनका अस्तित्व तो एक ही है। ऐसा नही कि द्रव्य अलग सत् है, गुण अलग सत् है। इसलिए वास्तवमे द्रव्य और गुणमे भेद नही, किन्तु अभेद है।

द्रव्य और गुणको स्वतन्त्र-स्वतंत्र पदार्थकी मान्यताकी शोधना—उक्त वार्ताको सुनकर यह सोचा जा सकता है कि यह कैसे समझें कि द्रव्यके बिना गुण नही होते और गुणके बिना द्रव्य नही होते ? क्या कोई आदमी ऐसे भी हैं जो ऐसा मानते हो कि द्रव्यके बिना ही गुण

हो जाते है और गुणोके बिना ही द्रव्य हो जाते हैं ? यहाँ गुण और द्रव्यका अर्थ घनका न लेना याने कमानेकी कुशलता हो तो उसे कह लो गुण और धन कमाये उसे कह लो द्रव्य, और उसकी पुष्टिमे कुछ एक उदाहरण लौकिक दे दो। 'सर्वेगुणा काचनमाश्रयन्ति ।' सारे गुण धन का आश्रय करते हैं, तो ये तो सब लौकिक मोहियोकी बाते है। यहाँ गुणके मायने है पदार्थोमे रहने वाली अनादि अनन्त शक्तियाँ और द्रव्यके मायने है एक अखण्ड वस्तु। देखो द्रव्यके बिना गुण नही होता और गुणके बिना द्रव्य नही होते। तो यह आशका हुई ना कि क्या कोई लोग ऐसे भी होते जो द्रव्यके बिना ही गुण मान लेते। खाली गुण है द्रव्य कुछ नही, पदार्थ कुछ नही, और कोई ऐसे भी दार्शनिक है क्या कि जो गुणके बिना द्रव्य मान लें ? खाली द्रव्य हैं, पदार्थ है गुण आदिक कुछ नही। हाँ हैं ऐसे दार्शनिक जिनमे मुख्य है मीमासक। उन्होंने ७ पदार्थ माने है—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। ये ६ तो भावात्मक है और एक है अभाव नामका पदार्थ, जो अभावात्मक है। तो पदार्थ तो वह ही कहलाता जो स्वतत्र है। कोई किसीके आधीन नही। तो द्रव्य, गुण ये स्वतत्र हैं ना ? गुणकी सत्ता अलग है, द्रव्यकी सत्ता अलग है मीमासकोंके यहाँ, पर वस्तुत. ऐसा है नही, फिर मानने क्यो लगे ऐसा ? भाई बुद्धि ही तो है, बुद्धि तो एकमे भी बहुत भेद कर देती है। जैसे एक पुद्गल द्रव्य है, उसमे रूप, रस, गध, स्पर्श समझमे आ रहे है, रूप समझमे खूब आ रहा कि इस पुद्गलमे रूप है और बल्कि जिस समय रूप समझमे आ रहा, उस समय रस, गध, स्पर्श ये समझमे नही आ रहे। दूर चीज है, भीत है, उसका रूप तो समझमे आ रहा, पर रस, गध, स्पर्श ये समझमे नहीं आते। जब ऐसी स्थितिया होती है लोगोकी तो क्यो न वे इस बात पर अड जाये कि रूप अलग चीज है, रस अलग चीज है, गध अलग है, स्पर्श अलग है, वह भीत अलग है, ऐसा कोई मनचला सोच नही सकता क्या ? जब इन बातोका जुदा-जुदा करके ज्ञान बन रहा है तो ऐसा सोचनेमे क्या दिक्कत ? तो भले ही सोच तो डालें वे, पर वास्तविकता नही समझे। अरे वह चीज एक ही है, आम एक ही है, उसका जब रसनाइन्द्रिय द्वारा परिचय किया तो रस समझमे आया, और घ्राण द्वारा परिचय किया तो गध समझमे आया, छूकर समझा तो स्पर्श समझमे आया और देखकर समझा तो रूप समझमे आया, पर ये रूप, रस, गध, स्पर्श अलग-अलग हो सो बात नही। आप कहेगे कि हमे क्यो ज्यादा समझाते ? सब जानते है कि रूप, रस, गध, स्पर्श अलग नही होते, एक ही आधार है, एक ही प्रदेश है वस्तुमें, पुद्गलमे, कही ऐसा नही है कि इस हिस्सेमे तो रूप है, इसमे रस है, क्या है ऐसा ? आमके एक हिस्सेमे रूप हो और आगे पीछे रस हो, क्या ऐसा है ? ऐसी बात नही है। जहाँ डठल होता है ठीक उस जगह रस तो नही होता तब ही तो लोग उस आमको मसककर डठल वाली जगहसे कुछ पानीसा निकाल देते है, फिर चूसते हैं। अरे तो उसमे मीठा रस नही है

तो न सही, मगर रस तो है । चाहे कैसा ही हो ।

गुणोंमें भी गुणोको स्वतंत्र-स्वतंत्र माननेकी मान्यताका शोधन—रूप, रस, गध, स्पर्श पुद्गलोके उसी प्रदेशमे है चारोंके चारो, फिर क्यो अमभा रहे ? क्या कोई लोग ऐसे है कि रूप, रस, गध, स्पर्शको एक जगह न मानते हो, अलग-अलग मानते हो और यहाँ परस्पर भिन्न-भिन्न हो, क्या कोई लोग है ऐसे ? है, तब ही तो समझाना पडता है, निरशवादी, जिसका एक भेद बौद्ध भी है । निरशवादियोंके सिद्धान्तमे यह बताया है कि रूप क्षण पूर्ण वस्तु है, किसीकी अपेक्षा नही करता । रस क्षण अलग वस्तु है, गध क्षण अलग वस्तु है, स्पर्श क्षण अलग वस्तु है, और इतना ही नही, नीलक्षण, पीतक्षण, रक्तक्षण, रगोमे भी जितने भेद है वे इतने ही स्वतत्र-स्वतत्र अलग-अलग पदार्थ है । तब ही तो समझानेकी जरूरत पडती है कि ये रूप, रस आदिक भिन्न-भिन्न नही, किन्तु एक ही अखण्ड द्रव्यके गुण है, ऐसी ही बात जीवमे लगा लो । जीवमे ज्ञान, दर्शन, सुख दुःख, आनन्द ये क्या अलग-अलग है ? एक ही जगह है । कही उपाधिके सम्बन्धसे सुख दुःख हो, उपाधिका सम्बन्ध नही तो आनन्द हो गया । कैसे ही हो, चाहे विभाव हो, चाहे स्वभाव हो रहता, तो जीवके प्रदेशोमे ही ना ? भिन्न-भिन्न कहाँ ? अच्छा तो कोई लोग है क्या ऐसे जो ज्ञानको अलग मानते हो, सुख दुःखको अलग मानते हो, आनन्द इच्छाको अलग मानते हो ? हाँ है । नैयायिक सिद्धान्त है ऐसा जो ये अलग-अलग चीज मानते है और भी है । जैनोमे भी कुछ लोग ऐसे ही ख्याल के हो सकते है । तो बात यह बतलायी जा रही है कि जितने गुण है वे गुण अलग-अलग कुछ नही है, एक ही अस्तित्वमे है, एक ही आधारमे है, वह आधार है द्रव्यका । द्रव्यके बिना गुण नही और गुणके बिना द्रव्य नही, क्योकि द्रव्य गुणोमे अभिन्नताका भाव है । व्यतिरेक कुछ नही है, इसलिए द्रव्य गुणमे चूकि ये अभिन्न सत्त्वसे निष्पन्न है, सत्ता इनकी न्यारी न्यारी नही है, इस कारण इनमे अभेद है । द्रव्य और गुण ये अभिन्न प्रदेशमे निष्पन्न है । द्रव्यके प्रदेश अलग, गुणके प्रदेश अलग, ऐसा नही है, इस कारणसे इनमे भिन्नता नही । द्रव्यका और गुणका एक ही काल है । जबसे द्रव्य है, जब तक द्रव्य है तब ही से गुण है, तब ही तक गुण है । सा शाश्वत एक क्षणकी भी लहुराई, जेठाई (छोटा, बडा) पन नही है । सब सहजात है, एक ही रूप है । तो एक ही कालमे इन सबका उत्पाद व्यय ध्रौव्य सब कुछ एक ही साथ एक ही प्रदेशमें होता है । इस कारण द्रव्य गुण अभिन्न है और एक ही स्वरूप है । तो यो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे द्रव्य और गुणोमे अभेद है । इस कारणसे ये भिन्न-भिन्न नही है । अच्छा, यह वस्तुतथ्य तो जाना जा रहा है, पर ऐसा सब कुछ जानकर हमको शिक्षा क्या मिलती है कि अपने आपके द्रव्यको देखो । मै आत्मा द्रव्य हू, निरन्तर परिणमता रहता हू, अपना कोई स्वभाव रख रहा हू, उस ही स्वभावमे इसमे परिणमन चल

रहा। उस स्वभावके भेद करें। अनन्त गुण है, उन गुणोका, स्वभावका जो सही परिणमन होना चाहिए याने अपने आप अपने ही सत्त्वसे परकी अपेक्षा बिना, परके सम्बन्ध बिना जो उसकी हालत होनी चाहिए वह हालत है निर्विकार शुद्ध आत्मद्रव्य। जिसे कह लो सिद्ध भगवान। उनमे लगा लो द्रव्य गुण पर्याय, सब एक रस रहते है और वहाँ द्रव्य, गुण पर्याय का समझना कुछ कठिन है बनिस्वत हम आपके द्रव्य गुणपर्यायके। हम अपनी पर्यायमे जल्दी क्यो समझ लेते है कि हमारे ये सब उल्टे उल्टे हैं। देव, नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, क्रोध, मान माया, लोभ, झट समझमे आ जाता है कि परिणम रहा है यह जीव। सिद्धकी बात नही समझमे आती जल्दी कि वे परिणम रहे है, क्योकि वहाँ विषमता तो नही है। कोई दूसरी चीज डबल पडी हो किसी चीजमे, जैसे गेहूमे चने मिले हैं तो बडी जल्दी समझमे आता है क्योकि ये भिन्न चीज है। ये पडे है, दूरसे ही देख लिया। तो वह भगवान एकरस हैं, द्रव्य गुण पर्याय सब एक तन्मय है, वह अवस्था प्राप्त है। वहाँ ही अनन्त आनन्द है। विषमता में लाभ नही तो वह चीज प्राप्त कैसे हो ? वह शुद्धस्वरूप हमको कैसे मिल जाय ? शुद्धका ध्यान करे तो शुद्धस्वरूप मिल जायगा। अशुद्धका ध्यान करेंगे तो अशुद्ध ही अशुद्ध बने रहेगे।

शुद्ध अंतस्तत्त्वकी आराध्यता—जिसको शुद्ध बनाना है उसको जरूरत है कि शुद्धका ध्यान करे। अब देखो शुद्धका कहाँ ध्यान करना ? जो अरहत सिद्ध भगवान है वे शुद्ध हैं ना ? उनका ध्यान करनेसे मिल जायगा क्या मोक्ष ? आप लोग कहेगे कि हाँ मिल जायगा मोक्ष, क्योकि श्रद्धा बनी है ना, मगर न मिलेगा। देखिये यह बात सुनकर घबडाना नही। साक्षात् और परम्पराका भेद समझना है। जो अरहत हैं, सिद्ध हैं वे परवस्तु हैं, उनके निर्विकारता होती रहती है। अब वहाँ ही तुम्हारी आँख गडी है, वे भगवान है, बल्कि स्थितिमे क्या किया तुमने कि अपने ज्ञानको अपनेसे हटाकर बहुत दूर ले जाकर उस सिद्ध क्षेत्रमे या उस दूसरी जगहमे तुमने ध्यान बनाया—वे है सिद्ध भगवान, वे है अरहत, वे समवशरणमे हैं। देखो इसमे भी फर्क तो आया। अभी आपकी कोई बम्बईमे मानो दुकान है वहा ध्यान दो, वह है दुकान, तो जैसे वहा ध्यान दिया, वह है दुकान, ऐसे ही यहा ध्यान दिया कि वे हैं भगवान जो लोकके अन्तमे विराजमान है तो एक सीमा तो बनी एक समान, मगर इन दोनोमे अन्तर बहुत है। वह तो स्वरूपकी सुध दिलानेके काबिल रख रहा है वह अनुराग, शुद्ध आत्माका अनुराग। हमको शुद्ध आत्मद्रव्यमे प्रवेश करानेके काबिल बनाये रखे ऐसा है वह ध्यान, और जो दुकानके प्रति ध्यान बनाया, उसमे यह बात तो नही है। तो इन दोनो ध्यानोमे अन्तर है। इससे कह सकते है कि अरहत सिद्धका ध्यान परम्परया मोक्ष का कारण है। जब सिद्ध भगवानके स्वरूपका ध्यान करते है तो चूकि उनका स्वरूप एकरस-

सम है। द्रव्य, गुण, पर्याय सर्व शुद्ध है तो वह ध्यान होनेसे तनिक जरा और दृढतासे ध्यान बने तो वह पराश्रय छूटकर अपने शुद्ध आत्मस्वरूपका भान हो जाता है तो आखिरमे निश्चय से सहारा किसका लिया गया ? निज शुद्ध आत्माका। इतनी बात सुनकर आप चौक सकते है कि खुदमे कहाँ धरा शुद्ध द्रव्य। जिसका हम सहारा लें और बाहरमें अरहत सिद्धके आत्मा मे वह शुद्ध आत्मद्रव्य है। उसके लिए तुम कह रहे कि उसके विकल्पमे साक्षात् मुक्ति नही है और यहाँ शुद्ध आत्मद्रव्य नही है, रागद्वेष मोह भरा है, यहाँ सहारा लें कैसे ? तो भाई सुनो— शुद्ध आत्मद्रव्यके मायने यहाँ यह नही है कि जहाँ राग नही, द्वेष नही, मोह नही, पवित्रता है, निर्विकार दशा है उसे शुद्ध आत्मद्रव्य कहा जा रहा है। बडा ध्यान देनेकी बात है, किन्तु एकत्व, एकाकी, एक, अकेला आत्मा ही आत्मा यह ध्यानमे दो, इसका क्या मतलब ? उस आत्मद्रव्यके साथ कर्म न सोचे, विभाव न सोचें, नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव पर्याय न सोचें, औरकी बात तो दूर रहो, जो भीतर जानकारी, अवस्थायें होती है उनपर भी ध्यान न दे, उन सब विकल्पोको हटावें। केवल एक आत्मतत्त्व, अब उसके साथ स्वभाव भी आयगा, स्वभाव बिना द्रव्य नही होता, स्वभावरूपमे ही द्रव्यका परिचय बनेगा, सो स्वभावमय जानो। शब्द नही है बतानेको, परन्तु करके जान लो। सारे बाहरी बातोके ख्याल छोडकर विश्रामसे जब आप अपनी ओर झुकते हुये आरामसे बैठोगे तो आ जायगा वह शुद्ध ज्ञानस्वरूप। जिसकी ख्यातिके लिये सर्व विशुद्ध ज्ञानाधिकार बनाया गया समयसारमे उसे शुद्ध आत्मद्रव्यकी बात कह रहे है। कैसे मिले ? कैसे ज्ञानमे आये ? तो निर्विकल्प समाधिके बलसे, जो एक सहज परम आनन्दका अनुभव हुआ, प्रतीति हुई, उस समय किया हुआ सुसम्वेदन ज्ञान। ज्ञान अपने सहज ज्ञानस्वरूपको जान रहा है यह स्थिति है, उस ज्ञानस्थितिके द्वारा यह शुद्ध आत्मद्रव्य जाना जाता है। क्या रागद्वेषादिक भाव नही, विकल्प नही, शरीर नही ? अरे आँखें खुली तो है तो सही, अब नही है उसकी दृष्टिमे। और क्या है ? अनन्तआनद, अनतशक्ति, अनन्तज्ञान। इनसे भरा हुआ सहज अनन्त चतुष्टय निज एक शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्ध द्रव्य है उसे जाने, उसका मनमे ध्यान करे, वचनसे बोलें और उसके अनुसार चलें, यह है द्रव्यगुणकी अभिन्नताका ज्ञान करनेका काम।

सिय अत्थि णत्थि उहय अव्वत्तव्व पुणो य तत्तिदय।
दव्व खु सत्तभगं आदेसवसेण सभवदि ॥१४॥

वस्तुके किसी भी एक धर्मको समझनेके लिये उद्यत होनेपर सप्तभगोका औचित्य— द्रव्यकी सिद्धिका प्रकरण चल रहा है। द्रव्यके विषयमे तीन लक्षणो द्वारा काफी प्रकाश दिया गया। द्रव्य सत् लक्षण वाला है, द्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है, द्रव्य गुण पर्यायमय है, ऐसे परस्पर सहयोगी तीन लक्षणो द्वारा द्रव्यके स्वरूपपर प्रकाश डाला गया है, और भली-भाँति

न्याय-विधिसे उस द्रव्यके अस्तित्वकी प्रसिद्धि की गई है। उस जाने हुए द्रव्यके विषयमे अब यहाँ सर्व अपेक्षाओंसे द्रव्यका परिचय कराया जा रहा है। जब कभी यह धर्म उपस्थित हो अस्ति अथवा नास्ति तो एक कोईसी भी बात चर्चाके लिए हो जाय तो उस एक बातके दिये जानेपर उसके भङ्ग ७ हो जाते है। उसका कारण यह है कि जो एक बात पेश की, जैसे द्रव्यके विषयमे द्रव्य अस्ति है, यह बात पेश की तो किसी अपेक्षासे ही तो यह बात रही, तो उसके विपक्ष नयसे यह जोडना पडेगा कि स्याद् नास्ति। अब एकके कहते ही दो तो हो ही गए। वस्तुके बारेमे कोई कुछ कहे एक तो वह और एक उसके खिलाफ, ऐसी दो बातें एकके कहते ही आ गईं। अब उन दो बातोको एक साथ बोला न जा सकेगा, क्योकि दृष्टियाँ भिन्न-भिन्न है। उन दृष्टियोका वाच्य भिन्न है, उन सबको एक निगाहसे एक बोला जाय इस कारण तीसरी बात भी आ जाती है कि अवक्तव्य है। तो सप्तभङ्गीमे पहले तीन भङ्ग ये है—स्याद-अस्ति, स्याद नास्ति और स्याद् अवक्तव्य। ऐसे तीन न जानना कि स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति, स्याद अस्तिनास्ति। किन्तु तीन भङ्ग हैं—अस्ति, नास्ति, अवक्तव्य। प्रसिद्धि यद्यपि लोगोंमे ऐसी है कि जब भङ्ग बोलेंगे तो पहले अस्ति, फिर नास्ति, फिर अस्तिनास्ति, लेकिन ऐसा प्रयोग करना क्रमरहित है। क्रम क्या है कि पहले इकहरे भङ्ग बताओ। तो इकहरे भङ्ग ये है अस्ति नास्ति और अवक्तव्य। अस्ति नास्ति तो सयोगी भङ्ग है, वह स्वतन्त्र अकेला भङ्ग नही है। इसलिए पहले एक-एक भङ्ग बताना चाहिए, फिर दो-दो के सयोग वाले बताने चाहिएँ, फिर तीन-तीनके सयोग वाले कहने चाहिऐं। द्रव्यके बारेमे कहा जा रहा—द्रव्य स्यात् अस्ति, याने द्रव्य कथञ्चित् है, कौनसी अपेक्षा आयी ? अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है। इस 'है' के कहते ही विपक्षकी बात आ जाती है। द्रव्य स्यात् नास्ति, किसी अपेक्षासे नही है, किस अपेक्षासे नही है ? परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे नही है।

प्रस्तुत पक्ष और विपक्षका तथा अवक्तव्यताका एकत्व दर्शन—देखो हर एक चीजमे ये दो बातें अनिवार्य है कि नही ? मोटे रूपसे ही देख लो—जैसे कहा कि यह चौकी स्यात् अस्ति, चौकी किसी अपेक्षासे है, किस अपेक्षासे है ? चौकीमे जो द्रव्य है, क्षेत्र है, काल है, भाव है उसकी अपेक्षासे है, ऐसा कहते ही विपक्षकी बात भी आ जाती। चौकी स्यात् नास्ति, चौकी किसी अपेक्षासे नही है। किस अपेक्षासे नही है ? चौकीको छोडकर बाकी जितने पदार्थ है भीत, दरी, आदमी वगैरा, इनके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नही है। बताओ चौकीमे ये दो बातें जरूर है कि नही ? चौकी अपने स्वरूपसे है दूसरेके स्वरूपसे नही है। यदि आप यह कहे कि हम दो नही मानते, एक मानते है तो भला कौनसा एक मानते ? दो बातें अभी रखो है। चौकी अपने स्वरूपसे है, दूसरी बात क्या कि चौकी अन्य चीजकी अपेक्षासे नही है। इन दो मे से कौन-सी बात बोलते हो और किसको मना करते हो ? अगर कहो कि हम

नास्तिकी बात मना करते है, सिर्फ एक ही बात कहेगे कि चौकी स्यात् अस्ति तो मना किसे किया ? चौकी दरी चटाई भीत आदिकके स्वरूपसे नही है, इसको मना कर रहे, तो इसको मना करनेका अर्थ क्या हुआ कि चौकी दरी, चटाई, भीत आदिकके रूपसे है। नास्तिको मना करने का अर्थ क्या है ? अस्ति। तो जब चौकी, दरी, चटाई आदिकके स्वरूपसे हो गयी तो अब चौकी तो न रही। खतम हो गई चौकी। देखो नास्तित्वका भी कितना बल है ? पदार्थमे नास्तित्व धर्म है, उसका भी कितना महत्त्व है ? स्वरूप, वस्तुकी सत्ता बनी रहती है नास्तित्वके बलपर। जैसे अस्तित्त्वके बलपर पदार्थ है ऐसे ही नास्तित्त्वके बलपर भी पदार्थमे सत्ता है। तो मना तो नही किया जा सकता कि चौकी अन्य द्रव्योके स्वरूपसे नही है, इस धर्मको कोई मना नही कर सकता। अच्छा अब कोई कहे कि हम पहली बातको मना कर देंगे। क्या थी पहली बात ? चौकी अपने स्वरूपसे है, लो इसको मना कर दिया तो इसका अर्थ क्या निकला कि चौकी अपने स्वरूपसे नही है। तो चौकी कहाँ रही ? सत्ता ही मिट गई। चर्चा किसकी करते ? तो अस्ति और नास्ति—ये दो धर्म हुए पदार्थमे। दो बाते लो सिद्ध हो गईं। ये स्वतत्र बातें है। अब कोई प्रश्न करे कि तुमने ये दो बातें किस अपेक्षासे कही ? हम तो एक बारमे ही तुम्हारे मुखसे सुनना चाहते है कि पदार्थ कैसा है ? एक बारमे कह दो, देर मत करो। वस्तुका स्वरूप समझनेको हम बहुत तेज कमर कसकर आये है। हम धीरे धीरे न सुनना चाहेगे। हमे तो एक बारमे बता दो कि पदार्थ कैसा है ? देर करके क्यो बताते ? पहले कहा—स्यात् अस्ति, फिर बताओगे स्यात् नास्ति। इतनी देरसे न कहो, एक बारमे बताओ कि द्रव्य क्या है ? तो भाई एक बात एक साथ कही ही नही जा सकती कि वस्तु क्या है ? इस कारण अवक्तव्य है। अब ये तीन धर्म हो गए, तीनकी अपेक्षा है। द्रव्य अपने स्वरूपसे है, द्रव्य परके स्वरूपसे नही है। द्रव्यमे दोनोको एक साथ नही कहा जा सकता ऐसा अवक्तव्य है। ये तीन स्वतत्र बातें हुई।

वस्तुमे संयोगी चार भंगोका दिग्दर्शन—अब चलो—द्रव्य अपने स्वरूपसे है, ऐसा होने पर भी द्रव्य परस्वरूपसे नही है, यह भी एक अपेक्षा है, इसे कहेगे स्यात् अस्ति नास्ति। द्रव्य अवक्तव्य होनेपर भी अपने स्वरूपसे है, इसे कहेगे स्यात् अस्ति अवक्तव्य। द्रव्य अवक्तव्य होनेपर भी परके स्वरूपसे नही है—यह हुआ नास्ति अवक्तव्य। द्रव्य अवक्तव्य होने पर भी स्वरूपसे है, पर रूपसे नही है। कही सर्वथा अवक्तव्य मत समझ लेना अन्यथा सब चुपचाप बैठो। कुछ बात भी न बोली जा सकेगी क्योकि अवक्तव्य है। तो इस तरह द्रव्यमे अस्तिधर्मके नातेसे ७ भङ्ग होते है। ऐसे ही और भी उदाहरणोमे ले लो।

वस्तुके सभी धर्मोमे स्याद्वादकी योजना—बताओ जीव नित्य है कि अनित्य ? जीव सदा रहता है ना ? जो सत् है वह कभी मिटता नही, जीव है वह मिटता नही, इसके मायने

है कि जीव नित्य है। किस दृष्टिसे कहा ? द्रव्यदृष्टिसे। जीव नित्य है, सदा है, अनादि अनन्त है। अच्छा देखो एक बात पहले बहुत बार आयी कि वस्तुमे द्रव्य और पर्याय ये दो बात मानना तो अनिवार्य ही है। गुणकी तुम्हारी मर्जी, उसमे तुम कल्पना नही करना चाहते तो मत करो, भेददृष्टि नही रखना चाहते तो मत बोलो, मगर पर्यायको मना नही कर सकते क्योकि द्रव्यका स्वरूप ही है यह कि सदा रहता हुआ भी प्रति समय परिणमता रहता है। यदि ऐसा न हो तो पदार्थ है ही नही बन सकता। तो द्रव्य और पर्याय ये दो अनिवार्य है। तो जीवके बारेमे या किसी भी द्रव्यके बारेमे पूरा वर्णन द्रव्य और पर्याय दोनोसे करेंगे तो कहलायगा। तो द्रव्यदृष्टिसे जीव नित्य है और पर्यायदृष्टिसे जीव नित्य नही है। ये दो बातें आयी। स्यात् नित्य अस्ति, स्यात् नित्य नास्ति। नित्य है एक भङ्ग, अनित्य है दो भङ्ग। अब एक साथ एक बारमे बताओ कि कैसा है द्रव्य ? तो एक बारमे कहा नही जा सकता इस कारण अवक्तव्य है। तीन इकहरे भङ्ग हो गए। द्विसंयोगी भङ्ग, तीन और अपनी द्रव्यदृष्टिसे नित्य है, पर्यायदृष्टिसे अनित्य है, इन दो अपेक्षाओको एक मूडमे लाकर रखा, इसलिए वह एक भङ्ग (चौथा) कहलाया। मूड (आशय) से भङ्ग बनता है। फिर अवक्तव्य होनेपर भी जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य है। यह ५ वा भङ्ग है। जीव अवक्तव्य होनेपर भी अनित्य है यह छठा भङ्ग हुआ। अब तीनोका सयोगी भङ्ग। अवक्तव्य होने पर भी जीव द्रव्यसे नित्य है, पर्यायसे अनित्य है। ये ७ भङ्ग हो गए। देखो—सप्तभङ्गी व्यवहारकी मूल जड है। इन ७ दृष्टियोसे वस्तुका परिचय करने पर पूरा द्रव्य बनता है। किसी आदमीके बारेमे सोचो, एक आदमीको लक्ष्यमे लेकर कहो। यह पुत्र है। है ना पुत्र ? पिताकी अपेक्षासे पुत्र है। स्यात् पुत्र। अच्छा तो स्यात् पुत्र, एक अपेक्षासे पुत्र नही है। किस अपेक्षासे? पुत्रकी अपेक्षासे पुत्र नही है, भाई आदिककी अपेक्षासे पुत्र नही है। पिताको छोडकर बाकी सबकी अपेक्षासे पुत्र नही है। एक बारमे तो बताओ ? अवक्तव्य है यह पुरुष, जिसका हम परिचय करा रहे ? अवक्तव्य है और पुत्र भी है, अपुत्र भी है, पिताकी अपेक्षा पुत्र है और अपिताकी अपेक्षा अपुत्र है। और अवक्तव्य होने पर भी पुत्र है, अवक्तव्य होनेपर भी अपुत्र है। अवक्तव्य होने पर भी पुत्र और अपुत्र है। किसी भी जगह लो, मुखसे कुछ बोला कि उसमे ७ भङ्ग आ गए। यह सप्तभङ्गीका तत्त्वविज्ञान पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको कहता है और इस जीवको मोहसे बचाता है। एक बार कोई अजैन विद्वान जैन हो गया तो उसका लोग मजाक उडायें कि अब तो तुम सप्तभङ्गियोमे मिल गए क्योकि जैन लोग तो सप्तभङ्गियोका शासन मानते हैं। तो वह विद्वान बोला कि भाई क्या बतायें ? मुझपर और आशयमे रहनेसे इतना मैल जम गया था कि ७ भङ्गियोके बिना वह मैल दूर नही हो सकता। इसलिए हम सप्तभङ्गीमे हो गए। भङ्गके मायने क्या ? धर्म। ७ प्रकारके धर्मोकी योजनाका नाम है सप्तभङ्गी।

सप्तभङ्गीके परिचयसे शिक्षण—सप्तभङ्गीके विज्ञानसे हमे क्या शिक्षा मिलती है? भली प्रकार परख कर लेनेपर जो एक फल मिलता है किसी भी काममे, किसी भी पुरुषार्थका फल मिलता है, परमविश्राम मिलता है। लोकमे भी तो दुनियाके बहुत काम करके आप चाहते क्या है? इकट्ठा पूरा आराम मिल जाय। अच्छा तो इसी प्रकारसे सप्तभङ्गो द्वारा पदार्थका खूब स्वरूप जानकर आपको चाहिए क्या? परमविश्राम। वो कैसे मिलता? भली-भाँति जीवका परिचय कर लो। परिचय करनेके बाद अपने आप ही यह विदित हो गया कि जीवमे सार तत्त्व है सहज चैतन्यस्वरूप। बस यह उपादेय है। कामकी बात अनेक परिश्रमोके बाद मिली। जैसे कोई रोटी यो ही न खा लेगा। बहुत परिश्रमके बाद रोटी मिलेगी। पहले कमायी करेगा, फिर वह रोटी बनाने बैठेगा, बडा श्रम करेगा, और उसके बाद जब भोजन करने बैठता तो बहुत मौज और आरामसे हर्षित होता हुआ बैठता कि हमने अथक परिश्रम किया और अब उसका फल पा रहे है। तो ऐसे ही समझिये ज्ञानके क्षेत्रमे हमने नाना दृष्टियो से वस्तुका स्वरूप समझा तो इतना समझ करके अब हमे करना क्या है? अपना जो सहज शुद्ध आत्मद्रव्य है उसमे रमण करना है यह फल है। सब चीजोके भारी-भारी जाननेका क्या फल है उनका जानना छोड दो, आरामसे बैठो। वाह बहुत बढ़िया फल बताया। बहुत-बहुत जाननेके बाद द्रव्यसे, पर्यायसे, भेदसे, अभेदसे, स्वसे, परसे सारी बात समझ लेनेके बाद अब कह रहे कि जो कुछ तुमने समझा, जो तुमने विकल्प किया उनको छोड दो और उन विकल्पो से हटकर आरामसे बैठ जावो। तो कोई एक नया आदमी कह उठेगा कि आपने बहुत अच्छा कहा, इसीलिए तो हम कुछ जानना नही चाहते। कौन बहुत-बहुत पुस्तके पढ़े, द्रव्यके भेद अभेद पढनेमे कौन दिमाग लगाये, क्योकि आप ही तो कहते हो कि जाननेका फल है कि जानना छोड दो तो हम पहलेसे ही छोड रहे। लोग तो जिन्दगीभर परिश्रम करके जाननेके बाद छोडेंगे, हम अभीसे छोड़ रहे तो ऐसा छोडना काम न देगा, क्योकि अज्ञान बसा है अज्ञानमे, विकल्प हट कैसे सकेगा? तो सर्व अपेक्षाओसे वस्तुका परिचय करके एक सारभूत जो एक निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यमात्र अतस्तत्त्व है उसको दृष्टिमे लो, वह मैं हू, इस प्रकारका प्रयत्न करके विश्राम लो, इसके लिए हैं बहुत-बहुत प्रकारकी जानकारियाँ।

द्रव्यपर्यायात्मक वस्तुमे द्रव्यदृष्टि व पर्यायदृष्टिसे भंगोके निर्माणकी समीचीनता—देखिये—अनेकान्त होता है पक्ष और विपक्षकी दृष्टिसे। अब कुछ दिनोसे ऐसा अनेकान्त चला दिया कुछ मनचले लोगोने। कैसा यह है अनेकान्त? पदार्थ नित्य है, पदार्थ अनित्य नही है ऐसा क्यो चलाना पडा कि जो हमने समझा उसकी हठ रह जाय, उसके विपक्षमे सिद्धि न बने। जैसे पर्याय सब नियत हैं, पर्यायें अनियत नही हैं। सुनो—यदि है और नही, इन दो शब्दोने और लुभा दिया लोगोको, पर हुआ कहाँ अनेकान्त? अनेकान्त होता है द्रव्य और

पर्याय दो दृष्टियोसे। वह तो एक ही दृष्टिकी बात रही। जैसे कहा जीव नित्य है, एक यह भंङ्ग, दूसरा भङ्ग… जीव अनित्य नही है, तो भला यह बतलावो—किस दृष्टिसे जीव नित्य है? द्रव्यदृष्टिसे। और किस दृष्टिसे जीव अनित्य नही है? द्रव्यदृष्टिसे। एक वह दृष्टि जब आयी तो भङ्ग कहाँ बना? पुनरुक्त हो गया इसलिए स्याद्वादकी हँसी उडाना अज्ञानसे और दूसरेका पद फैलाना, यह तो बडा पाप है। जो सही बात है उसको छुपाकर अपनी प्रसिद्धिके लिए एक नये ढगकी बात कहना, यह कोई ज्ञानीपनका काम नही है। जैसे घट घट है, घट पट आदिक नही है, तो इसमे दो दृष्टियाँ आ गई–स्व और परकी दृष्टि, भिन्न दो दृष्टि। अगर यह कहो कि घट-घट है, अखण्ड नही है तो एक दृष्टि रहेगी, वहाँ दो दृष्टियाँ नही है—द्रव्य और पर्याय ये दो दृष्टियाँ चलती है। उनके आधारसे अनेकान्तकी सृष्टि हुई, क्योकि इन दो को कभी छोडा नही जा सकता। पदार्थ द्रव्यपर्यायमय है। केवल द्रव्य द्रव्य ही नही है, पर्यायरहित नही है, और केवल पर्याय पर्याय ही नही है, द्रव्यरहित नही है। इसलिए इन दो दृष्टियोके आधारसे भङ्ग बनाया जाय तो अनेकान्त बनेगा अन्यथा नही, क्योकि और तरह तो सभी दार्शनिक अनेकान्ती हो गए। कैसे कि बौद्ध कहते है कि पदार्थ क्षणिक है तो दूसरा सग ले तो साथमे पदार्थ अक्षणिक नही है। उस पदार्थको अगर अनेकान्त एक माडर्न टाइपका बन गया तो उनका भी अनेकान्त कैसा? ब्रह्मवादी कहते हैं कि ब्रह्म अथवा सत्त्व कूटस्थ नित्य है, दूसरा भग बना दो अनित्य नही है, वे भी अनेकान्ती हो गए, फिर तो कोई एकान्तवादी ही न रहा। एक ही दृष्टिकी बात अस्ति और नास्तिसे कही जाय तो कोई भी एकान्ती नही। इससे द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टि—इन दोनो दृष्टियोसे धर्मका निर्णय करना चाहिए। यहाँ तक बात क्या आयी? पदार्थ अनेकान्तात्मक है, अनेकान्त और स्याद्वादमे अन्तर क्या है? वैसे एक ही घरकी बातें हैं, इसलिए चाहे कभी किसी शब्दसे बोल दो, कुछ हर्ज नही। कभी पुरुष अपनी स्त्रीको बुलाये तो वह लडका या लड़कीका नाम लेकर बुला लेता है, स्त्रीका नाम नही लेता और स्त्री पतिको बुलाती तो लडकेका नाम लेकर कहती है—ऐ फलाने, तो यह अपने घरकी बात है, किसीका भी नाम ले लो, बात ठीक है, तो इसी तरह जब एक ही बात की घोषणा है स्याद्वाद और अनेकान्त, तो कोई स्याद्वाद कहता है, कोई अनेकान्त, पर अन्तर यह है कि अनेकान्त तो वस्तुका नाम है और स्याद्वाद कथन शैलीका नाम है, यह अन्तर है, क्योकि अनेकान्तका अर्थ है अनेकान्त· अस्मिन् स अन्त, जिसमे अनेक धर्म हो उसे अनेकान्त कहते है। अनेकान्त क्या हुआ? पदार्थ सहित बुद्धि और स्याद्वाद क्या हुआ? स्या मायने अपेक्षासे व अपना कथन करना, अपेक्षासे कथन करना, इसका नाम है स्याद्वाद। तो स्याद्वाद द्वारा अनेकान्त वस्तुका परिचय होता है।

सर्व अपेक्षाओसे विदित वस्तुमे भूतार्थताके परिचयकी सुविधा—देखो जब कोई बात

सब तरफसे समझ ली जाती है तो उसकी समझ दृढ हो जाती है। कोई आदमी आया आपके घरका अतिथि जो बडे शहरमे रहता है, आपके घरके ६ रास्ते है, आते ही वह घर तो आ गया, मगर रास्तेका परिचय नही है, सो वह घरके पीछेके रास्तेसे आया तो वह वही डोलता रहेगा, कुछ न जान पायगा। सभी रास्तोका, आपके मकानके सब ओरके रास्तोका परिचय हो, तो वह दृढ परिचय है। बनारसमे एक ब्राह्मण विद्वान् था। जैन न्याय पढाते-पढाते उसको जैनधर्मपर दृढ श्रद्धा हुई। तो उस ब्राह्मणके अनेक बिरादरीके लोग उसके पास आये और बोले—साहब आप यह क्या कर रहे? अपने कुलकी बात छोड रहे और जैनशासनकी महिमा आप बखानते रहते हैं, यह क्या है स्याद्वाद? स्यात् नित्य, स्यात् अनित्य। एक पागलो जैसी बात इस धर्ममें कही गई है, कही सदेह मिटता ही नही, और वही सशय वाला धर्म आप अपना रहे, ऐसा आप क्यो कर रहे? तो वहाँ उस ब्राह्मण विद्वानने कहा तो कुछ नही। वह अपने घरकी फोटो ले आया। उसने पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण इन चारो दिशाओसे अपने मकानका फोटो खिचवा रखा था। सबसे पहले पूरब दिशासे खीची गई फोटो दिखायी और पूछा कि बताओ यह किसकी फोटो है? तो वे बिरादरीके लोग बोले—यह तो आपके मकानका फोटो है। और यह दूसरी? यह भी आपके मकानकी ही फोटो है। कैसे? यह मकानके पश्चिम दिशासे ली गई फोटो है, फिर तीसरी फोटो दिखाया तो फिर वही उत्तर दिया कि यह भी आपके मकानका फोटो है पर मकानकी उत्तर दिशासे ली गई फोटो है। चौथी फोटो दिखायी तो फिर वही उत्तर मिला—यह आपके मकानकी दक्षिण दिशासे ली गई फोटो है। तो वह ब्राह्मण बोला—बस यही उत्तर जैनशासनका है। जब द्रव्यदृष्टिसे फोटो लिया तो पदार्थ नित्य लगा, पर्यायदृष्टिसे फोटो लिया तो पदार्थ अनित्य लगा। तो सब वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक है। इस प्रकार दोनो दृष्टियोसे परीक्षा करें तो वस्तुका परिचय होता है। पूर्ण परिचय करके अपनी सब पर्यायोमे व्यापक अनादि अनन्त अहेतुक अन्त द्रव्यत्व का परिचय करें। इस आत्मपरिचयसे विशुद्ध आनन्द जगता है।

भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।
गुणपज्जयेसु भावा उप्पादवये पकुव्वंति ॥१५॥

सदुच्छेद व असदुत्पाद न होनेपर भी गुणपर्यायोमे उत्पादव्ययका संदर्शन—इससे पहली १४वीं गाथामे सप्तभङ्गीका वर्णन किया गया था। द्रव्य स्यात् अस्ति, स्यात नास्ति आदिक रूपसे बहुत विवेचन हुआ। उस विवेचनको सुनकर कोई दार्शनिक यह शका रख सकता है कि कोई द्रव्य हो तब तो उसके बारेमे अस्ति नास्ति आदिक भङ्ग बनाये, पर कोई पहले से सत् नही है कि जिसकी बादमे अस्ति नास्तिकी बात कही जाय। जो उत्पन्न हुआ है वह पहले न था, एक अपूर्व नया ही बनता है। जो उत्पन्न हो चुका अब वह आगे नही

टिकता। आगे तो कोई नया बनेगा। तो असत्का ही उत्पाद होता है और सत्का विनाश होता है, ऐसा क्षणिक एकान्त मानने वाले कह रहे हैं। कुछ न था और हो गया, असत्का ही तो उत्पाद हुआ। असत्का उत्पाद हुआ तो वह सत् बन गया। अब उसका ही तो नाश हो गया। सर्वथा क्षणिक एकान्तमे सत्ता एक समयको ही रहती है, अगले समयमे पदार्थका विनाश है, उत्पन्न होनेसे पहले पदार्थ नही है, इस तरहसे जगतमे सब निष्पत्ति चल रही है, ऐसा सिद्धान्त मानने वाले यह आशका रखते हैं कि जब असत्का उत्पाद है और सत्का विनाश है तो सप्तभङ्गी फिर कहाँ ठहरेगी ? इस ही आशकाके उत्तरमे इस गाथाका अवतार हुआ। इस गाथामे यह कहा जा रहा है कि सत्का नाश नही होता, असत्का उत्पाद नही होता। किन्तु पदार्थ है और वह गुण अपने गुणकी पर्यायोमे उत्पाद व्यय किया करता है। ऐसा तो कोई दार्शनिक नही मानता है। एक क्षणिकवादियोको छोडकर असत्का उत्पाद। एक भागवतगीता है, जिसके विषयमे बताते कि व्यास जी ने रचा तो वहाँ भी यह बात मानते कि "न सतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः" याने जो है नही उसका सद्भाव नही होता और जो है, सत् है उसका कभी अभाव नही होता। क्या क्या है ? जैनशासनकी ही तो घोषणा है। पदार्थ है, अनादिसे अनन्तकाल तक। कही असत्का उत्पाद नही होता और जो पदार्थ है, अनन्तकाल तक रहेगा, सत्का विनाश नही है, किन्तु उस वस्तुमे गुणकी पर्यायें चलती रहती है, शक्तियोके परिणमन चलते रहते है, शरीर ही मे उत्पाद व्यय हुआ करते है, मूलभूत वस्तुमे उत्पाद व्यय नही होता, इसका स्पष्टीकरण यह है कि जो चीज है, जैसे एक जीव है, द्रव्य है, तो उसका द्रव्यरूपसे विनाश नही है। अर्थात् जीव द्रव्य ही न रहे ऐसा असभव है, उसकी अवस्थाओका ही विनाश है, वस्तुका विनाश नही और जीवद्रव्यके परिणमन चल रहे है, उत्पाद चल रहे है तो उन उत्पादोमे कही अन्य द्रव्यका उत्पाद नही हो गया। वह जीवका ही उस प्रकारका परिणमन चल रहा है। तो जो द्रव्य है उसका विनाश नही और उत्पाद होनेपर किसी अन्य द्रव्यका उत्पाद नही होता। वस्तु है, अपने गुणोमे उत्पाद व्यय करता है।

उदाहरणपूर्वक वस्तुकी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकताका दिग्दर्शन—जैसे एक अगुली अभी सीधी है, अब टेढी कर दी तो टेढी कर देनेमे किसी चीजका नाश तो हुआ है, मगर अगुलीका नाश नही हुआ। अगुलीका जो सीधा परिणमन हुआ, उस सीधे परिणमनरूप अवस्थाका नाश हुआ, अगुलीका नाश नही हुआ। और जब अगुली टेढी कर दी गई तो वहाँ एक टेढी अवस्थाका उत्पाद हुआ, कही अगुलीको छोडकर अन्य द्रव्य नही उत्पन्न हो गया, अगुली ही रही। गुण पर्यायोमे दृष्टान्त लो। एक आमके पेडमे लो—शुरू-शुरूसे वह नीला है, जब जरा बडा हुआ तो वह हरा हो गया, तो वहाँ आमका विनाश नही हुआ और न आमको छोडकर

अन्य कुछ बन गया क्या ? हरा हो जानेसे जामुन बन जाय, केला बन जाय, ऐसा तो वहाँ नही दिखता और नीला मिट जानेसे आम मिट जाय, ऐसा तो नही है वहाँ । एक दृष्टान्त है यह स्थूल । ऐसे ही कोईसा भी पदार्थ उस पदार्थका परिणमन हुआ, नई अवस्था हुई । सो कही उस अवस्थामे पदार्थका उत्पाद नही हुआ, कोई नया पदार्थ नही बन गया और न उस पदार्थका विनाश हुआ । द्रव्य रह गया अनादि अनंत, उसकी अवस्थायें चलती रहती हैं, उनका उत्पादव्यय है । कैसा सीधा वस्तुका सुगम प्ररूपण है कि वहाँ कुछ युक्तियाँ नही बनानी पडती, कुछ कृत्रिमता नही करनी पडती । जैसा है वैसा ही व्याख्यान किया गया । जैसे मिट्टीसे घडा बना तो घडेसे पहले क्या था ? वह एक पिण्ड था, उसका बना दिया घडा । तो मिट क्या गया ? लौंधा । तो अवस्था मिटी, कही मिट्टीका विनाश नही हुआ, और बना क्या ? घडा । तो घडा बननेसे कोई नया द्रव्य नही बन गया, किन्तु वह मिट्टी ही तो है जो पहलेसे सत् है । द्रव्यदृष्टिसे न उत्पाद है, न विनाश । जीव ससारमे रुल रहा । मनुष्यभव पाकर उस जीवने ऐसा पौरुष किया कि अपने आपके स्वरूपको देखनेमे, उसके श्रद्धानमे, उसमे रमनेमे उस जीव को मोक्षलाभ हो गया । तो ससारपर्यायका नाश हुआ और मुक्तिपर्यायका उत्पाद हुआ । नाश वहाँ जीवद्रव्यका नही हुआ कि ससारपर्याय मिट गई तो लो जीव ही मिट गया । मोही जन तो ऐसा विश्वास किए हुए है कि हमारा यह सग मिट गया तो मैं ही मिट गया, यह शरीर मिट गया तो मै ही मिट गया और ये क्षणिक दार्शनिक यह कहते है कि वह मूलभूत पदार्थ ही मिट गया । पदार्थ तो एक समयको आता है, फिर रहता ही कहाँ ? ऐसा तो यहाँ नही हुआ । मुक्त पर्याय हो जानेपर ससारअवस्थाका तो विनाश है, ससारपर्यायका विनाश हो जानेपर मुक्तपर्यायका उत्पाद है । सो गुणपर्यायमे उत्पादव्यय होता है, कही जीवका नाश हो गया हो और जीवको देखकर अन्य कोई द्रव्य बध गया हो मुक्त होनेपर ऐसा तो नहीं है । जो जीव था वही अब निरुपाधि हो गया, और जब ऐसा है कि द्रव्य अनादि अनन्त है और ऐसे प्रत्येक पदार्थ अनादि अनन्त है और उनमे परस्पर अत्यन्ताभाव है तथा निरन्तर पर्यायोमें उत्पादव्यय किया करते है तो सप्तभङ्गी घटती गई । स्यात् अस्तिमे भी सप्तभङ्गी बन गयी, स्यात् नित्यकी भी सप्तभगी हो गई, स्यात् अवक्तव्यकी भी सप्तभङ्गी हो गई । कैसा स्पष्ट पदार्थ का स्वरूप है । फिर वे दार्शनिक उन पदार्थोंमे जबरदस्ती कोई अपनी बात लाना चाहते है ।

क्षणिकत्वैकान्तवादमें संवाद और प्रवर्तनका लोप—देखो वस्तु कथञ्चित् नित्य है, कथञ्चित अनित्य है, ऐसा माने विना कोई इस भवकी जिन्दगी चला सकता क्या ? दुकान, व्यवहार आदिक कोई कर सकता क्या ? मानो ऐसा एकान्त कर लिया कि जीव तो क्षण-क्षण मे नया-नया बनता है और बना कि मिट गया, ऐसा मानने वाले दुकान चला लेंगे क्या अपनी ? भोजन भी खा सकेंगे क्या ? अरे जीव क्षण भरको हुआ और मिट गया तो फिर कौन

करे ? कौन प्रवृत्ति करे ? एक समय आत्मलाभका है, दूसरा समय कुछ काम करनेको था सो दूसरे समय तो रहता नही तो कोई काम नही नही कर सकता, और फिर मान लो कोई कहे कि काम कोई नही कर सकता, मगर जो नया आत्मा पैदा हुआ और उस सिलसिलेमे जिस धारामे वह पैदा हुआ तो पूर्व जीवोका संस्कार रहता है, इसलिए आगे आगेका जीव अपना व्यवहार बनाता रहता है। जैसे कोई अफसर स्थगित कर दिया गया तो वह दूसरेको चार्ज सम्हाल देता है, ऐसे ही क्षणिकवादी कहते है कि आत्मा तो एक समयमें उत्पन्न हुआ और मरे गया, मगर वह अपना सर्वस्व एक नये आत्माको सौंप देता है। तरकीब तो अच्छी ढूढ निकाली, मगर यह न सोचा कि उस नये आत्माको अपना ज्ञान दे गया वह ताकि नया आत्मा पहली बातको स्मरण करता रहे तो आत्माको तो वह नया आत्मा अत्यन्त निराला है, अन्य-अन्य है तो और शरीरमे उत्पन्न होने वाले आत्माको क्यो नही सौंप जाता यह ज्ञान ? उसी शरीरमे होने वाले आत्माको ही क्यो सौंपा ? और सौंपता क्या ? वह तो हुआ और गुजर गया। सौंपनेको समय ही कहाँ मिला ? कोई प्रवृत्ति नही हो सकती। तब ही तो एक कथा बहुत प्रसिद्ध है कि एक क्षणिकवादी सेठकी गाय एक ग्वाला चराने ले जाया करता था। उस ग्वालेने खूब चराया। जब महीना पूरा हो गया तो वह ग्वाला सेठके पास जाकर कहता है कि मालिक हमारी चराई दीजिए, हमारा महीना पूरा हो गया। तो वह क्षणिकवादी सेठ कहता है अरे काहेकी चराई ? देखो जिसने तुमको गाय चरानेको दी थी वह अब नही रहा और जिसको गाय चरानेको दी थी वह भी नही रहा, पैसेका क्या सवाल ? तो ग्वाला अपना मुख लेकर चला आया। अब वह सोचने लगा कि सेठसे कैसे पैसे वसूल किए जायें ? उसकी समझ मे आ गया। दूसरे दिन उसने गायको अपने घर बांध लिया, सेठके घर न भेजा। तो अब सेठको चिन्ता हुई, वह पहुंचा ग्वालेके घर, ग्वालेसे पूछा—अरे भाई तुमने गाय हमारे घर क्यो नही भेजी ? तो ग्वाला बोला—देखो सेठजी जिसने गाय दी थी वह अब नही रहा और जिसने गाय चरानेको ली थी वह भी अब नही रहा, तो गाय लेने-देनेका क्या सवाल ? सेठने माफी मांगी, अपनी भूलपर पछताया। जब ग्वालेको चराई दी तब गाय वापिस पायी। तो पदार्थको द्रव्यदृष्टिसे नित्य और पर्यायदृष्टिसे अनित्य न माननेपर व्यवहार नही चल सकता।

नित्यत्वैकान्तवादमें भी सुवाद और प्रवर्तनका लोप—जो लोग नित्य एकान्तवादी है, वस्तु है और ज्योंकी त्यों रहती है, वस्तुमें परिणमन नही होता, ऐसा कूटस्थ नित्य कहने वाले भी कुछ नही कर सकते। रोजिगार क्या करें ? कौन करे ? परिणमन तो होता ही नहीं। कौन खाये पिये ? परिणमन तो होता ही नहीं। सर्वथा नित्यमे व्यवहार नही, सर्वथा अनित्यमे व्यवहार नही। व्यवहार धर्म वाले भी मुक्ति नही पा सकते और सर्वथा अनित्य मानने वाले भी मुक्ति नहीं पा सकते। जीव है, वह उपाधिके ससर्गमे, मलिन अवस्थामे है।

उपाधिके अभावमे उसकी पवित्र अवस्था हो जाती है। चीज वही रही, वस्तु वही रहा, जीव वही रहा, ऐसी जीवद्रव्यकी बात है। सभी द्रव्योकी बात ऐसी है। दृष्टान्तमे जीव ले लो। जीवद्रव्यमे प्रति समय पर्याये बनती रहती है और नवीन पर्याय बननेके मायने यह नही है कि जीवातिरिक्त अन्य कुछ द्रव्य बन गया हो और पुरानी पर्याय मिटनेके मायने यह नही है कि जीवद्रव्य ही खतम हो गया। अपने आपपर घटित करो—मै द्रव्यदृष्टिसे नित्य हू, सदा काल रहने वाला हू। लगता भी यह ही है। बचपनमे भी हम थे, जवानीमे भी हम थे, बुढापेमे भी हम ही है। इससे पहले भवमे भी हम थे, तो हमारा उत्पाद होनेकी तो जरूरत क्या ? विनाश कभी हो सकता नही। हम न हो तो उत्पादकी जरूरत समझे। हम सत् है, उत्पादकी क्या वहाँ बात ? और जिस जिसका भी उत्पाद होता है, कही कोई अपूर्व चीज नही उत्पन्न होती। जो है उसकी ही एक दशा नई बन गई। इस तरह जो ,भाव है, द्रव्य है, वस्तु है उसका तो नाश नही है और जो है नही उसका उत्पाद नही है। पर उत्पाद व्यय चल तो रहा है, वह सब गुण पर्यायोमे चल रहा है।

दृष्टान्तपूर्वक स्थायित्व और सर्गसंहारका परिचय—एक दृष्टान्त और लो—गायका दूध ले लो, उसे क्या बोलते ? गोरस। दूधका दही बन गया तो भी वह गोरस ही तो रहा, अर्थात् दूधका दही बन गया तो कही गोरस नही मिट गया याने दूध मिट गया उसके मायने यह नही कि गोरस मिट गया। और दही बन गया तो इसके मायने यह नही कि वह और कुछ बन गया, गोरस न रहा, किन्तु अन्य कुछ बन गया, ऐसा नही है और उन दोनो अवस्थाओमे गोरसपनेका ध्रौव्य है। ऐसी ही हमारी बात है। लोग क्यो घबडा जाते कि उनको द्रव्यदृष्टिसे अपने सहज सत्त्वका परिचय नही है। हाय मै मिट गया, यह मिट गया, यह मोहकी दुनिया, यह कितनी विडम्बना है, उसमे कितनी आपत्तियां भरी है ? रंच भी मोह इस जीव को बरबाद करने वाला है। कोई कहे कि हमको दुनियामे किसीसे मोह नही रहा, सिर्फ एक बच्चेसे या एक अपनी स्त्रीसे मोह है, बाकी अनन्त जीवोके प्रति हमारा मोह खतम हो गया है। सो देखो बहुत सम्यक्त्व तो मेरे पैदा हो गया, क्योकि अन्य किसी जीवमे हमको ममता नही है। हममे ९९ प्रतिशत सम्यक्त्व तो पैदा हो गया है, सिर्फ एक प्रतिशत सम्यक्त्व होना हममे बाकी रह गया है, क्योकि हममे सिर्फ एक स्त्री भरका मोह रह गया है, तो उसका यह कहना मिथ्यात्व है। अरे एक भी प्राणीमे ममता है तो वहाँ सारा मोक्षमार्ग ढक गया। अब तो वह धर्मके मार्गमे चलने वाला ही न रहा। धर्मकी धुनमे लोग काम तो बहुत-बहुत कर डालते, पर जो असली बात है मोह मिटना सो धर्म है इसको गौण क्या करते ? इसका उद्देश्य ही नही है कि धर्म इसमे मिलता है। व्रत कर लिया, दशलक्षण कर रहे, सोलहकारण कर रहे, उपवास चल रहे, शुद्ध धोती पहिनकर खा रहे, कोई छुवे नही, बस वहाँ तो याद है

कि हम धर्म कर रहे, पर यह याद भी नही रखता, इस ओर दृष्टि भी नही जाती कि धर्म तो मोहके विनाशका नाम है सो हमने वह कितना विनाश कर पाया ? और कोई तत्त्वज्ञान उत्पन्न करके मोहका विनाश करे और वह न कर पाये व्रत, तपश्चरण तो उसका मोक्षमार्गमे नाम तो आ ही गया। धर्म करनेकी चाह है। तो पहली बात यह मानो कि मेरा किसी भी प्राणी मे मोह मत जगे। अरे छोडना तो है ही सब। रहेगा तो कुछ नही, पर यहाँ ज्ञानबलसे सही बात विचारकर छोड दे तो यहाँ आत्मानुभव करते रहेगे, वह सत्य आनद तो मिलता रहेगा। मोहके त्यागमे धर्म है और उसको अपनेमे परख कर लें। अगर आपका धन आपके परिजनो पर ही खर्च हो पाता है, आपके ममताके साधनोमे ही खर्च हो पाता है, अन्यके लिए एक पैसेकी भी गुजाइश नही, इतना कठिन जिसके जड वैभवोमे लगाव है उसे आप क्या कहेगे ? मोही ही कहेगे ना, धर्मात्मा तो न कहेगे। मोहका त्याग करे तो धर्म है। मोहका विलास बनाये तो धर्म नही। चाहे ऊँचेसे भी ऊँचे कठिन तपश्चरण कोई कर ले, पर यदि मोह है तो वहाँ धर्म नही।

सकलसंकटमूल मोहके विनाशका उपाय—अब जीवोंमे मोह न रहे, इसके लिए उपाय क्या है ? मोह नाम किसका ? दो या अनेक वस्तुओमे परस्पर भिन्नताका बोध न रहे और इसका यह कुछ है, ऐसा अज्ञान रहे उसे कहते है मोह। तो मोह मिटाना है तो क्या करना है ? ऐसा ज्ञान जगाना कि जिस ज्ञानमे यह स्पष्ट जचे कि मेरा कही कुछ नही। अकिंचनोह। मैं केवल अपने ही चैतन्यप्रकाशमात्र हू। ज्ञानी और अज्ञानीकी पटरी नही बैठती, क्योकि ज्ञानी तो मोक्षका त्याग करता है। बच्चोमे भी मोह नही, वैभवमे भी मोह नही, और अज्ञानी लोग यो देखते कि यह पागल हो रहा क्या ? न घर सम्हालता, न बच्चोको देखता और अहर्निश अपनी धुनमे मस्त रहता है। तो मोहियोकी और निर्मोहीकी कहाँ पटरी बैठी ? निर्मोही की प्रक्रिया अलौकिक है और मोहियोकी प्रक्रिया ससारमे रुलनेकी है। पर जो इतना विजीप है कि जिसको यह चाह न रही कि लोग हमारी प्रशसा करें वह पुरुष ज्ञानी है और वह अपनी अन्तर्धुनमे रहकर अपना कल्याण कर लेता है। दुनियाके ये लोग मेरे प्रभु है क्या ? जो ऐसी आशा लगायें कि ये तो मुझे अच्छा समझे, ये तो मेरे हृदयके गुण समझें, क्या पडी है ? कोई प्रभु है क्या मेरे, जो भविष्यको सुधार दें या बिगाड दें ? तो अन्य द्रव्यसे हमारा क्या सम्बध है ? आया है इस जीवमे और परिणम गया है कुछ ज्ञान साधन तो इसका सदुपयोग बनायें। मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हू। श्रद्धा बनायें, पकडें अपने अन्त,नाथको। मैं सहज ज्ञानमात्र हू, अन्य कुछ नही हू। दूसरेकी चिंता रखनेसे कही उसका पालन नही होना, दूसरेकी उपेक्षा रखनेसे कही उसका विनाश नही हो जाता। दूसरेका अच्छा होना, बुरा होना, यह-सब उसकी क्रिया पर निर्भर है। तो जब वस्तुका ऐसा अलौकिक स्वरूप है, पृथक् हैं परस्पर तो बस यह ज्ञान

जहाँ जगा वहाँ मोह नही ठहरता। मोहमे कायरता जगती है। अपने भीतरी दिलको तौल लो। मोहमे अपना विघात है। मोह दूर हुआ कि निराकुलता रहती है। यह मोह मिटता है तत्त्वज्ञानसे, पदार्थोंके स्वरूपके निर्णयसे। एक पदार्थका दूसरा कुछ भी नही लगता। बिल्कुल स्पष्ट बात है, सामने है। जब एकका दूसरा कुछ नही है, ऐसा दिखेगा तो यह परसे कुछ न चाहेगा, और परमे कुछ करनेके लिए कमर न कसेगा। सहज वृत्ति बने, इतना साहस अन्त: जगे तो इस जीवका उद्धार हो सकता है। केवल एक साधारण ऊपरी मन, वचन, कायकी चेष्टा करनेमे धर्म नही। जहाँ धर्म है वहाँ उसका मधुर फल अवश्य मिलेगा—शान्तिलाभ। ऐसी ही एक अलौकिक शान्त दशा पानेके लिए वस्तुस्वरूपका निर्णय चल रहा। वस्तु वहीका वही अनादि अनन्त है और उसका पर्यायोमे उत्पाद और व्यय हुआ करता है।

भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया वहुगा ॥१६॥

सर्व बाधाओको दूर करनेका उपाय अन्तस्तत्त्वका परिचय—सर्व बाधाओको दूर करनेका उपाय सिवाय तत्त्वज्ञानके, सिवाय तत्त्वदृष्टिके अन्य कुछ न किसीके हुआ और न कभी अन्य हो सकेगा। जीव यदि एक अपने आपके स्वरूपको ही निरख ले और यहाँ ही सतुष्ट हो सके तो वह कृतार्थ है। केवल एक मोहबुद्धि ही है जो किसी परपदार्थके सम्बधसे अपने आपको यह जीव सुखी शान्त समझता है। वह केवल भ्रम है, जिसका फल बुरा होता है। तो चाहिए यह कि सब तरफसे ध्यान हटकर आत्माका जो सहज चैतन्यस्वरूप है, यही मेरा सर्वस्व है, इस ही मे सदा रहना है और अपने स्वरूपके अनुसार दृष्टि बन गई तो पवित्रता हो जाती है और सारे सङ्कट दूर हो जाते है। वह तत्त्वज्ञान क्या है? तत्त्व क्या है, उसके विषयमे सब वर्णन चल रहा है। तत्त्व वह है जो सत् है अर्थात् पदार्थ, जिसमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य होता है, जो गुण पर्यायोमे तन्मय है, अपने स्वरूपसे है, अन्य सबके रूपसे कतई नही है, ऐसा अन्य सबसे निराला स्वय कोई एक याने प्रत्येक पदार्थ तत्त्व है। मै भी एक पदार्थ हू, अपने स्वरूपसे हू, अन्य अनन्तानन्त जीवोसे जुदा हू, समस्त पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश कालसे जुदा एक अमूर्त शुद्ध चैतन्यस्वरूप यह मै आत्मा अपने लिए सर्वस्व हू। अपनेमे आत्म की पहिचान करना है—मै क्या हू?

पदार्थव्यक्तित्वका परिचय—पदार्थकी पहिचान बनती है, उसकी शक्ति जाने, उसकी अवस्था जानें। दो परिचयोसे पदार्थका परिचय होता है। तो आत्माका स्वरूप बतला रहे है कि आत्मामे गुण क्या है और आत्माकी पर्यायोका क्या हुआ करता है, इन दो बातोका इस गाथामे प्रतिपादन है। लोकमे समस्त पदार्थ ६ जातिके है–जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। अन्य दार्शनिकोने बहुत कोशिश की यह समझनेकी, बतानेकी कि सारे पदा

कितने होते है, मगर किस कुञ्जीसे इसका उत्तर मिलता है उस कुञ्जीको छोड देनेसे पदार्थोंकी सख्या अथवा नाम सही नही कर सकता। कुञ्जी यह है कि एक परिणमन जितनेमे पूरेमे हो और जिससे बाहर न हो वह एक पदार्थ कहलाता है। याने एक पदार्थकी अवस्था जो भी बने वह उस पदार्थकी एक देशमे न बनेगी, पूरेमे बनेगी। अगर एक देशमे बने तो समझो वह एक पदार्थ नही है, अनेक पदार्थ है। जैसे चौकीका खूट काट डाला या आग लग गई तो सारी चौकी तो नही जलती। तो वह चौकी एक चीज नही है। वह अनन्तपरमाणुओका समूह है, सो कुछ जल गई, कुछ नही जल रही। अगर एक चीज हो तो जो भी अवस्था बनेगी, वह पूरेमे बनेगी, आधेमे न बनेगी। यह एक पदार्थकी पहिचान है और वह अवस्था उस एकके प्रदेशसे बाहर न रहेगी। यह एक पदार्थकी पहिचानका उपाय है। यह तो हुई व्यक्तिगत बात। अब ऐसे पदार्थ अनन्तानन्त हैं।

पदार्थोंकी जातिका परिचय—सर्व पदार्थोंमे अब जातिकी बात देखो—जिस रूपसे जितने पदार्थ पूरे एक समान हो, जरा भी अन्तर न आये तो वे एक जातिके पदार्थ कहलाते है। मगर और बातमे पूरे समान है केवल एक बातमे फर्क है तो भी वे ६ जातिके पदार्थ न होगे। वह जाति न्यारी हो जायगी। जैसे जीव एक जाति है, इसमे कितने जीव आ गए ? अनन्त। सिद्ध महाराज भी, निगोदिया जीव भी, अन्य ससारी जीव भी, अरहत भगवान, सब एक जातिमे आ गए, उनमे जरा भी फर्क नही। भव्य और अभव्य जीवमे फर्क नही है। उसकी योग्यता, पर्याय, होनहार, इनका भेद पड गया, मगर जीवका जो निजमे स्वरूप है उस स्वरूपकी दृष्टिसे भव्य और अभव्यके भेद न पडेंगे। अगर भव्य जीव बिल्कुल अन्य जातिके हो और अभव्य जीव अन्य जातिके हो तो पदार्थ ६ प्रकारके न कहकर ७ प्रकारके कहे जाते। इस जीवमे भव्य अभव्यका भी अन्तर नही स्वरूपदृष्टिसे। चाहे वह कभी मुक्त न जा सके, मगर स्वरूप चेतन है और वह सबमे एक समान है। शक्ति, ज्ञान, दर्शन आदिक सब जीवोमे एक समान है। भव्यमे भी उतनी ही शक्तियाँ है, अभव्यमे भी उतनी ही शक्तियाँ हैं। फर्क शक्तिकी व्यक्ति होनेकी शक्तिमे है याने जिसमे आत्मशक्ति व्यक्त न हो सके उसे अभव्य कहते है, जिसमे आत्मशक्ति व्यक्त हो उसे भव्य कहते है, मगर शक्तियाँ सबमे एक समान है। अगर एकसमान शक्तियाँ न होती तो भव्य जीवके केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण ये कर्म होनेकी जरूरत भी न थी, क्योकि केवलज्ञानकी शक्ति ही नही है अभव्यमे तो केवलज्ञानावरण किसलिए ? तो अभव्यमे भी केवलज्ञानकी शक्ति है और उसका आवरण करने वाला केवलज्ञानावरण सदा रहेगा। यह अन्तर तो है, मगर स्वरूपमे शक्तिमे भेद नही है। तो एक जीव जाति है जिसमे अनन्तानन्त जीव आये। पुद्गल जाति याने कुछ पदार्थ ऐसे है कि मिलकर एक पिण्ड बन जायें और बिछुड भी जाये। ऐसी कला केवल पुद्गलमे नही है। जीव जीव

परस्पर मिल नही सकते। धर्म अधर्म कोई भी पदार्थ नही मिलते। यहाँ तक कि जीव और पुद्गल भी परस्परमे मिलकर पिण्ड नही होते। पुद्गल पुद्गल ही मिलकर पिण्ड बन जायें और बिखरकर परमाणु एक रह जाय, ऐसी कला जिन पदार्थोंमे है उनका नाम है पुद्गल। पूरण और गलन—यह प्रकृति जिसमे पायी जाय उसे पुद्गल कहते है। पुद्गल जातिमे अनन्तानन्त पदार्थ है, जीवसे भी अनन्तानन्तगुणे पदार्थ है, क्योकि सिद्धसे अनन्तगुणे है ससारी जीव और एक एक ससारी जीवके साथ अनन्त परमाणुओका शरीर लगा है, कर्म लगे है, तो एक जीवके साथ ही अनन्त परमाणु है, फिर अनन्तानन्त जीवोके साथ कितने है? तो जीवोसे अनन्तानन्त गुणे पुद्गल द्रव्य है। धर्मद्रव्य एक है उसमे एक यह ही कला है कि जीव पुद्गल चल सकते है एक जगह। यह तो एक निमित्तनैमित्तिक योगकी बात है। जैसे पानी हो तो उसमे मछली चल सकती है, ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक योग है। तो इस लोकमे धर्मद्रव्य एक है, जिसके होने से ये जीव पुद्गल चल सकते है। अधर्मद्रव्य एक है जिसके होनेसे चलता हुआ जीव पुद्गल रुक सकता है। कोई भी काम एक हो रहा हो और उसके खिलाफ कोई दूसरा काम हो तो कोई बाह्य निमित्त होता है तब होता है। अगर बाह्य कारण न हो तो जो परिणमन चल रहा वही वही परिणमन एक समान चलता रहेगा। जीव पुद्गल चलते रहे और चलते हुएमे रुक सके तो इसमे भी कोई कारण है। एक साधारण सहयोग, उसे कहते है अधर्मद्रव्य। आकाश अमूर्त है और जहाँ सब पदार्थ ठहर सकते है। कालद्रव्य लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक कालाणु अवस्थित है और वह वही रहता हुआ समय-समय पर्यायके रूपसे परिणमन करता है। जिसे कहते है बर्तना। उसी बर्तनाका स्थूल रूप मिनट घडी घटा सेकेण्ड आदिक बन जाते है। ऐसे लोकमे ६ जातिके पदार्थ है, उन सब पदार्थोंमे शक्तियाँ क्या है और उनकी अवस्थायें कैसे बनती हैं, यह बात जाननेकी होती है, क्योकि पदार्थमे शक्ति और पर्याय ये स्पष्ट समझमे आये तो यह सुगमतया भान रहेगा—एक द्रव्यका दूसरा द्रव्य कुछ भी नही लगता। भेदविज्ञान पानेके लिए पदार्थोंका स्वरूप जानना अत्यन्त आवश्यक है।

जीवके गुण व पर्यायोकी चर्चनीयता—जीवके विषयमे इस गाथामे गुणपर्यायोका जिक्र है। जीवके गुण है चेतन और उपयोग। ये दो बातें कही गई है—चेतना और उपयोग। कही दो लक्षण नही है अलग अलग कि किसी जीवमे चेतना लक्षण हो, किसी जीवमे उपयोग लक्षण हो, मगर ये दो बातें बतानेका कोई रहस्य है। चेतनाका अर्थ है चेतना, अपने आप को चेतना, यह ही एक मात्र दृष्टि है। अब अपने आपको यह जीव अगर सही रूपमे चेतता है तो उसे कहते है ज्ञानचेतना। अगर कोई जीव अपने आपको किसी बाहरी पदार्थ, बाहरी भावके कर्ता रूपमे चेतता है कि मै इसका करने वाला हू तो वह कहलाया कर्मचेतना। कोई

जीव कर्मफलके रूपसे अपनेको चेतता हो—मैं सुखी हू, मै दु खी हू, मैं आनन्द भोग रहा हू, मै सुख भाग रहा हूँ, किसी भी प्रकार भोगनेकी बात अपने आपमे लगायें तो वह कर्मफल चेतना है। तो चेतना भेद बताकर तो यह बात दर्शायी गई कि जीव अपनेको चेतते है। अब कैसे चेतते है, इसकी विशेपतापर ससार और मोक्षमार्गकी बात है। अपनेको मै शुद्धज्ञानमात्र हू। केवल ज्ञानात्मक जानन हो यह ही तो कर्तापन है। एक जानन रहे, यह ही भोक्तापन है। ज्ञानके इन परिणामोके अतिरिक्त मेरेमे और कुछ कर्ताभोक्तापन नही है, ऐसी चेतनाकी दृष्टिसे जीवका गुण चेतना कहा है और उपयोग एक बाह्य विस्तार समझनेके लिए कि यह जीव क्या क्या जानता है, कहाँ कहाँ उपयोग चलता है, फिरता है, यह बाहरी विस्तार समझनेके लिए उपयोग गुण बताया गया है। जैसे उपयोग गुणकी कितनी ज्ञानपर्यायें है ? भेद और चार दर्शन पर्यायें है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, ये तो अपूर्ण है मगर समीचीन है। कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये मिथ्या है, फिर भी ये सातोंके ही सातो ज्ञान अशुद्ध कहलाते है, क्योंकि कर्मका क्षयोपशम साथ है। कर्मका आवरण लगा हुआ है इस ज्ञानीके साथ, ऐसी दशामे ज्ञान हुए है, इस कारण ये ज्ञान अशुद्ध कहलाते है। शुद्ध तो एक केवलज्ञान है, क्योकि कर्मका अभाव हो गया। ज्ञानावरण कर्म रहा नही, इस कारण वह ज्ञान तो शुद्ध पर्याय है, शुद्ध दशा है, बाकी ७ ज्ञान अशुद्ध हैं। उन अशुद्धमे भी दो भेद पडते है। अशुद्ध होते हुए भी सही, अशुद्ध लेते हुए मिथ्या, ऐसे ८ प्रकारके जिसके ज्ञानपरिणमन है उस गुणका नाम है उपयोग। इसी तरह चार दर्शन होते हैं, जिनमे केवल दर्शन तो अशुद्ध अवस्था है और चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन ये अशुद्ध अवस्था हैं, क्योंकि इनके साथ आवरण लगे हुए हैं। आवरणके क्षयोके अनुसार चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन होता है, इस तरह ये उपयोगके भेद बताये, यह तो हुआ गुण। अब इसका और विस्तार बनायें तो श्रद्धान, चारित्र, आनन्द आदिक अनेक गुण है। मगर जीवके जिस गुणकी पकडसे लक्ष्यसे जीवकी बात चलती है अच्छी-बुरी, मोक्षमार्ग चले, ससारमार्ग चले वे ये दो गुण हैं—चेतन और उपयोग।

पदार्थोंकी द्रव्यपर्यायोका दिग्दर्शन—अब देखो जीवमे पर्याय क्या होती है ? तो जीव द्रव्यमे चूकि जीव प्रदेशवान द्रव्य है, सभी द्रव्य प्रदेशवान होते हैं और गुण भी है तो गुणोंके जो परिणमन होंगे उनका नाम तो है गुणपर्याय और जो प्रदेशमें परिणमन होगा उसका नाम है द्रव्यपर्याय। देव, नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य ये द्रव्यपर्याय हैं। इनमे प्रदेशोके प्रसारकी शकल बन जाती है। जैसा देह पाया उसी आकारके जीवके प्रदेश बने। तो यह कहलायी द्रव्यपर्याय, और जो गुण हैं ज्ञानादिक, उनकी अवस्थाको गुणपर्याय कहते है। तो जीवकी पर्याय जाननेमे जो प्रतिपादन हैं वे दो तीन तरहसे पाये जाते हैं, मगर उनमे लक्ष्य एक है, समझ एक है।

एक पद्धति यह है कि यह जानें कि जीवमे पर्यायें दो तरहकी होती है—(१) द्रव्यपर्याय और (२) गुणपर्याय। मायने जीवके प्रदेशका आकार बने, वह तो है द्रव्यपर्याय। अगर केवल जीव-द्रव्यके ही आकार देखे जा रहे और विशुद्ध एक लक्ष्यसे देखे जा रहे तो उसे कहेगे शुद्ध द्रव्य-पर्याय। वे है सिद्ध भगवान। और जीव पुद्गलके मेलसे जो पर्याय बनती है वह है अशुद्ध पर्याय—देव, नारक आदिक। तो चार गतियोकी जो पर्यायें है वे विभाव द्रव्यपर्याय कहलाती है, यह द्रव्यपर्यायोका भेद हुआ। द्रव्यपर्याय वही है, अनेक द्रव्योके मेलसे जो परिणमन बने, आकार बने उसे कहते है द्रव्यपर्याय याने अनेक पदार्थोंमे एक है, ऐसी जानकारीका जो विषय-भूत है वह द्रव्यपर्याय है। जैसे पशु, मनुष्य, काठ, इनको देखकर कोई एक ही बात तो समझी जाती है और चेष्टासे जहाँ शरीर जाय वहाँ जीव जाय, जहाँ जीव जाय वहाँ शरीर जाय, तो ऐसे अनेक द्रव्योमे एकताकी प्रतिपत्तिका जो कारण है, अनेकोमे एक प्रतिपत्ति बननेमे जो बात बनती है वह है द्रव्यपर्याय। सो अनेक द्रव्योकी मिलकर जो बात बनती है वह तो है अशुद्ध पर्याय और एक ही द्रव्यका जो आकार रहता है वह है शुद्ध द्रव्यपर्याय। तो ऐसी जो ये द्रव्यपर्यायें है, अनेक पदार्थ मिलकर बन जाये तो ऐसे अनेक पदार्थ एक ही जातिके है तो उनका नाम है समानजातीय द्रव्यपर्याय। जैसे जितने पुद्गल स्कध दिखते है ये सब समान-जातीय द्रव्यपर्याय है याने अचेतन पुद्गल परमाणु मिल-मिलकर यह पिण्ड बना। समान-जातीय द्रव्यपर्याय केवल पुद्गलोको होगा। और असमानजातीय द्रव्यपर्याय ये जीवके होते है, याने जीव और पुद्गल परमाणु शरीरके अणु, कर्मके अणु, इन सबके बन्धनमे जो एक दशा बनती है वह है असमानजातीय द्रव्यपर्याय। तो समानजातीय द्रव्यपर्याय होना और असमान-जातीय द्रव्यपर्याय होना, यह सब अशुद्ध द्रव्यपर्याय कहलाती है, क्योकि अनेकके मेलसे बना, मायारूप है, बिखर जायगा। स्वभावकी बात नही है, इसलिए इसे अशुद्ध पर्याय कहा गया।

पर्यायोके यथार्थपरिचयका महत्त्व—पर्यायोके सही परिचयसे यह बात सामने आ जाती कि यह पुत्र है या घरका कोई है तो यह है क्या? समानजातीय द्रव्यपर्याय है। हमसे इसका क्या मतलब? बहुतसे परमाणु मिल गए व यह जीव है, इसका कर्म इसके साथ है, यह असमानजातीय पिण्ड है, मेरेसे उसका कोई ताल्लुक नही है। केवल मोहमे कल्पनासे मानते। दूसरेका लडका हो वह क्या कोई और तरहसे बना हुआ है? अरे जैसे आपका यह लडका बना है अनेक द्रव्योके मेलसे ऐसे ही दुनियाभरके बच्चे, वे भी अनेक द्रव्योके मेलसे बने है। जरा भी फर्क नही है कि यह तो आपका कहलाये और यह गैर कहलाये। स्वरूपकी ओरसे किसी भी जीवमे, बच्चेमे कोई भेदकी बात न आनी चाहिए। और भेद आता है तो वह सब मोह और रागका परिणाम है। स्व-परका परमे भेद है नही, सब जुदे-जुदे हैं। तो समानजातीय अनेक द्रव्यपर्यायोके जान लेनेसे यह स्पष्ट विचार रहता है कि मेरा क्या मतलब

इससे ? भिन्न वस्तु है, केवल एक गृहस्थीमे गुजारा करनेके लिए ही परस्परमे राग है, पर एकका दूसरा कुछ नही है । समानजातीय द्रव्यपर्याय, देखिये ये सब भीत है, सोना है, चांदी है, वैभव है, उसके प्रति एक ममता जगती है, वह वैभव है क्या ? अनेक परमाणुओका पिण्ड है । जब तक इकट्ठा है, बिखर रहा तो बिखर रहा, वह कोई सारभूत तो नही है । मकान हो, जेवर हो, कोई भी वस्तु हो वह सारभूत चीज नही है, मायारूप चीज है, अनेक परमाणुओंके मेलसे बना है, सो जब तक मिला हुआ है सो मिला है, बिखर गया तो बिखर गया । इन सब पर्यायोके बोधसे ममत्वके विनाशका उपाय बनता है । तो ये अनेक द्रव्यपर्याय जीव पुद्गलमे ही सम्भव है, अन्य द्रव्यमे नही, क्योकि सम्बन्ध दो प्रकारके होते हैं एक तो सश्लेष सम्बन्ध और एक सम्बन्ध । तो सम्बन्ध तो हमारा सभी द्रव्योसे है । जहाँ जीव है वहाँ ही पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदिक सभी पदार्थ है । तो सम्बन्ध है ना, मगर इन सम्बन्धोसे कोई प्रभाव नही पडता । सब अपने-अपनेमे अपने अनुसार परिणम रहे है । सश्लेश सम्बधका इससे निकट सम्बध है, जैसे जीवका कर्म, जीवका शरीर । सो जीवका धर्म अधर्म, आकाश, काल किसीके साथ भी सश्लेष सम्बन्ध नही है और द्रव्यपर्याय बनती है तो सश्लेष सम्बन्धमे बनती है, केवल क्षेत्रावगाहके सम्बन्धसे भी नही बनती । इस कारण धर्मादिक द्रव्योमे द्रव्यपर्याय नही होती । यह तो द्रव्यपर्यायोकी चर्चा हुई ।

जीवके गुणपर्यायोका दिग्दर्शन और उसके परिचयका लाभ—अब गुणपर्याय देखिये तो गुणपर्याय समझनेकी कुन्जी यह है कि एक ही द्रव्यका परिणमन जहाँ देखा जा रहा है वह गुणपर्याय है । भले ही कषायादिक भी तो गुणपर्याय है और वे कर्म-अनुभावका निमित्त पाकर होते है, सो भले ही कितने ही निमित्त हो, पर परिणमा तो केवल जीव ही कषायरूप । इस कारणसे वह गुणपर्याय कहलाता है । एक ही द्रव्यमे जो पर्याय बनती है दूसरे द्रव्यकी मिलकर नही बनती परिणति, वह सब गुण पर्याय कहलाती है या यो कहो कि अन्वयरूप जो परिणति है, उनमे जो एकत्वको किए हुए हो वह गुण है और उसकी ये पर्यायें गुणपर्याय कहलाती है । जैसे पुद्गलमे देखो किसी भी फलमे रूप, रस, गध, स्पर्श बदलते भी रहते है तो यह परिणमन जीवमे देखो तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञानादिकके परिणमन चलते हैं । ये गुण पर्यायें कहलाती है । अब गुणपर्यायोको दो रूपमे देखिये—(१) स्वभावगुणपर्याय, (२) विभाव-गुणपर्याय । और एक होता है सूक्ष्म गुणपर्याय तो सूक्ष्म गुणपर्याय तो अवक्तव्य है जिसे शुद्ध अर्थपर्याय कहते है । मायने एक परिणमनके बाद उसमे जो दूसरा परिणमन आता है तो वह षड्गुण हानि वृद्धिरूप लिए आता है और यह अवक्तव्य है, आगमगम्य है । सूक्ष्म बताया गया और अन्य गुणपर्याय दो प्रकारसे हैं—(१) स्वभावगुणपर्याय, (२) विभावगुणपर्याय । केवलज्ञानादिक स्वभावगुणपर्याय है और लेश्या आदिक विभावगुणपर्याय है और इन पर्यायो

का बहुत अच्छा व्यापक प्रचार करना है तो यो करना चाहिए कि पदार्थमे दो प्रकारकी पर्याये है—(१) व्यञ्जनपर्याय और (२) अर्थपर्याय। अर्थपर्याय तो सूक्ष्म है। षड्गुण हानि वृद्धिरूप अवक्तव्य जो एक आधार मात्र है, न हो षड्गुण हानि वृद्धिरूप परिणति तो स्थूल परिणति कहाँसे हो ? इसलिए स्थूल परिणमनोका वह सूक्ष्म षड्गुण हानि वृद्धि एक आधार है और सर्वद्रव्योमे साधारण है। और व्यञ्जनपर्यायके दो भेद है—(१) द्रव्यव्यञ्जनपर्याय और (२) गुणव्यञ्जनपर्याय। द्रव्यव्यञ्जनपर्याय तो आकारका नाम है। जो जो कुछ आकार की पर्याय कही थी वह सब द्रव्यव्यञ्जनपर्यायमे आता है और आकारको छोडकर शेप जो पर्यायें है वे सब गुणपर्याय कहलाती है। तो जीवमे गुणपर्याय जो कुछ भी हो रही है उसका सम्बन्ध जीवसे है, अन्यसे नही है। तो एक पदार्थका दूसरा पदार्थ कुछ भी नही है–यह बात समझनेके लिए प्रत्येक पदार्थका गुण और पर्याय ठीक समझना चाहिए। जिससे यह बोध हो कि किसी पदार्थका किसी अन्य पदार्थके साथ न तो गुणका सम्बन्ध है, न पर्यायका सम्बन्ध है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यमे न गुणको रखता है, न पर्यायको रखता हे, ऐसी दृष्टि स्पष्ट हो जाती है तो वहाँ ममताको अवकाश नही रहता। ममत्व न रहे, इसीमे जीवका कल्याण है।

मणुसत्तरोण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा।
उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो ॥१७॥

पर्यायरूपसे उत्पाद व्यय होनेपर भी जीवत्वका अनुत्पाद व अव्यय—पूर्वोक्त गाथामे जीवकी गुणपर्यायोका वर्णन था। अब पर्यायोका उत्पादव्यय होता है और गुण ध्रुव रहता है। उसी विषयसे सम्बधित बात इस गाथामे कही गई है कि यह जीव पर्याय रूपसे नष्ट होता है और नवीन पर्याय रूपसे उत्पन्न होता है। फिर भी जीवरूपसे न नष्ट होता है, न उत्पन्न होता है, वह तो शाश्वत अनादि अनत है। पर्यायोकी जो सतति चलती है धारा, एक पर्यायके बाद दूसरी पर्याय होना और इस तरह पर्याय होते चले जाना, इस पर्याय सततिका कभी विच्छेद नही होता, क्योकि द्रव्यका स्वरूप ही यह है कि वह प्रतिसमय परिणमन रहे और एक परिणामनसे दूसरा परिणमन होनेमे अगुरुलघुत्व गुणकी हानि वृद्धि रूप परिणाम होता है। तो प्रतिसमय जो अगुरुलघुत्व गुणकी हानि वृद्धि चलती रहती हे, उससे रचा गया जो स्वभाव पर्याय है उसकी सततिका विच्छेद नही होता। सो यह तो वस्तुका स्वरूप है कि इसमे पर्याय सतति चलती ही रहे। अब उनकी उपाधि साथमे है तो सोपाधि पर्याय बन उठती है। तो सोपाधि पर्याय जैसे मनुष्य है, मनुष्यत्वके रूपसे यह जीव विनष्ट हो जाता है और सोपाधि पर्याय ही एक नवीन बनती है तो उस नवीन पर्याय रूपसे उत्पन्न हो जाता है, पर पर्याय रूपमे मनुष्यत्वादि रूपमे नष्ट हो गया, इससे कही जीवत्व नष्ट नही हो जाता या देवादिक रूपसे उत्पन्न हो गया तो इससे कही जीव ही नही उत्पन्न हुआ, वह तो अनादिसे ही है।

इस तरह जीवमे उत्पादव्ययध्रौव्य यह द्रव्यपर्यायोमे और गुणपर्यायोमे घटित होता जा रहा है। सो इस जीवका विनाश उत्पाद पर्यायार्थिकनयसे है। द्रव्यार्थिकनयसे न उत्पाद है, न विनाश है। पर्यायार्थिकनयसे उत्पाद व्यय चल रहा है, तिसपर भी द्रव्यार्थिकनयसे देखो, पर उत्पाद व्यय नही है, किन्तु वह तो वही ही शाश्वत है। यहाँ दोनो नयोकी दृष्टियोका विषय बतानेसे नित्य एकान्त और क्षणिक एकान्तका निराकरण स्वयमेव हो जाता है। मनुष्य, देव आदिक रूपसे उत्पन्न हुआ, पूर्वपर्यायसे नष्ट हुआ तो यह ही यह सिद्ध करता है कि द्रव्य सर्वथा याने एकान्त नित्य नही है और जीव, जीवत्व वही रहता है। इससे यह सिद्ध होता कि क्षणिक एकान्त नही है। तो यह द्रव्यत्वके नातेसे व्यवस्था है, ऐसी ही व्यवस्था समस्त द्रव्योकी है कि वह नवीन पर्यायसे उत्पन्न हुआ और पूर्वपर्यायसे नष्ट हुआ और उसमे संतति का अविच्छेद नही है, उसका आधारभूत द्रव्य सदा रहता है। यह ही बात जीवमे भी समझना है कि वह मनुष्यादिक रूपसे नष्ट हुआ, मगर जीवादिकसे नष्ट नही हुआ।

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो।
उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसुत्ति पज्जाओ ॥१८॥

जीव वस्तुकी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकताका एक प्रकाश—द्रव्य और जीव उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है, इसीके समर्थनमे यह गाथा बतायी जा रही है। जो द्रव्य पूर्वपर्यायके वियोगसे एक अवस्था बनाता है और उत्तरपर्यायके सयोगसे अवस्था बनती है तो दोनो ही अवस्थाओ को यह आत्मा अपने रूप करता हुआ तो नष्ट और उत्पन्न होता दिखाई देता है, पर दोनो अवस्थाओमे रहने वाला जो एक तत्त्व है जीवत्व, वह न उत्पन्न होता, न नष्ट होता है। अतएव पर्यायोके साथ इस जीवद्रव्यका एकपना हो रहा है। सो कह लीजिए कि जन्म है और मरण है, पर जीवद्रव्य तो वही एक है। उसका न जन्म है, न मरण। जैसे कोई मनुष्य पुराने घरको त्यागकर नये घरमे रहने लगे तो उसका मरण नही कहा जाता। किसीका भी मरण नही है। घर है, अपनेमे है। स्थान है अपनेमे है। यहाँ एक शका की जा सकती है कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनो एक साथ कैसे एक पदार्थमे रहते है क्योकि उत्पाद व्यय तो अनित्यपनेका धर्म है और ध्रौव्य होना नित्यपनेका धर्म है। तो अगर नित्य है तो अनित्य कैसे और अनित्य है तो नित्य कैसे ? जैसे ठढ और गर्मी इन दोनोका विरोध है, तो जहाँ ठढ है वहाँ गर्मी कैसे, जहाँ गर्मी है वहाँ ठढ कैसे ? इस शकाका समाधान यह है कि कोई भी पदार्थ एकान्तसे न नित्य है और एकान्तसे न अनित्य है। जो एकान्ततः नित्य अथवा अनित्य माने वहाँ ही दोष सम्भव है, किन्तु यहाँ नित्यपना अनित्यपना अपेक्षासे है याने मूल तत्त्वकी दृष्टि से तो पदार्थ नित्य है और अवस्थाकी दृष्टिसे पदार्थ अनित्य है। तो जहाँ अपेक्षासे नित्य और अनित्य माना जाय वहाँ यह दोष सम्भव नही है। निज अपेक्षासे नित्य माना उसी

अपेक्षासे अनित्य कहा जाता तो अवश्य ही विरोधकी बात थी, या जिस अपेक्षासे नित्य माना उसी अपेक्षासे अनित्य मान ले तो विरोध है, परन्तु द्रव्यार्थिकनयसे द्रव्यपनेकी अपेक्षा तो नित्यपना है और पर्यायार्थिकनयसे पर्यायकी अपेक्षासे पदार्थमे अनित्यपना है और वे दोनो एक साथ घटित होते है। तब मूलमे यह बात युक्त है कि द्रव्य और पर्याय दोनो रूप ही सत् होता है। यदि कोई कुछ है तो वह सदाकाल रहेगा और उसकी अवस्था प्रतिसमय बनती रहेगी। द्रव्य और पर्याय ये दो तत्त्व अनिवार्य है पदार्थमे। तो जब द्रव्य और पर्यायका विरोध नही है तो नित्य अनित्यका भी विरोध उसमे सम्भव नही है, क्योकि पर्यायरहित द्रव्य नही होता और द्रव्यरहित पर्याय नही होता। याने है क्या कोई वस्तु ऐसी कि जिसकी अवस्था कुछ होती ही नही और वह सत् हो ? या है कोई क्या ऐसी वस्तु कि जिसमे पहले और बादकी अवस्थायें न पायी जाती हो और सत् हो। तो पर्यायमात्र भी कुछ नही और जो द्रव्यरूप हो ही नही, केवल एक पर्यायरूप ही हो, ऐसा भी कुछ है नही, क्योकि जो किसी रूपमे भी पहले नही है, उसका कोई रूप नही बनाया जा सकता। असत्का उत्पाद नही और सत्का विनाश नही। इस कारण द्रव्यार्थिकनयको जब मुख्य करके बोलते है तो जीव नित्य प्रतीत होता है और जब पर्यायार्थिकनयको मुख्य करके कहते है तो पदार्थ अनित्य प्रतीत होता है। पदार्थमे प्रति समय नवीन नवीन पर्यायें होती रहती है। बस नवीन पर्याय हुई उस ही का अर्थ यह है कि पुरानी पर्याय विलीन हो जाती है। इस तरह वस्तु कथञ्चित् नित्य और कथञ्चित् अनित्य स्वरूप है।

एव सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो।
तावदिओ जीवाण देवो मणुसो त्ति गदिणामो ॥१६॥

उत्पाद व्यय होनेपर भी जीववस्तुकी शाश्वत एकरूपता—जीव सत् है उसका कभी विनाश नही होता, और जो पर्यायें नजर आती है, पर्यायोरूपसे जीवका होना देखा जाता है तो उसमे कही असत् पदार्थका उत्पाद नही होता। यदि वास्तवमे जीव मरता हो तो यह कहा जाय कि सत्का नाश हो गया या जीव जन्म लेता हो याने पहले कुछ नही है और जब जीव पदार्थ बन गया तो कह सकते कि असत्का उत्पाद हो गया, लेकिन स्थूलदृष्टिसे भी देखो तो जो जीव मरता है वही तो जन्म लेता है। विनाश कैसे होगा ? और जो जीव जन्म लेता है वही तो मरता है, तो इसमे सत्का विनाश और उत्पाद नही है, किन्तु उस ही सत् की ये अवस्थायें बतायी जाती हैं, और चूकि अवस्था होनेका ही नाम उत्पाद व्यय है, उस ही समयमे नवीन पर्यायकी दृष्टिसे उत्पाद है और पुरानी पर्यायके रूपसे विनाश है। जीवका न उत्पाद है, जीवका न विनाश है, ऐसी बात समझनेसे यह एक साहस जगता है कि मैं जीव तो सदा रहने वाला पदार्थ हू। मेरा न नाश है, न जन्म है, और पर्याय रूपसे मैं उत्पन्न और

नष्ट होता हू । तो जो अब तक अज्ञानकी पर्याय मिलती आयी उसका विनाश हो सकता है और जो शान्ति, निर्मलना, पवित्रता अब तक नही उत्पन्न हुई है उसकी उत्पत्ति हो सकती है, ऐसा आत्मकल्याणके सम्मुख जीव अपने आपको हितके मार्गमे प्रेरित कर लेता है । जीवमे मनुष्यपना और देवपना आदिक क्यो होते है ? तो यह जीव जैसे भाव करता है उस भावके अनुसार कर्म बन जाते है । कर्म यद्यपि अपने आपमे ही है और वे अपनी ही सत्ता बनाते है तो उन कर्मोंका जब उदय होता तो जैसे-जैसे गति नामकर्मका उदय हुआ वैसे ही उनको फल मिलने लगता है । तो देव और मनुष्य पर्यायोंको रचने वाला देवगति नामकर्म, मनुष्यगति नामकर्म होता है और वह जब तक उदयमे रहता है तब तक उस भवमे मनुष्य आयु समाप्त होनेपर वह उस भवमे नही रहता । तो जिनको अपने इस शरीरमे अज्ञान नही है, भेद प्रकाश है तो वह अन्त अपनेको पर्यायरूप नही अनुभव करते, इसीलिए उनके आगामी शरीर परम्परा मिलें, ऐसे कर्म नही बँधते । जीव तो अमर्यादित है, तीनो काल रहने वाला है । एक जीवद्रव्य है और उसमे पर्याय और गुण दोनो भाव बने रहते है । अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से तो इसकी सत्ता है, दूसरेके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे इसकी सत्ता नही है । तो इन पर्यायोंमे अटककर, इन पर्यायोंमे व्यापकर रहने वाला जो एक त्रैकालिक भाव है, चैतन्यस्वरूप है उसमे ही यह मैं हू ऐसा अनुभव हो तो उसका ससारमार्ग छूटता है । अपना सारा भविष्य अपने इस ही निर्णयपर आधारित है कि मैं क्या हू, इसका जो उत्तर होगा उस ही रूप इसका परिणाम बनेगा । तो अपने चैतन्यस्वरूपको भूलकर जो शरीरमे 'यह मैं हू,' ऐसा अनुभव बनता, यह घोर अधकार है और इस अधेरेमे रहने वाला जीव अपने आपको विपत्तिसे नही बचा सकता । ऐसा यह जीव जीवद्रव्यसे शाश्वत अपने आपमे ही विहार करने वाला है । जो इस शाश्वत स्वरूपकी ओर अपनी धुन लगाये है तो वह नियमत ससारसकटोंसे छूटकर उत्तम निर्वाण सुखमे पहुच सकता है । इस तरह इस जीवद्रव्यका शाश्वतपना इन गाथाओमे बताया गया है—पर्यायरूपसे उत्पन्न विनष्ट होकर यह जीव वस्तु न उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है, किन्तु वह शाश्वत एकरूप है ।

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा ।
तेसिमभाव किच्चा अभूपपुव्वो हवदि सिद्धो ।।२०।।

ज्ञानावरणादिक कर्मके क्षयसे जीवकी अभूतपूर्व सिद्धदशा—ज्ञानावरणादिक कर्मके द्वारा यह खूब अवरुद्ध हुआ है, उन कर्मोका अभाव करके जीव सिद्ध बनता है जो अभूतपूर्व बात है । सिद्ध होना अभूतपूर्व बात है याने जो कभी हुआ नही और हो गया और उस अभूतपूर्वकी बहुत बडी महिमा है कि हो जानेके बाद फिर कभी वह मिटे नही । तो यहाँ यह ससारी जीव अज्ञानभारसे लदा है । इसका परिचय ऐसे दृष्टान्तसे करिये कि जैसे कोई बाँस

किसी ढंगसे रगा है जहाँ चित्र-विचित्र नाना फोटो भी रचे गए है, कुछ भाग अचित्रित है। आवरणसे अब वह समूचा ढका है, तो जितने अशमे उसका आवरण दूर हुआ, उससे कुछ जाना तो सही कि आत्मस्वभाव दृष्टिसे निर्मल है, लेकिन जो थोडा बहुत चित्र-विचित्र रग देखा तो वहाँ यह बोध होता है कि चाहे यह रगा हुआ हिस्सा हो, चाहे बिना रगा, दोनोमे वही एक बांस है। इसी तरह जीवकी पर्याय मलिन चल रही है, मगर यह मलिनता तो दम भरके नहीं है, क्योकि यह केवल एकत्वगत जीवके मलिनता नही बनती। बाहरी पदार्थोंके अनुकूल सयोग हो तो इनकी ऐसी स्थितियाँ बना करती है। तो उस समय ज्ञानावरणादिक अनुभागका उदय हो तो भावकर्म स्वय हो जाता है। उन कर्मोमे बधसे पहले ही ८ प्रकारका भेद पडा हुआ था योग्यतारूपमे। तब ही तो जब जीव कषाय करता है तो कहते है कि कितना अधिक अनुभाग बँधा, किस किसका कम, सो बँधते समय उन कर्मोमे यह भेद पड जाता है। बस जैसा उन कर्मोका उदय है वैसा ही तो जीवका तिरस्कार है। इन आपत्तियोको जो मेटे वह ही अभूतपूर्व सिद्ध होता है। भीतरमे एक जीवद्रव्यके स्वरूपको निरखकर चिन्तन किया जाय तो चूंकि वह स्वयका ही रूप है और स्वय ही चिन्तन करने वाला है और स्वय उस ही परिणति द्वारा चिन्तन होता है तो वहाँ इस जीवद्रव्यको अपने लिए सर्वस्व एकाकी दृष्टिगत होगा। उस एक समयसार कारणपरमात्मतत्त्व इसका आलबन होनेसे पूर्व बँधे हुए कर्म खिरते है और नवीन कर्म जो आ सकते थे उन सब कर्मोका बध रुक जाता है। तो यहाँ त्रैकालिक जीवद्रव्यको अपनी दृष्टिमे रखनेसे कल्याणका मार्ग चलता है।

एव भावमभाव भावाभाव अभावभाव च।
गुणपज्जयेहिं सहिदो ससरमाणो कुणदि जीवो ॥२१॥

जीवके भावभाव, अभावाभाव, भावाभाव, अभावभाव आदिका एक सक्षिप्त दिग्दर्शन—यहाँ तक द्रव्यका सामान्य वर्णन चल रहा है। उसमे जीवद्रव्यके बारेमे यह सब घटित करो। अभिप्रायसे यहाँ उसका तथ्य बताया जा रहा। इस जीवद्रव्यका भावका अभाव, अभावका भाव बना, भावका भाव, अभावका अभाव रहा—ये चार बातें सभी द्रव्योमे है, सो जीवद्रव्यमे भी है, सो किस तरहसे ? चूंकि जीवद्रव्य नित्य है और वह जीवरूपसे होता रहता है, इस कारण भाव ही भाव, सद्भाव ही सद्भाव रहा और उसी जीवका देव, मनुष्य आदिक पर्याय रूपसे उत्पाद होता हो और उस ही जीवका मनुष्यादिक पर्याय रूपसे व्यय होता हो तो वहाँ जीवके भावका अभाव व अभावका भाव होगा। जीव क्या-क्या करता है ? भावका भाव करता है, मायने जीवत्वभाव है और उस जीवत्वभावको बनाये रहता है। अभावका करने वाला है याने पररूपसे जीव असत् है, सो ऐसी बात वह निरन्तर बनाये हुए है। तीनकालमे भी कोई पदार्थ कितना ही छोटा हो, कितना ही बडा हो, वह अपना अस्तित्व नही मिटानेका। तो इस तरह

यह बात निर्दोष हुई कि प्रत्येक वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक होता क्या पूरे गुणकी भी कथा छोड दे तो वह द्रव्यमे ही अन्तर्भूत हो जाता है, मगर द्रव्य और पर्याय ये दो बाते प्रत्येक वस्तुमे माननी पडती है। है ही ऐसा। तो जितना यह व्याख्यान चल रहा है वह द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय—इन दोनोमे मुख्य और गौणकी विधिसे चल रहा है। सो जब इस जीवको पर्यायकी गौणतासे बताया जाता है तो सहज ही वह बात सिद्ध हुई कि उसमे द्रव्यकी मुख्यता विवक्षित है। तो इस विवक्षामे न जीवका उत्पाद है और न जीवका विनाश है। जब पर्यायकी मुख्यतासे जीवका वर्णन किया जाता है तो नवीन पर्यायको उत्पन्न किया, यह बात आती है। तो पर्यायदृष्टिमे तो उत्पाद व्यय है, द्रव्यदृष्टिसे उत्पाद व्यय नही है। यह सब एक स्याद्वादमे प्रसिद्ध है कि जो वस्तुका पूर्णरूपसे परिचय करा दिया जाता है और उन सब धर्मोके परिज्ञान करनेमे कही भी कुछ विरोध नही आता है।

[गाथा २६ तकके प्रवचन सहारनपुरमे प्रेस वालेने गुमा दिये हैं।]

॥ पंचास्तिकाय प्रवचन प्रथम भाग समाप्त ॥



पंचास्तिकाय प्रवचन द्वितीय भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी

जीवोत्ति हवदि चेदा उपओगविसेसिदो पहू कत्ता ।
भोत्ता य देहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसजुत्तो ॥२७॥

जीवद्रव्यको विशेष व्याख्यानका आशय—इस ग्रन्थमे पचअस्तिकायोका वर्णन है, जिसकी भूमिकामे ५ अस्तिकायोका वर्णन कर दिया गया है। उन्ही अस्तिकायोमे से उनका ही अब विशेष वर्णन चलेगा। समस्त द्रव्योमे प्रयोजनीभूत पदार्थ है जीवद्रव्य। हम आप सब जीव है। जीवकी ही समस्या सुलझानेके लिए हम अन्य समस्त पदार्थोंका भी ज्ञान किया करते है। कोई पुरुष अन्य पदार्थोंका तो खूब परिचय करे और एक अपने आपका परिचय न करे तो उसने ज्ञानका प्रयोजन और लक्ष्य ही नहो पाया। कोई पुरुष समस्त अचेतनका भी वर्णन सीख जाय, जीवद्रव्यकी बातें करने लगे, किन्तु अपने आपका स्वरूप न समझे तो उसने भी कुछ नही किया। अतस्तत्वका ज्ञान करना—यह ज्ञानका प्रयोजन है। इसी प्रयोजनकी सिद्धिके लिए विशेष व्याख्यानोमे सर्वप्रथम जीवद्रव्यका वर्णन किया जा रहा है।

चेतयिता—जीव कैसा है ? जीवका लक्षण बतानेके प्रसगमे एक व्यापक दृष्टि रख कर कहा जा रहा है। कुछ बातें ससारी आत्मामे घटित होगी कुछ बातें मुक्त आत्मामे घटित होगी, कुछ बातें ससारी और मुक्त जीवोका ख्याल न रखकर उनकी अपेक्षा न करके एक निरुपाधि स्वरूपका वर्णन होगा। यह जीव चेतयिता है, चेतने वाला है। इस चेतयितृत्व स्वरूपमे न ससारी अवस्थाको छुवा गया है और न मुक्त अवस्थाको छुवा गया है। इसका सहजस्वरूप अपने आपकी सत्ताके कारण जो स्वरूप है वह है चेतन। यह जीव जब चैतन्यस्वरूपके परिचयमे नही लगता है तब अपने को नाना विशिष्ट उपयोगरूप मानता रहता है और नाना विशेषतावोमे फस जाने से इसकी दुर्गति होती है, ससारमे भ्रमण होता है।

अध्यात्मप्रसंगमें सामान्यका महत्त्व—लोकमे विशेषकी इज्जत मानी गयी है, साधारण

की नही, यह तो जनरल बात है, इसमे क्या तत्त्व है, कोई स्पेशल बात कहो, लोकमे स्पेशल की कदर है, सामान्यकी इज्जत नही है, विशेषकी इज्जत है। किन्तु आत्मकल्याणके मार्गमे विशेषकी इज्जत नही है, सामान्यकी इज्जत है। जब जीवकी पर्यायोका वर्णन किया जाता है, मार्गणा आदि विशेषतावोका प्रतिपादन चलता है उस प्रसगमे जीवका स्वरूप समझनेके लिए केवल इतना भी कह दिया जाता है कि देखो १ घंटे तक जो हमने कहा है ना, गतिमार्गणा, इन्द्रियमार्गणा, कायमार्गणा और जितना विस्तार कहा है ना, वह सब नही है, बस समझ लो वह जीव है। लोकविस्तार बतानेमे घटो समय लगाया और जीवको कहनेमे एक अक्षर बोलना पडा। यह नही, उस ही के साथ कुछ सत् सामान्य तत्त्व उसकी दृष्टिमे है, जिसको दृष्टिमे रखकर उस समस्तको मना कर रहा है वह है चेतन सामान्य। देखो—एक शुद्ध आत्माका आलम्बन लो, यो उपदेशमे बोल लेते हैं ना या वस्तु पर्याय वस्तुका आलम्बन ले। पर्याय है विशेष और स्वभाव है सामान्य। आत्मकल्याणके मार्गमे सामान्यकी पूछ है, विशेषकी नही है। यह जीव चेतयिता है।

जीवत्वका मडन—भैया! प्रथम तो यह ही देखिये। जीव है, है के समर्थनमे बहुतसे मर्म आ जाते है। यह आत्मा अथवा यह जीव है। शुद्ध निश्चयसे देखा जाय तो ये चैतन्य अथवा ज्ञान आदिक सामान्यस्वरूप शुद्ध प्राणोसे जीवित रहते है। अत. इसका नाम जीव है। शुद्ध दृष्टिमे निरखा जा रहा है कि जो शुद्ध चैतन्य प्राणोसे जीवित रहे उसका नाम जीव है। यो तो एक दृष्टिमे यो निहार सकते हैं कि जीव, आत्मा और परमात्मा। इन तीन शब्दोसे हम एक इस चेतनको तीन पर्यायोमे निरखते है। जीवके कहनेसे जो द्रव्य प्राणोसे जीता है, जो भवोको धारण कर रहा है, जहाँ जीने व मरनेका व्यवहार किया जाता है वह जीव है। यह जीवित है, अब यह मर गया है, ऐसा जीना जिसमे हो उसे जीव कहते हैं। ऐसा जीवन जिसका एक काम बन गया है वह जीव कहलाता है—बहिरात्मा। तो जीव शब्दसे अर्थ लेना बहिरात्मा। और आत्माका अर्थ है जो जाने सो आत्मा। जो व्यापकरूपसे जाने उसे आत्मा कहते है, ऐसा होता है सम्यग्दृष्टि पुरुष। और परमात्मा कहते है उसे जो वीतराग सर्वज्ञ शुद्ध हो चुका हो। यो इन तीन शब्दोको जब हम इस ढगसे रखते है तो इन तीनोका आधारभूत जो तत्त्व है उसका नाम है ब्रह्म।

ब्रह्म, परमात्मा, आत्मा व जीव—इस आत्माके ज्ञानके प्रकरणमे चार चीजे समझिये—ब्रह्म, जीव, आत्मा और परमात्मा। ये चार बातें अन्य सम्प्रदायोमे भी बहुत प्रसिद्ध हैं, लेकिन उनके ख्यालसे जो इन चारो तत्त्वोका स्वरूप उनकी दृष्टिमे आता है, उसे स्याद्वादसे लगायें तो इस प्रकारका रूपक बनता है कि ब्रह्म तो है एक चैतन्यस्वरूप जो समस्त पर्यायोमे व्यापक है व एक स्वरूप है। जैसे किसी व्यक्तिकी प्रशसा करें कोई तो व्यक्तिका नाम न लेकर

किसी भाव या विशषताका नाम लेकर कहा जाता है। जैसे कोई प्रशसा करता है—अमुक चदने समाजपर बहुत प्रभाव डाला है। अब अमुक चदका नाम न लेकर यह भी वह सकते है कि इस धर्मात्माकी किरणने समाजपर बड़ा प्रभाव डाला है। ऐसे ही जब हम व्यक्ति रूपमे जीवोको न तकें और एक चैतन्यस्वरूपके रूपसे तकें तब हमे वहाँ नानापन नजर न आयगा। अब यो यह ब्रह्म एक हो गया और सर्वव्यापक हो गया।

अद्वैतसे द्वैतका प्रसार—उस एक ब्रह्मके जब हम भेदभावमे आते है, द्वैतभावमे आते है तो हमे जीव, आत्मा, परमात्मा—ये तीन शक्ले नजर आती है। यथार्थ ज्ञानी पुरुष जब एक सहजस्वरूपके परिचयमे मग्न हो गया है तो वह अद्वैत बन गया है, उसके उपयोगमे अद्वैत है, वह स्वय निर्विकल्प है। अथवा जैसे अद्वैत निर्विकल्प तत्त्वके परिचयमे लगा है, देख रहा है, यह केवल एक प्रकाशमात्र है। ठीक, जब उसका यह कुछ एक्सपोजीशन करने चला तो वहाँ द्वैत उत्पन्न हो गया। है तो यह प्रकाश, मगर प्रकाशका अर्थ क्या है ? प्रकाशक और प्रकाश्य—ये दो बातें माने बिना प्रकाशका स्वरूप समझमे नही आता। अरे कोई प्रकाश करने वाला है, कोई चीज प्रकाशमे आ रही है, इतना ध्यानमे न हो तो प्रकाश नाम किसका है ? यो अब द्वैतमे आया प्रकाशक और प्रकाश्य अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय। अब जब द्वैतका सिलसिला लग उठा है तो द्वैतमे द्वैत फूट-फूटकर यह विकल्पोका जाल मच गया है। मूलमे इसका एक ही स्वरूप है जो स्वय निर्विकल्प और अद्वैत है।

जीवका प्रकाश—यह जीव शुद्ध निश्चयसे शुद्ध चैतन्यप्राणसे जीवित है, अतएव जीव कहलाता है, और अशुद्ध निश्चयसे ये क्षायोपशमिक ज्ञान आदिक प्राणोसे जीता है इसलिए जीव कहलाता है, अथवा इन द्रव्य प्राणोसे कोई जीवित था पहिले, वह जीव अब शुद्ध है तो भी वह जीव है। यो जीव शब्दकी हम चतुर्मुखी दृष्टि बनाते है तो यह आत्मा नाना रूपोमे प्रकट होने लगता है। यह जीव है, यह मैं हू, ऐसा कह-कहकर भी इसका भान नही कर पाते है। अन्य अन्य पदार्थोमें नाना भावोमे मैं हू ऐसा कोई भान करे तो वह 'मैं' का भान नही कहलाता। जो मैं हू उसका ही भान बने तो मैं का भान समझियेगा। जगतके ये समागम मकान, महल, परिजन ये सब विनश्वर है, स्वय मायारूप है, स्वय ही सारभूत नही है, परमार्थ नही है। इनके समागममे मुग्ध होना और अपने आपके उस विशुद्ध स्वरूपको भूल जाना, यह अपना ही घात किया जा रहा है।

विविक्तत्वके श्रद्धानकी आवश्यकता—धर्मके प्रसगमे हम तब तक नही आ सकते हैं जब तक हम अपनेसे भिन्न समस्त परपदार्थोका लगाव श्रद्धामें न छोड़ दें। हमारी श्रद्धा ऐसी निर्मल होनी चाहिए कि इस चैतन्यस्वरूपको छोडकर अन्य परभाव मेरे विस्तार नही हैं। जब विभाव भी मेरे नही, तब अन्य प्रकट भिन्न चेतन अचेतन परपदार्थोंकी तो कहानी ही

क्या हो ? समयसारमे बताया है कि परमाणुमात्र भी राग जिसके हो वह सम्यग्दृष्टि नही है। उसका प्रयोजन है श्रद्धामे, परमाणुमात्र भी राग जिसके हो अर्थात् रच रागको भी जो अपना स्वरूप मानता हो कि यह मैं हू, वह पूरा अज्ञानी है, चाहे उसने बडे-बड़े शास्त्रोका परिज्ञान कर लिया हो, लेकिन अपने आपके बारेमे रच राग आया हो, अपना हित, अपना महत्त्व माना हो वह अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि जीव है।

निर्मल स्वभावके दर्शन बिना जीवनकी विफलता—भैया ! श्रद्धामे तो अपनेको निर्मल बना ही लो, अन्यथा यह मनुष्य भव पाना बेकारसी बात रही। विषयोंके भोग, मनकी मौज सूकर कूकर, घोडा, हाथी अथवा बैल और और कीडे-मकोडे, इन भवोमे नही मिल रहे थे क्या ? जितना प्रिय मनुष्योको हलुवा पूडी होती होगी उतना ही प्रिय ऊँटोको नीमकी पत्ती होती है। जो जिस भवमे है उस भवके अनुकूल जो जितना भोजन है उसे वह ही प्रिय है। केचुवा आदिक कीटोको मिट्टी ही बहुत प्रिय लगती है। वे मिट्टीका भक्षण करके मौज मान रहे है। आज मिल गया इतना ठाठ, खान-पानका साधन तो यह क्या है ? मिट्टीकी तरह है, कोई जीव मिट्टीको पसद करते है। यहाँ दो पैरोपर खडे होने वाले जानवरोंने हलुवा पूडी पसद किया है। देखो सुनकर बुरा न मानना। जानवर कहलाता है वह, जो ज्ञानमे श्रेष्ठ हो। जान मायने ज्ञान, वर मायने श्रेष्ठ। जिसके ज्ञान श्रेष्ठ हो उसका नाम जानवर है। जानवर शब्द उच्च है, किन्तु किसी मूर्ख आदमीको उच्च शब्द बोल दिया जाय तो वह शब्द गाली कहलाने लगता है।

चेतनाकी व्यक्तिया—प्रकरण चल रहा है कि यह आत्मा चेतयिता है। चेतना तीन रूपोमे होती है—ज्ञानचेतना, कर्मचेतना और कर्मफलचेतना। चेतनाका काम है सबका सम्वेदन करना। मैं हूँ, इस प्रकारकी चेतना बनाये रहना चेतनाका काम है। जो कोई जीव मैं एक शुद्ध ज्ञानमात्र हू, इस प्रकारकी चेतना करता है तो उसे कहते है ज्ञानचेतना वाला। कोई जीव अपनी करतूतमे चेतना लाता है—ज्ञानके सिवाय अन्य जीवोका मैं कर्ता हू, इस प्रकार कर्तृत्वकी बात लाता है तो उसे कहते हैं कर्मचेतना वाला। इस जीवने अपने आपको कर्मरूप मे, कर्मठ रूपमे चेता। अथवा यह आत्मा इन कर्मोरूप नही है, वह शुद्ध ज्ञानचेतना रूप है। इस कारण जो कर्मचेतना रखता है उसको अज्ञानी कहा गया है। कोई जीव अपने आपको भोगनेके रूपमे चेतता है, मैं विषयको भोगता हू। एक शुद्ध ज्ञानस्वरूपके अतिरिक्त अन्य भावो को भोगनेकी बात जो चित्तमे लाता है, चेतता है उसे कहते है कर्मफलचेतना वाला। चेतनाकी की बात चूकि जीवमे ही हो सकती है, अतएव इसे चेतयिता कहते हैं।

उपयोगविशेषितता—पूर्व भूमिकामे छहो द्रव्योका वर्णन था और वह सामान्य रूपसे था। जो बात सबमे घटित हो वह बात कही गयी थी। अब इस प्रसगमे जीवतत्त्वकी बात

कह रहे है। यह जीव है, यह जीव चेतयिता है और यह उपयोग विशेषित है, उपयोग नाम है यूजका, प्रयोग करनेका। ज्ञानशक्ति है तो ज्ञानशक्तिको काममे लाना, इसका नाम है उपयोग। अब जो जीव जिस प्रकारके उपादान वाला है वह अपनी ज्ञानशक्तिका उस प्रकारसे उपयोग करता है और यो इसके मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन.पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये ५ भेद हो जाते हैं। इन पाँचोमे निश्चयसे तो यह केवलज्ञानरूप उपयोगसे विशेषित है और अशुद्ध निश्चयसे मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय—इन चार क्षायोपशमिक उपयोगोसे विशेषित है। यह जीव है, चैतन्यशक्ति वाला है, और इस चैतन्यशक्तिका कुछ न कुछ उपयोग प्रतिसमय बनाये रहता है।

जीवकी निर्नामता—यह मै जीव हू, मुझ जीवमे कोई नाम नही खुदा है, सब लोग सोच लो। जो आज नाम रक्खा है किसी ने, किसी दिन रख दिया है? कदाचित इन शब्दो का नाम न रक्खा होता, कोई दूसरा नाम होता तो कोई उसमे यह बाधा आती थी क्या कि यह नाम फिट नही बैठता और कुछ नाम धर दो। इसका तो जो नाम धर देने है उसीको फिट बैठानेकी आदत है। अर्थात् उस प्रकारका व्यामोह है। कोई नामका सम्बन्ध नही है इस जीवके साथ। यह तो है एक जीव। जिसमे कि इस प्रकारका उपयोग चलता है, राग द्वेप मोह परिणाम चलते है ऐसा है यह। इसका नाम जो रखना है रख दीजिए।

प्रभुता—यह आत्मा प्रभु है। प्रभु किसे कहते है? **प्रकृष्ट रूपेण भवति इति प्रभु**। प्र मायने बडी तेजीसे भू मायने होवे उसका नाम प्रभु है। यह जीव प्रभु है। इसमे बडी सामर्थ्य है। यह शुद्धताकी ओर जाय तो अपना इतना चमत्कार फैलाता है कि तीन लोक, तीन कालके समस्त पदार्थोको एक समयमे एक साथ स्पष्ट जान जाता है। है ना बहुत बडा चमत्कार, और यह जीव जब बिगडता है तो बहुत बडा प्रभाव फैलाता है। न जाने क्यासे क्या कर डाले। तो यह जीव प्रभु जब बिगडता है और बिगडकर मानो किसी विशाल वृक्षके रूपको अगीकार करता है तो तने-तनेमे, पत्ते-पत्तेमे प्रत्येक नसावोमे और कैसी-कैसी ऊट-पटाग डालियोमे फैल जाता है। कोई कुछ ढग है क्या फैलानेका? किसी भी तरह फैल जावे। उनके फूल और फूलोमे भी जो मकरकद होता है ततुकी तरह बिल्कुल पतला, ऐसे इन ततुवो मे इन सबमे यह एक ही जीव कैसा फैल जाता है? यह क्या कम चमत्कार है। यह बिगडता है तो ऐसे-ऐसे चमत्कार दिखाता है और जब यह सम्हलता है तो केवलज्ञान जैसा चमत्कार दिखाता है।

बाहरी बहादुरी—यह जीव प्रभु है। एक तरहसे देखो, चाहे मजाककी दृष्टि समझ लो और चाहे एक विशेष चिन्तनाकी दृष्टि समझ लो। सिद्ध भगवान बनकर जो चमत्कार फैलाया, उसमे उनकी क्या तारीफ है? वह तो उनका स्वरूप है। सीधीसी बात है, सीधासा

खेल है वह तो । केवलज्ञानी होना, लोकाकाशका प्रकाश करना, यह तो सीधासा खेल है । स्थावर बनकर नाना तरहके त्रस बनकर ढग-बेढगे शरीरोको धारण कर, नाना प्रकारके भव पाकर अपना विचित्र विस्तार बनाया, बहादुरी तो इसमे है जीवकी । सिद्ध बन गये सीधे-सादे, जैसा स्वरूप है तैसे बन गये, स्वाधीन हो गये, अकेले रह गये, इससे ज्यादा बढाईकी बात तो इसमे होगी ना (हँसी) । ससारके प्रत्येक प्रदेशपर यह जन्म लेता है, मरण करता है, इतना सफर कर रहा है और इतनी तरहके विचित्र रूप रख रहा है, शायद इससे ज्यादा बहादुरी होगी ? खैर यहाँ दृष्टि यह कीजिये कि जीवको शान्ति प्रिय है, इस कारण बहादुरी तो सिद्ध बननेमे ही है, किन्तु एक परिणतिकी दृष्टिसे देखा जाय तो सर्वत्र परिणतियाँ छायी हुई है । शुद्ध निश्चयसे तो मोक्ष और मोक्षके कारणभूत शुद्ध परिणामोसे परिणमनेमे समर्थ है, अतएव प्रभु है और अशुद्धनयसे यह नाना ससारी पर्यायोसे परिणमता है, अतएव प्रभु है । अब जीव के सम्बधमे कुछ और चर्चायें होगी ।

अपनी सकल सृष्टियोमे प्रभुता—यह जीव स्वय प्रभु है । यो तो प्रत्येक पदार्थ अपने आपके परिणमनसे परिणमनशील है, अतएव सभी पदार्थ प्रभु हैं, किन्तु अचेतन पदार्थमे चेतनाशक्ति न होनेके कारण प्रभुता जैसी व्यवहारकी बात नही होती है । अतः यहाँ अन्यको प्रभुकी विशेषता न कहकर जीवमे प्रभुता बतायी जा रही है । यह जीव स्वय समर्थ है, अत-एव प्रभु है । प्रभु नाम समर्थ होनेका है । निश्चयसे तो यह जीव निज शुद्ध भावोके परिणमन मे समर्थ है, और अशुद्ध निश्चयनयसे रागादिक भावकर्मके परिणमनमे स्वय ईश है, प्रभु है, और व्यवहारनयसे देखें तो द्रव्यकर्मोका जो परिणमन होता है, आस्रव, बध, सम्वर, निर्जरा और मोक्षरूप जो पचपर्यायोमे कर्मोका भी परिणमन होता है उसमे निमित्त समर्थ यही है । यो यह प्रत्येक स्थितियोमे ईश है, अतएव यह जीव प्रभु है ।

प्रभुताके वर्णनमे शिक्षा—हमे इस प्रभुताके वर्णनसे यह समझ लेना चाहिए कि हम अपने दु खमे किसी दूसरेपर विरोधकी दृष्टि क्यो डालें ? कोई भी परपुरुष मेरेमे दु ख उत्पन्न कर ही नही सकता । वह जो कुछ करेगा अपनेमे खुदमे करेगा, इससे बाहर उसकी करतूत नही है । ऐसी ही मेरी भी बात है । मेरी प्रभुता मेरे तक है, तब किसी परजीव पर अपने दु खके विरोधकी दृष्टि करना मूढता है । इस ही प्रकार किसी राग प्रेमके व्यवहारमे जो यह जीव सुख मानता है उस सुखकी परिणतिमे भी परजीवोपर सुखदाताकी कल्पना करना मूढता है । अरे आनदशक्तिसे भरा हुआ यह आत्मा बिगडते-बिगडते कहाँ तक बिगडे ? किन्ही-किन्ही प्रसगोमे अपनी ही आनन्दशक्तिका कुछ अश मिल जाता है, उसीको यह जीव भोगता है, पर मोह लगा है; इस कारण परनिमित्तपर यह आरोप करता है कि मुझे इस परसे सुख मिला है, वस्तुतः परपदार्थोकी ओर जो इसकी दृष्टि लगी, आकर्षण हुआ, इस बाह्यवृत्तिके कारण

आनन्दमे बाधा आयी है: आनन्द नही मिलता है।

आनन्दप्रभुता—यह मैं आत्मा स्वयके सुख दुःख और आनन्दके निर्माणमे समर्थ हू। मैं अपनी ही पर्यायोको अपने ही परिणमनसे रचता रहता हू, किसी अन्य निमित्तपर अन्य आश्रयपर दयनीय दृष्टि रखना—यह मेरा दाता है, यह मेरा कर्ता है, मेरी जान इसके आधीन है, मेरा भवितव्य इसीके ही हाथ है, ऐसी कायरता लेना, यह इस प्रभुको युक्त नही है। यह मैं आत्मा स्वयं समर्थ हू, एक साहस चाहिए अन्तरङ्गमे। आनन्द तो चाहिए है ना। वह आनन्द जिस विधिसे मिले उस विधिके करनेमे क्यो शका की जा रही है ? आनन्दप्राप्तिका उपाय एक केवल निज अतस्तत्त्वसे नाता लगाना है, अन्य कोई उपाय नही है। जब किसी भी क्षण दृढताके साथ समस्त परवस्तुवोंसे नाता तोडकर श्रद्धामे तो अभी भी तोडा ही जा सकता है, परविविक्तता अङ्गीकार करके केवल अपने आपको देखना इसमे ही कैवल्यको सिद्धि है।

कैवल्यकी दृष्टिमे अशान्तिका अभाव—भैया ! केवलपना अपने उपयोगमे आये वहाँ अशान्ति नही होती। जहाँ दूसरे लोग दृष्टिमे आये वहाँ अशान्ति हो जाती है। किसीके इष्ट का वियोग हो गया हो तो वह इष्टका ख्याल कर-करके दु खी होता है, यह दु ख परकी दृष्टिमे ही तो हुआ है। कोई मान लो रोते-रोते बहुत थक गया हो, कुछ विश्रामसे बैठा हो और इतने मे अपने इष्ट मौसा-मौसी, फूफा-फूफी कोई बाहरसे आ जायें, जैसे कि फेरोमे लोग आया करते है तो उनको दृष्टिमें लेते ही फिर यह और तेज रोने लगता है। किसी बाह्यकी दृष्टि करना नियमसे क्लेशके लिए होता है। यदि इतनी श्रद्धा नही है तो जैनधर्म माननेका और अर्थ ही क्या है ? पूजा, वन्दन, दर्शन, जाप, सत्सग, स्वाध्याय, गुरुसेवा आदि सबका और अर्थ ही क्या है ? मूलमे यदि यह श्रद्धा है कि बाह्य पदार्थोंकी ओर दृष्टि करना ही बन्धन है, भ्रमण है, रुलना है, क्लेश है, पाप है। यह श्रद्धा हो तब तो उसके ऊपर, इस नीवपर धर्म महलकी भीत खडी हो सकती है। यह श्रद्धा नही है, कर्तृत्वकी वासना अन्दर पडी है तो फिर सब व्यर्थ है। धर्मकार्यका फिर अर्थ क्या रहा ?

अपनी बात—भैया ! अपनी बात अपनी भलाईके लिए अपनेपर दया करके दृढताके साथ समझ लीजिए। इसमे कुछ आपका जाता है क्या ? यही बैठे ही बैठे अपने उपयोग द्वारा केवल एक अपने आपमे पहुचे, और सब समस्याएँ हल कर ली जायें। यह मैं आत्मा चूकि वस्तु हू, इसलिए निरन्तर परिणमनशील होता हू, एक क्षण भी मेरा परिणमन रुकता नही है, और उस परिणमनमे मै ही समर्थ हूँ, कर्ता हू, अन्य कोई मुझमे तादात्म्यरूपसे मिलकर मेरा परिणमन नही करता है, ऐसी स्वतन्त्रता, प्रभुता मुझमे है। यह श्रद्धा न हो तो फिर कल्याणके लिए आगे और कोई कदम नही हो सकता है।

जीवका कर्तृत्व—इस प्रकरणमे जीवद्रव्यका विशेष व्याख्यान चल रहा है। यह जीव परमशुद्धनिश्चयसे अकर्ता है, शुद्ध निश्चयसे अपने शुद्ध परिणामोका कर्ता है, जो शुद्ध ज्ञानादिक भाव है उन भावोका कर्ता है, और अशुद्ध निश्चयनयसे पुद्गल कर्मोका निमित्त पाकर जो रागादिक भाव उत्पन्न होते है उन रागादिक भावोका कर्ता है और व्यवहारसे इन रागादिक भावोके कारण जो कर्मबध आदि होते हैं उन पौद्गलिक कर्मोका कर्ता है। कैसी निमित्तनैमित्तिक योगके कारण गुत्थी बनी हुई है? यह जीव पुद्गल परिणमनके निमित्त रागादिक करता है, इसके दो मुख्य अर्थ हो जाते है। कर्मोके उदयका निमित्त पाकर रागादिक भावोका कर्ता है और रागादिक भावोका कर्ता कर्मबधके निमित्त होता है अर्थात् रागादिक भाव करके ये कर्मबध करेंगे। इसके विभावोके कारण इसपर दोहरी मार पड रही है—आन्तरिक मार और बहिरङ्ग मार। आन्तरिक मारका नाम है घातिया और बहिरङ्ग मारका नाम है अघातिया। ये बहिरङ्ग साधन सीधे मेरा घात नही करते, किन्तु मेरा घात करने वाले परिणामोके लिए सहायक साधन बनता है।

व्यामोह और बन्धन—अहो यह आत्मा अनन्त प्रभुशक्तिक होकर भी आज कैसा बन्धनमे जकडा हुआ है? जकडा तो अनादिसे है, पर दृष्टिमे अब आया है। अबकी बात कही जा रही है। कैसा जकडा हुआ है? कर्म और जीवका तो निमित्तनैमित्तिकयोगसहित एक क्षेत्रावगाही बन्धन है। मूढताकी बात तो देखो—जो भिन्न क्षेत्रमे रहता है, अत्यन्त भिन्न है, जिसपर मेरा रंच भी अधिकार नही है, अपने-अपने कर्मोको लिए हुए है, अपनी परिणतिसे अपनी दशाएँ बनाता फिर रहा है—ऐसे दो-चार जीवोको अपना कुटुम्ब मानकर उपयोगमे केवल उनके लिए ही अपनेको मान रखा है। मेरा तन, मन, धन, वचन सब कुछ इन परिजनोके लिए है, बाकी जीव तो सब गैर हैं, यो व्यामोह कर रखा है। अरे उन गैरोमे से फिर कोई जीव आज घरमे पैदा हो जाय तो वह भी इसकी कल्पनामे अपना बन गया और इन माने हुए अपनेमे से मरकर कोई दूसरी जगह, पडौसीके यहाँ पैदा हो जाय तो वह अब गैर हो गया। क्या बावलेपन जैसी बात है? थोडी देरमे उसी जीवको अपना कह डाला, थोडी देर बाद उसी जीवको गैर कह डाला, गैरको फिर थोडी देर बाद अपना कह डाला, यह कैसा मोह का नशा चढा हुआ है? किसी बातपर टिक नही सकता यह जीव।

परका अकर्तृत्व—सासारिक परिस्थितियोमें भी यह जीव करने वाला किसी दूसरेका नही है। कही किसीको अपना मान लेनेसे अपना नही हो जाता। कभी किसी परपरिणतिका मैं कर्ता हू, ऐसा मान लेनेसे कही यह उसका कर्ता नही हो जाता। यह तो सर्वत्र अपने ही परिणमनका कर्ता है। यदि अपना मान लेनेसे कुछ अपना हो जाय तो इस ससारीकी महिमा भगवानसे भी बडी हो जायगी। जो भगवान नही कर सकते उसे यह ससारी करके दिखा

रहा है, पर ऐसा है ही नही। जैसा जो है वह भगवानके ज्ञानमे आता है। जो जैसा नही है वह ज्ञानमे नही आता। हम कल्पना कर-करके अपनेको उलझनमे डाल ले, यह मेरा है, यह मेरा है, डाल लें, पर भगवान तो यो नही जानते कि यह घर इनका है। आप कह रहे हो कि यह मेरा घर है और यहाँके १० आदमी भी कहते है कि यह घर इन साहबका है, पर क्या ऐसा भगवानके ज्ञानमे भी ज्ञात है कि यह घर इन साहबका है। यदि भगवान यों जान जायें कि यह घर इन साहबका है तो फिर यह ऐसी रजिस्ट्रीकी बात हो गयी कि समझो फिर वह घर उनका मिट नही सकता। सरकारकी रजिस्ट्री तो काल पाकर फेल हो सकती है। सरकारकी भी नियत बदल जाय या कोई भी बात कर डाले। एक संकटकालका कानून होता है आपकी बनी बनाई हवेली कहो हडप ले और कहे कि तुम जावो अन्य जगह रहो, यहाँ आफिस बनना है। लो अब तो कुछ बात भी नही रही। यह सब न कुछ चीज हो जायगी। भगवान जान लेवे कि यह घर इनका है तो फिर पचासो लोगोसे बतानेकी जरूरत नही है। अरे जो असत्य है उसे भगवान नहीं जानते। यह अपनी कल्पनामे जो चाहे बात बनाकर रहे।

जीवका भोक्तृत्व—मैं केवल अपने परिणामोका कर्ता हू, अपना ही स्वामी हू, इससे आगे मेरी कोई कला ही नही है। यह आत्मा कर्ता भोक्ता है—किसका, इसका निर्णय तो कर लो। यह आत्मा भोक्ता है निश्चयसे तो अपने शुद्ध आनन्द परिणामका भोक्ता है, जो अपने सत्त्वके कारण और अगुरुलघुत्व गुणके कारण स्वयमे जो सहज बीत सकती है, ऐसी स्थितिका यह भोक्ता है, अनुभवन करने वाला है। अशुद्ध निश्चयनयसे पुण्य पाप कर्मोका निमित्त पाकर जो जीवमे सुख दुःख परिणाम हुआ करते है उन सुख दु ख परिणामोका यह भोक्ता है और व्यवहारसे इष्ट अनिष्ट विषयोका भोक्ता है। जैसे कि लोग कहते है कि मैंने भोजन भोगा, मैंने अमुक चीज भोगी, सम्पदा भोगी, यह व्यवहारनयसे कहा जाता है। वस्तुतः यह जीव जो अपनेमे बात गुजरती है उसका ही भोगने वाला है, अन्य किसीका नही। भोजन करते समय जो कल्पनामे यह बात आयी यह बडा मीठा है, यह बडा स्वादिष्ट है, और कल्पनाएँ जगनेसे मौज मानता, वहाँ कल्पनाओका सुख आ रहा है, वह भोजनमे से सुख नही आ रहा है। भोजनमे जो रस पडा हुआ है उस रसका ज्ञान तो यह कर रहा है, निश्चयसे उस रसका भी यह ज्ञान नही कर रहा है, किन्तु उस रसको विषयभूत बनाकर अपने आपके ज्ञान मे जो परिणमन कर रहा है उसको ही जान रहा है।

स्वयंका ही ज्ञातृत्व और भोक्तृत्व—जैसे कहते है ना भगवान सर्वज्ञदेव परमात्मा निश्चयसे आत्माको ही जानते है और व्यवहारसे सबको जानते है। उसका अर्थ क्या है? परमात्मा सब पदार्थोंमे तन्मय होकर जैसे कि अपने जानन परिणमनमे तन्मय होता है, इस तरह तन्मय होकर पदार्थको नही जानता, वह तो अपने आपमे तन्मय होकर अपना जानन

बनाता है। इस कारण जैसे परमात्माको हम कहते है कि निश्चयसे वह अपने आत्माको जानता है और व्यवहारसे सबको जानता है, ऐसी ही बात हमारी आपकी सबकी है। निश्चय से तो भोजन आदिक प्रसगोमे भी हम अपनेको जानते हैं। अपनेको जाना इसने विभावरूपमे, पर जाना अपनेको और व्यवहारसे उस भोजनको जाना। निश्चयसे इस जीवने अपने आनन्द रसका स्वाद लिया, व्यवहारसे उस भोजन मिठाईका स्वाद लिया, यो कहा जाता है। मैं वस्तुतः अपने ही परिणामोका भोक्ता होता हू, यह श्रद्धा अमृत है, इसको जो पीवेगा, जो इस श्रद्धाको रखेगा उसका जीवन सफल है। वह प्रभु अतरङ्गमे निराकुल रहता है। प्रभुकी भक्ति के एवजमे हमको यही बडा प्रसाद मिलता है, जो अन्तः निराकुल रह सकता है, यह मैं आत्मा अपने परिणामोका ही अनुभवने वाला हूं।

जीवपरिमाण—हू मैं कितना निश्चयसे ? तो मैं असख्यातप्रदेशी होनेके कारण लोक प्रमाण हू और यह लोकप्रमाणपना जीवमे शाश्वत रहता है। भले ही विस्तारमे लोकप्रकाण नही है, पर इसके अन्तःप्रदेशको निरखकर लोकप्रमाणता ही शाश्वत रहती है, और व्यवहार से जैसा शरीर पाया, जैसी अवगाहनाका परिणमन पाया, नामकर्मके द्वारा रचा हुआ छोटा और बडा शरीर पाया, उसमे रहता हुआ वह जीव देह मात्र है। इस समय ऐसा ही तो लग रहा है कि मैं देह प्रमाण हू, लेकिन एक ध्यान और दीजिए। देहप्रमाण होकर भी अपने उस शुद्ध चैतन्यस्वभावमे मग्न होता है तो उसे देहप्रमाणकी खबर नही रहती हैं। अनुभवन चलता है आत्मप्रदेशोमे ही, पर अनुभवनकी सीमाका विकल्प नही रहता। जैसे कि लौकिक सुख दु ख भोगनेके समय अपनी सीमा याद रहती है, मुझे बडा दु ख हो रहा है। कहाँ हो रहा है हाथमे कि पैरमे कि सिरमे ? इतना तक भेद डाल देते है, पर स्थान भेदके समय चैतन्यस्वभावके उपयोगके समय इसके उपयोगमे देहप्रमाणताका भी विकल्प नही है, केवल एक चित्स्वरूपका अनुभव है, कोई दूसरी बात ही नही है, ऐसे शुद्ध ध्यानके समय जो अद्वैत की स्थिति होती है उसी स्थितिको लक्ष्यमे लेकर कुछ लोगोने सर्वथा अद्वैत मान लिया है। मैं सर्वदा एक हू, एक ही मैं आत्मा हू, सर्वव्यापक हू, यो मान्यता हो गयी। स्वभावके उपयोग मे चूकि द्वैतका, दो का विकल्प नही रहता है, इस स्थितिको सर्वथाके रूपमे कुछ लोगोने मान लिया है। यह मैं आत्मा शरीर प्रमाण हू, फिर भी निश्चयसे लोकप्रमाण असख्यातप्रदेशी हू।

उपाधिबन्धन—भैया! जीवकी कथनी जब चले तब कही दूसरे जीवकी ही बात कही जा रही है, ऐसी दृष्टि न लायें। मेरी ही यह बात है, यो इसको अपने आपपर घटित करते हुए ही निरखना चाहिए। यह मैं आत्मा व्यवहारसे कर्मोंके साथ एकमेक चल रहा हू, बडा विचित्र बन्धन है कर्मोंका और जीवका। सोचनेमे यो आता है कि आत्मा तो रूप, रस, गध, स्पर्श रहित है, अमूर्त है, और ये कर्म मूर्तिक हैं। अमूर्तका मूर्तके साथ बन्धन कैसे हो गया ? इसमे

गाठ नही लग सकती, इसमे प्रतिघात नही हो सकता, फिर यह बन्धन कैसे हो गया ? आश्चर्य होता है, और बन्धन इतना तीव्र है कि उस बन्धनकी दृष्टिसे जब देखते है तो यो भी कह दिया जाता कि जीव और कर्मका एकत्व परिणमन हो गया। इतना कठोर बन्धन है।

उपाधिबन्धनमें अमूर्त जीवकी मूर्तता—जीवका बन्धन निमित्तनैमित्तिक भावमे शुरू होता है, और परवशता इतनी बढ़ जाती है कि यहाँ तक नौबत आ गयी है। यह जीव शरीर मे भी इतना बँधा हुआ है, एक क्षण भी शरीरसे अलग हटकर हम किसी जगह बैठना चाहे तो नही बैठ पाते है। कही जायें तो इस शरीरपिंडोलाको लिए-लिए जायेंगे। जब बहुत तेज गर्मी पडती है और प्याससे व्याकुल होते है, पीते जाते है पानी, गले तक भर गया, फिर भी प्यास लगी है। दो घूंट पानी भी नही जा सकता, बेचैन हो रहे हैं। अपना ही शरीर अपने को दुःखद मालूम पडने लगता है, पर इस शरीरसे पृथक् स्वरूपका चिन्तन भी जब महान सकटोको टाल देता है तो जो प्रभु उस शरीरसे सर्वदाके लिए पृथक् हो गये है, केवल ज्ञानपुञ्ज आनन्दघन अपने स्वरूपमे अवस्थित है, उनका तो नि सकट स्वरूप है। यहाँके सकटोको कभी-कभी टालनेका श्रम किया जाता है। ये सब व्यर्थकी बातें हैं। कोई मूलत. सकट टालनेका उद्योग बने। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्ररूप उपयोग बने तो इस प्रकार सकट टलेगे, फिर आगामी कालमे सकट आयें ही नही। इस प्रकारसे नि संकट अवस्था बने तो वह है वास्तविक नि.सकट स्थिति। यह मैं आत्मा व्यवहारसे कर्मोंके साथ एकमेक होनेके कारण मूर्त बन गया हू, फिर भी निश्चयसे देखा जाय तो रूप, रस, गंध, स्पर्शका मुझमे स्वभाव नही है, इस कारण मै मूर्त नही हू, अमूर्त हू।

अधिकार गाथाका दर्शन—जीवके सम्बन्धमे जीवकी इन विशेषतावोको निरखा जा रहा है। इस गाथामे जीवका स्वरूप बतलाया जा रहा है और साथ ही यह भी घोपित हो रहा है कि इस इस प्रकरणको लेकर आगे विस्तारसे वर्णन किया जायगा। यह जीव है, यह चेतयिता है, यह उपयोग सहित है, प्रभु है, कर्ता है, भोक्ता है, देहमात्र है, मूर्तिक है, कर्मसहित है। इन सभी प्रकरणोपर अलगसे कभी-कभी कथनमे वर्णन किया जायगा और इन सबको स्पष्ट किया जायगा। इस प्रकरणको सुनकर हमें अपने आपके सही स्वरूपका निर्णय रखना चाहिए।

जीवकी कर्मसयुक्तता—यह जीव कर्मसे संयुक्त है। यहाँ अनेक दृष्टियोसे इस कर्म सयुक्तताको देखनेपर जीवकी अनेक परिस्थितियाँ समझमें आती है। परमशुद्ध निश्चयनयसे तो यह जीव कर्मसयुक्त नही है। यह शुद्धनय केवल सहजस्वभावरूप अपनेको दिखाता है। शुद्ध निश्चयनयसे यह जीव अपने ज्ञान दर्शन आदिक गुणोकी जो शुद्ध क्रियाएँ है उन क्रियावो से सयुक्त है। क्रिया और कर्म दोनोंका एक ही अर्थ है। सिद्ध और अरहन्त प्रभुका

जो उन ज्ञानादिक गुणोकी परिणतियाँ हो रही है वे परिणतियाँ ही परमात्माके कर्म है। कर्मका अर्थ है जो किया जाय, जो हो जाय, जो परिणति बने। ऐसे शुद्धनिश्चयसे शुद्धचैतन्य परिणामात्मक कर्मोंसे संयुक्त है यह जीव। इसमे जीवकी उत्कृष्टता प्रसिद्ध होती है, अशुद्धता नही। अशुद्ध निश्चयनयसे यह जीव पुद्गल परिणामोंके अनुरूप, निमित्तभूत कर्मोदयके अनुरूप जो चैतन्यपरिणमन होता है, गुणोंकी परिणतियाँ होती है तदात्मक भावकर्मसे संयुक्त है, यो कर्मसंयुक्त है। व्यवहारनयसे यह जीव इन अशुद्ध चैतन्यपरिणामोंके अनुरूप जो पुद्गल कर्मका बन्धन हुआ है, जो जो भी स्थितियाँ हुई है उन पुद्गलपरिणामात्मक कर्मोंसे संयुक्त है। यह जीव इस प्रकार कर्मसंयुक्त है।

विशेषणोकी खण्डनमंडनात्मकता—जीवकी विशेष व्याख्यामे ९ विशेषण दिये हैं। इन ९ विशेषणोंसे जीवका ज्ञान तो कराया गया है, साथ ही साथ जो जीवके सम्बन्धमे किसी एकान्त स्थानका हठ करते हैं उनके एकान्तका खण्डन भी हो जाता है। प्रत्येक शब्द खण्डन-मडनात्मक होता है। शब्दका क्या अर्थ है? जो है वह तो मंडन हुआ, उसके अलावा और कोई दूसरा अर्थ नही है यह खण्डन हुआ। प्रत्येक शब्द खण्डनमण्डन स्वरूपको लिए हुए है। हम प्रयोजनवश खण्डनपर दृष्टि नही डालते है, पर जो कहा गया है वही तो कहा गया, अन्य तो नही। हम मदिर जाते है, मडन हो गया मदिर जानेका। हम और किसी अन्य जगह नही जाते, यह भी तो साथ साथ उसमे भरा हुआ है।

नास्तिकताका परिहार व अचित्स्वभावका परिहार—जो जीवके ये विशेषण कहे गये है उनसे क्या मडित होता है और क्या निराकृत होता है? इसे सुनिये। सर्वप्रथम विशेषण तो जीवकी सिद्धिके लिए है। जीव है, अनेक लोग तो ऐसे है चारवाक आदिक कि जीवकी सत्ता ही नही मानते। जीव है इतना कहनेमे अपने आप यह सिद्ध हो गया कि जीवका अभाव नही है। इससे नास्तिकवादका निराकरण हो जाता है। इसके बाद कहा है कि चेतन है यह जीव। अनादिकालसे यह जीव चैतन्यस्वरूपको लिए हुए है। कुछ लोग जीवको मानते भी है, पर उसे चैतन्यरूपसे नही मानते। ये अनेकके संयोग होनेसे जीवकी यह परिस्थिति बन गयी है। एक ऐसी बिजली पैदा हो गयी कि यह चलता है, फिरता है, खाता है, इसमे चैतन्यका काम नही है। चेतना क्या अलगसे है? ऐसा भी मानने वाले कुछ लोग है।

उपयोगस्वरूपता—तीसरे विशेषणमे यह प्रकाश दिया है कि यह आत्मा अनादिकाल से चैतन्यस्वरूपको लिए हुए है, यह तो ठीक है अथवा सामान्य चेतनाका तो वर्णन प्राय सभी मत करते है। उन मतोमे भी साधारण रूपसे पाया जाता है। उसके बाद विशेषण दिया है, यह उपयोगसे विशेषित है। यह विशेषण आत्माके जानन-देखनके उपभोगका मडन करता है और साथ ही सर्वज्ञकी सिद्धि भी करता है। मोक्षका और मोक्षके साधनका भी

का यह जीव कर्ता है। अपनी जितनी भी यह सृष्टियाँ करेगा उसका यह स्वय ही परिणमयिता है। अन्य पदार्थ केवल निमित्तमात्र है। इस कर्तृत्वके विशेषणसे मडन यह किया कि शुद्ध अथवा अशुद्ध जो भी परिणमन होता है उसका यही जीव कर्ता है। साथ ही जो सिद्धान्त जीव को अकर्ता कहता है और उस अकर्तृत्वका एकान्त हठ करता है उसका निराकरण होता है। कुछ बधु ऐसा मानते है कि यह जीव अकर्ता है, पुण्य पाप शुभ अशुभ यह कुछ नही करता। यह तो सदाकाल शुद्ध रहता है। फिर पूछा जाय तो यह सुख दुःखका अनुभवी कैसे होता है, करता तो कुछ नही है, तो उनका उत्तर यह है कि बुद्धिके मार्फत जो कि प्रकृत्तिका विकार है जीवकी चीज नही है। बुद्धिमे आये हुए अर्थको यह भ्रमवश चेतने लगता है। वहुत बातें करनेके बाद तो बात टिक नही सकती इस सिद्धान्तकी। भ्रमवश चेतने लगना तो यह भ्रम किसमे जगा ? प्रकृतिमे जगा। तो प्रकृति ही कुछ अनुभव करे। फिर यह चेतन किसे अनुभव करता है, यह सिद्धान्त उन्हे बताया जा रहा है जो जीवको अकर्ता तो मानते है, लेकिन भोक्ता साथ-साथ मानते हैं। अकर्ता और अभोक्ता दोनो माने तो एक नयसे यह बात उनकी घटित हो जाय, पर अकर्ता तो माना, अभोक्ता नही माना। भोगने वाला यह जीव है, किन्तु कर्ता नही, उस मतका इसमे निराकरण होता है।

स्वय भोक्तृत्व—यह जीव भोक्ता है, ऐसा कहनेसे यह सिद्ध हुआ कि अपनी करनी अपनी भरनी। ऐसा स्वच्छन्द मत हो कि जो मनमे आये सो करो। अरे जो करोगे उसे भोगोगे। इस विशेषणमे उस मतव्यका खडन होता है जो मतव्य जीवको भोक्ता नही मानते। कर्ता तो मान लेते है और भोक्ता नही मानते। जैसे क्षणिकवादमे इस जीवने पाप किया, अब वह जीव पाप करके नष्ट हो गया। क्षणिक सिद्धान्त है। नया जीव उत्पन्न हुआ। तो जिसने किया उसने तो नही भोगा। भोगने वाला कोई दूसरा बन गया, किन्तु ऐसा तो नही है, जो कर्ता है वही भोक्ता होता है।

जीवकी देहप्रमाणता—यह जीव देहप्रमाण है। कुछ लोग मानते हैं कि यह जीव बट के बीजकी तरह अत्यन्त छोटा है और यह सारे देहमे चक्कर लगाता रहता है। इससे मालूम पडता है कि मैं देह बराबर हू। कुछ लोग यह मानते है कि यह आत्मा तो एक समस्त लोक मे फैला हुआ व्यापक है। ये दोनो परस्परमे विपरीत सिद्धान्त हैं। किसीको अणुमात्र मान लेना और किसीको सर्वव्यापक मान लेना—इन दोनो बातोका निराकरण अथवा मडन इसमे हुआ है। अणुमात्रका मडन तो नही होता, पर कदाचित् यह जीव अत्यन्त छोटे शरीरमे पहुच जाय तो वहाँ उस देहप्रमाण रहता है। यह जीव असख्यातप्रदेशी है। इसमे वह योग्यता है, शक्ति है कि किसी समय एक क्षण जैसे कि लोकपूरण समुद्घातमे होता है, आत्माका एक-एक प्रदेशपर विरल होकर विस्तृत हो जाता है।

जीवकी अमूर्तता—यह जीव अमूर्त है। कुछ लोग इस जीवको अमूर्त नही मानते। नैयायिक, मीमांसक, कपिल आदि मन्तव्यमे जीवका वर्णन करके भी जीवकी ऐसी अमूर्तता जो देहसे अत्यन्त विविक्त निर्मल आकाशवत् निर्लेप सहज स्वरूप समर्थ एक द्रव्य है, इस प्रकारकी स्पष्टता नही आती। अमूर्त कहनेसे यह सिद्ध किया गया है कि जीव शरीरके बन्धनमे रहकर भी नाना परिणतियोंसे विचित्र परिणाम करके भी यह सदैव रूप, रस, गध, स्पर्श रहित रहता है।

निष्कर्मता और कर्मसंयुक्तता—यह जीव कर्मसयुक्त है। द्रव्यकर्म और भावकर्म इसके साथ लगे हुए है। ऐसा न जानना कि यह जीव अनादिकालसे ही कर्मरहित है, इसपर कभी कर्मोंका लेप ही नही है। देखिये–आखिर ये सभी सिद्धान्त जिन एकान्तोका निराकरण किया है वे सभी बातें जीवमे पायी जाती है और अपनी-अपनी दृष्टिसे वे सब बातें सच है। यह जीव सदा मुक्त भी है। हम आप अनादिकालसे मुक्त है। कोई एक अलगसे प्रभुकी बात नही कही जा रही है। जरा स्वभाव तो देखो—क्या जीवके स्वभावमे कर्मोंका लेप रहना पडा हुआ है। जैसे जलके ऊपर मिट्टीका तेल गिर जाय तो वह मिट्टीका तेल जलमे सब ओर फैल गया है, पर जलका स्वभाव क्या मिट्टीके तेलको ग्रहण कर लेना है ? प्रथक् रहना है। और देखते ही है कि तेल तैरता रहता है। यहाँका वहाँ डोलता रहता है, जल उसे आत्मसात नही करता। तो भले ही लेप है, पर जलका स्वभाव तेलसे अलग बना रहनेका है। ऐसे ही यह निरखो कि भले ही इस जीवमे रागद्वेषका विभाव आ गया, कर्म और शरीरका बन्धन हो गया, इतने सब उपद्रव होनेपर भी यह जीव स्वभावसे अपने स्वरूपमात्र है। कुछ भी हो जाय, स्वभाव नही बदलता। उस स्वभावदृष्टिसे देखनेपर यह जीव सदाशिव है सदा मुक्त है।

जीवस्वरूपकी दृष्टि—इस गाथाने हमको जीवके मडनकी दृष्टि दी व जो बात जीवमे नही है अथवा एकान्त है उसके निराकरणकी दृष्टि दी, और इस प्रकरणमे आगे जो वर्णन चलेगा वह वर्णन इन ९ बातोको पुष्ट करता हुआ चलेगा। इस प्रकरणमे इतने प्रकरण और गर्भित है। यो भूमिकाके बाद जो ग्रन्थमें प्रायोजनिक स्वरूप कहा जा रहा है उसमें यह प्रकरण गाथाकी तरह माना जाता है। इससे सीधा हम यह समझें कि यद्यपि कर्मउपाधिके कारण मिथ्यात्व रागादिक विभावरूप परिणमन हो रहा है लेकिन इनका त्याग कर स्वभाव दृष्टि करके उनको श्रद्धासे हटाकर ये मैं नही हू ऐसा मानकर मैं तो एक निरुपाधि केवलज्ञान दर्शन आदिक गुणोसे तन्मय शुद्ध जीवास्तिकाय हू, ऐसी भावना करना चाहिए।

धर्मीका लक्ष्य—जब तक धर्मीका सद्भाव हमारे उपयोगमे न होगा तब तक हम उसमे धर्म सिद्धि नही कर सकते। कैसा इस जीवके वर्णनमें आदान-प्रदान है, पर इसको

किस शब्दसे कहा जावे ? इसको बताने वाला कोई शब्द नही है । हम जो शब्द बोलेंगे वह धर्म बन जाता है । धर्मीको बताते वाला तो केवल अनुभव है, जो शब्दमे कह दिया वह उसका एक अश होगा, धर्म होगा । हाँ उस एक धर्मको हम इस रूपमे ग्रहण करते है कि हम धर्मी का ज्ञान कर लें ।

उपेक्षासंयमसे स्वरूपलाभ—अपने आपका ज्ञान करना हो तो बहुत सीधा तरीका यह है कि कमसे कम इस ज्ञानका तो उपयोग रखे ही कि जगतमे जितने भी समागम मिले हैं—धन वैभव, घर, परिजन, यश, ये सब असार और भिन्न चीजें हैं, इतनी बात जाने बिना तो जीव अनुभव करनेका पात्र ही कोई नही होता । परके सम्बधमे यथार्थ हमारा जैसा ज्ञान हुआ, दृढतामे इस ही प्रकार जानकर विश्रामसे बैठ जायें । मुझे इन भिन्न असार परपदार्थोंको ख्यालमे नही लेना है । क्या करना है ? हमे कुछ पता नही । हम तो इतना जानते है कि जो भिन्न चीजें है, असार है, जिनसे कुछ सम्बध नही है उनको हम अपने ख्यालमे न लें । पर वस्तुवोको अपने ध्यानमे न रक्खें, उन्हे अपने ज्ञानमे स्थान न दें, ऐसा शुद्ध विश्राम करें तो यह जीव स्वय सहज ही अपने आपके स्वरूपका परिचय पा लेगा, प्रतिभास प्रकाश और शुद्ध विशिष्ट आनन्द अनुभव कर लेगा, और तब स्पष्ट समझ जायगा कि ऐसा ज्ञानानन्दमात्र मैं आत्मा हू ।

कम्मफलविप्पमुक्को उड्ढ लोगस्स अतमधिगता ।
सो सव्वणाणदरिसी लहदि सुहमणिदियमणत ।।२८।।

सिद्धत्वकी व्यक्ति—इस गाथामे मुक्त अवस्थामे अवस्थित आत्माका जो कैवल्यस्वरूप है, निरुपाधि स्वरूप है उसका वर्णन किया गया है । कर्मफलोसे मुक्त हुआ यह जीव ऊपर लोक के अन्तमे प्राप्त होकर अतीन्द्रिय अनन्त सुखको प्राप्त होता है । यह जीव सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अरहत अवस्थामे हो ही गया था और वही सर्वज्ञता, सर्वदशिता सिद्ध अवस्थामे भी है और सदाके लिए रहेगा ।

आत्मबन्धन—ससार अवस्थामे यह आत्मा बन्धनमे है । बन्धन हमेशा दूसरी चीजके सम्बधसे होता है । कोई भी पदार्थ खुद ही एक अकेला है, उसमे बन्धन काहेका ? दूसरे पदार्थ का समन्वय हो तभी बधन बन सकता है । इस आत्माके साथ निश्चयसे तो बधन रागद्वेष आदिक भावोका है । ये रागद्वेप आदिक भाव परभाव है । धीरे-धीरे परसे विविक्त हो होकर इस विविक्ततामे ठहर जाइये । ये परभाव जिस परका निमित्त पाकर हुए है मेरी चीज है क्या ? अथवा और बढते जाइंगे । जो जिसकी चीज है वह उस द्रव्यरूप है । यो रागद्वेपादिक भाव परद्रव्यरूप है । देखिये—जिसको अपने लक्ष्यकी कला मिल गयी है वह इस प्रकार समर्थ होकर प्रभु होकर लीला करता है, चिन्तन करता है । जिस चाहे नयपरिज्ञानके रास्तेसे पदार्थ

के स्वरूपका चिन्तन करे, वह अपने लक्ष्यकी सिद्धि करता है।

रागद्वेषकी पररूपता—एक नयसे रागद्वेष आदिक भाव आत्माके है, आत्माकी परिणति है, आत्मद्रव्यका ही वह एक पर्यायरूप अश है, किन्तु इस आत्माको चैतन्यमात्र ही निरखना है ऐसी धारणा करके जब हम अन्य कुतत्त्वोको विभावोको निरखते है तो इन दशावोंको निरखते जाइये। ये रागादिक भाव परभाव है, परके भाव है, पर ही है, परद्रव्य है। आशय मूलमे असत् बने तो वर्णनमे दोष आता है। आशय मूलमे असद् नही है तो वर्णनमे दोष नही आता, बल्कि वह गुण उत्पन्न करता है।

विशुद्ध आशयकी प्रवृत्तिमे निर्दोषता—बडे प्रेमकी रिश्तेदारीमे ये रिश्तेदार जब मिलते है साले-बहनोई तो कोई-कोई गाली देकर ही मिलते है, जय जिनेन्द्र अथवा राम-राम कुछ नही। जहाँसे दिखा वहाँसे कोई न कोई गाली बककर मिलते है। आशय वहाँ किसीका विरुद्ध नही है, कषाययुक्त नही है तो ऐसा वातावरण भी, ऐसी गाली-गलौज भी वहाँ दोष उत्पन्न नही करना अर्थात् विवाद उत्पन्न नही करता। ज्ञानी जीवका लक्ष्य विशुद्ध होना चाहिए कि मैं एक चैतन्यस्वरूपमात्र हू। इस दृढताके होनेपर इस वैभवको परद्रव्य रूप कह सकते है। कोई कहे कि वाह! यह परद्रव्य कहाँ है, यह तो आत्माकी परिणति है। अरे क्यो समझाते हो, यहाँ मूढता नही है, हम भी जानते है, पर इस समय हम जरा उनका इलाज कर रहे है, रागद्वेषादिकका। उनकी चिकित्सामे इस समय हमने यह पद्धति अपनाई है। चिकित्सा तो अनेक तरहकी होती है, मलहम-पट्टी रखकर करना अथवा औजारसे उसका आपरेशन आदि करके करना। हमे अपनी रक्षाके लिए जब जिस प्रकारकी चिकित्सा करनेका हमारा मूड हो हम वह चिकित्सा करते है। हाँ, मूलमे अज्ञान बस जाय, तो दोप है।

परसम्पर्कमे बन्धन—यह आत्मा बन्धनमे पडा हुआ है। बन्धन किसी न किसी परवस्तुके सम्बधमे हुआ करता है। अब आगे और चलिये। हमारे साथ बन्धन है द्रव्यकर्मका। यह द्रव्यकर्म तो प्रकट परद्रव्यरूप है। कार्माणवर्गणा जातिके पुद्गल स्कधोका यह जाल है। यह आत्मा बन्धनमे पड़ा है, इसका शरीरसे भी बन्धन है, यह शरीर भी परद्रव्य है। परद्रव्यके सम्बधको ही बन्धन कहते है। कोई केवल अकेला हो, उसमे बन्धन नही होता है, कोई पुरुप अकेला है, अविवाहित है (लौकिक दृष्टिसे कह रहे है) उसके बन्धन नही है। सगाई हुई कि बन्धन आ गया। विवाह हुआ कि समझो पूरा बन्धन हो गया। अब आगे बच्चे बढ़े, एक बच्चेमे तो कुछ बात नही, दो बच्चे हुए तो विशेष बन्धन हो गया। वे कभी न्यारे तो होगे ही। उनको अलग-अलग हवेली चाहिए, अलग-अलग सम्पत्ति चाहिए। जितना सम्पर्क बढेगा उतना ही बन्धन बढता है। यह ससारी जीव कर्मरजसे बँधा हुआ है। सीधा सुगम देखनेकी बात बन्धनमे कर्मरज लेना।

जीवका ऊर्ध्वगमन—जिस कालमे यह जीव इस बन्धनसे सर्वप्रकारसे छूट जाता है। न तो द्रव्यकर्मका बन्धन रहता और न भावकर्मका बन्धन, उस क्षणमे यह जीव कहाँ जाता है, कहाँ रहता है, किस प्रकार रहता है ? इसका वर्णन इस गाथामे किया है। जब यह जीव द्रव्यकर्म और रागादिक भावकर्मसे सर्व प्रकार मुक्त हो जाता है तो चूंकि इसमे ऊर्ध्वगमन स्वभाव है, अत. लोकके अन्तको प्राप्त होकर वहाँ अवस्थित रहता है। लोक तक ही छहो द्रव्योका निवास है, उससे आगे नही। इसका निमित्त कारण है धर्मास्तिकायका अभाव। यह लोकके अन्तमे अवस्थित हुआ किस प्रकार रहता है, क्या करता है ? इसका उत्तर इस ही गाथाकी उत्तर पक्तिमे दिया गया है।

पारमार्थिक सुखके अधिकारी—कोई लोग ऐसा भी कह बैठते हैं कही या अज्ञानवश कहते हो या अपनी मौजके अहकारवश यो कह दिया करते हैं कि मोक्षमे क्या सुख होगा, वहाँ अकेले पडे हुए है, कुछ काम भी करनेको नही है, वहाँ जी कैसे लगता होगा ? कोई उसका वहाँ साथी भी नही है, किसीसे बातचीत किये बिना कैसे वहाँ मन लगता होगा ? अरे जिसको सुख समझा जा रहा है वह सब दु खस्वरूप है। जिस कालमे यहाँ सुख समझा जा रहा है उस कालमे भी क्षोभ बना हुआ है। और उत्तर कालमे तो इस रौद्रध्यानके कारण उसका ढांचा ही बदल जायगा। सुखको दु ख माने वह विरला ज्ञानी ही है। खूब ससारकी मौज है, समागम ठीक है, पुत्र आदिक आज्ञाकारी है, आजीविकाका साधन अच्छा है, नगरके १० लोग पूछते है, इन बातोंसे सतुष्ट होकर मद कषायोकी मुद्रा दिखती है। सब कुछ कर ले, पर अत-रङ्गमे रौद्रध्यान बसा हुआ है तो मरणके बाद उसका ढाचा ही बदल जायगा। क्या बनेगा, कैसी गतिमे जायगा, उस रूप ढाचा हो जायगा। सुखको दु ख मान ले तो शातिका वास्तविक पथ दिख सकेगा। जो ससारके सुखको दुःख नही मान सकता, सुख मानता रहा, उसकी अशान्ति मिटनेका कोई उपाय ही नही और ऐसे रौद्रध्यानकी अपेक्षा किसी प्रकारके दु खमे ठहरा हुआ कह लो, आर्तध्यानी पुरुष अपेक्षाकृत श्रेष्ठ है, यदि कुछ भी मूलमे ज्ञानदृष्टिकी योग्यता है तो। और इसी बातको सीधे सुगम शब्दोमें लोग यो कह देते कि "दु खमे सुमिरन सब करें, सुखमे करे न कोय। जो सुखमे सुमिरन करें तो दु ख काहेका होय॥"

धर्मके नामपर मनकी मौज—मेरा आत्मस्वरूप केवल चिन्मात्र प्रकाशमात्र आनदघन उत्कृष्टस्वरूप वाला है। उसकी रुचिके लिए, दृष्टिके लिए, उससे मिलनेके लिए उत्सुकता न जगना, तडफ उत्पन्न न होना—ये सब महा ऐब इस सासारिक सुखके कारण होते है। जो सुख मे मस्त है उसे आत्मस्वरूपकी कहाँ खबर है ? अज्ञानी जीवोंके आत्मस्वरूपकी बात करना और धर्मकी बात करना, यह भी साँसारिक सुख लूटनेकी विधि बना ली है। जैसे भोजन करनेमे बडा मौज आता है, ऐसे ही चार जनोके बीच कुछ धर्मकी बातें करनेमें एक मौज आता है।

यह मनका विषय है ना। रसनाका विषय रसनाने किया और मनका विषय लोगोमे अपना भलापन जंचाना यो धर्मकी बाते कर-करके किया। वह उत्सुकता धर्मके प्रति तब जग सकती है जब श्रद्धामे यह बात बैठ जाय कि ये ससारके समग्र सुख दु खरूप ही है, ऐसी बात दिखे तब धर्ममे परमार्थ पद्धतिसे रुचि जग सकती है। अब सोच लो अपनी-अपनी बात कि हम अपनी वर्तमान परिस्थितिके बारेमे, सुख साधनके समागमके बारेमें भीतरसे ये सब दुःख ही है कभी ऐसा ख्याल करते है क्या ?

शान्तिकी पद्धति—ऐसा न सोचना कि भैया! हम तो आये है कोई धर्मकी बात सुनने और यहाँ मिले मिलाये आनन्द पर भी पानी फेरा जा रहा है। जो सुख मिला है उसके प्रति भी दु.खदायी दृष्टि दिलाकर हमारा तो जीवन ही किरकिरा किया जा रहा है। अरे जब तक इस सुखसे विलक्षरण शुद्ध स्वाधीन आत्मीय आनन्दका लाभ नही होता, उसकी झलक नही होती तब तक ही ऐसा लगेगा कि यह सब सुख है, हम मौजमे है। देखिये शान्ति तो ज्ञानकी दिशापर निर्भर है, लौकिक वैभवपर निर्भर नही है। लौकिक वैभव होकर भी यदि ज्ञान शुद्ध बना हुआ है, बुद्धि स्वच्छ बनी हुई है तो वहाँ भी शान्ति मिल सकती है। वह शान्ति सद्बुद्धिका प्रताप है, न कि सम्पत्तिका प्रताप। किसीके सम्पदा न हो, कम हो और बुद्धिकी स्वच्छता ठीक रही आये तो उसको शान्तिकी पात्रता है। यह प्रभु मोक्ष अवस्थामे केवलज्ञान, केवल दर्शनस्वरूपमे रह रहकर निरन्तर सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता रूप रह रहकर अतीन्द्रिक अनन्त सुखका अनुभव करते है।

मुक्तता और अमुक्तता—ये सिद्ध प्रभु मुक्त जीव है कि अमुक्त जीव ? मुक्त जीव भी है, अमुक्त जीव भी है। कर्मोसे छूट गये इसलिए मुक्त है, किन्तु अपने स्वरूपसे नही छूटे अथवा इतना ही नही, अपने स्वरूपके परमविकासमे तन्मय हो गये ऐसे अमुक्त है। अच्छा आप लोग भी मुक्त जीव है कि अमुक्त जीव ? आप लोग भी मुक्त भी है अमुक्त भी है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, शुद्धअवस्था इनसे तो आप मुक्त है और रागद्वेषमोह इनसे अमुक्त है। ये सिद्ध प्रभु कर्म कलकोसे मुक्त होकर और अपने स्वरूपमे उत्कृष्ट विकसित होकर अतीन्द्रिय अनन्त सुखका अनुभव करते है।

मुक्त जीवमे जीवत्व, चेतयितृत्व, उपयोगित्व, प्रभुत्व व कर्तृत्व—इससे पहिली गाथा मे जीवके विशेषण बताये गये थे। उन विशेषणोको सिद्धमे भी घटा लीजिए घट जायगा। इस मुक्त जीवके जीवत्व है। जीवका जो भावप्राण है ज्ञानदर्शन उस भावप्राणका धारण होनेसे इन भावप्राणोसे प्रति समय यह जीता रहता है, सद्भाव रहा करता है, यही मुक्तका जीवत्व है। दूसरा विशेषण था जीव चेतन है, इसमें चेतयितृत्व है। तो चेतणिलापना तो सिद्ध प्रभु मे स्पष्ट है। शक्तिसे चित्स्वरूप, व्यक्तिसे चित्स्वरूप शाश्वत शुद्ध चैतन्यमात्र प्रकट यह

मुक्त प्रभु है। तीसरा विशेषण था—उपयोगविशेषित है। चैतन्यस्वभावका शुद्धपरिणमन केवलज्ञान और केवलदर्शनके रूपमे प्रकट होता है, ऐसे उत्कृष्ट उपयोगसे वह युक्त है।

चौथा विशेषण था कि यह जीव प्रभु है। समस्त अधिकार शक्तिकी रचनाका जो स्वामी हो उसका ही तो नाम प्रभु है। ये सभी विशेषण ससारी जीवोमे भी घटित होते है, सिद्धमे भी घटित होते है, पद्धतिका भेद है। सिद्ध भगवान अब निरन्तर सदाकाल अपने आपमे शुद्ध ज्ञानरूप शुद्ध आनन्दरूप परिणमते रहेगे, ऐसी अधिकारशक्ति उनके प्राप्त हुई है। समस्त अधिकार शक्ति की रचनामें जो युक्त है उन्हे ही तो प्रभु कहते है। यह मुक्त जीव प्रभु है। इसमे कर्तृत्व भी है। कर्तृत्व नाम है अपने असाधारण स्वरूप रचना करते रहना। साधारण रूपमे कर्तृत्वका प्रश्न ही नही है, अनादि अनन्त एक शक्ति मात्र है। उस शक्तिका असाधारण स्वरूप प्रति समय कुछ न कुछ रहा करता है। कोई व्यक्ति हुए बिना शक्ति क्या चीज है? जितनी भी शक्तियाँ है, उनकी किसी न किसी रूपमे व्यक्ति रहती है। चाहे वह व्यक्ति समझमे आये अथवा न आये, यह कर्तृत्व है। यह सिद्ध प्रभु अपने इस असाधारण रूपसे केवलज्ञान रूपसे, दर्शन रूपसे शक्ति और आनन्दरूपसे अपने आपका रचयिता रहना इसका ही नाम कर्तृत्व है और सिद्ध प्रभुमे ऐसा कर्तृत्व सदैव रहता है, रहेगा।

मुक्तजीवमे भोक्तृत्व व देहमात्रत्व—इसके बादका विशेषण था जीव भोक्ता है, यह सिद्ध प्रभु भी भोक्ता हैं, ये भी भोगते रहते हैं। अपने स्वरूपभूत, स्वतत्रतारूप, शुद्ध आनन्द की उपलब्धिरूप अपनी परिणतिको ये सदाकाल भोगते रहते है। भोगना, अनुभवना, परिणमना, वर्तना यो धीरे-धीरे विशेष अर्थसे सामान्य अर्थकी ओर पर्यायवाची शब्दोके सहारे चलते जाइये। तो भोगना क्या हुआ? वर्तनाका नाम भोगना है। यह सिद्ध प्रभु अनन्त चतुष्टय सम्पन्न बर्तते रहते है। इसके बाद विशेषण दिया था—जीव देहमात्र है। सिद्ध होनेसे पहिले जो अवस्था प्राप्त थी, जो कि अतीत हो गया, विलीन हो गया उस अतीत शरीरके परिमाणमे अब भी उनका अवगाह है। यह सिद्ध प्रभु चरम शरीर प्रमाण अपनी अवगाहनाको लिए हुए हैं। काहेकी अवगाहना? ज्ञानादिकस्वरूपकी अवगाहना। यो यह देहमात्र ही है। देह तो नही रहा, पर जैसे सुनार लोग गहने बनाते हैं, मोम गल जाय तो अब कोई मैटर तो नहीं रहा, पर तदाकार एक अवगाह हो गया, ऐसे ही शरीर तो अब नही है सिद्ध प्रभुके, किन्तु जिस शरीरको तजकर वे मुक्त हुए है उस शरीरप्रमाण उनके प्रदेशोमे उनका स्वरूप ज्ञान, दर्शन शक्ति आनन्द आदि व उनकी व्यक्तियाँ रहा करती हैं। यो सिद्ध प्रभु देहमात्र है।

मुक्त जीवमे अमूर्तता व निष्कर्मता—ये मूर्त किसी भी प्रकार नही हैं, इसलिए अमूर्त विशेषणके प्रसगमे उनमें अमूर्त तत्त्व ही निरखना। उपाधिका सम्बध सदाकालके लिए हट गया है, इसलिए आत्यतिक अमूर्तपना उनमे प्रकट है। अतिम विशेषण था जीवकर्मसंयुक्त है।

तो सीधे-सीधे तो यो निरखना कि उनमे किसी प्रकारके कर्मोका सयोग नही है, न द्रव्यकर्म का सम्बध है और न भावकर्मका सम्बध है। द्रव्यकर्म तो कहलाता है पुद्गल स्कध और भावकर्म कहलाता है इस चेतनका सयोग। दोनो प्रकारके कर्म नही है, अतः सिद्धप्रभु कर्म-सयुक्त नही है, और मानना ही है कर्मसयुक्त तो कर्मका अर्थ है क्रियापरिणति। सिद्धप्रभुकी भी जो परिणति हो रही है वही उनके कर्म है, वही उनका धर्म है। उस कर्मसे वे सदा सत् रहेगे अनतकाल तक। उनके कर्म है शुद्ध ज्ञानरूप परिणमन, शुद्ध आनन्दरूप परिणमन। इस प्रकारकी क्रियासे वे सदैव सयुक्त रहेगे। यो सिद्धप्रभु कैसे है, कहाँ रहते है, क्या करते है, इन तीन बातोका समाधान इस गाथा द्वारा किया है।

संसारी जीवकी कर्मसंयुक्तता—यह ससारी जीव कर्मसयुक्त है। कर्म दो प्रकारके है—एक पुद्गल स्कधरूप द्रव्यकर्म और एक चैतन्यके विवर्तरूप भावकर्म। यह ससारी जीव द्रव्य-कर्मोंसे तो बद्ध है और भावकर्मसे तादात्व कालमे तन्मय है। भावकर्म चैतन्यके विवर्त है। यह चैतन्यशक्ति अनादिकालसे ज्ञानावरणादिक कर्मोंके सम्पर्कमे अवरुद्ध हो रही है अर्थात् इसका प्रचार घुट गया है। जैसे कोई अन्दरमे तो जान रख रहा है, पर बाहर उसका विकास नही हो पाता, ऐसे ही यह चैतन्यशक्ति अन्तरङ्गमे तो सब कुछ वह है अनन्त महिमा वाली, किन्तु उसका विकास नही हो पाता, इस कारण यह शक्ति घुट रही है, और इस प्रकार यह चैतन्यशक्ति ज्ञेय समस्त पदार्थोंके एक देशमे ही क्रमसे व्यापार कर रही है और इस प्रकारके व्यापारमे जो कुछ गुजर रहा है वही चैतन्यका विवर्त है। इस तरगने ही दो बाधाएँ डाल दी हैं ज्ञानविकासमे। एक तो सबको नही जान सकता और एक क्रमसे जानता है। जितनेको भी यह जान सकता है उतनेको भी एक साथ जान ले, ऐसा भी नही है। इस प्रकार यह जीव ससारमे भावकर्मसे सयुक्त है, किन्तु सिद्ध प्रभु उन कर्मोंसे रहित है।

सिद्ध प्रभुकी निरुपाधिता—सिद्ध प्रभु कर्मोंसे कैसे रहित हो गये ? यह तो मानना ही पडेगा कि कोई पदार्थ अपने स्वभावसे विपरीत परिणमे तो उसमे किसी न किसी परद्रव्य का सम्पर्क निमित्त है। यद्यपि प्रत्येक पदार्थ अपनी ही शक्ति और परिणमनसे परिणमते है, निमित्तभूत किसी पदार्थकी रचमात्र भी शक्तिको लेकर, परिणमनको लेकर, प्रभावको लेकर नही परिणमते हैं। प्रभाव भी शक्तिके विकासके अलावा और कुछ चीज नही। यह कहना कि उसका प्रभाव इनपर अच्छा पडा, यह उपचार कथन है। बात वहाँ यह थी कि ये लोग स्वय उसके सम्बधमे कुछ विचार बनाकर अपने प्रभावसे प्रभावित होते है, उसका प्रभाव इनपर नही पडा है। प्रभाव भी उपादानका है। प्रत्येक पदार्थ अपने ही परिणमनसे परिणमते हैं, किन्तु विभावरूप परिणमनकी योग्यता रखने वाले पदार्थ किसी परपदार्थको निमित्त करके ही अपने प्रभावसे अपने परिणमनसे परिणमा करते है। फिर भी यह तो मानना ही होगा कि

विपरीत परिणमन किसी परपदार्थका निमित्त हुए बिना होता नही है। यह बात अवश्य है कि जो अयोग्य उपादान वाला है अर्थात् अशुद्ध परिणमनकी योग्यता रखता है वह पदार्थ, चूकि निमित्त तो सब जगह भरे ही है, सो निमित्त मिलता है और वह विरुद्ध परिणमता है, किन्तु विरुद्ध परिणमनरूप प्रभाव स्वय अपने आप केवल ही रहकर परसम्पर्क बिना होता नही है। उपाधि बिना विभावपरिणमन हो जाय, ऐसा एक भी उदाहरण न मिलेगा।

कर्मप्रक्षयसे अभूतपूर्वविकास—जिस समय ज्ञानावरणादिक कर्मोका सम्पर्क दूर होता है, ज्ञानावरणादिकके सम्पर्कके दूर होनेमे निमित्त आत्माका शुद्ध परिणाम है, जब ज्ञानावरणादिक कर्मोका सम्बन्ध दूर होता है तो ज्ञेयभूत जो समस्त विश्व है उस सबके सबमे एक साथ व्यापार करने लगती है यह चेतनाशक्ति, और जब सारे विश्वको एक साथ जान लिया तीन लोक तीनकालवर्ती समस्त पदार्थोको एक साथ जान लिया तो अगले समयमे क्या जानेगे ? वही का वही। जैसे सब जान लिया गया तो अगले समयमे क्या जानेंगे ? सब। वहाँ इतना भी विकल्प नही होता कि यह पदार्थ, यह पर्याय हुई थी, है, होगी और अगले समयमे जो होगा अब वह है और जो है माना वह था, हो गया। इस प्रकार कालकृत भी विकल्प उनमे नही होता है और इसी कारण यह कहा गया है कि वे समस्त पदार्थ उनके ज्ञानमे वर्तमान ही है, कथञ्चित् इसी कारण वे कूटस्थ है।

सिद्ध प्रभुकी अविवर्तता—यद्यपि प्रतिसमयमे ज्ञानशक्तिका नया-नया विकास हो रहा है, परिणमन चल रहा है, किन्तु उसके विषयकी ओरसे देखा जाय तो वही वही ज्ञात है, इस कारण वहाँ परिणति भिन्न नही मालूम होती। इसी कारण कथचित् कूटस्थपनेको प्राप्त हो गया उनका वह चेतन यह दृष्टिमे आता है। अब इस परिणमनको विवर्त नही कहा। यद्यपि प्रतिसमय परिणमन हो रहा है लेकिन विषयातरको प्राप्त हो तो विवर्त नाम है वह विषयान्तरको प्राप्त होता ही नही, भला सब जान लिया। अब सबसे अतिरिक्त कोई विषय हो और फिर उसे जाने तो वहाँ विवर्तपना आयगा। अथवा आन्तरिक दृष्टिसे निरखो तो उनका विषय अपने आपके उपयोगमे अपने आपका ही प्रकाश पडा हुआ है। वह कभी अन्य ज्ञेयरूप परद्रव्यको प्राप्त नही होता अर्थात् परपरिणति उनमें नही हुआ करती है। परपदार्थोका निमित्त पाकर रागद्वेष की तरग उनमे नही होती, इस कारण उनके परिणमनको विवर्त नही कहा गया है। जो विवर्त है वह भावकर्म है। सिद्धप्रभु भावकर्मसे भी रहित है।

मोहमे सुगममार्गकी विषमता—देखो निर्दोषताके इस चमत्कारसे प्रभुमे सर्वज्ञता और सर्वदर्शिताकी उपलब्धि हुई है। यह ही कर्मोके कारणभूत भावकर्मके कर्तृत्वका उच्छेद है। सीधासा काम बडा कठिन लग रहा है और कठिनसा काम बडा, सरल लग रहा है। भोजन करना कठिन काम है, लेकिन ऐसा सरल लग रहा है कि दूसरेके सिरपर चढ़कर

भोजन करेंगे। कुछ गल्ती हो जाय, खराबी बन जाय तो नाराज हो गये, यह बडा सरल लग रहा है और आत्मदृष्टिका काम जो कि स्वयंके स्वरूप है वह बडा कठिन लग रहा है। देखिये—यहाँ बैठे है, अपना शरीर शरीरमे है, यह जीव जीवमे है, स्वतत्र है, किसीकी कोई पराधीनता नही है। यहाँ भय है। सब ओरसे विकल्प तोडकर स्वय जो कुछ यह गुनगुनाने वाला है, जाननहार है, इस जाननहारमे अपने आपमे अपने आप अपने आपको प्रकाशमे ले लूँ, यह कोई कठिन बात है क्या? पर जब दृष्टि नही है, रुचि नही है तो कठिन तो क्या, असम्भव बना रखी है। मुझ चित्‌शक्तिका स्वभाव ही सर्वज्ञरूपसे विकास करनेका है, सर्वदर्शी रूपसे विकास करनेका है। विकासमे भावकर्म नहीं है, द्रव्यकर्म नही है, ऐसे अद्‌भुत चमत्कार की प्रीति न करके बाह्यमे जड सम्पदाका, मलमूत्र आदिक मलोसे भरे हुए शरीरका और मोही कलुषित जीवोंके द्वारा दो-चार प्रशसाके शब्द सुननेका लोभी बन रहा है। अपने उस अनन्त चैतन्य चमत्कारकी रुचि न करना, बस इसीका नाम मूढता है। यही बहिरात्मापन है।

सिद्ध प्रभुमें भोक्तृत्वका उच्छेद व शुद्ध भोक्तृत्व—सिद्धोमे विकारपूर्वक अनुभवन नही हो रहा, सो भोक्तृत्वका विनाश भी है। यह जीव सुख दु:खका परिणाम भोगनेसे ही भोक्ता कहलाता है। यह जीव भोक्ता है, किसका? सुखका अथवा दु:खका। सुख और दु:ख भी उपाधिजन्य भाव है। सिद्धप्रभुके इस प्रकारका भोक्तृत्व नही है, किन्तु किसे भोग रहे है वे? स्वयके स्वरूपके अनुभवरूप सुखके वे भोक्ता है। जो इस चित्‌तत्त्वमे विवर्त हो रहे थे उन विवर्तोंका खुदका अब विनाश हो गया, तरगे ही नही होती। यह ज्ञान स्वभावत प्रकाशरूप विस्तृत हो गया है उस चैतन्यका, उस चैतन्यात्मक आत्मतत्त्वका, जो कि अनन्त सुखस्वरूप है उसका यह भोक्ता है। इस प्रकार मुक्त जीवोको इसमे निरुपाधिस्वरूप कहा गया है।

प्रभुपरिचयकी पात्रता—सिद्धप्रभुका परिचय हम आप तब तक नही पा सकते जब तक हम अपनेको केवल न निरख सके, क्योकि वह केवल है। यद्यपि देहका, कर्मका हम आपके साथ बन्धन है, पर बन्धन होते हुए भी जब हम स्वभावदृष्टिमे पहुचते है तो वहाँ उपयोगमे बन्धन है ही नही। द्रव्य द्रव्यका बन्धन है अथवा बाह्य बन्धन है। इस स्वभावमे, इस उपयोगमे कोई बन्धन नही है। यो हम निर्बन्धदृष्टिसे अपने आपको निहारें, तो हम सिद्धप्रभु का कुछ परिचय पा सकते हैं, और वह परिचय हमे ज्ञान और आनन्दके अनुभवके रूपमे मिलेगा, ऐसा किया जा सकता है। परिस्थिति कुछ हो और अनुभव शुद्ध स्वभावका किया रहा हो, ज्ञानबलमे ऐसा ही चमत्कार है। जहाँ हम अपने आपके स्वभावको अपनी दृष्टिमे लें वहाँ हम केवल ही अनुभवमे आयेंगे, और तब सिद्ध प्रभुके आनन्दका और उनकी परिस्थिति का हमे अनुमान होगा।

बन्धन होनेपर भी अबद्धता—देखिये तालाबमे जहाँ कमलका बगीचा लग रहा है,

कमलके पत्ते इतने चिकने होते है कि उनपर पानी पारेकी तरह यहाँ वहाँ ढेलेके रूपमे लुढकता रहता है। उस बगीचेमे कमलपत्रको हम जब बाह्यदृष्टिसे देखते हैं तो वह पानीसे सयुक्त है, पानीसे बँधा हुआ है, छुवा है, और जब हम उस कमलपत्रको ही केवल निहारते है, उसका स्वभाव देखते है तो वहाँ यही नजर आता है कि पत्तेमे पत्ते हैं, इनमे पानीका सम्बध नही है। बाह्यदृष्टिमे सम्बध है और पत्रके स्वभावको देखते है तो उसमे पानीका मम्बध नही है। ऐसे ही मुझमे कर्मोका और शरीरका सम्बध है, परिस्थिति तो ऐसी है और जब हम बाह्यदृष्टि करके देखते हैं तो यह ही नजर आता है, बन्धन ही बन्धन समझमे आ रहा है। इस परिस्थितिमे भी हम केवल अपने स्वभावपर दृष्टि दें।

स्वभावदृष्टिकी अलौकिकता—देखिये स्वभावदृष्टि रखने वाले पुरुषका अलौकिक परिणमन होता है। उसे घर-बार लौकिक यश, लौकिक अपयश, दुकान, वैभव, परिजन, कुटुम्ब, देह किसी भी प्रकारका विकल्प नही रहता। यदि ऐसी स्थिति बनी है तब तो ठीक है, और विकल्पोसे तो विराम न हो और चूकि शास्त्रोमे लिखा है उसका आधार बनाकर अपने आपको ज्ञानी मानकर फिर विकल्पोमे मौज बनाकर जीवन बितावे, यह लाभकर नही है। हम ज्ञानस्वभावको पा चुके है, उसकी पहिचान एक थोडीसी इस रूपमे हो जाती है कि हमे किसी परद्रव्यका विकल्प तो न था उस क्षरण, यदि ऐसी निर्विकल्प परिस्थितिमे जब हम अपने स्वभावको देख रहे हो उस समय तो इसका बधन नही है, भले ही ऐसा ज्ञानी पुरुष किसी दुष्ट राजा आदिके द्वारा बन्धनमे डाल दिया जाय, कारागारकी कोठरोमे उसे बद कर दिया जाय, फिर भी उस ज्ञानीका उपयोग जब अपने स्वभावमे पहुचता है, रमता है तो उस समय भी कोई बधन ही नही है। शरीर भी जिसका बन्धन नही है उपयोगमे उसके लिए कारागरकी कोठरी क्या बन्धन बनेगी ? स्वभावदृष्टिसे जब हम अपनेको निरखते हैं तो हम वहाँ अपनेको बन्धनरहित पाते है।

परिणतिमे दृष्टिकी अनुसारिता—भैया ! निर्बन्धस्वभावकी उपासना करनेमे निर्बन्ध दशाएँ प्रकट होती है। कारणकी तरह ही कार्य हुआ करता है। हम चाहे यह कि हम सदा के लिए शरीरसे छुटकारा पा ले और शरीरको ही मानते रहे कि यह मैं हू तो कारण तो विपरीत बनाया, शरीरसे छुटकारा कैसे होगा ? यदि हम शरीरसे सदाके लिए मुक्त होना चाहते है तो हमारी अबसे ही यह भावना होनी चाहिए कि मैं शरीरसे जुदा हू, और भावना क्या, इस प्रकारका दर्शन भी अपने आपमे होते रहना चाहिए कि मै तो एक चित्प्रकाशमात्र हू, विविक्त पदार्थ हू। यह अपनी चिन्मात्रता निरखे तो विविक्त हो सकेगा, मुक्त हो सकेगा। और यह शरीर ही मैं हू, इस प्रकारका विश्वास रक्खे तो ये शरीर मिलते रहेंगे। ये शरीर बने रहनेका उपाय है शरीरको आत्मा मानना। और शरीरसे छूटनेका उपाय है शरीरसे भिन्न

चैतन्यमात्र आत्मामे प्रतीति करना।

बड़े कार्योंकी छोटीसी कुञ्जी—देखिये कितना बडा काम है ? संसारका मिलता रहना यह भी बहुत बडा काम है, फिर शरीर मिला, फिर अनेक परिणमन हुए, फिर अनेक सगम मिले, फिर मरण हुआ, फिर और बातें हुईं यह क्या छोटा छोटा काम है ? कीडा बन गये, पेड बन गए, पशु बन गये, मनुष्य बन गये, राजपाट भोग लिया, चला वाला हो गया, फिर कीडामकोडा बन गया, ऐसी विभिन्न प्रकारकी अवस्थावोका ग्रहण करना यह भी बहुत लम्बा चौडा बडा काम है और शरीरसे कर्मोसे रहित होकर एक अपनी इस शक्तिमे, ज्ञानमे समस्त ज्ञेयोको झलका लेना, सबका एक साथ भीतर ज्ञान करते चले जा रहे है यह भी बहुत बडा काम है। दोनो बडे काम हैं, ससारमे रुलना यह भी बडा काम है और मुक्त होकर अनन्त कालके लिए शुद्ध ज्ञान और आनन्दका अनुभव करना, समस्त विश्वको एक साथ जानना देखना, यह भी बहुत बडा काम है। और इन दोनो बडे कामोंके करनेकी कुञ्जी बहुत छोटी है, साधारण है, उपाय बिल्कुल साधारण है। ससारके बडे कामका उपाय मूलमे इतना ही है कि शरीरको मानले कि यह मैं हूं। बहुत बडे श्रमकी बात तो नही कही जा रही है, बहुत छोटीसी बात है। शरीरको मान लें कि यह मैं हू, फिर इतने बडे ससारका काम सुगमतया होता रहेगा और मोक्षके बडे कामका भी उपाय बहुत सीधा छोटासा है। शरीरादिक परद्रव्योसे न्यारे इस ज्ञानप्रकाशको मान लें कि यह मै हू, कितना सस्ता सौदा है ? केवल माननेपर ही इतना बडा काम हो जाता है। तो यह मोक्षमार्ग केवल एक इस भेदभावनापर निर्भर है।

धर्मपालनमे मूल पुरुषार्थ—धर्मपालन करो, धर्मपालन करो—ऐसी अपने आपकी प्रेरणा जगे अथवा दूसरोसे उपदेश मिले तो यह तो बतावो कि धर्मके पालनमे करना क्या है ? एक ऐसी मूल बात बतावो जिसका कही विरोध न बैठे, विघात न हो, खण्डन न हो और कभी उनसे विपरीत फिर दूसरी बात न कहनी पडे। ऐसा कुछ काम तो बतावो जिसको कि धर्मपालन करना कहते हैं। कहकर फिर उससे हटना नही, किसी भी परिस्थितिमे, ऐसी धर्मपालनकी बात बता दो जो हमे प्रारम्भमे लेकर अन्त तक वही-वही करनेको पडा हो। वह धर्मपालन क्या है ? अपने आपमे जो सहजस्वरूप है उस रूप अपनेको मान लेना, बस यही धर्मपालन है। प्रारम्भमे भी लोग यही करते है, मध्यमे लोग यही करते है और अन्तमे भी लोग यही करते है। गृहस्थोका भी इसमे धर्मपालन है और साधुवोका भी इसमे धर्मपालन है। बस भेद पडा है बाहरी परिस्थितिका। चूंकि गृहस्थके गृहस्थी है और परिग्रह आदि है इसलिए उनके विकल्प विस्तारका मौका अधिक रहा करता है। विकल्प विस्तार किस प्रकार मिटे उस परिस्थितिमे, उसके उपायमे जो कुछ तन, मन, धन, वचनकी क्रियाएँ की जाती है

वे व्यवहारधर्म है।

व्यवहारधर्मकी उपयोगिता—व्यवहारधर्म बाडका काम करता है। जैसे खेतमे फसल खडी है, उसे कोई उजाड न दे, इसके लिए खाई और बाड आलम्बन है, इसी प्रकार मुझे स्वभावालम्बनका धर्म पालन करना है, हमारे भीतर यह कृषि है, उस स्वभावालम्बन रूप धर्मको ये विषयकषाय ये पशु उजाड न दें, उनसे उजाड रोकनेके लिए व्यवहारधर्म हमारे लिए बाडका जैसा काम करता है। और उस व्यवहारधर्मको करते हुए हम अपने आपमे सुरक्षित रहते है, और उस सुरक्षामे हम धर्मपालन जितना कर सकते है कर लेते हैं, यही है धर्मपालन।

आत्मकर्तव्य—प्रयोजन यह है कि निरुपाधि केवल सिद्ध भगवतका जैसा परिणमन है, चमत्कार है वैसा ही बननेकी हम आपमे सामर्थ्य है। वैसा बननेका प्रोग्राम बनायें। उस प्रोग्राममे मूलमे हमे यही करना होगा कि हम सब परद्रव्यो परभावोके विकल्पसे विश्राम पायें और केवल अपने शुद्ध चैतन्यप्रकाशको निरख लें, यही निरुपाधि होनेका उपाय है। हम यदि अभीसे अपनेको निरुपाधिस्वरूपमे तक सकते हैं तो हम भविष्यमे निरुपाधि बन जायेंगे। अतः कर्तव्य यह है कि हम अपने आपकी प्रतीति केवलज्ञान तेज रूपमे बनायें—मेरा तो यह है, मेरा तो यह है, मेरा सर्वस्व, मेरा शरण, मेरा सार यह आत्मतत्त्व है। ऐसी दृष्टि आत्मदृष्टि बनाये, इसमे ही अपना कल्याण है।

जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य।
पप्पोदि सुहमणंत अव्वावाधं सगममुत्त ॥२९॥

शक्ति और व्यक्ति—यह चेतयिता स्वय सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होकर अनत अव्याबाध सुखोको प्राप्त करता है। यह आत्मा ज्ञान दर्शन सुखस्वभाव वाला है। जो शक्ति जिस द्रव्यमे नही होती है उसका विकास कहाँसे होगा? कोईसा भी विकास, परिणमन किसी अन्य द्रव्यसे नही आता। अपनेमे ही रहने वाली शक्तिका विकास ही परिणमन है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द-स्वभाव वाला होकर भी ससार अवस्थामे अनादिकालसे कर्मसक्लेशके कारण इसकी आत्म-शक्ति सकुचित हो गयी है। अब परद्रव्योके सम्पर्कसे क्रम-क्रमसे कुछ-कुछ जानता है, देखता है और ऐसे सुखका भी कदाचित् अनुभव करता है जो पराधीन है, मूर्तिक पदार्थोके सम्बधसे हुआ है, जिसमे अनेक बाधायें हैं, ऐसे सासारिक सुखका अनुभव भी वह करता है।

सांसारिक सुखोकी पराधीनता—ससारमे जितने भी सुख है वे सब सुख परापेक्ष हैं, यद्यपि वह सुखपरिणमन आत्माके आनन्दशक्तिका ही विकास है, फिर भी किसी परपदार्थकी दृष्टि हुए बिना, किसी परको कल्पनामे लाये बिना सांसारिक सुखकी प्रादुर्भूति नही होती है, इस कारण ये समस्त सुख पराधीन हैं। *जैन नाम तो* वास्तवमे उसका है जो जिन *भगवानके* इस तात्त्विक उपदेशको अपने चित्तमे उतारे। न अपने चित्तमे उतारे कोई तो जैन नाम कह-

लवा लेनेसे कही शान्तिका मार्ग नही मिलता। शान्ति तो शान्तिकी पद्धतिसे ही होती है।

वास्तविक देवभक्ति—अधिक आसक्ति हो, तृष्णा हो, यह मेरा है, यह पराया है इस प्रकारकी कुवासना होना, ये सब बातें चित्तमे हो तो हमने भगवानकी क्या भक्ति की ? भगवानकी आज्ञाके विरुद्ध चलें और वचनोसे केवल भगवानकी प्रशसा कर दे तो इतने मात्र से भक्ति भी नही होती। सही भक्ति आज्ञाकारितामे है। चित्तमे कभी कभी तो सब जीवो का समान स्थान आ जाना चाहिए। अरे किसी दिन तो माने हुए परिजनोंको छोडकर जाना ही होगा। फिर ये परिजन क्या तुम्हारे कुछ होगे ? भला हो कि अपने ही इस जीवनमे गृहस्थ होकर भी चित्तको इतना उदार बनाये कि इसमे यह मेरा है, यह पराया है—इस तरह की कुवासनाकी मुद्रा न बने तो यह पुरुष अर्थात् आत्मा ज्ञान दर्शन सुख स्वभाव वाले अपने स्वभावको निहार सकता है। यदि यह निहारता है अपने स्वरूपको तो इसका विकास कर लेगा। नही निहारता है तो अन्य पदार्थोकी भीख माँगना, आशा करना यह अपने क्लेश सक्लेशसे पापका बन्ध करेगा। ये सासारिक सुख पराधीन है। सिद्ध भगवानका आनन्द स्वाधीन है, यही तो अन्तर है, नही तो सिद्ध पूज्य किस बातसे होगे ?

सांसारिक सुखकी पराधीनताका संक्षिप्त विवरण—भैया ! कितनी आधीनताए है सासारिक सुखमे ? मूलमे तो अनुकूल कर्मोदय हो, साथ ही कुछ उदयके विपाकके सहारे नोकर्म, साधन विषयोका सम्बन्ध मिले। अब व्यवहारदृष्टिसे देखो—लौकिक समागम जिनको प्राप्त है वे प्रसन्न रहे, अनुकूल रहे, उन्हे अपनायें, सब बातें बनें तो सासारिक सुख मिले, किन्तु ऐसा होना इनके आधीन नही है। सभी चीजे अपना-अपना अस्तित्व लिए हुए है। उनकी कषाय उनमें उनके रूप है। कोई जीव वस्तुत मुझे चाहता नही है, वे अपने आपके ही विषयको चाहते है। दूसरोके चाहनेमें उनकी पूर्तिमें यदि मैं निमित्त हो सकता हू तो उस का ख्याल करके वे लोग कहा करते है कि हमे इनसे प्रेम है। कोई जीव किसी दूसरेसे प्रेम कर ही नही सकता, चाहे वह पिता-पुत्र हो, चाहे पति-पत्नी हो, कोई हो, यह वस्तुका अकाट्य स्वरूप है। कोई किसीसे न प्रेम कर सकता है, न द्वेप कर सकता है। क्या वास्ता है ? प्रत्येक पदार्थ अपना स्वरूप लिए है, अपने आपमे परिणमता है। इस कारण अपनेमे कितनी भी चाह वनायें तो भी परकी सिद्धि नही होती। सासारिक सुखमे बडी पराधीनता है और कदाचित पुण्यका ऐसा ही सुयोग मिल रहा है, सुख मिलता जा रहा है, वर्ष दो वर्ष १० वर्ष बीत गये, बड़ा मौज रहा। किसी दिन बिगड गयी तो सारा पन्ना पलट गया। अब जितना अधिक इष्ट माना जाता था उससे कई गुणा अनिष्ट माना जाने लगा। तो ये सांसारिक सुख पराधीन है और फिर इनमे है क्या ?

कामस्पर्शनमे पराधीनता व असारता—सासारिक सुख ६ भागोमे वटे हुए है—स्पर्शन,

रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और मनके सुख। ६ भागोमे बटे हुए इन सुखोमे से प्रत्येकपर दृष्टि डालें तो किसी सुखमे सार नजर न आयगा। स्पर्शनइन्द्रियके सुखमे लोग कामवासनाकी पूर्तिको प्रधानता देते है। वहाँ भी है क्या? हाड, मास, लहू आदि अपवित्र चीजोको यह पिंड है। जब रागभाव न हो उस समय देख लो सारा शरीर गदा दिखता है कि नही, पर जब राग होता है, कामवेदना होती है तो वह गदा शरीर भी उसको गदा नही नजर आता, किन्तु जब शान्तचित्त हो, वेदनारहित हो उस समय परख लो, अपना शरीर भी गंदा मालूम होगा, अपना शरीर भी बोझ मालूम होगा, परका शरीर भी बोझ मालूम होगा। और फिर उस क्षणिक सुखसे आत्माको लाभ क्या होता है? अन्तमे तो यह पछताता ही है।

स्पर्शनमे अहितता—अन्य भी जो स्पर्शनइन्द्रियके सुख है, स्पर्शनसे ठडी चीज छू ली, मुहा गयी, गर्म चीज छू ली, सुहा गयी, ये भी तो स्पर्शनइन्द्रियके सुख हैं। किन्ही की ऐसी इच्छा होती है कि मुझे शीत और उष्णका भी समय-समयपर आनन्द रहा करे। हाँ समयका साधन वर्तमानमे यह शरीर है, अकालके समयमे यो ही क्यो इसे गुजार दे, इसलिए तेज लू मे न बैठना, कही लू लगनेसे प्राणान्त न हो जाय, अत्यन्त ठडी शीत जगहमे न बने रहना कही निमोनिया होकर प्राणान्त न हो जाय, यह तो विवेककी बात है, लेकिन थोडा भी ठड गर्मी सहनेका भाव ही न हो तो यह तो इन्द्रियविषय है। इसमे भी क्या तत्त्व भरा है? थोडी-थोडी ठड गर्मीसे दूर रहनेके परिणाममे केवल विकल्पजालोमे गुथा रहेगा और उन्ही कल्पनाओमे दु खी होगा।

रसनेन्द्रियज सुखकी असारता—रसनाइन्द्रियका सुख ले लो। उसमे भी क्या तत्त्व है? प्राण रखनेके लिए थोडासा कोयला पानी चाहिए यो समझ लो। यह भी तो इज्जत है, भोजनपान चाहिए। ठीक है, अब उसमे रसीला ही मिले, स्वादिष्ट ही भोजन करें, उससे कौन सा लाभ लूट लिया? क्षणिक सुखका मौज आ गया, वह तो रौद्रध्यान है। उसमे भी लाभ क्या हुआ? रसीला गरिष्ट और इतना ही नही भरपेट भोजन भी विषयमे शामिल है। कोई यह सोचे कि हम बहुत गरिष्ट नही खा पाते, नही मिलता, किन्तु बहुत ठूँसकर खा ले तो ऐसा खाना भी विषयमे शामिल है। खानेके बाद खाटपर लेट जाना पडे, चाहे अनेक कष्ट भी आ जायें, पर हमारा पेट खूब भरा रहे, ऐसी दृष्टि तो रखी तो ऐसा भरपेट भोजन भी रसना इन्द्रियके विषयमे शामिल है। रसीले स्वादिष्ट भोजन भी रसनाइन्द्रियके विषयमे शामिल हैं। परिणाम क्या होता है? पीछे दु खी होता है। अपना ही शरीर अपनेको बोझल हो जाता है। परिणाम क्या निकला?

घ्राणेन्द्रियज सुखकी असारता—घ्राणइन्द्रियका विषय तो बिल्कुल व्यर्थसा लगता है। कुछ इत्र फुलेल आदि सुगधित पदार्थ सूघ लिये या कपडोमे रख लिए ताकि सुगध

मिलती रहे यह तो बिल्कुल बेकार सी चीज है। सारे इन्द्रिय सुखोको देखते जाइये कितने पराधीन है और उन विषयसुखोमे कितनी दीनता करनी पडती है ? अन्तरङ्गका परिणाम कितना कायर बनाना पडता है इन विषय सुखोंके भोगनेके लिए ?

नेत्रेन्द्रियज व कर्णेन्द्रियज सुखकी असारता—नेत्रइन्द्रियका सुख तो बडा भोदूपनेसे भरा हुआ है। कई हाथ दूर वस्तु है। जरा शकल सूरत रूप आकार प्रकार सुहा गये, अब टकटकी लगाये देख रहे है, पराधीन हो रहे है। ये सब विषय दीनतासे ही भोगे जा सकते है। शान्ति और वीरतासे विषय नही भोगे जाते। शान्ति और वीरता तो आत्म-उत्थानमे मदद देती है। कर्णइन्द्रियका सुख राग रागिनीके भले शब्द सुन लिये, ठीक है, सुननेकी कुछ बात नही, किन्तु उसमे आसक्त होना और सुनकर चित्तमे राग काम आदि भाव उत्पन्न होने लगना ऐसी आसक्ति कर्णइन्द्रियके विषयमे होती है। कितनी पराधीन बात है ? इतने समागम जुटावे, मनावे, खर्च भी करे और फिर दिल भी रखें, इतने पर भी अपनेको दीन बनाये बिना कोई सा भी सुख भोगा नही जा सकता।

मानसिक सुखकी असारता—मनका सुख यश नामवरी, पतिष्ठा, नेतागिरी ये सारी बातें मनके सुखकी है। इनमे कितना पराधीन बनना पडता है ? आप लोग तो जानते है जब कोई चुनावका समय आता है तो उम्मीदवार लोग वोटरोको उस समय भगवान मानते है। ये हमारा पद रखने वाले है। बहुतसे तो वोटरोके पैर तक छू डालते है। ये सारे सुख पराधीन हैं। ये मूर्त पदार्थोंके सम्बन्धसे होते हैं। अमूर्त वस्तुका ध्यान करके कोई विषयसुख हुआ करता है क्या ? आप एक शका कर सकते है कि अमूर्त धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्योके सम्बन्धमे चर्चा चलती है और उस चर्चाके भी प्रसगमे सुख होता है तो देखो ना अमूर्त पदार्थके सम्बन्धसे भी सांसारिक सुख मिला है या नही ? नही मिला। वह जो सुख लूट रहा है वह अमूर्त पदार्थके ध्यानका सुख नही लूट रहा है, किन्तु जिन लोगोमे हम चर्चा करते है, जिनसे बात करते है उनको मनका विषय बनाया है और उनको विषय बनाकर उस सम्बन्धमे वे सुख लूट रहे है।

प्रभुके सहजानन्दका विस्तार—ये समस्त सासारिक सुख बाधासहित है, ये दुःखरूप है, जिनको प्राप्त करनेके लिए लोग अपना जीवन लगा देते है। ये सांसारिक सुख नियमसे नष्ट होगे। भगवान सिद्धप्रभु ऐसे सुखोसे आत्यतिक दूर हो गये है। वे तो अव्याबाध आत्माधीन अमूर्त अनन्त सुखोको प्राप्त करते हैं। जिस समय इस आत्माके कर्म क्लेश समस्त रूपसे नष्ट हो जाते है तब अनर्गल अर्थात् बेरोक-टोक आत्मशक्ति विस्तृत हो जाती है तब यह प्रभु एक साथ समस्त परिणमनोको जानते और देखते है, और साथ ही साथ अपने ही आपके निमित्तसे बाधारहित अनन्त सुखका अनुभव करते है।

सर्वज्ञसिद्धिकी झाकी—इस गाथामे दो बातोपर दृष्टि दिलायी है—एक तो यह कि आत्माका वास्तविक स्वरूप सर्वज्ञताका है, इसका स्वभाव अथवा इसका स्वाभाविक कार्य सबको जाननेका है, जाननेके लिए यत्न नही करना है, जाननका तो स्वभाव ही बना हुआ है, पर यह स्वभाव कैसे विकसित होता है उसका उपाय केवल पारमार्थिक अतस्तत्त्वका आलम्बन है। कुछ लोग कहते है कि सर्वज्ञ नामकी कोई चीज नही है, क्योकि वह दिख ही नही रहा है। सर्वज्ञका निषेध करनेमे कुछ ज्यादा बात नही करना है, दिख नही रहा—इतना ही कह दो। हो सर्वज्ञ तो बता दो। इसका समाधान सुनिये—यह तो बतावो कि सर्वज्ञ नही है ऐसा जो तुम कहते हो तो इस देशमे सर्वज्ञ नही है या सर्वदेशोमे सर्वज्ञ नही है, इस कालमे सर्वज्ञ नही है या भूत वर्तमानके सब कालोमे सर्वज्ञ नही है। सर्वज्ञका निषेध करनेमे तुम्हारा मतलब है क्या ? यदि कहोगे कि इस देश और इस कालमे सर्वज्ञ नही है तो यह तो सही बात है, इसमे गलत कुछ नही है। यदि यह कहे कि सारे जगतमे और समस्त कालमे सर्वज्ञ नही है तो यह बतावो कि तुम सारे जगतको देख करके कह रहे हो या सारे जगतको देखे बिना कह रहे हो। तुम समस्त कालकी बातोको जानकर कह रहे हो कि सर्वज्ञ नही है या बिना जाने कह रहे हो ? बिना जानकर कह रहे हो तो तुम्हारी बात प्रामाणिक नही है, तुमने सर्व देशोको देखा ही नही है। सब जगह देख लो और फिर न मिले सर्वज्ञ तो मना करो। सर्व देश सर्वकालमे देख लो, यदि नही है सर्वज्ञ तो यह बात कही जा सकती है कि सर्वज्ञ नही है। यदि कहो कि हाँ हमने सर्वदेश सर्वकालमे देख लिया, कही सर्वज्ञ नही है तब तो हम आपकी पूजा शुरू कर दें, क्योकि तुम्ही सर्वज्ञ हो गये। समस्त लोकको समस्त कालको तुमने देख लिया तो तुम्ही सर्वज्ञ हो गये। मना क्यो करते हो ?

सर्वज्ञत्वके निराकरणके हेतुका निराकरण—सर्वज्ञसिद्धिके सम्बन्धमे दूसरी बात यह है कि सर्वज्ञ न मिल रहा हो तो आपको ही वह अनुपलब्ध है या तीन लोक तीन कालमे सबको अनुपलब्ध है ? आपके अनुलब्ध मात्रसे सर्वज्ञका अभाव न हो जायगा। कई लोगोको अमेरिका, कनाडा या और छोटे देश जिनमे गति नही है उनकी अनुपलब्धि है तो क्या उनकी अनुपलब्धिसे उन देशोका अभाव हो जायगा ? आप यहाँ बैठे है, आपको यह पता नही है कि पीठ पीछे कौन बैठा है तो क्या उस पीठ पीछे बैठे हुएका अभाव हो जायगा ? दूसरेके चित्त की बातकी भी हमे अनुपलब्धि है, हमे दूसरेके मनकी बात मालूम है क्या ? नही मालूम है तो क्या उस दूसरेकी चित्तकी बातका अभाव हो जायगा ? नही हो जायगा। यदि यह कहो कि तीन लोक तीन काल वाले सब पुरुषोको भी सर्वज्ञकी अनुपलब्धि है तो तुमने उन सबकी परख कर ली क्या ? कर ली तो तुम्ही सर्वज्ञ हो गये। (हँसी)। ये समस्त पदार्थ किसी न किसीके द्वारा अवश्य ज्ञेय है, क्योकि ये है।

सर्वज्ञत्व स्वभावकी सिद्धि—भैया ! सीधा यह प्रकाश भी देखें कि जब ज्ञानका स्वभाव जाननका है तो जाननेमे बाधा देने वाली ये इन्द्रियाँ शरीर कर्म जब नही रहे, फिर जाननेका स्वभाव तो बेरोकटोक सर्वत्र विकसित होगा ना, उसमे सीधा अब कौन करेगा कि यह ज्ञान अब यहाँ तक ही जाने । जब तक इन्द्रियका सम्पर्क है तब तक इनके विकासमे सीमा है, जब अवरोधक नही रहता तो सीमा क्यो रहेगी ? यो यह प्रभु ज्ञानावरण, दर्शनावरणके क्षयसे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है और मोहनीय और अन्तरायके क्षयसे ये अपूर्व आनन्दको भोग रहे है । सिद्ध भगवान जो समस्त पदार्थोंको स्वयमेव जानते देखते है वे स्वयमेव ही आत्मीय आनन्दका अनुभव करते है और ये स्वयके लिए सब कुछ है । इनका परसे कुछ प्रयोजन नही रहा । यो सिद्ध भगवानका उपाधिरहित ज्ञान है, दर्शन है, आनन्द है । इसका समर्थन इस गाथामे किया गया है ।

पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीवस्सदि जो हु जीविदो पुव्व ।
सो जीवो पाणा पुण बलमिंदियमाउ उस्सासो ॥३०॥

प्राणोसे जीवत्व—इस गाथामे जीवत्वगुणकी व्याख्या की गई है । जो चार प्राणो कर जीवित है, जीवित रहेगा अथवा जीवित था उसे जीव कहते है । वे चार प्राण है—बल, इन्द्रिय, आयु और श्वासोच्छ्वास । यद्यपि शुद्ध निश्चयनयसे यह जीव शुद्ध चैतन्य आदि प्राणोमे जीवित रहता है तो भी अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे देखा जाय तो द्रव्यरूप प्राणोंसे जीवित रहता है और अशुद्ध निश्चयनयसे देखा जाय तो भावरूप प्राणोंसे जीवित रहता है । जो जीवित है इन प्राणोंसे वह जीव है । जो जीवित था उन प्राणोसे वह जीव है, जो जीवित रहेगा इन प्राणोंसे वह जीव है । तीन प्रकारके कालके नामसे जो प्राणजीवनका वर्णन किया है वह साधारण, बहिरात्मा जीवमे तो अच्छी प्रकार घटित होता है, किन्तु जो शुद्ध हो गये हैं उनमे वर्तमानमे वे प्राणोसे जीवित है यह घटित नही होता, और आगामी कालमे इन प्राणोंसे जीवित रहेंगे, यह भी घटित नहीं होता । भूत नैगमनयकी अपेक्षा यह कहा जायगा कि यह इन प्राणोंसे जीवित था, इस कारण जीव है । पर निश्चयनयकी दृष्टिसे तो ज्ञान-दर्शनरूप जो शुद्ध चैतन्य प्राण है उनमे यह जीवित रहता है ।

प्राणविवरण—प्राण ४ प्रकारके हैं—इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास । ये चारोंके चारों प्राण चित्सामान्यके अनुयायी हैं अथवा चेतनाके विवर्त हैं, इस रूपमे देखा जाय तो ये ही चार भावप्राण होते हैं और ये चार पुद्गलमे रचे गये हैं, इस प्रकार निरखा जाय तो ये द्रव्यप्राण होते हैं । जैसे इन्द्रिय प्राण इन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे जो आत्मामे उस-उस प्रकारका इन्द्रिय द्वारा बोध होता है अतीन्द्रिय ज्ञान है वह है भावप्राण । और जो ये दिखती हुई इन्द्रियाँ हैं ये हैं द्रव्यप्राण । इसी प्रकार मन, वचन, कायके सम्बन्धमे भी इस [illegible]

अपना बल है वह है भावप्राण और तन, मन, वचनका जो बल है, पौद्गलिक शक्ति है वह है द्रव्यप्राण। ऐसे ही आयुके सम्बधमे जो आयुका उदय है, उदय कर्मका सम्बध है वह तो है द्रव्यप्राण और आयुका सम्बध होनेसे जिस प्रकारका इसका जीवन चल रहा है, उस आयु का निमित्त पाकर जो अन्तरमे तद्विषयक भाव चल रहा है वह है भावप्राण। यो ही जो आयु रूप उच्छ्‌वास है वह है द्रव्यप्राण। और उस वायुरूप उच्छ्‌वासके निमित्तसे जो आत्मामे एक कुछ जीवनसे सतुष्टि सतोष आदिकके ढगसे उच्छ्‌वास सम्बधित भाव चलता है वह है भावप्राण। इस प्रकार यह जीव इन प्राणोसे जीवित रहता है।

संसारावस्थामे विभावप्राणका अविच्छेद—उन दोनो प्राणोमे से द्रव्यप्राण अथवा भावप्राण उनमे तीनो कालोमे कोईसा भी समय ऐसा नही आया कि जिसमे बीचमे धारा टूटी हो, बीचमे प्राण न रहे हो और बादमे फिर प्राण आ गये हो। चाहे इन प्राणोंके भेद प्रभेदकी दृष्टिसे कमी-बेशी हो आयी है, लेकिन ऐसा कोई समय नही हुआ ससार अवस्थामे जिस समय इस जीवमे इनमेसे कोई प्राण न रहा हो। बादमे प्राण आते हो। अनविच्छिन्न धारासे इन प्राणोको धारण कर रहा है यह जीव। इस प्रकार ससारी जीवके जीवत्वकी सिद्धि हुई है। हाँ मुक्त जीवमे एक शुद्ध ज्ञान, दर्शनरूप भावप्राणोके धारणसे जीवत्वका निश्चय करना है।

प्राणप्रकरणसे शिक्षा—यह जीव प्राणोसे जीवित है, ऐसा समझानेसे हमको किस कर्तव्यकी शिक्षा मिली है? इन प्राणोकी रक्षा करें, अपना ही मतलब रखें, क्या यह शिक्षा मिली है? इसमे यह शिक्षा बसी हुई है कि ये चारोंके चारो द्रव्यप्राण मेरे स्वरूप नही है। ये पौद्गलिक हैं, इनके सम्बधसे ससारभ्रमण ही रहा करता है। मैं इन प्राणोसे भिन्न अपने शुद्ध ज्ञान दर्शनरूप अव्यय प्राणोसे युक्त हू। मेरा कर्तव्य है कि मैं मन, वचन, कायका निरोध करके पञ्चेन्द्रियके विषयोसे विविक्त होकर शुद्ध चैतन्यभाव प्राणोसे युक्त शुद्ध जीवास्तिकायको दृष्टिमे लू, वह ही उपादेय है। देखिये जहाँ इन प्राणोकी रक्षाको उपादेय नही कहा है वहाँ धन वैभवके रक्षाकी तो कहानी ही कौन करे? केवल एक शुद्ध जीवस्वरूपको दृष्टिमे लेकर सोचिये—शरीरका सम्बध, मनका सम्बध, इन इन्द्रियोका सम्बध इस जीवको अनर्थका ही कारण बन रहा है। जीवका स्वभाव तो समग्र लोक और अलोककी जानकारी कर लेना है, और विशुद्ध निराकुल आनन्दमे लीन बने रहना है, किन्तु हो क्या रहा है? यह सब किसकी करामात है? यह सब द्रव्यप्राणोके सम्बधकी करामात है। यदि मैं केवल रहता, शरीर तो परद्रव्य है, बन्धनमे आये हैं, यह शरीर भी साथ नही रहता, कर्म भी साथ नही रहते, मैं अपने सहज स्वरूपमे जैसा हू वैसा ही केवल होता तो ये ससारके झझट क्यो लदते? केवल रहनेमे ही सुख है, आनन्द है, ये द्रव्यप्राण उपादेय नही है, किन्तु विशुद्ध सहजस्वरूप ही उपादेय है।

दृष्टिका हितकर विषय—देखिये भैया ! जैन होनेका लाभ लूटना है तो कहाँ दृष्टि दें ? इसको समझिये। यह तो बडे खेदकी बात होनी चाहिए। पछतावाकी बात होनी चाहिए कि थोडे समयको मैं आया हुआ हू, कुछ ही समय बाद यहाँसे बिदा होना पडेगा, कुछ भी मेरे साथ न रहेगा। लोकमे कैसा अविवेक हो रहा है कि इन रूपी पौद्गलिक जडपदार्थोंमें सने जा रहे है और थोडीसी रागचेष्टा दिखा देने वाले इन स्त्री पुत्रादिक परिजनोमे सने चले जा रहे है। यह तो बडे खेदकी बात होनी चाहिये थी जो कि मोहमे मौजकी बात मानी जा रही है। अरे अपने आपको यह निरखो कि मै इन प्राणोसे भी जुदा हू। जिन प्राणोकी लोग रक्षा करते है वे प्राण भी सचय और रक्षाके योग्य नही है। जाना हो तो जावो।

प्राणरक्षणकी परिस्थिति—प्राणको रक्षाके योग्य उस स्थितिमे बताया है जब कि यह जीव कल्याणकी दृष्टि करने लगा है, किन्तु कल्याणके कर्तव्यमे पूर्ण निपुणता नही प्राप्त हुई है ऐसी स्थितिमे बताता गया है कि तुम इन प्राणोकी रक्षा बनाये रहो। शरीर सयमका साधन है। अत कुछ भोजनपान कर लिया करो, यह उस स्थितिकी बात है। यदि कोई जीव निपट अज्ञानी है तो प्राणरक्षासे उसको लाभ क्या है ? उसका तो जिन्दा रहना और न रहना सब बराबर है। जीवित रहकर भी उसने क्या लाभ लूट लिया ? और जो जीव आत्मकल्याणकी दृष्टिमे अभ्यस्त हो चुके है और आत्मसमाधिमे अभ्यस्त हो गये है उन पुरुषो को प्राणरक्षाके विकल्पसे क्या लाभ है ? प्राणरक्षाकी तो ज्ञानके अभ्यासीको जरूरत है। प्राणोकी रक्षाकी जरूरत होनेपर बेजरूरत उसको है जो ज्ञानी हुआ है और ज्ञानबलसे सयम साधनमे लग रहा है। जैसे सरकार जरूरतकी जमीनको एक्वायर कर लेती है, ऐसे ही ज्ञानी पुरुष, सम्यग्दृष्टि पुरुष, ज्ञानमे अभ्यस्त पुरुष प्राणोको प्रयोजनके अर्थ एक्वायर कर लेते है। उन्हे प्राण रक्षाकी जरूरत रहती है। वे अपने कल्याणका उद्योग करने वाले हुआ करते है, फिर भी यह ज्ञानी इन द्रव्यप्राणोको उपादेय नही मानता। ज्ञानी जीवोका एक शुद्ध आत्मतत्त्व का अवलोकन, आश्रय, आलम्बन ही उनकी दृष्टिमे उपादेय बताया गया है।

जीवत्वस्वभावकी दृष्टि—इस प्रकरणमे जो सबसे पहिली गाथा थी, जिससे यह सूचित हो रहा था कि जीवको इन ९ अधिकारोमे बताया जायगा। यह जीवके जीवत्वकी बात चल रही है। मैं जीव हू क्योकि मैं स्वत सहजसिद्ध अपनी प्रतिभास शक्तिसे जीवित रहा करता हू। समस्त द्रव्योमे विलक्षण सारभूत उत्कृष्ट यह जीवतत्त्व है। जीवतत्त्वके सिवाय अन्य समस्त पदार्थ पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल मूर्त है, अमूर्त है, अनेक चमत्कार इसमे भी है, पर एक प्रतिभासशक्ति न होनेसे ये सब जहाँके तहाँ धरे है। न व्यवस्था अपनी जान पाते हैं, न अपने पराये किसीका कुछ ख्याल है। जीव एक ऐसा विलक्षण पदार्थ है कि वह अनेक पदार्थोंकी जानकारी करता है, जिसका इतना फैलाव है भावो द्वारा, ज्ञानद्वारा कि लोक

मे भी क्या अलोकमे भी यह फैल जाय, ऐसे अपने जीवत्वस्वभावका आदर करो। मोह ममतामे कुछ तत्त्व न मिलेगा, जिन्दगी व्यतीत हो जायगी और अन्तमे पछतावा रहेगा।

आकस्मिकतायें—अच्छा कलकी ही बात बतावो—जो जो मोह ममता किया था, जिन जिनके पीछे अपने तन, मन, धन, वचनकी चेष्टाये की थी उन सबके फलमे कलके शाम तक कुछ नजर आया था क्या ? और अब भी कुछ हाथ है क्या ? यो ही आजकी भी बात समझ लो। जो जो मोह ममता की जायगी, जिन जिनको मना-मनाकर खुश रखकर अपनेको शात किया जायगा उनसे कुछ मिलेगा क्या आपको ? ऐसे ऐसे कितने दिन खो दिये। मान लो किसी की आज ६० वर्ष की उमर है तो ३६५ का गुणा करके देख लो, लगभग २० हजार दिन गुजर गये, एक दिनकी बात नही कौनसा लाभ पाया, कौन सी तृप्ति पायी ? बिना प्रयोजन ही जैसा मिला सुन्दर असुन्दर किसी भी प्रकारका जो भी सम्बन्ध मिला, बस ये दो चार जीव तो मेरे प्राण हैं और बाकी सब जीवोमे शायद प्राण हो या न हो—ऐसा मतलबी बनकर अपना जीवन गुजार दिया और अन्तमे यह हालत कर ली।

ज्ञानके अभावमे क्लेशजाल—भैया ! ज्ञान न हुआ तो जीवनमे बडी बुरी हालत रहती है। प्रथम तो यह प्रकृति सहयोग नही दे रही है। जब पैदा हुए तब रंगा चगा शरीर रहा, फिर जवान हुए तो बडा बलिष्ट शरीर हो गया। जीवन भर सब कुछ किया, अन्तमे दशा कैसी होती है ? शरीरकी दृष्टिसे बुढापा आता है, शिथिलता होती है, खून नही बढता, कमजोरी आ जाती है, जहाँ खाटसे भी नही उठा जाता, ऐसी ऐगी कठिन हालत हो जाती है। अन्तमे भोगा कष्ट, क्लेश, लोग तो ऐसा उद्यम करना चाहते हैं कि मैं पहिले कष्ट भोग लूँ, बादकी जिन्दगी तो सुखमे रहे। इसीलिए तो लोग धन कमाते है। पहिले कष्ट सह लें, कजूसी करके, यत्र तत्र भ्रमण करके, जैसी चाहे नीति अनीति करके, दूसरोके लाठी मुक्के सहकर, भूखे प्यासे रहकर रात दिन जुट करके धन कमा ले ताकि ब्याज ही ब्याजसे आराम से जिन्दगी कटे। लोग तो ऐसा करते है कि पहिले कष्ट सहलें, पीछे सुख मिलेगा मगर प्रकृति उल्टा काम कर रही है। तुम सुख खूब भोग लो, पीछे बुढापाके रूपमे हम सब सुखकी कसर खूब निकाल लेंगे। प्रकृति यह काम कर रही है। कुछ दिखता ही नही, अंधेरा है, सब विरुद्ध है, प्रकृति भी विरुद्ध हो रही है, तब कौनसा सुख लूटना, कहाँ मजेमे रहना, क्या ढग बना ? कोई बात ही फिट नही बैठती।

ज्ञानभावनाकी मुक्तता—भैया ! फिट बैठने वाली बात है तो केवल एक ज्ञान है। क्या करना है ? खूब ज्ञानभावना बनायें। जब तक बल है, जीवन है, सामर्थ्य है तब तक खूब ज्ञानभावना बनायें। अपनी सभाल खूब कर लीजिए। समस्त परपदार्थोंसे न्यारा केवल ज्ञानमात्र यह मैं आत्मा हू, इसकी खूब दृढ भावना बना लीजिये। फिर डर नही बुढापेका।

फिर किसी भी चीजका डर नही है। नही उठा जाता खटियासे तो न उठा जाने दो। हम अपने आपमे स्थित उस ज्ञानप्रकाशको निहारते रहे। यह शरीर जैसा बर्तता है बर्तने दो। कोई अशान्ति नही हो सकती। ज्ञानबल जिसने बनाया है उसको जीवनमे अशान्तिका काम नही है। जो अपना ज्ञानबल नही बना पाया वह धनी हो जाय तो भी अथवा बडा नेता हो जाय तो भी कुछ भी पा ले तो भी शान्तिका कुछ काम नही, उसे शान्ति न मिलेगी।

आत्मसाधनामे सफलता—भैया! अनवरत अविच्छिन्न धारासे इस भेदविज्ञान द्वारा निज आत्मस्वरूपको भानमे लो। यह मैं सबसे जुदा केवल भावमात्र हू, ज्ञानानन्दस्वरूपमात्र हू। भले हो यह आज निमित्तनैमित्तिक सम्बधमे बढ-बढकर शरीरमे बधा है, लेकिन शरीरमे बँधा रहकर भी यह मैं केवल चिन्मात्र स्वरूप हू। शरीरसे मेरा कुछ नाता नही है। जब मै शरीर भी नही हू तो अन्य पदार्थोंसे मेरा नाता क्या है? मै सबसे विविक्त एक ज्ञानस्वभावमात्र हू इस प्रकारकी बारम्बार भावना की जाय तो सब सफलता है। आप सफल हो गये तो देशको सफल कहा जाता है, कालको सफल कहा जाता है, इस पर्यायको सफल कहा जाता है। मात्र पर्यायकी सफलताका क्या अर्थ है? उसका तो अहितरूप अर्थ है, हमारी पर्याय सफल हो जाय, मायने इस पर्यायके बाद पर्यायें और मिलें। तो उस पर्यायके फल तो पर्यायें पर्यायें है। जीवको अपने आत्माकी सिद्धि है तो इस पर्यायकी वास्तविक सफलता है। आत्मदृष्टि नही है तो सफलताका नाम मत लीजिए। न वहाँ शान्ति हो सकती, न वहाँ निराकुलता आ सकती।

सहजस्वभावके उपादेयत्वकी शिक्षा—देखो यहाँ यह दृष्टि करायी गयी है कि ५ इन्द्रिय, ३ बल, आयु और श्वासोच्छ्वास—इन १० प्राणोसे मेरा स्वरूप अत्यन्त न्यारा है, ये भी मेरे कुछ नही है। इनसे विविक्त केवल चैतन्यमात्र मै हू। जब ये प्राण भी, इन्द्रिय भी, शरीर भी, कुछ भी मेरा नही है तो अन्य देश, घर, वैभव, परिजन, यश सोचते जावो ये सब भी मेरे नही हैं। यदि इन सबसे विविक्त निज अतस्तत्त्वकी दृष्टि नही की जा सकती है तो अपनेको धर्मी माननेका अभिमान छोड दीजिए। धर्म वहाँ ही आयगा जहाँ इस आत्मस्वरूपका भान हुआ। जहाँ आत्मस्वरूपका भान होता है वहाँ सहज वैराग्य प्रकट होता है। इन प्राणोंसे भी भिन्न केवल ज्ञान दर्शन प्राणोमे तन्मय निज आत्मस्वरूपकी भावनामे ही हमे शान्तिका मार्ग मिल सकता है।

अगुरुलघुगा अणता तेहिं अणतेहि परिणदा सव्वे।
देसेहि असखादा सिय लोग सव्वमावण्णा ॥३१॥
केचित्तु अणावण्णा मिच्छादसणकसायजोगजुदा।
विजुदा य तेहिं वहुगा सिद्धा ससारिणो जीवा ॥३२॥

पदार्थपरिणमन—अगुरुलघु गुण अनन्त होते है। उन अनन्त गुणोसे परिणमन करने वाले समस्त पदार्थ हुआ करते है। उनमेसे यह जीवपदार्थ प्रदेशोकी अपेक्षा तो असख्यात प्रदेशी है, पर कदाचित् समस्त लोकको भी प्राप्त हो जाता है। कोई जीव यो व्यापक है, सर्व लोकमे विस्तृत है। केवल लोकपूरण अवस्थामे अरहत देवके आत्माके प्रदेश सर्वलोकमे व्यापक होते है। और अनेक ससारी जीव अव्यापक है। अनेक जीव मिथ्यात्व, कषाय और योग से युक्त हैं और अनेको जीव मिथ्यात्व आदिक विभावोसे रहित हैं। कोई जीव सिद्ध है और कोई ससारी हैं।

जीवभेदविस्तार—इन दो गाथावोमे जीवका भेदविस्तार बताया गया है। पदार्थोंमे अगुरुलघुत्व गुण हुआ करता है जिसके प्रभावसे ये पदार्थ प्रति समय परिणमते रहते हैं। एक परिणमनके बाद इसका परिणमन होनेमे वृद्धि-हानि हुआ करती है। किसी-किसी समय तो मोटे परिणमनमे वृद्धि-हानि नजर आती है और कही नही नजर आती है। लेकिन यह निर्णय है कि वृद्धि-हानि हुए बिना दूसरा परिणमन नही हो पाता। न हो कुछ भी वृद्धि, न हो कुछ भी हानि तो वह दूसरा परिणमन ही क्या? जो शुद्ध परिणमन भी होते है उन शुद्ध परिणमनोकी भी यही पद्धति है। वहाँ पर भी वृद्धि हानि होती है। यह वृद्धि हानि विकाररूप नही, किन्तु यह पदार्थके स्वभावमे शामिल है। कोई-सा भी काम अपनेको व्यवहारमे जो दिखता है उसमे भी वृद्धि हानि चल रही है। कोई एक पुरुष आधा मनका बोझ हाथपर उठाये खडा है बिल्कुल स्थिररूपसे, हिलता डुलता नही है, हमे नही मालूम पड रहा है, पर उसके भीतर सूक्ष्मरूपमे कितनी हलन-चलन और वृद्धि हानि हो रही है? इसे वही अनुभव कर रहा है।

शुद्ध परिणमनमे भी नूतनत्व—एक दीपक या बल्ब आधा घन्टे तक एक-सी स्पीडमे जल रहा है, कही बिजलीके तारमे कुछ खराबी भी नही है जिससे वह कभी मदा और कभी तेज हो जाय। एकसा जल रहा है, इतनेपर भी इस बिजली विभागके जानकार जानते है कि प्रति सेकेण्ड अथवा उसके भी कई भागमे जो नई-नई रोशनी हो रही है उस बीचमे वृद्धि हानि हो जाती है। किसी किसी समय तो अपनेको भी मालूम पड जाता है कि जगमग हुए बिना यह प्रकाश नही हो सकता। जगमग मायने वृद्धि हानि। जग मायने वृद्धि, मग मायने हानि। जग गया, उठ गया, मग गया, अन्दरकी ओर सकुचित हुआ तो वृद्धि हानि बिना परिणमन नही हुआ करता। ऐसी शक्ति प्रकृति प्रत्येक पदार्थमे है। उनसे भी षट् स्थान पतित वृद्धि हानिरूप अविभाग प्रतिच्छेद सिद्धान्तमे कहे गये है। उन गुणोसे ये समस्त अनन्त जीव प्रति समय परिणमते चले जा रहे है।

परिणमनस्वरूपके अवगमसे शिक्षा—जिसे हितकी धुन हो उसे सब बातोमे शिक्षा

मिल जाती है। जिसे हितकी धुन नही है, साक्षात् शिक्षाके वचनोमे भी उसे शिक्षा नही मिलती। यहाँ यह शिक्षा ग्रहण करते है कि जब पदार्थ अपने आपमे पाये गये अगुरुलघुत्व गुणसे परिणमते रहते है तब किसी भी पदार्थमे मेरा क्या अधिकार है, मेरा क्या कर्तव्य है ? अपने आपके स्वरूपको सम्हालकर फिर इस तत्व मर्मको निरखिये। यह मैं आत्मा क्या हूं, कितना हू, क्या कर पाता हू ? जरा अन्तर्दृष्टि करके निरखिये। मोह ममताके रगमे आपको कुछ भी लाभ न होगा, सदा सूनेके सूने ही रहोगे। वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है। यदि कोई किसीका बन जाता तो आजको यह ससार भी न मिलता, सर्वापहार हो जाता, सर्वशून्यता आ जाती। ये सबके सब अब तक हैं, यह इसी बातका प्रमाण है कि प्रत्येक पदार्थ मात्र अपने स्वरूपका अधिकारी है, कोई किसी दूसरेके स्वरूपका अधिकारी नही। ऐसा जानकर हे भव्य पुरुषो ! अपने आपमे सन्तुष्ट रहनेको प्रकृति बनावो। किसी परपदार्थमे चित्त बसाकर सन्तुष्ट होनेका यत्न मत करो, अन्यथा कई गुणा कष्ट पाओगे। अपने आपको सम्हाल लो।

स्वावलम्बनकी सीख—यह जैन शासन स्वावलम्बन सिखाता है, अपने मनको सम्हाल लो। अपने इन विकल्पोपर सयम पा लो, फिर कही आकुलता नही है। मेरा तो कुछ है नही उसे दिलमे बसाया है, उसे अपना माना है। अरे क्या पहिले था या आगे रहेगा, और अब भी क्या कोई आपका साथी है। व्यर्थके मोहका रग इतना तीव्र चढाकर यह जीव दुखी हो रहा है। यह वस्तुस्वरूप हमे यह सिखा रहा है कि प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है। मैं किसीका कर्ता नही, भोक्ता नही, किसीका स्वामी नही। किसी अन्य पदार्थसे मेरा रच भी सम्बध नही है। भले ही चाहे बडी शक्ति लगाकर लीनता करें, पर कोई अपना नही हो पाता।

मिथ्यावासनासे हानि—भैया ! कजूस लोग इस वस्तुस्वरूपकी दृढताके कारण दुःखी रहा करते है। एक तो कजूसी कर करके धन जोडा, और जब यह देखा जाता कि यह धन उसका रहता नही है, पाससे छूट रहा है तो कोशिश तो बहुत करता है कि यह मेरा बनकर रह जाय, पर वस्तुस्वरूपका उल्लंघन कौन कर सकता है ? मिटता है, बेकार होता है, उसे बडा कष्ट भोगना पडता है। अरे उस कजूसीसे लाभ क्या मिला ? जीवनभर दुःखी रहे और मरते समय तो बुरी हालत करके मरे, छूटा आखिर सब कुछ। रहा यह अकेलका ही अकेला, पर उस मोहके स्वप्नमे अनेक नाटक कर डाले गये।

जीवका परिमाण—प्रत्येक पदार्थ स्वय परिणमनशील है। आपका किसी भी पदार्थमे कोई दखल नही है। ये समस्त जीव अपने-अपने अगुरुलघुत्व गुणके कारण परिणमते चले जा रहे है। ये सब जीव कितने परिमाणके है ? इनमे प्रदेश असख्यात है प्रत्येक जीवमे। कदाचित् ये जीव लोकमे फैल जायें, व्यापक हो जाये। यह ज्ञानपुञ्ज तो समस्त लोकमें व्याप सकता है।

जीवकी व्यापकताका अवसर—जीवकी यह व्यापक अवस्था हुआ करती है, लोकपूरण

समुद्घातमे। अरहत भगवानके जिनके चार घातिया कर्म तो नष्ट हो चुके, वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार अघातिया कर्म शेष रहे। तो जब कुछ अन्तिम निकट समय आता है उस समय करीब करीब यह स्थिति रहा करती है कि आयु कर्म तो थोडा रह गया और बाकी तीन कर्म बहुत लम्बी स्थितिके रह गये, आयु अभी नही मिटी। यदि सिद्ध होंगे तो यो नही होते कि पहिले आयु मिट जाय, जब नामकी गोत्रकी स्थितिका नम्बर आयगा मिटनेका तो वह मिट जायगा। चारो अघातिया कर्म एक साथ नष्ट होते हैं, उनकी प्रकृतियोमे एक समय का तो अन्तर हो जायगा। कुछ प्रकृतियाँ द्विचरमसमयमे क्षय होगी और कुछ प्रवृत्तियाँ चरम समयमे, पर इतनेका क्या अन्तर है? यो ही समझिये कि चारो अघातिया कर्म एक साथ नष्ट होगे।

केवलिसमुद्धातकी परिस्थिति—अब यह बानक कैसे बने? आयुकी तो थोडी स्थिति है और बाकी कर्मोकी बडी स्थिति है तो इस समय स्वभावत समुद्घात होता है। समुद्घात का अर्थ है—अपने मूल शरीरको न छोडकर बाहरी आत्माके प्रदेशोको भूल जाना। अरहत प्रभु यदि पद्मासनमे विराजे हो तो एक घूटेसे लेकर दूसरे घूटे तकका जितना क्षेत्र है, फैलाव है उतनी ही मोटाईमे उनके प्रदेश नीचे जाते हैं और ऊपर फैलते है। फिर दूसरे समयमे अगल-बगलमे फैलने लगते है जहाँ तक उन्हे लोक मिलता है, वातवलयोमे नही और शेष लोकोमे फैल जाते है। इसके पश्चात् पीठ और पेटकी तरफ उनके प्रदेश कहाँ तक फैलते हैं जहाँ तक वातवलय नही आता, फिर इसके बाद जो शेष वातवलय रह गये थे उनमे भी ये प्रदेश फैल जाते है। अब लोकमे कोई प्रदेश ऐसा नही बचता जहाँ इस अरहत आत्माका प्रदेश न हो। ये सब एक-एक समयकी बातें है। अब इसके बाद सकोच होना शुरू होता है। तो जैसे-जैसे यह फैला तैसे ही तैसे यह सिकुडा और अन्तमे अपने शरीरमे समा जाता है। इस प्रक्रिया मे प्राय वे तीन कर्म आयुकर्मके बराबर ही जाते हैं। यदि थोडीसी कसर रह गयी है तो इसके बाद ही बराबर हो जाती है। जिसे कहते है समुद्घात। इसके बाद अन्तमे कर्मोको एक साथ दलकर के मुक्त हो जाते हैं।

जीवपरिमाणका विविध विस्तार—देखो यह जीव लोकपूरण समुद्घातमे लोक भर मे फैल गया, बाकी समयोमे तो यह जीव देहप्रमाण रहता है। और अन्य समुद्घातोमे कुछ फैलकर भी असख्यात प्रदेशोमे ही कही फैला हुआ है, पूरे लोकमे नही फैला। यह तो प्रदेशो की बात है। ज्ञानभावसे तो लोकालोकमें व्यापक है। अपने आपके अन्त स्वरूपका ज्ञान महा-विज्ञान है। इस ही को लक्ष्यमे लेकर कुछ अनेक दार्शनिकोने इसका स्वरूप बताना चाहा, पर स्वरूपदृष्टिमे न होनेसे स्वरूपका बताना विभिन्न रूपोमे हो गया है और कुछ ऐसा लगने लगा कि दूसरेकी कहानी कही जा रही हो, अपने आपके इस स्वरूपका भान हो, स्याद्वाद

पद्धतिसें स्वरूपका निर्णय हो तो ये सब बातें स्पष्ट अपने आपके ज्ञानमे आ जाती है। ये सब जीव कोई तो व्यापक है, कोई अव्यापक है।

विकार व विकास—इन जीवोंमे कोई जीव तो मिथ्यात्वसे रगे पँगे है और कोई मिथ्यात्वके रगसे मुक्त हो गये है। मिथ्यात्व नाम है किसका ? मिथ्या शब्द मिथ् धातुसे बना है, जिसका अर्थ है दो का मेल। लोग तो मिथ्याका अर्थ "झूठ" बताते है, पर मिथ्याका अर्थ झूठ नही है। मिथ्या मायने दो का मेल। यह मिथ्या शब्द मिथुन या मैथुन शब्दसे बनता है। दोके सम्बन्धको दोके मेलको मिथ्या कहते है। यह मेरा है—इस तरह दो के सम्बन्ध का विकल्प रखना इसका नाम है मिथ्या। चूकि दोका सम्बन्ध सही नही है इसलिए मिथ्याका अर्थ लोगोने लगा दिया झूठ, और यह ठीक भी है, पर सही अर्थ झूठ नही है। मिथ्याका झूठ अर्थ तो फलित है। कितने ही जीव मिथ्यात्वके रगसे रगे पगे है। यह देह मै हू, यह घर मेरा है, यह भैया मेरा है, ये हमारे घरके लोग है, इनके लिए तो जान तक न्यौछावर हो जाती है। सब कुछ इनके ही लिए तो है। कितना अज्ञानका अधेरा छाया है, जीवके स्वरूपका भान ही नही हो पा रहा है। यदि स्वरूपका भान होता तो इसकी दृष्टिमे वह चैतन्य नजर आता जो सब जीवोमे एक समान है। अनन्तानन्त प्राणी इस मिथ्यात्वके मलसे मलिन है और कोई बिरले ही ज्ञानी सत व प्रभु परमात्मा ऐसे है जो मिथ्यात्वके रग से मुक्त है।

भ्रमका महाक्लेश—भैया! भ्रमका बडा क्लेश होता है। एक कहानी है— देहातके १० मित्र जुलाहा किसी गाँवके बाजारमे कपडा बेचने गये। बेचकर लौटे तो रास्तेमे नदी पडती थी। जाते समय तो बेचनेकी धुन थी, कोई विकल्प नही हुआ। बेच करके आये, काम करके आये ना, तो चित्तमे वह उत्सुकता नही है ना, तो विकल्प चले, नदीसे पार होकर जब किनारे पहुचे तो उनमे से एकने कहा कि आवो अपन गिन तो लें। दस लोग गये थे, दसोके दसो लोग है कि नही। तो एकने गिना निगाह डाली तो उसको ९ ही लोग नजर आये। कहा कि अरे ९ ही लोग रह गये। एकका पता ही नही है। यो ही सभोने गिना तो सभी को ९ के ९ ही नजर आये, सभी खुदको गिनना भूल गये। सोचा कि अपनमे से एक मित्र नदीमे बह गया होगा। सभी दुःखी हो गये, रोने लगे, पत्थरोसे अपना सिर फोडने लगे। अरे भाई कौन मर गया बतावो तो सही ? बस मर गया कोई एक मित्र। लो खुदको गिनना सभी भूल गये। भ्रमवश यह हालत हो गयी, सभीके सिरसे खून बहने लगा। एक कोई सूझता पुरुष उसी रास्तेसे जा रहा था, पूछा—भाई! आप लोगोकी क्यो यह हालत हो गयी है ? सभीने सारी कहानी बतायी। बताया कि हम लोग १० मित्र कपडा बेचने गये थे। अब हम ९ मित्र ही रह गये है। एक हमारा मित्र नदीमे डूबकर शायद मर गया है। तो

उसने सरसरी निगाहसे देख लिया कि दसोके दसों तो है। पूछा—भाई कौन नही है ? सभी ने खुदको छोडकर ६ लोगोको गिनकर बताया। उस सूझते पुरुषने बताया कि हम तुम्हारे १०वें मित्रको बता देंगे। तो उन्होने समझा कि इसने कही देखा होगा तो हमे हमारे मित्रको बता देगा। सभी बडे खुश हुए और कहा बतावो। उसने क्या किया कि सभीको एक लाइन मे खडा किया, एक हाथमे एक डडा लिया और एक तरफसे एक एक डडा धीरे धीरे मार कर बताता जाय–देखो एक, दो, तीन, चार, पाँच, छ, सात, आठ, नौ और १०वें को जरा जोरसे मारे ताकि ध्यान रहे, कहा १०वें तुम हो, यो ही सभीको अतमे जोरसे मारकर बतावें कि १०वें तुम ही हो। तो भाई जब भ्रम था तब उन्हे कितना कष्ट या कितनी विह्वलता थी, कितना अधेरा था ? जब भ्रम मिट गया तो यद्यपि सिरसे खून अभी भी बह रहा है, बद नही हुआ है, फिर भी वे आकुलित नही है। भ्रममे बहुत बडी आकुलता होती है।

संसरणका मूल भ्रम—भ्रमवश ही लोग इस ससारमे भटक रहे है। मेरा यह गया, मेरा वह गया, मेरा यह मिटा, मेरा वह मिटा। अरे इसमे किसीको मिटनेका क्लेश नही है। क्लेश तो इस बातका है जो परपदार्थको मान लिया है कि यह मेरा है, इस कारण जब तक भ्रम है तब तक यह दु खी रहेगा। सभी जीव मिथ्यात्वके रगमे पगे हुए है, वे इस देहको ही अपना सर्वस्व समझते है। कुछ ही विरले जीव मिथ्यात्वसे छूटे हुए हैं।

कषाय और योगका प्रभाव—अनेक जीव कषायसे युक्त है, और कुछ बिरले जीव कषायसे रहित है। जिन जीवोंके मिथ्यात्व पाया जाता है उनके कषाय तो अवश्य होती है और जिन जीवोके कषायें पायी जाती है प्रायः उनके मिथ्यात्व होता है, पर नियम नही है, कषाय हो उसके साथ मिथ्यात्व हो भी सकता, नही भी हो सकता है, इससे समझिये कषायका रग मिथ्यात्वसे हल्का है। ज्ञानी सम्यग्दृष्टि साधु-सत पुरुषोके भी परिस्थितिवश कषाय जगती है, पर मिथ्यात्व नही है, अनेक जीव कषायसे युक्त हैं और विरले जीव कषायसे रहित हैं। कर्म आश्रयका कारण है योग। प्रदेशोका सकम्प हो जाना, हलन-चलन होना योग है। अनन्त जीव योगसे सहित है और बिरले जीव योगसे रहित है।

जीवविस्तारविवरणसे शिक्षा—यो इन सब जीवोमे एक प्रकरणवश इतने भेद कर लिये है। उनमे अनन्त तो सिद्ध जीव है और सिद्ध जीवोसे अनन्तगुणे ससारी जीव है। यो समस्त जीव सिद्ध और ससारी इन दो भागोमे विभक्त हैं। हम इस कथनसे यह शिक्षा लें कि सर्व प्रकारकी आशाका त्याग करके यहाँ तक कि जीनेकी भी आशा न बनायें, और अन्तरङ्ग मे यह देखें कि शुद्ध जीवोके सदृश परमानन्दस्वादसे तृप्त अथवा आनन्दमय यह शुद्ध जीवास्तिकाय ही दृष्टिमे लेने योग्य है।

जह पउमरायरयणं खित्तं खीरे पभासयदि खीरं ।
तह देही देहत्थो सदेहमत्तं पभासयदि ॥३३॥

दृष्टान्तपूर्वक जीवकी देहप्रमाणताका कथन—जैसे दूधमे पद्मरागरत्न डाल दिया जाय तो वह समस्त दूधको अपने रग रूपसे प्रकाशित करता है, इसी प्रकार यह जीव देहमें स्थित होकर अपनी देहमात्रको प्रभासित करता है । इस गाथामे जीवकी देहप्रमाणताका वर्णन किया है । जैसे दूधमे पद्मराग रत्न डाल दिया जाय तो जैसा उसका रूप है वही रूप समस्त दूधमे फैल जाता है, इसी प्रकार यह जीव अनादिकालसे कषायोकी मलिनताके कारण शरीरमे रहता चला आया है । जब जिस शरीरमे रहा तब अपने प्रदेशसे उस शरीरमे व्याप करके रहा ।

एक देहमे जीवप्रदेशोका संकोच विस्तार—जैसे उस ही दूधमे पद्मराग पडा है और उसे गर्म करके चूल्हेपर रख दिया तो अग्निके सयोगसे वह दूध उबलने लगता है । मानो सेर भर पानी है तो वह डेढ-दो सेर दूध जितनी जगह घेर लेता है । उस उफानमे भी उस रत्न का रग रहता है और जब अग्निके कम हो जानेसे उस दूधका उफान शान्त हो जाता है तो वह रग भी सकुचित हो जाता है । इस ही प्रकार इस शरीरमे विशेष आहार देने आदिके कारण जब यह शरीर बढ़ता है तो जीवके प्रदेश भी फैल जाते है, और जब यह शरीर बुढापे आदिके कारण या आहार देनेका सुयोग न होनेके कारण दुर्बल होता है, घटता है तो ये जीव के प्रदेश भी सकुचित हो जाते है ।

देहान्तरमें जीवप्रदेशोका संकोच विस्तार—जैसे वही पद्मराग रत्न एक बर्तनमे से निकालकर किसी बडे दूध वाले बर्तनमे डाल दिया तो जो रग पहिले थोड़े दूध वाले बर्तनमे चमक रहा था वह बडे बर्तनमे फैलकर चमकने लगा । ऐसे ही यह जीव किसी छोटे शरीर को छोडकर किसी महान शरीरमे पहुच जाता है तो अपने प्रदेशोके विस्तारसे उस महान शरीरमे पहुच जाता है तो अपने प्रदेशोके विस्तारसे उस महान शरीरको व्याप लेता है । वही पद्मराग रत्न पहिले दूध वाले बड़े बर्तनसे निकालकर छोटे बर्तनमे थोड़े दूधमे डाल दिया जाता है तो वह रग प्रकाश सकुचित होकर उतनेमें ही फैलता है । ऐसे ही यह जीव बडे शरीर से निकलकर छोटे शरीरमे आया तो अपने प्रदेशोका सकोच करके अपने पाये हुए अणु शरीर मे ही व्यापकर रह जाता है ।

जीवके आकारकी सापेक्षता—इस जीवका आकार, चूंकि यह जीव भावात्मक पदार्थ है, इस कारण इसका स्वयका स्वयके कारण कोई आकार नही हो सका । जीवमे आकारकी प्रमुखता नही है, भावोकी प्रमुखता है । कोई जीवके आकारका विचार बनाकर जीवके फैलाव को दृष्टिमे लेकर क्या आत्मानुभव कर सकेगा ? मैं जीव इतना बडा हू, पैरोंसे लेकर सिर तक इतने लम्बे चौडे मोटे विस्तार वाला हू, इस ही को नजरमे रखिये और जीवके आकारको

निरखकर आत्मानुभव किया जाय तो आत्मानुभव नही होता। मैं जाननमात्र हू, इस ज्ञानस्वभावको दृष्टिमे लिया जाय, यही एकमात्र उपयोगमे रहे वहाँ आत्मानुभव हो जायगा। इसीलिए बताया है--ज्ञान एव आत्मा। जो ज्ञान है वही आत्मा है। इस जीवका आकार अनादि कालसे शरीरकी अपेक्षा रहा आया है। जितने शरीरमे यह जीव रहा उतने शरीरप्रमाणमे यह जीव फैलता रहा, सिकुडता रहा। ससारअवस्थामे यह जीव सदा देहप्रमाण रहा और मुक्त अवस्थामे भी इस जीवके अपने ही सत्त्वके कारण कोई आकार नही बना, किन्तु जिस देहसे यह मुक्त हुआ है,- जिस शरीरको छोडकर यह सिद्ध भगवान बना है उस शरीरके परिमाण (बराबर) सिद्धके आत्माका परिमाण हुआ है।

आत्मानुभवमे स्वभावदृष्टिका वियोग—जीवका स्वरूप बतानेके प्रसगमे आकार बताया जा रहा है, किन्तु आत्मानुभवके लिए यह विषय मुख्य न बनेगा। जानकारी होना हर प्रकार जरूरी है। अपने आपके सम्बधमे अपनी सब जानकारी होनी ही चाहिए। सर्व प्रकारकी जानकारी रखकर फिर यह अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव कर लेगा। कोई कहे कि इस जीवके बारेमे और बातोकी विचार करनेकी क्या जरूरत है ? जीव कर्ता है, भोक्ता है अथवा नही है, देह बराबर है, इतने प्रदेश है, इन सब बातोके समझनेकी क्या आवश्यकता है ? आत्मानुभूतिके लिये तो एक अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव कर लिया जाय, किन्तु बात ऐसी होनी नितान्त कठिन है। हम जीवके सम्बधमे जब बहुमुखी परिचय पायें तो हममे वह पात्रता जगेगी कि हम अपनेको तब ज्ञानमात्र भावनामे लेकर अनुभव कर सकें।

देहोकी सतति—इस जीवने मिथ्यात्व रागादिक विकल्पोको कर करके जो कर्म उपार्जित किया है, जिसमे शरीर नामक कर्म भी है, उसके उदयसे जब जो शरीर मिला है उसके अनुकूल इसका विस्तार और उपसहार होता है। यह जीव बडीसे बडी देहकी अवगाहना पाये तो एक हजार योजन लम्बा, ५०० योजन चौडा और २५० योजन मोटा महामत्स्यका शरीर पा लेता है और छोटेसे छोटा शरीर पाये तो घनागुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण छोटा शरीर पा लेता है। घनागुलका अर्थ है एक अगुल लम्बा, एक अगुल चौडा और एक अगुल मोटा, उसका असख्यातवा भाग, अब सोच लो कितना छोटा होता होगा ? इतना छोटा शरीर पा लेता है। इस जीवने क्षेत्रपरिवर्तनमे इस अणु शरीरसे एक-एक प्रदेश बढ-बढकर क्रमसे भी महामत्स्यकी अवगाहना प्रमाण शरीर प्राप्त किया। इसमे यह तो नियम नही है ना कि जो शरीर पाया है उससे एक प्रदेश और बढकर फिर शरीर तुरन्त मिले। कैसा ही शरीर मिले ? जब उससे एक प्रदेश बढकर कोई शरीर मिला तो उसे परिवर्तनमे शामिल कर लिया। इतने शरीर इस जीवने धारण किये और जब जब जिस शरीरको पाया तब तब उस शरीरको ही आत्मसर्वस्व माना।

देहकी घनिष्टता—हम आपको जो भी शरीर प्राप्त है उससे भी सुन्दर मजबूत पुष्ट, रगा चगा और का शरीर दिख जाय तो उसमे आत्मीयता नही जगती, यह मै हू ऐसी प्रतीति उसमे नही बनती और खुदका अधिष्ठित यह शरीर चाहे दुर्बल हो, काला हो, कुरूप हो उसमे आत्मीयता रहती है। किसी बुड्ढेसे कहो कि तुम वृद्ध हो गये, तुम्हारे गाल बैठ गये, दाँत टूट गये, अब तुम कुरूप हो गये, तुम इससे मोह न करो। देखो यह अमुकका लडका है, यह कितना सुन्दर है, इससे मोह ममता कर लो तो उससे वह मोह ममता नही करता। वह तो अपने ही शरीरसे मोह ममता करता है। उसे तो जैसा भी अपना शरीर मिला, वही रुचेगा। उसे ही अपना सर्वस्व मानेगा। यह सब क्यो हुआ ? इस जीवके अज्ञान बसा हुआ है। इसे अपने ज्ञानस्वरूपकी सुध नही है। अरे मै जिस स्वरूपसे रचा गया हू वह ज्ञानमात्र है। कितना पवित्र स्वरूप है, उसमे गदगीका कही नाम नही है, न इसमे द्रव्यात्मक गदगी है और न भावात्मक। अपने स्वरूपको निहारो, इस स्वरूपमे अशुचिताका कही काम ही नही है।

शुचिदर्शन बिना अशुचिभावनासे असन्तोष—हम आप अशुचि भावना भाया करते है, शरीर शरीर पर ही दृष्टि रखकर भावना भाते है—हड्डी मल मूत्र पीप आदि इसमे सभी गदे पदार्थ है। "दिपै चाय चादर मढी हाड पीजडा देह। भीतर या सब जगतमे और नही घिन गेह ॥" इस देहके बराबर घिनावना पदार्थ और कुछ नही है। मोह दशामें इस जीवको घिनावनी जगहमे राग होता है। क्या यह बता सकते हो कि इस शरीरमे सबसे अधिक घिनावने पदार्थ किस जगह है ? सबसे अधिक घिनावने पदार्थ चेहरेमे मिलेंगे, मुंहपर मिलेंगे। लार, थूक, कफ, नाक आँखका कीचड कनेऊ ये सब गदे पदार्थ इस चेहरेमे ही है। लोकमे व्यवहार इस चेहरेको देखकर ही बनता है, लोगोका आकर्षण चेहरेको देखकर ही होता है और इस चेहरेमे अधिकाधिक मल भरे हुए है। यह सब वर्णन कर लेते है कि यह शरीर घिनावना है पर इतनेसे सन्तोष नही हो सकता। यह क्षणिक भावुकता है। थोडी देरको इस शरीरका घिनावनापन नजरमे आया और थोड़ी ही देर बाद इस शरीरसे बढकर है भी क्या दुनियामे, ऐसी वासना बना ली। कुछ विचारोका स्थायित्व नही रहता, शरीरको अपवित्र तो देखा पर यहाँ पवित्र भी कुछ है कि नही, इसे न देखा। अपने आत्माका स्वरूप निरखो, यह शुचि है, पवित्र है, उत्कृष्ट है। जो अपने इस पवित्र स्वरूपको नही निहार पाता है, इसकी ओर विचार भी जो नही करता वह यह शरीर अपवित्र है, ऐसा गाता रहता है, वह सतोष नही पाता।

शुचि तत्त्वकी भावना—भैया ! शरीर तो अपवित्र है, मगर उसमे कुछ पवित्र भी है कि नही ? यदि नही है पवित्र तो और भी उलझनमे डाल दिया। जो कुछ भी यहाँ दिख रहा है वह सब अपवित्र ही अपवित्र दिख रहा है। कही लोग बडी भीडमे थोडी देर बैठ जायें, सभी लोग पसीनेसे लथपथ हो जाये तो इस शरीरकी गर्मीसे बदबू नजर आने लगेगी।

तो जो अपवित्र ही अपवित्र निरख रहा है सब कुछ, कुछ पवित्र भी है इस शरीरमे, इसको पहिचानता भी नही है तो वह तो और भी घबडा जायगा, इन विचारोंने और दु खी कर डाला उसे। अरे शरीरकी अपवित्रता जानना तो ठीक है, मगर अपने स्वरूपकी पवित्रताका परिचय न हो तो सतोष कहाँ करेगा यह जीव ? इस जीवका स्वरूप, इस जीवका स्वाभाविक विकास, उस विकासका सामर्थ्य तो इतना है कि तीन लोक तीन कालकी समस्त द्रव्य गुण-पर्याये एक समयमे ही प्रतिभासमे ले लेता है, किन्तु ऐसी समर्थ विशुद्ध शक्तिका श्रद्धान न होनेसे, चैतन्य चमत्कार मात्र शुद्ध जीवास्तिकायका भान न होनेसे मिथ्यात्व कषाय रागद्वेष इन रूप परिणाम रहा और इन परिणामोसे जो जैसे कर्म उपार्जित किया उसके अनुसार शरीर शरीरपर शरीर रचते चले जा रहे है।

जीव और देहके विज्ञानसे शिक्षण—अब इस प्रकरणमे जीव देहप्रमाण मानकर जान-कर क्या शिक्षा लें ? यहाँ इतने सकोच विस्तार हो रहे हैं, कितनी पराधीनता है इस जीव की ? मनुष्य कभी मरकर पेड बन जाय तो कैसी-कैसी शरण रहनी, पत्ते, फूल, फल आदि रूपमे यह पसर जायगा। यह अमूर्त जीव ज्ञानदर्शनस्वभाव वाला जीव और कैसा-कैसा इसे पसरना पडा, यह आकृतिकी कितनी पराधीनता है ? यद्यपि आकार जीवका कुछ भी रहे उससे जीवको बाधा नही है। जीवको बाधा तो दु खरूप परिणाम हो तब होती है, लेकिन जीव जिनके अग उपाङ्ग नही है या ऐसे विचित्र अगोपाग हैं, वे उन शरीरोमे रहते फिरते हैं, उनके मोह ममता तो है ही सो दु ख ही चल रहा है। क्लेश जीवके प्रदेशोंके फैलने सिकुडनेसे नही है, क्लेश तो अपने विकारोसे है, कल्पनावोसे है। ऐसा उद्यम करना अपना कर्तव्य है कि इन शरीरोका प्राप्त होना ही समाप्त हो जाय, समाप्त नाम है भली प्रकार पूर्ण पा चुकना। बस पा चुके, अब पानेका काम नही रहा। जहाँ पानेका काम नही रहा, उसे कहते है समाप्त। ऐसा उद्यम करो कि जिससे शरीरोका मिलना ही समाप्त हो जाय। उसका उपाय है शरीररहित चैतन्यचमत्कार मात्र निज अन्तस्तत्त्वका श्रद्धान बनाये, उपयोग बनायें और ऐसे ही ज्ञानमे अपनेको रमा दें तो यही सर्व सकटोके विनाशका उपाय है।

स्वतत्त्व और परतत्त्वके प्रयोगमे लाभालाभ—भैया ! अन्य-अन्य पदार्थोंको उपयोगमे लेनेसे कोई लाभ न मिलेगा, क्योकि वे सब बाह्यपदार्थ है, उनको दृष्टिमे लेनेसे इस जीवको निर्विकल्प स्थिति न प्राप्त होगी। निर्विकल्प ज्ञान होनेसे ही, प्रतिभासमात्र लेनेसे ही निर्वि-कल्पता जगेगी। यह मोह ममता कुटुम्ब धन वैभव जिनको पाकर हर्षमग्न हो रहे है, ये सब समागम इस जीवके विकारके, विपत्तिके कारण है। अतएव अहित करने वाले है। इन समा-गमोसे जीवको कुछ भी लाभ नही है। अपनेको लाभ तो अपनेको शुद्ध महज अपने आपमे जो स्वरूप है इतना मात्र अपनेको श्रद्धान करनेसे ही मिलेगा। जिनसे मैं न्यारा हू उन तकका

भी विकल्प न रक्खें। मैं सबसे न्यारा हू—यह तो ज्ञानके कदममे पहिला कदम है और मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हू, ऐसा उपयोग जगना यह उसके बादका कदम है। ज्ञानानुभूतिके लिए जिन से मैं न्यारा हू उनका भी नाम मत लें, उन्हे ध्यानमे मत लें। मैं न्यारा हू यह भी सुध न ले, किन्तु मैं ज्ञानस्वरूप हू, ज्ञानमात्र हू, ऐसी सुध लें, ऐसा ही उपयोग बनावे तो इस स्वरूपकी दृष्टिसे अपनेको ज्ञानकी अनुभूति होगी। देहप्रमाण जानकर यह ध्यानमे लावे कि मैं ज्ञानमात्र हू। अभी तक भ्रमवश नाना देह पाये, इन देहोसे छुटकारा पानेमे ही हमारा कल्याण है। अब मैं अपने स्वरूपको सभालू और देहोसे छुटकारा पानेका यत्न करू।

सव्वत्थ अत्थि जीवो ण य एक्को एक्ककाय एकट्ठो।
अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजेहि ॥३४॥

जीवकी प्रवर्तमानता—पूर्व और अपर भवके शरीरोमे वही-वही एक जीव है। यह नही है कि जब जब नवीन शरीर मिला तो उस शरीरके ही साधनोसे उसमे नया जीव उत्पन्न हुआ। जीव वही है, वह नवीन-नवीन शरीर वर्गणावोको प्राप्त होता है, तिसपर भी शरीरके साथ जीवकी तन्मयता नही है और एक नयसे देखा जाय व्यवहार दृष्टिसे तो इस देहके साथ जीवकी एकता भी है। नय दो प्रकारके होते है—निश्चयनय और व्यवहारनय। केवल एकको निरखने वाला निश्चयनय होता है और एक को न निरखकर अनेकको निरखने वाला व्यवहारनय होता है। व्यवहारनयमे बन्धन सम्पर्क ये सब सम्बन्ध विदित होते है। निश्चयमे चू कि यह नय केवल एक को ही निरखता है इस कारण यह सम्बन्ध नही बन सकता। इस प्रकरणमे एक अकेला भी देखते जावो और बन्धन भी निरखते जाओ।

जीव और देहकी एकता और अनेकता—क्षीर और नीरकी तरह यह जीव और देह व्यवहारदृष्टिसे देखा जाय तो एकार्थ है, अभिन्न है। जैसे जो स्तनोसे दूध निकलता है उसही दूधमे दूध भी है और पानी भी है। दूध निकालनेके बाद पानी मिलाया जाय उसकी बात नही कह रहे है किन्तु जो दूध निकलता है उस दूधमे दूध भी है और पानीका अश भी है, दोनो मिले हुए है अथवा दूध निकलनेके बाद पानी डाल दिया तो वे दूध और पानी एकमेक हो जाते है व्यवहारदृष्टिमे। वहाँ यह नही है कि एक गिलासमे ऐसा दूध हो तो नीचे दूध दूध हो और ऊपरके आधे गिलासमे पानी हो या नीचे पानी हो और ऊपरके अर्द्धभागमे दूध हो ऐसा तो नही है। वह जैसे एकमेक मिला हुआ है इस ही प्रकार यह जीव और यह देह भी एकमेक इस सम्बन्धमे है।

जीवकी व्यापकता—यह जीव पूरे देहमे है, इस देहके किसी हिस्सेमे ही नही है, समस्त देहमे जीव है और एक जीवकी अनादिसे अनन्तकाल तक अथवा जब तक देह है, तब तक जितने भी देह मिले है सबमे यह जीव व्यापक रहा। अथवा एकेन्द्रिय जीवसे तो यह

समस्त लोक खचाखच भरा हुआ है। यह जगह जहाँ हम पोल समझते है, इस जगहमे कुछ नजर नही आ रहा है, पर उस जगहमे एकेन्द्रिय जीव ठसाठस भरे पडे हुए हैं। जो जीव सर्वत्र भरे पडे है उनका नाम निगोद है। ये निगोद वनस्पतिकायके जीव है, ये अत्यन्त सूक्ष्म हैं। कोई तो साधार होते हैं और कोई निराधार होते है। जो हरी वनस्पतिके सहारे है निगोद वे तो साधार है और ये जो प्रत्येकवनस्पतिके बिना सर्वत्र फैले हुए है ये निराधार है। निराधारका अर्थ यह है कि वे किसी दूसरे जीवके शरीरके आधारपर नही हैं। उन निगोद जीवोका कोई एक शरीर है जिस शरीरके आधार निगोद ही निगोद है। वहाँ प्रत्येकवनस्पति नही है। यो एकेन्द्रिय जीवसे भरा हुआ यह समग्र लोक है।

जीवसमूहकी एकरूपता व नानारूपता—वह जीवसमूह यद्यपि केवलज्ञानादिक गुणो की दृष्टिसे एकरूप है तो भी वे नानारूप हो गये है शरीर भेदसे। जैसे नाना रग वाले कपडेमे रखा हुआ स्वर्ण-स्वर्ण तो वह एक ही प्रकारका है, पर भिन्न-भिन्न रगके वस्त्रमे पडा है, ऐसे ही यह जीव अपने आपमे तो एक ही प्रकारका है। हम है, आप है, सबमे स्वरूपदृष्टिसे एक-रूपता है इस जीवमे, किन्तु देहके सम्पर्कसे इसमे यह नानारूपता बन रही है, और अज्ञान साथ छाया है सो इसे अपना कुछ नही दिखता। यह मायारूप इन्द्रजाल ही सब कुछ नजरमे आता है। यह जीव एक देहको छोडकर नवीन देहमे क्यो उत्पन्न होता है? इसमे रागद्वेष मोह लगा है, शरीरके अपनायेतकी बुद्धि इसमे पडी है। उन रागद्वेष भावोंसे मलिन होकर कर्मरजसे यह ऐसी चेष्टा करता है कि एक देहको छोडकर नवीन देहको ग्रहण करता है। यह आत्मा ससार अवस्थामे क्रमसे होने वाले अन्तरके जो नाना शरीर मिलते रहे है उनमे जो ही एक शरीरमे रह रहा है वही जीव क्रमसे अन्य शरीरमे चलता है।

शाश्वतताका स्मरण—हम आपकी सत्ता अनादिसे है, कुछ इस भवमे आकर अबसे हम आपकी सत्ता नही हुई है, हम अनादिसे है और इस देहको त्यागकर भी हम आगे रहेगे। हमारा सत्त्व शाश्वत है, पहिले भी था, आगे भी रहेगा। अब यह देखो कि इस पहिलेके समस्त कालके सामने और भविष्यके समस्त कालके सामने यह ५०, ६०, ७० वर्षका जीवन कितना अनुपात रखता है? एक बडे लाखो करोडो अरबो योजन वाले समुद्रमे एक बूद जितने अनुपातमे आता है उतने अनुपातमे भी यह हम आपका १००-५० वर्षका जीवन नही है। समुद्रमे एक बूंदका तो कुछ हिसाब हो गया, पर इस अनन्तकालके सामने १०० वर्षके जीवन का कुछ भी हिसाब नही है। कही लेखेमे ही नही आता। इतने थोडे कालमे पाये हुए इन सब समागमोमे इतने काल तो हम मायामे मुग्ध न हो।

निर्मोहताका साहस—भैया! ऐसा साहस बनायें कि जब इस व्यतीत हुए अनतकाल मे अनेक समागम पाये, वे भी नही रहे तो वर्तमानमे जो भी समागम मिले है उनमे मुग्ध न

हो, क्योकि ये समागम भी शीघ्र ही बिछुड जायेंगे। जो भी पहिले पाये हुए समागम हम आपने छोडे वे चाहे अपने आप छूट गये हो, चाहे जबरदस्ती छोडने पडे हो, पर वे छूटे कि नहीं ? तो जब हमने अनन्त भवोंके बडे-बडे वैभव समागमोका भी ख्याल छोड दिया तो कुछ गिनतीमे भी न आ सकने वाले इस ५०, ६०, ७० वर्षके जीवनमे हम परपदार्थोंका मोह न करे तो हम अपूर्व आत्मीय चमत्कार प्राप्त कर सकते है। चमत्कार क्या ? निराकुलता, शान्ति।

धर्मध्यानकी पद्धतियां—धर्मध्यान ४ प्रकारके बताये गये है, आज्ञाविचय—भगवानकी आज्ञा मानकर धर्मसेवन करे। भगवानके वचन हम पाल रहे है, मदिर आ रहे है, शास्त्र सुन रहे है, व्रत पाल रहे है, भगवानका वचन है। भगवानके वचन झूठ नही होते, ऐसी आज्ञा मानकर धर्मपालनमे लगना, यह भी एक धर्मध्यानका तरीका है। कुछ गहरा चिन्तन करना, मेरा स्वरूप क्या है, ये रागादिक भाव वैरी बनकर, मुझमे ही स्थित होकर मुझे ही बरबाद कर रहे है, इनका विनाश हो। रागद्वेषके विनाशमे ही अपना कल्याण है, आदिक चिन्तन करना, यह भी धर्मध्यानकी पद्धति है, और कर्मोंका फल विचारना—ये सब जीव स्वत तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप है, पर कर्म सम्पर्कमे क्या-क्या स्थिति बन रही है जीवपर ? कैसे-कैसे फल बडे-बडे पुरुषोको भी भोगने पडे है, ये कर्म बडे दुर्निवार है आदिक कुछ भी चिन्तन करना, यह भी एक पद्धति है, और स्पष्ट उत्कृष्ट एक पद्धति है जिसका नाम है सस्थानविचय। तीन लोक और तीन कालकी बातें परोक्षरूपसे जानना, हम समझते है कि इसे अपने उपयोगमे लिए रहे, यह धर्मध्यानकी उत्कृष्ट पद्धति है। इसमे क्या प्रभाव है ? जब हमारी दृष्टिमे तीन लोककी रचना बनी रहे, अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्द्धलोक, इनका विस्तार कैसे-कैसे जीव-समूह और कालकी बात समाई रहे, कितना काल बीता, कितना काल बीतेगा, वर्तमानमे कितना काल है, यह काल और लोककी बात सामने रहे तो उसको व्यसन, पाप, दुर्भावना, कुवासनाको अवसर नही मिल सकता। यह एक बडी विशिष्ट पद्धति है। और इस पद्धतिका पूर्ण अधिकार साधु जनोको बताया है।

बहिरात्माका मुख्य कार्यक्रम—यह जीव यद्यपि शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिसे केवलज्ञान, केवलदर्शन स्वभाव वाला है तो भी अनादिकालसे कर्मबन्धनके वशसे मिथ्यात्व रागादिक विभावरूप परिणमनके कारण द्रव्य कर्ममलोंसे वेष्टित होकर इनका काम केवल एक रह गया बस, एक शरीर छोडना दूसरा शरीर पाना। इस ससारी जीवका मुख्य प्रोग्राम क्या है, मुख्य कार्यक्रम क्या है इसको खूब निरख लें। सर्वत्र देख लो, ससारी जीवका यही एक धधा लगा हुआ है, जन्म लिया, थोडासा जिन्दा रहे, कुछ भी गिनती नही कि वह कितनासा समय है ? जन्म लिया और मर गये। देखिये जैसे कोई लम्बा-चौडा है, मान लो ताडका पेड है, उस

पेडके ऊपर कोई फल लगा है, वहाँसे फल टूटे और जमीनपर आये तो यह बतलावो कि बीच मे कितनासा समय लगेगा ? बिल्कुल थोडासा समय लगेगा। यो ही जन्मको तो समझ लीजिए। अपनी जगहसे टूटनेकी स्थितिके निकटपूर्वकी दशा और मरणको समझ लीजिए उस जगहपर गिरनेकी स्थिति। तो इस जन्म और मरणके बीचमे कितनासा समय लगेगा ? बिल्कुल थोडासा। तो इस ससारी जीवका मुख्य प्रोग्राम एक ही है—जन्म लेना और मरण करना।

धर्मके लगावका अनुरोध—भैया ! जरा दृष्टि तो दो अपने स्वरूपकी ओर। अरे हमे फुरसत नही है, बहुत बडा काम लगा है। क्या काम लगा है ? मरना और जन्मना। फुरसत नही है, और यहाँ भी देख लो कोई धैर्य नही रखता, कोई हितके लिए अवसर नही देता। बीमार हो जायेगे तो दो महीना खाटपर पडे रहेंगे, पर यह न होगा कि जितने समय हम हट्टे-कट्टे है, चलते-फिरते हैं, चलो उतना ही हिसाब लगा लें कि साल भरमे दो महीना बीमार हुए तो दो महीनेके लगभग १४४० घटे हुए, इतने घटे बैठे रहे तो इतने ही घटे साल भरमे धर्म करनेके लिए निकाल लें, ऐसा नही हो पाता। इकट्ठा दो महीने खाटपर पडे रहनेमे ही भला लगता है। कुछ घटना घट जाय महीनो बेकार पडे रहेगे, फिर फुरसत रहती कि नही ? और मृत्यु हो जाय तब तो फिर फुरसत ही फुरसत है। जितने समय तक हट्टे-कट्टे हैं, बुद्धि चलती है, कुछ ज्ञानदृष्टि कर सकते है उतने समय तक तो कुछ धर्ममे समय लगावें। चौबीसो घटे कोई कमाई भी तो नही करता है, किन्तु मनकी ऐसी स्वच्छन्दता है कि मन को गप्पोमे लगाते रहेगे, फिजूलके कामोमे मनको लगाते रहेगे, पर ज्ञानके काममे, धर्मके काममे चित्त नही लगा सकते।

देहविविक्तता—यह जीव अनेक देहोमे बसकर भी अपने आपके स्वरूपमे ही बसा करता है, देहमे नही बस रहा है, इस बातको समझनेके लिए आपका अनुभव प्रमाण होगा। आप अपनी दृष्टिको इस देहकी ओर न लगाकर, अपने ख्यालमे इस देहको न रखकर केवल एक ज्ञानप्रकाश मात्र मैं हू, ऐसी दृष्टि बनाकर रह जायें तो अपना यह अनुभव चल जायगा कि मैं देहसे अत्यन्त पृथक् हू, अत्यन्त निर्मल हू, इस देहसे विविक्त निजस्वरूपमात्र अतस्तत्त्व को दृष्टिमे लेनेसे इन शरीरोके मिलनेकी जो परम्परा चल रही है वह भी समाप्त हो जायगी।

प्रमादका परिणाम—हम आपने आज मनुष्य शरीर पाया है। इस मनुष्य शरीरको पाकर हम आप घमड बगराते है। अरे मगरमच्छ इत्यादिके शरीरोको तो देखो—और आप लोगोंने प्राय मगर देखा ही होगा। कितना थूलमथूला अटपटा शरीर इन मगरमच्छ इत्यादि जीवोका होता है ? ये जीव देखनेमे कितने अटपटेसे लगते है, और भी अनेक प्रकारके कीडा-मकोडोमे शरीर ऐसे देखनेको मिलेंगे जो बेढब होते है, मगर इस जीवको ऐसा अटपट शरीर

मिले वहाँ भी उसी तरह नाचता फिरता है, उसी शरीरमे रमता है। चेते नही तो ये ही तो शरीर मिलने है। यह दो हाथ पैर वाला शरीर बार-बार नही मिला करता। कुछ अपने कल्याणकी ओर भी आना चाहिए।

धनका अमहत्त्व—भैया! यह धन ही सब कुछ नही है। और सब कुछ क्या, कुछ भी नही है। इस धनके बिना भी तो गुजारा हो सकेगा। होता है बहुतोको देख लो। सम्यग्दृष्टि जीव चाहे भीख माँगकर पेट भर ले, पर वह धनको बडप्पन नही देता, परवस्तुका वह महत्त्व नही आकता। यह तो एक परिस्थितिवश गुजारेकी बात है। इस धन वैभवका महत्त्व देनेसे, इसकी चिन्तामे रहनेसे कुछ काम भी नही सरता। जिसके आना होता है, कुछ पता नही कि कहाँसे आता है? जिसके नही आना होता है, जाना होता है कुछ पता नही कहाँ चला जाय?

दृष्टान्तपूर्वक वैभवकी पुण्यानुसारिताका समर्थन—नारियलके फलमे आप बतलावो पानी कहाँसे घुस जाता है? उसका बडा मोटा छिलका होता है, जिसमे सूई भी नही प्रवेश कर सकती, ऐसे उस मोटे छिलके वाले नारियलके बीचमे पानी कहाँसे आ गया? उसे फोडते है तो उसके अन्दर पानी निकलता है। और हाथी कैथको खा ले और दो-तीन दिन बाद उसे लीदमे निकाल दे तो शायद देखा हो कही कि वह कैथ पूराका पूरा निकल आता है, उस कैथमे कही भी छिद्र न मिलेगा, किसी ओर फटी रेखा तक न मिलेगी, और उसे हाथ से उठाकर देखो तो करीब दो तोलेके वजनका वह निकलेगा। अरे जिस समय हाथी उसे निगल गया था तब तो वह करीब पाव भरका था। अब उसका सारा गूदा कहाँसे निकल पाया जब कि उसमे कोई छिद्र आदि भी नही है। तो जैसे नारियलके फलमे पानी कहाँसे आ जाता है? कुछ पता नही, आ जाता है, ऐसे ही पुण्यके उदयमे ये समागम कहासे आ जाते है? कुछ पता नही, आ जाते है। जैसे उस कैथका रस कहाँसे निकल गया? पता नही, निकल गया, ऐसे ही पापके उदयमे इष्ट समागम कहाँसे खतम हो गया, निकल गया? पता नही। तो इस धन वैभवको इतना महत्त्व देना, उसकी चिन्ता करना, उसमे ही अपना समय बिता देना, यह विवेककी बात नही है। ज्ञानोपयोग बनायें, ज्ञानदृष्टि बनाये, इसमे ही आत्मा का लाभ है, इसमे ही आत्माको शान्ति मिलेगी, निराकुलता होगी।

उपादेय तत्त्व—यह जीवतत्त्व देहसे अत्यन्त पृथक् है, किन्तु अनादि बन्धनमे कर्मलेप रहनेके कारण नाना अध्यवसानोसे, विशिष्ट होनेसे यह कर्मजालसे मलीमस हो रहा है। जो इस जीवके विभावमे हो वही चेष्टा करता है। तब इसका फल यह है कि एक शरीर छोड़ा, नवीन शरीर ग्रहण किया। शरीर ग्रहण करना, छोडना, ग्रहण करना, छोडना, यही मुख्य कार्यक्रम ससारी जीवका बना हुआ है। इस प्रकरणसे हम यह दृष्टिमे ले कि देहसे भिन्न

ज्ञानादि गुण सम्पन्न जो शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्व है वही सर्वप्रकारसे उपादेय है, ये बाहरी समागम उपादेय नही है, लक्ष्यमे ये बाहरी समागम लेने योग्य नही है। यह परिस्थिति है। परिस्थिति ही समझकर उनसे लिपटें, पर करने योग्य बात तो अपने आत्मामे शाश्वत प्रवर्तमान जो ज्ञानस्वभाव है, हमारा प्राण है, सहज स्वरूप है, उस स्वरूपको ही हम दृष्टिमे ले, इसमे ही हमे शान्तिका उपाय मिलेगा। हम ज्ञान बढायें, भेदविज्ञान करें, आत्माकी उपासना करे, इसमे ही हम आपकी भलाई है।

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदादा ॥३५॥

अशुद्ध जीवत्वका अभाव—सिद्ध भगवानके स्वरूपके वर्णनमे कहा जा रहा है कि जिनके जीवस्वभाव तो नही है, फिर भी उनके सर्वथा अभाव नही है। जीवस्वभावसे यहाँ तात्पर्य द्रव्यप्राण और भावप्राणके धारण करनेसे है। सिद्ध भगवानमे जीवत्व नही है, क्योकि द्रव्यप्राण और भावप्राणसे अपने स्वरूपको नही रखते, फिर भी उनका सर्वथा अभाव नही है। यहाँ मुख्य दृष्टि इस ओर देना है कि दुनियाको और कुछ दार्शनिकोको जिन्हे जीवस्वभाव का परिचय है वह है अशुद्ध जीवस्वभाव, रागद्वेष आदिक भाव। और अतरमे चलो तो क्षायोपशमिक ज्ञानादिक भाव इन सब भावोका सिद्ध भगवानमे अभाव है और कुछ दार्शनिक भी किन्ही शब्दोमे ऐसा मानते भी है।

दार्शनिको द्वारा भी अशुद्ध जीवत्वके अभावका समर्थन—कोई दार्शनिक कहते है कि जैसे दीपक बुझ गया, इस तरहसे आत्मा बुझ गया। जब तक इसमे जानने समझनेकी चेतना रहती थी तब तक यह अशुद्ध था, ससारमे रुलता था। जब इसकी चेतना बुझ गयी, जानना देखना यह सब दूर हो गया तो उसकी मुक्ति हुई। कुछ लोग तो ससार अवस्थामे भी ज्ञानका स्वभाव नही मानते। उनके मतव्यसे आत्मामे ज्ञानका सम्बध होता है तब यह आत्मा जानता है। ज्ञानका सम्बध हट जाय तब आत्माका शुद्ध स्वरूप समझ पायेंगे ऐसा भी मतव्य है। इन सबकी दृष्टिसे यह कहा है कि ऐसा जीवस्वभाव अब मुक्त अवस्थामे नही है, फिर भी सर्वथा जीवका अभाव नही है। वही शुद्ध ज्ञान दर्शन केवल ज्ञान दर्शनके रूपसे वहाँ जीवत्व पाया जा रहा है।

अशुद्ध जीवत्वकी औपाधिकता—यह जीवस्वभाव तो कर्मजनित द्रव्यप्राण रूप और भावप्राणरूप है, इनका तो अभाव हो जाता है, और ज्ञान दर्शन प्राणोका अभाव नही होता तब तक सिद्धि भी नही होती है, लेकिन ये द्रव्यप्राण नही है, भावप्राण नही है, इस कारण सर्वथा जीवका अभाव होगा, ऐसी शका नही करनी चाहिए। वहाँ शुद्ध सत्ता, शुद्ध चेतना, शुद्ध ज्ञान आदिक शुद्ध भावप्राण रहते ही है। हाँ वह देह और देहके सम्बधसे होने वाले

समस्त उपद्रवोसे पृथक् है । हम आपको जब तक अन्तरङ्ग भावनासे इस शरीरसे न्यारा होने को उत्सुकता न जगेगी तब तक हम आप ससारसे पारकी बाजी वाले नही कहला सकते, उसके पथिक भी नही रह सकते ।

मनबहलावा व धर्मपालन—जिन पुरुषोमे धन वैभवका व्यामोह है, धनको ही महत्त्व दिये हुए है और उससे भिन्न अपने आपकी सुध नही है, ऐसे पुरुष धर्मपालन करके भी जैसे व्यवहारमे कहा करते है—क्या अन्तरङ्गमे आत्मीय शुद्ध आनन्दके पानेकी विधि मिल सकती है ? मन रमानेका साधन बनाना और बात है, और विशुद्ध शान्तिकी अनुभूति करनेकी विधि बनानेका काम और है । हाँ इतना भला अवश्य है कि ये ज्ञानी जन विषयोके, व्यसनोके प्रसग से अपना मन नही बहलाना चाहते, और एक धर्मस्थानमे आकर अपने परिचयी जीवोके बीच खडे होकर अथवा अपने आपके भीतर जो सुखकी वासना लगी है उसकी साधना ठीक बनी रहे और वह इस धर्मके प्रतापसे ही होती है, ऐसा समझकर जो धर्म करनेका श्रम करते है वे यद्यपि व्यसनोमे दिल बवलाने वालोसे भले है, किन्तु यहाँ भी उनका मन बहलावा है, उन्होने आत्मशान्तिका द्वार भी नही निरखा ।

आत्मनिर्णय—अपने आपमे अपनी बात सोच लो कि किसी भी दिन, किसी भी क्षण क्या यह तीव्र उत्सुकता हुई है कि मै इस जन्म मरण और शरीरके सम्बधसे सदाके लिए छूट जाऊँ, इसीमे मेरी भलाई है । मोक्ष तत्त्वके श्रद्धानके सम्बधमे यह बताया है कि यह अज्ञानी बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव मोक्षका स्वरूप जो निराकुलता है उसकी बाट नही जोहता । कितने सीधे शब्दोमे यह बात है—'शिवरूप निराकुलता न जोय ।' बहिरात्मा निराकुलताकी बाट नही जोहता, यही मोक्षमे विपरीत श्रद्धा है । रात-दिवसके प्रोग्राम—परिजनसे मोह करना और धन वैभवसे व्यामोह रखना, इसके सिवाय और कुछ है क्या मोही जीवोका प्रोग्राम ? हाँ है और भी थोडासा प्रोग्राम । खाना, लेटना और मल मूत्र निवृत्ति करना, यह और सगमे लगा है । इनके अलावा भी है कुछ प्रोग्राम ? है । ऐसा ही मौज बनाये रहनेके भावसे घटा दो घटा भगवानके मदिरमे दर्शन, पूजन कर लेना, इससे आगे भी कुछ प्रोग्राम है क्या ? नही । इससे परेका प्रोग्राम बन जाय तो उसका अज्ञानीकी लिस्टसे नाम हट जायगा । व्यवहारधर्म भी वही करेगा, फिर भी अन्त प्रकाश है ।

वास्तविक धर्मपालनकी सुगमता—निज काम कितना सुगम और स्वाधीन है, यह जाननहार बुद्धि जाननहारमे ही सीधे रास्तेसे पहुच जाय, कोई कष्टकी बात नही है । अरे उसी रास्तेमे यह बुद्धि नाच गयी है, कही अलग नही है । उस ही पथसे अपने अन्तरङ्गमे पहुच जाय, कोई असुगम काम नही है, ये समस्त बाह्य पदार्थ बाह्य ही नजर आये, इनसे मेरा क्या सम्बंध ? ये मेरे कुछ न होंगे, इनसे मेरा कुछ भला न होगा । व्यर्थके रागद्वेषके बढावामे बढे

चले जा रहे है । अपनी प्रकृतिमे जरा भी भग नही डालना चाहते । जो जैसी आदत बन गयी, जिसमे रगे पगे चले आ रहे उसमे अन्तर नही डालते, मोह ममता नही त्यागना चाहते तो बतावो धर्मकी साधना किस ओरसे आयगी ।

मुक्तावस्थामे विभावपरिणमनोका अभाव--मुक्त अवस्थामे शरीरकी उत्पत्तिके कारण-भूत परिणमन भी नही है, मन, वचन, कायके योग नही, क्रोधादिक कषायें नही, उनके तो कैवल्य है । कैवल्यका अर्थ है केवल वही-वही, अन्य कोई नही । जहा केवल आत्माका स्वरूप ही रहे, पर सम्बध वाली बात नही, पर सम्बध नही, उस अवस्थाको कैवल्य कहते है । हमे सिद्ध बनना है, ऐसा मनमे उल्लास आता है या नही या मुझे अपने इन परिजनोको इतना होशियार बनाना, सुखी बनाना और इनके बीच अपने आपको प्रभु बनाकर रखना, और लौकिक यश बढे, लोकमे मेरा नाम चले, लोग अच्छा कहे, ये सारे खुराफात करना ही इष्ट है या एसा भी मानते हैं कि मुझे कोई मत जानो, कोई मत मानो, मैं सबसे विविक्त हू, मुझे कोई जानता ही नही है । मुझे तो सबसे विविक्त केवल निजस्वरूपमात्र रहना है, और मुझे कुछ न चाहिए, ऐसी अन्तरङ्गमे भावना आती है या नही । नही, ऐसी भावना आती है तो आप अपना बडप्पन न समझिये, और समझिये कि जैसे ससारके और जीव है कीडा-मकोडा, पशु-पक्षी, बस उनकी बिरादरीमे ही अभी हमारी गिनती है अर्थात् अज्ञान अवस्था ही बनी हुई है । नफा टोटेका असली हिसाब लगाइये ।

सिद्धोका अनन्त प्रताप—यह् प्रभु मुक्त जीव, जिनका किसीसे भी वास्ता नही है, अपने आपमे विशुद्ध निराकुलताको भोग रहे है, निराकुलता स्वरूप है । ये सिद्धप्रभु यद्यपि सासारिक द्रव्यप्राण और भावप्राणसे रहित हैं तो भी ये बडे प्रभावशाली है । आत्माका क्या प्रताप है ? इसे लोग अशुद्ध प्रतापसे कूतते है । पुण्यके उदयसे स्थिति अच्छी हुई, कुछ राज्य-पाट हुआ, समागम अच्छा मिला, शरीरमे बल मिला, लोग पूछने लगे, कहते कि यह बडे प्रताप वाला है । अरे इस आत्माका अनन्त प्रताप तो इसके शुद्ध स्वरूपमे पडा हुआ है । यह प्रताप तो उस प्रतापका बिगाड है, विकार है, खुरचन है । जैसे किसी बडे हाडेमे खिचडी पकाई जाय । पचासो आदमियोको जिमा दी जाय, उसके बाद दो एक भिखारी आयें, वे मागने लगें तो उस बर्तनको खुदेड-खुदेडकर जो बचे उसे दे दी जाती, उतनेमे भी उनका पेट भर जाता है, ऐसे ही ससारके ये जितने प्रताप है ये आत्माके अनन्त प्रतापकी खुरचन है । वास्त-विक प्रताप तो इस आत्माके स्वरूपमे पडा हुआ है ।

अन्त पुरुषार्थका सन्देश—भैया ! किसी दूसरेपर दृष्टि ही मत दो, नही तो धर्मके लिए जो कुछ रचना बनायी वह सबकी सब फेल हो जायगी । किसीसे कुछ मत चाहो । ये लोग मुझे अच्छा कह दें, ऐसी रच भी बात किसीसे मत चाहो । दूरसे जान लो । ससारमे

अनन्त भव पाये थे ना ? यदि मैं आज मेढक मछली होता तो इस लोककी निगाहमे मै कुछ कहलाता क्या ? मान लो मैं ऐसा ही होता अथवा गर्भमे ही मर जाता या जन्मते समय मर जाता या कुछ छोटी उम्रमें ही मर जाता, और ऐसे मौके हम आप सबके आये भी है कि जिस समय प्राणात हो जानेको था। अब बच गये तो यह मुफ्तका जीवन मान लो अर्थात् लोकमे हमे कुछ भी अपना प्रताप नहीं करना है, केवल एक आत्मकल्याणके लिए हमे अपनी दृष्टि रखना है। ऐसा ही अवसर मान लो। इतनी बात सदा नही बन सकती है तो जब धर्म-पालनका हम कार्यक्रम रचने है उस समय तो रहने दें यह बात। यदि इतनी उत्सुकता हममे नही आती तब अपनी एक त्रुटि महसूस करें। और इस धर्मपालनकी विधिमे सतोष न मानें जैसा कि आजकल किया जा रहा हो, अपने आपमे अपने प्रतापका अनुभव करें।

शुद्ध विकासकी वचनागोचरता—ये सिद्ध प्रभु जिनकी हम पूजा करने आते है, उपासना करने आते हैं, ये अनन्त प्रतापसे युक्त हैं, तीन लोकके विजयी है। इनका वर्णन वचनो से नही किया जा सकता। आत्मामे इतने अनन्त गुण है कि हम आप चाहे उन अनन्त गुणो का अनुभव कर लें, पर उनका वर्णन और उनकी गिनती नही कर सकते। जैसे रत्नोसे भरे समुद्रमे कदाचित् कोई ऐसी बाढ आ जाय, उथल-पुथल हो जाय कि पानी कहीका कही पहुच जाय तो वे सारे रत्न आपकी निगाहमे आ गये, पर उनकी गिनती नही कर सकते। आप रत्नोकी जगह रेत रख लें। पानीके उथल-पुथलसे कही पानी अगल-बगल हो जाय, रेतका एक ढेरसा दिख जाय तो दिखनेमे तो वह ढेर आ रहा है, पर क्या कोई उन रेतके कणोकी गिनती कर सकता है ? नही कर सकता। ऐसे ही आत्मामे जो चमत्कार है, प्रताप है, अनत गुण है इन सबका आप अनुभव तो कर लें निर्विकल्प स्थिति बनाकर, पर उन गुणोकी गिनती आप नही कर सकते। ऐसे अनन्त गुणोसे सहित ये सिद्ध प्रभु है।

आत्मनिधिकी सुध—जैसे किसी सेठका बालक ५-६ वर्षकी उम्रका था। सेठ जब गुजर गया तो सरकारने उसकी लाखोकी जायदाद अपनी निगरानीमे ले ली। अब क्या हुआ, उसकी एवजमे ५००) रु० महीना खर्चके लिए उसे मिलने लगे। बालक बडा हो गया १६-२० वर्पका। जब तक वह नाबालिग था, गैरसमझ था तब तक वह सरकारके बडे गुण गाता था मुझे घर बैठे सरकार ५००) रु० महीना भेज देती है। जब उसकी समझमे आया कि मेरी तो लगभग १० लाखकी जायदाद सरकारके अन्डरमे है तो वह ५००) रु० महीनाका लेना मना कर देता है, मुझे न चाहिएँ ये ५००) रु०। मुझे तो मेरी निधि दी जाय। ऐसे ही इस नाबालिग ससारी जीवकी यह अनन्त प्रताप वाली निधि कर्मसरकारने मानो जब्त कर ली है, उसकी एवजमे यह थोडासा विषयसुख बांध रखा है, सो यह अज्ञानी जीव पुण्य सरकारके बडे गुण गाता है, मेरे तो बडा ठाठ है, मेरेको बडा मौज है, पुण्यके यह जीव बडे गुण गाता है।

जब यह बालिग बन जाता है अर्थात् सम्यग्दृष्टि हो जाता है, यथार्थ ज्ञानी हो जाता है तब इन मौजोको मना कर देता है, मुझे न चाहिए ये जड वैभव, मुझे तो मेरी आत्मनिधि चाहिए।

निराकुलताका प्रबन्ध—भैया ! अनन्त प्रताप है इस आत्मामे । निराकुलतासे बढकर और कुछ भी नही है जीवका सर्वस्व । निराकुलता जिस विधिमे मिले वही तो सबसे बडी बात होगी ना । अब खूब सोच लो निराकुलता कहाँ है और कैसे मिलती है ? निराकुलता है मोक्षमे अर्थात् परसम्बधसे छूट जानेमे, केवल रह जानेमे, निराकुलता है, और उसका उपाय है इस केवलस्वरूपकी भावना करना । मै सबसे न्यारा केवल चैतन्यस्वरूपमात्र हू, इतनी उदारता तो लाइये । यदि कुटुम्बमे ही ज्यादा मोह होता है तो औरोसे मोह करने लगिये कुछ फायदा मिलेगा । यदि जड वैभवसे प्रीति है, आसक्ति है तो उसे दूसरोके उपयोगमे लगाइये कुछ लाभ मिलेगा । परवस्तुवोमे आसक्ति न होना चाहिए । जब मैं इस देहसे भी अत्यन्त न्यारे स्वरूप वाला हू तब फिर इस विविक्त आत्मतत्त्वका अन्य कुछ होगा ही क्या ?

चिच्चमत्कारप्रतापकी भावना—ये मुक्त भगवान अनन्त महिमावान है । केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति सम्पन्न है । उन्हे इस प्रकार न देखे कि इन्द्रिय आदिक नही रही, शरीर नही रहा तो वहाँ कुछ रहा ही नही । अरे अशुद्ध जीवत्व नही रहा, पर शुद्ध जीवत्वका तो सद्भाव है । चीज तो वह निखर गयी । जो कुछ सहज है स्वत सिद्ध है वही रह गया है, ऐसी ही हमारी स्थिति हो, हम केवल रह जायें तो हमारी वह आखिरी मजिल समझिये यही पूर्ण विश्रामका स्थान है, ऐसा निर्णय करके अन्त श्रद्धापूर्वक अपने स्वरूपके अतिरिक्त समस्त बाह्यपदार्थोको न्यारा कर दे । मै सबसे जुदा केवल ज्ञानानन्दस्वरूप मात्र हू । इन लौकिक प्राणोके धारणके बिना, शरीरके सम्बन्धके बिना, समस्त उपाधियोके बिना अपने सहज चैतन्य चमत्कार ज्ञान दर्शन प्रतिभास स्वरूपसे सदैव प्रतिभाशाली है, बस सब कुछ जाननेमे आ रहा है, पूर्ण निराकुलता बनी है । अब अपने विकाससे रच भी डगमग नही हो पा रहे, ऐसी अत्यत शुद्धता प्रकट हो जाती है सिद्ध प्रभुमे । वह हम से कुछ जुदी जातिके नही है । हमारी ही तो चर्चा है । ऐसा ही मै होऊँ, ऐसी भावनामे ही अपनी भलाई है ।

ण कुदोचिवि उप्पण्णो जम्हा कज्ज ण तेण सो सिद्धो ।
उप्पादेदि ण किंचिवि कारणमवि तेण ण स होदि ॥३६॥

सिद्धोमे कार्यकारणताका अभाव—सिद्ध भगवान न कार्यरूप है और न कारणरूप हैं, उनमे कार्यकारण भाव नही है, इसका समर्थन इस गाथामे किया गया है । जैसे ससारी जीव देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी पर्यायोके रूपसे उत्पन्न होते है, इसी प्रकार सिद्ध भग-

वान किसी विशिष्ट पर्यायरूपसे उत्पन्न नही होते है इस कारण सिद्ध कार्य नही है। हम आप ससारी जीव कार्यरूप है। यह कार्यरूपता ससारी जीवोमे कैसे प्रकट हुई है, इसे अब सुनिये।

कारणोका विवरण—कार्य होनेमे दो कारण होते है—एक उपादान कारण और एक निमित्त कारण। उपादान उसे कहते है जो कार्यरूप परिणम जाय, अभिन्नकारण। और निमित्त कारण उसे कहते है जो उस कार्यरूप तो नही परिणमे, किन्तु उस परिणमते हुएमे उपादानके परिणमनमे निमित्तरूप हो। निमित्त उसे कहते है जिसका सन्निधान पाकर उपादान तदनुरूप परिणमे, और उस प्रकारका सान्निध्य न मिले तो उस प्रकारका उपादान न परिणमे उसे निमित्त कारण कहते हैं। जितने भी कार्य है वे सब उपादान और निमित्त कारण पूर्वक होते है। अविशिष्ट कारणकी अपेक्षा तो समस्त पदार्थोंके परिणमनमे कालद्रव्य निमित्त होता है, वह चूँकि अविशिष्ट कारण है, साधारण कारण है इस कारण उसे कारणरूपमे न गिनिये। किसीको वह पदार्थ कारण पडे, किसीको न पडे, ऐसा विभाग जिनमे हो सके उनमे ही निमित्त कारणका व्यवहार होता है। कालद्रव्य तो सदैव रहता है और समस्त पदार्थोंके परिणमनमे निमित्त है, इस कारण कालद्रव्यको लोकप्रसिद्धिमे कारण रूपसे नही कहा गया।

विशिष्ट निमित्त कारण—अब ऐसे निमित्तकरणका लक्षण कीजिए, और देखिये—जैसे कुम्हार घडा बनाता है, उस घडा बनानेरूप कार्यमे मिट्टी तो उपादान है, उपादान कारण उसे कहा था ना जो कार्यरूप परिणम जाय। घडा बन गया तो वह मिट्टी ही तो घडारूप बन गयी, और उसमे निमित्त कारण हैं—कुम्हार, चक्र, दड आदिक जो भी उस प्रक्रियामे काम आयें। जिनके सान्निध्य बिना घटकी उत्पत्ति नही हुआ करती वे सब निमित्त कारण है। ऐसे ही यह जीव, देव, नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्यका शरीर धारण करता है उसमे उपादान कारण क्या है और निमित्त कारण क्या है ? इस सम्बधमे विशेष बात यह समझना कि यह जो पर्याय है यह एक द्रव्यकी पर्याय नही है। इसे असमानजातीय द्रव्यपर्याय कहते है। जीव और ये शरीरवर्गणायें, कर्मवर्गणायें इन सबका जो यह पिंड है वह एक भव है, इस कारण इसमे उपादान कारण कुछ एक बताना कठिन है। एक शरीर वाली भवरूपी पर्यायमे किसको उपादान कहा जाय ? हाँ चूकि यह पर्याय भी सामूहिक है तो इसमे उपादान भी सामूहिक है। पुद्गल और जीव ये दो उपादान है, पर इनमे भी यदि भेद करके देखें तो जो रागद्वेष कषाय विषय योग आदिक भावरूप परिणमन है उन अशुद्ध पर्यायोका उपादान आत्मा है। और जो शरीर परिणमनरूप कार्य है उनके उपादान पुद्गल द्रव्य हैं। खैर ये सब होते कैसे है, इसपर दृष्टि दें।

ससारी जीवोकी सृष्टिमे कारणरूपता—ससारी जीव भावकर्मसे सहित हैं। रागद्वेष आदिक अज्ञानभाव उस उस कालमे तन्मय है। वह आत्माके परिणामकी सतति है। एक

समयका रागद्वेष आदिक कोई-सा भी भाव इस जीवको नचाता नही है, विकार अनुभव नही कराता, किन्तु अनेक समयोका भावकर्म जब उपयोगमे आता है तब वह विकारका अनुभव कराता है और यह सतति विभाव जातिमे अनादिकालसे चली आयी है। अनादि सततिका जो भावकर्मरूप परिणमन है वह कारण है नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवपर्याय होनेका। अर्थात् हमारे मोह रागद्वेष इन सासारिक शरीर रचनावोका कारण बन रहे है। कैसे कारण और कैसे कार्य बन जाता, यह सब ज्ञान द्वारा ही जाननेकी बात है। उसका ऐसा विशेष विवरण जो इससे अपरिचित है, उनको बताया जाना अशक्य है। तभी तो लोगोकी समझमे न आने के कारण इस सब सृष्टिको एक ईश्वरकी लीला कह दिया जाता है। ईश्वरकी लीला है इसमे कोई सन्देह नही, किन्तु प्रत्येक आत्मा ईश्वरका स्वरूप ही तो है, उनका स्वभाव, उनका सत्व निरखिये तो सब ज्ञानानन्दस्वरूप हैं। जो ईश्वरका स्वरूप है वह सब जीवोका स्वरूप है। ये सब जीव मोह, राग, द्वेष भावकर्म करके सकल्प विकल्प करके इन भवोंके कारण बन जाते है ? नर, नारकादिक पर्यायोके होनेमे ये विभाव कारण हो जाते है।

कारणोंके विवरणकी सीमा—अच्छा देखिये भैया! आप तो यह भी नही बता सकते कि खिचडी कैसे पक जाती है ? स्पष्ट बतावो। आप यही तो कहेगे कि बटलोहीमे पानी डालकर चावल दाल मिलाकर चढा दिये, नीचेसे आग जला दी, ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि खिचडी पक जाती है। ठीक है, मगर पकते हुए दिखा दो कि देखो यह पक रही है। स्पष्ट बतावो। अरे इतना ही स्पष्ट होता है कि योग्य उपादान हुआ, योग्य निमित्त सान्निध्य हुआ, विभावरूप कार्य हुआ, इससे आगे और क्या स्पष्ट कहे ? आप बोलते है, बहुत देर तक बोल सकते हैं, क, ख ग, घ आदिक आप उच्चारण करते है, पर हमे यह बता दो कि यह क ख आदि शब्दोका उच्चारण कैसे हो जाता है ? दिखा दो बना हुआ। अरे क्या दिखा दें, हो तो रहा है सब। उपादान और निमित्त सब योग्य सन्निधान होनेपर ये सब कार्य हो रहे है। इसका और विवरण क्या करें ? कहते है ना किसी चर्चामे बालमे खाल निकालना। आप कुछ बता ही नही सकते। कैसे क्या कार्य होता है। उनका और स्पष्ट क्या विवरण होगा ? यह जीव मोह रागद्वेष भाव करता है उसका निमित्त पाकर ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्मका बन्ध होता है। अब यह आत्मपरिणामकी सतति और पुद्गल परिणामकी सतति ये कारणभूत बने है। देव, नारक, तिर्यंच, मनुष्य पर्यायें उत्पन्न होनेमे यह कारण है। यह सब साधारणतया वर्णन चल रहा है।

अध्यात्ममार्गमे विशिष्ट कार्यका असहत्त्व—यह सृष्टि ऐसी विचित्र है और ऐसी मायारूप है कि यह सब कुछ है और कुछ नही है। तो भावकर्म और द्रव्यकर्म ये तो कारण रूप हैं। कारण पाकर यह जीव देव, नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य पर्यायरूपसे जिस प्रकार उत्पन्न

हो जाता है उस प्रकार सिद्ध रूपसे जीवोकी उत्पत्ति नही होती कि उनमे कुछ सद्भावरूप कारण रहता हो और इन कारणोसे कोई विशिष्ट कार्य बनता हो। देखिये सिद्ध अवस्था विशिष्ट कार्य नही है और ससार अवस्था विशिष्ट कार्य है। लोग तो विशिष्ट कार्यको महत्त्व देते हैं, पर शान्तिमार्गमे, अध्यात्ममार्गमे विशिष्ट कार्यका महत्त्व नही है। विशिष्ट कार्य तो निन्दाके योग्य होता है। जो बात जिस पदार्थमे स्वभावमे नही पडी है, वह बात हो जाना, इसीका नाम विशिष्ट कार्य है, और जो बात स्वभावमे पडी है वह हो गयी, कोई विशेष बात नही हुई, जो था जो है वही हुई सिद्ध दशा।

सिद्धावस्थाकी अविशिष्टरूपता—सिद्ध दशा तो अविशिष्ट कार्य है और ससार दशा विशिष्ट कार्य है। सिद्ध भगवान कार्यरूप नही है। भावकर्म और द्रव्यकर्मका क्षय हो जानेपर स्वय ही स्वयमे से विकसित हुई यह सिद्धपर्याय किसी अन्य चीजसे उत्पन्न नही होती। कदाचित् यह कहे कि कर्मोंके नाशसे तो सिद्धपर्याय हुई, इसके समाधानमे दो प्रकारकी दृष्टि लगायें, कर्मोंके अभावसे सिद्धपर्याय हुई तो इसमे निमित्त कारण किसे कहा जाय ? कर्म तो निमित्तकारण नही होते, क्योकि वे वहाँ है नही। हाँ अभावरूप निमित्त कारण है, सो यह एक अपना यो सोचनेके लिए है कि चूकि कर्मोंका सद्भाव ससार अवस्थाका कारण था। दूसरी बात यह निरखिये कि चलो प्रथम समयकी सिद्धपर्यायका कारण कर्मोंका क्षय है, मगर अनतकाल तक जो भी सिद्ध दशा बनी रहती है उसका कारण क्या है ? कर्मोंका क्षय तो नही कह सकते, कर्म है ही नही। क्षय किसका नाम है ? यह सिद्ध दशा जीवकी अकिंचन अवस्था है, इसलिए यह कार्यरूप नही है। जो विशिष्ट दशा हो उसे ही कार्यरूपसे निरखा जाता है। ये सिद्ध भगवान किसी भी पदार्थसे उत्पन्न नही होते है इस कारण कार्यरूप नही है।

सिद्ध प्रभुके कारणरूपताका अभाव—सिद्ध प्रभु कारणरूप भी नही है क्योकि वे किसी पदार्थको उत्पन्न नही करते। जैसे कि ससारी जीव भावकर्मरूप आत्मसततिको उत्पन्न करते है, मोह रागद्वेष विभावोको उत्पन्न करते रहते है तो ये ससारी जीव कारण हुए ना और इसी प्रकार द्रव्यकर्मरूप पुद्गल परिणामोकी सततिको निमित्तकारण बनते हुए उत्पन्न करते है, सो उन कार्योंके कारणभूत बनते है, इस कारण ये ससारी जीव किसी कार्यके कारण हुए ना ? इस प्रकार कारण बन-बनकर देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारक, पर्यायोको ये संसारी जीव कर रहे है। इस प्रकारसे सिद्ध भगवान किन्ही कार्योंको उत्पन्न नही करते, इस कारण सिद्ध प्रभु कारणरूप नही है।

कारणकार्यरूपताके बिना शुद्ध सृष्टिका सर्जन—सिद्धप्रभु तो अपने आपके आत्मस्वरूपको रचते रहते है। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति, अनन्तआनन्दरूपसे अपने आत्माको रचते हुए ये सिद्धप्रभु स्वय ही कार्यरूप है, कारणरूप है, ये किसीके न कारण है और

न कार्य है। एक तत्त्वकी बात यहाँ यह भी ध्यानमे रखें कि व्यक्तरूपसे सिद्ध भगवानको कार्य रूप और कारणरूप नही कहा, फिर भी वहाँ एक नयसे कार्यरूपता और कारणरूपता बतायी जा सकती है, वह है शुद्ध रूपमे, किन्तु अपने आप सबके आत्मामे स्वरसतः सहज विराजमान शाश्वत जो चित्स्वभाव है उस स्वभाव लक्षणको देखकर निरखो—यह मैं चित्स्वभावमात्र परमब्रह्म न किसीका कार्य है और न किसीका कारण है। शुद्ध अन्तस्तत्त्वमे बन्ध मोक्षका विकल्प नही है, कार्य कारणका विकल्प नही है। यो कार्य कारण भावसे रहित शाश्वत निज चित् रूपका जो ध्यान करता है, आलम्बन लेता है वही पुरुष प्रकट रूपमे शुद्ध पर्याय पाकर कार्यकारण भावसे सर्वथा रहित हो जाता है। यही सिद्ध दशा प्राप्त करनेका उपाय है।

कार्यका अनुरूप उपाय—सिद्ध अवस्थामे जो जो आपको गुण मालूम हुए उनकी प्राप्तिका उपाय उस ही पद्धतिसे देखना चाहिए। प्रभुमे यह केवलज्ञान कैसे प्रकट हुआ? यह केवलज्ञान निर्विकल्प है, और अपने आत्मामे जो ज्ञानस्वभाव है वह भी निर्विकल्प है। स्वभावमे विकल्प क्या? ऐसे निर्विकल्प आत्मस्वभावका जो आलम्बन लेता है, निर्विकल्परूपसे उसका आश्रय करता है ऐसा जीव केवलज्ञानको प्रकट कर लेता है। प्रभुमे यह अनतआनन्द कैसे प्रकट हुआ है? थोडा-थोडा यहाँ भी ऐसा देखा जाता है कि कुछ सुखरूप वार्ताकी चर्चायें होती है तो कुछ सुखरूप परिणमन होता है और दु.खरूप वार्ताकी चर्चाएँ चल जायें तो चूकि दु खरूप बातोमे उपयोग है इसलिए कुछ न कुछ खेद भी हो जाता है। यो ही और अन्तरमे चलकर देखिये—आत्मामे आनन्दस्वभाव है, जो शाश्वत अविकार स्वभावरूप है उस आनन्दस्वभावका अनुभव करनेसे, उसे उपयोगमे लगानेसे और ऐसी ही स्थिरता कोई विशेष अन्तर्मुहूर्त मात्र बन जाय तो इस आनन्दस्वभावके आलम्बनसे यह अनन्त आनन्द प्रकट होता है। यह समग्र सिद्ध पर्याय कार्यकारण भावसे रहित है। कार्यकारण भावसे शून्य यह सिद्ध अवस्था हमारे कैसे प्रकट होगी? उसका उपाय है कार्यकारणभावसे शून्य जो निज ज्ञानस्वभाव है, चैतन्यस्वभाव है उस चैतन्यस्वभावका आलम्बन हो तो उसके प्रसादसे यह कार्यकारणशून्य सिद्ध अवस्था प्रकट होगी।

हमारी वर्तमान स्थिति—भैया! हम आप आज जिस स्थितिमे है, यह स्थिति बडी दयनीय है। थोडे विषयसाधन पाकर मोहवश कुछ सुख मान रहे है। भले ही ये सब साधन आज बडे सस्ते लग रहे है, किन्तु ये विषयभोग जो कि आज सुलभ और सस्ते लग रहे हैं वे भविष्यमे अधिक महगे पडेगे। ससारी जीवोका विस्तार तो निरखियें—किस-किस प्रकारके ससारी जीव है? जब कभी कही जाते हुए किन्हीं तडफते हुए जीवोको निरख लेते है; कोई शिकारी सूकर मार रहा हो, बाँधकर छेद रहा हो, किसी पशु-पक्षीके कोई टुकडे कर रहा हो

कोई ऐसी स्थिति देख लेते है तो हम आप लोगोका हृदय कितना व्यथित हो जाता है ? लोग बडे कोमल चमडेके जूते बडे शौकसे पहिनते हैं जिसे क्रुम बोलते है यह किस प्रकार बनायी जाती है, सो देखो बहुत छोटे-छोटे बछडोपर बहुत तेज गर्म पानी फौवारेसे डाला जाता है, जब वह चमडा खूब फूल जाता है तो जिन्दा ही खडे-खडे उस बछडेकी खाल निकाल ली जाती है ताकि चमडा मुलायम बना रहे। ऐसे चमडेके बने हुए ये जूते आते है। तो हम आप जब कही तडफते हुए जीवोको देख लेते है तो हृदयमे महती वेदना उत्पन्न होती है। वह वेदना किस बातसे होती है, जरा अन्त परीक्षण तो करे, आप सोचें या न सोचें, पर अन्तरङ्गमे ऐसा स्पर्श होता है कि ओह ! हम आप भी कभी ऐसे ही जीव थे। ऐसे ही दयनीय स्थितिमे तो हम आप भी है। इस स्थितिमे मग्न मत होओ।

आलम्ब्य तत्त्व—आज पुण्योदयसे सब साधन ठीक है, अच्छी स्थिति है, पर यह तो एक नाटक जैसा है, ये सब बिछुडने वाली बातें है। इन सबके ज्ञाताभर रहो। उसमे मग्न होनेसे, मस्त होनेसे इस जीवको कुछ भी लाभ न मिलेगा। आश्रय लो तो अपने आपमे शाश्वत विराजमान एक स्वरूपका, जिस स्वरूपकी दृष्टिमे समस्त जीव एक समान विदित होते है, जहाँ केवल एक चित्स्वभाव ही दृष्ट होता है। यह मै हू—इतनी भी कल्पना नही होती। यह मै हू ऐसा स्पष्ट रूपमे कल्पना जब बनती है तब उसकी वासनामें यह भी भरा पडा हुआ है कि ये सब पदार्थ पर है। यद्यपि परको पर जानना, निजको निज जानना पहिली पदवीमे कामकी बात है, किन्तु जिस समय इस चित्स्वभावका अनुभव होता है, उपयोग होता है उस समयमे यह पर है, यह मैं हू—इस प्रकारका विकल्प न चलेगा। वहाँ तो केवल एक चित्स्वरूप ही दृष्ट होगा।

शुद्ध कार्यतत्त्वका दर्शन—कुछ दार्शनिक लोग यह कह डालते है कि यह आत्मा सब कुछ एक है और हम आप सब ये भिन्न-भिन्न जीव है। यह जीव जब उस एक ब्रह्ममे लीन हो जायगा, अपनी सत्ता नष्ट कर देगा, ब्रह्ममे ही समर्पित हो जायगा तब वहाँ मुक्ति है। इन वचनोमे और रहस्य ही क्या है ? यह उपयोग जो रागद्वेषसे सम्बद्ध हो रहा है इस स्वभावमे लीन हो जाय, विशिष्ट उपयोग विलीन हो जाय, केवल एक चित्स्वभावका अनुभव हो तो यही स्थिति मुक्तिका उपाय है। उस निर्विकल्प कार्यकारण भावसे रहित चित्स्वभावका आलम्बन करनेसे यह सिद्ध दशा प्रकट होती है। यह सिद्ध अवस्था शुद्ध निश्चयसे कर्म नोकर्मकी अपेक्षा न कार्यरूप है, न कारणरूप है, किन्तु अनन्त ज्ञानादिकसे सहित है, और कर्मोदयजनित जितने भी विकार है उन विकारोसे शून्य है, यह ही अवस्था उपादेय है और इस अवस्थाके होनेका उपायभूत जो निज शुद्ध स्वभावका आलम्बन है वह ही उपादेय है, यह शिक्षा इस गाथासे मिलती है।

सस्सदमध उच्छेदं भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च ।
विण्णाणमविण्णाणं ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे ॥३७॥

मुक्तावस्थामें जीवके अभावका निराकरण—कुछ लोग मुक्त अवस्थामें जीवके अभाव को मानते हैं। जब तक जीव है तब तक ससारी है और इस जीवका अभाव हुआ उसीके मायने मोक्ष है। इस प्रकार यदि जीवके अभावका नाम मोक्ष माना जाय अर्थात् मुक्त अवस्थामें जीव के सद्भावका निराकरण किया जाय तो इस जीवतत्त्वके बारेमें, शुद्ध ब्रह्मके सम्बधमें जो दार्शनिकोंने अपना मतव्य रखा है उन सबकी कैसे सिद्धि होगी? और देखिये जीवका अभाव होने पर जो शाश्वतरूपता बतायी जाती है वह किसमें विराजेगी? यह ब्रह्म शाश्वत है, द्रव्यरूपसे यह जीव अविनाशी है, यह किसमें बताया जावे, क्योंकि तुमने तो अभाव ही मान लिया।

मुक्त अवस्थामें जीवके सद्भावकी सिद्धि—मुक्त अवस्थामें भी जीवका सद्भाव है और इस आधारपर यह कथन युक्त है कि जीव शाश्वत है। शाश्वतता तो जीवके अभावमें बनेगी कैसे? उच्छेद भी नहीं बन सकता। जीव अपनी पर्यायोंको विनष्ट करता है, यह तभी सम्भव है जब जीवद्रव्यका सद्भाव माना जाय। जीवद्रव्य पर्यायरूपसे उच्छेद करता है। यों उच्छेद रूपसे परिणमने वाले कोई पदार्थ हुए ना? तभी उच्छेद सम्भव हो सकता है। द्रव्य नित्य हो पर्यायोंका प्रति समयमें उच्छेद माना जा सकता है। इस जीवमें और जीवमें ही क्या समस्त पदार्थोंमें भव्यता और अभव्यता दोनों बातें पायी जाती हैं। यह सिद्ध जीव भव्य याने भाव्य भी है और अभव्य याने अभाव्य भी है। जो पर्याय जिस योग्य है, अपनी ही शुद्ध सृष्टियां होने योग्य हैं, वे होवें इसका नाम भव्यता है जो बात अब होने योग्य नहीं है, देव, नारक, तिर्यंच रूपमें यह जीव अब नहीं बन सकता। यह मुक्त जीव अब ससारमें नहीं रुल सकता। तो जो बात नहीं हो सकती है उसका न होना इसका नाम अभव्यता है। जो होने योग्य परिणमन है, शुद्ध सृष्टि है वह हो, यह भव्यता जीवद्रव्यमें तब ही तो मानी जायगी जब कि कोई जीव नामक पदार्थ उस मुक्त अवस्थामें है। सभी द्रव्योंमें भव्यता और अभव्यता पायी जाती है। चाहे वह जीव हो, पुद्गल हो, कोई सा भी पदार्थ हो। जो पर्यायें नहीं हैं, अभूत हैं, उन पर्यायोंरूपसे होनेका नाम भव्यता है या भाव्यपना है, और जो पर्यायें पहिले गुजर गयी हैं वे पर्यायें उस द्रव्यमें आ नहीं सकतीं, इसलिए यह अभव्यता है।

भव्यता व अभव्यतासे पदार्थकी सिद्धि—जो होने योग्य है उसका होना और जो हो चुका है उसका कभी भी न होना ये दो बातें प्रत्येक पदार्थमें हैं। जैसे जो समय गुजर गया वह समय वापिस नहीं आ सकता। जो गुजर गया सो गुजर गया। कितने ही उपाय करें, उस बीते हुए समयकी वापिसी नहीं हो सकती। ऐसे ही पदार्थमें जो पर्याय व्यतीत हो गयी अब वह गुजरी पर्याय उस पदार्थमें आ नहीं सकती। भले ही उसके समान दूसरा आये अथवा

उससे भी उत्तम दूसरा आवे, पर जो पर्याय व्यतीत हुई वह नही हो सकती। मुक्तिकी भव्यता व ससारकी अभव्यता है, यह बात तब कही जायगी जब कोई जीव नामक पदार्थ माना जाय।

पदार्थमे शून्यता व अशून्यताका दर्शन—देखो प्रत्येक पदार्थमे शून्यता और अशून्यता पडी हुई है। कोई भी द्रव्य अन्य द्रव्यके रूपसे तो शून्य है। किसी भी द्रव्यमे अन्य कोई दूसरा द्रव्य नही है। प्रत्येक पदार्थ सूना है, कहते है ना कि यह घर सूना है, यह कमरा सूना है। सूना है—इसका अर्थ यह है कि इस कमरेमे कमरेकी चीजके अलावा और कुछ नही है, सूना है। जब आप रातमे या दिनमें बाहरसे आकर घरकी साकर हिलाते है कि कोई आकर खोल जाय (जब कि किवाड भीतरसे बन्द रहते है) तो आपके कुटुम्बी जनोमे से कोई आकर पूछता है कि आप कौन है? तो आप क्या उत्तर देते है? कोई नही। अरे कोई नही कैसे? आप सरासर मौजूद है, उस कोई नहीका यह अर्थ है कि मेरे अतिरिक्त कोई नही, मै हू। तो अपनेको ही शून्य बता दिया। और कभी-कभी ऐसा भी कह बैठते है कि आप, जब भीतरसे कोई पूछता है कि आप कौन है तो आप उत्तर देते है कि मै हू। अब 'मै हू' ऐसा कहनेमे कोई सही जवाब है क्या? मैं हू का अर्थ है कि मैं ही हू, परिपूर्ण, अशून्य। आप बिल्कुल दार्शनिकता सम्बधी झाँकी दिखा देते है। अन्य कोई नही है, मै हू, इसका अर्थ है शून्य होना और अशून्य होना।

मुक्त जीवमे शून्यता व अशून्यताका विवरण—प्रत्येक पदार्थ परद्रव्योसे शून्य है, किसी पदार्थमे कोई दूसरा पदार्थ नही लिपटा है। अरे इस जीवमे शरीर तक तो लिपटा नही है। भले ही यह जीव बडे बन्धनमे है, स्वतत्र नही है, शरीरको छोडकर कही जा नही सकता, तिस पर भी शरीर जीवमे लिपटा नही है। जीव द्रव्यमे पुद्गल द्रव्यका सत्त्व न प्रवेश कर सकेगा। ये भिन्न-भिन्न ही है यह जीव द्रव्य शून्य है। किसी जीवपदार्थमे अन्य दूसरे पदार्थका अभाव है और यह जीव अशून्य हैं। अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन सबसे परिपूर्ण है। यह बात तभी कही जा सकती है जब जीवद्रव्यका सद्भाव हो। मुक्त जीव शून्य है और मुक्त जीव अशून्य है, पर द्रव्योका प्रवेश नही है इस कारण शून्य है। अपनी शक्तियो का विकास है, उससे परिपूर्ण है, तन्मय है इस कारण अशून्य है।

अनन्तता व सान्ततासे मुक्त जीव पदार्थकी सिद्धि—किसी जीवद्रव्यमे अनन्तज्ञान है और किसी जीवमे सात ज्ञान है। अथवा एक ही जीवमे मुक्त जीवमे अनन्त ज्ञान है और सान्त ज्ञान है। अनन्त ज्ञान है, यह तो स्पष्ट है। प्रभु अनन्त पदार्थोको जानते है इस कारण अनन्तज्ञान है। प्रभुके ज्ञानका कभी अन्त नही हो सकता इस कारण अनन्तज्ञान है, फिर भी जिस समयमे जो ज्ञानपरिणमन हुआ उस ज्ञानपरिणमनमे उस समय उस पदार्थको जाना। दूसरे समयमे द्वितीय ज्ञान परिणमनने पदार्थको जाना। चूंकि उन समस्त ज्ञानपरिणमनोमे

विषय वही का वही रहता है, इसमे भेद नही मालूम देता, लेकिन पदार्थमे प्रति समयमे परिणमन निरन्तर चलता रहता है। और जो परिणमन व्यतीत हुआ वह फिर नही आता। इस प्रकार वह शुद्ध सदृश ज्ञानपरिणमन भी प्रति समय नवीन-नवीन रहता है। तो जिस समयमे जो ज्ञानपरिणमन हुआ वह अगले समयमे नही है, इस कारण वह ज्ञान भी सान्त है। प्रत्येक पदार्थमे पर्यायें सान्त रहा करती हैं। यह ऐसे भी तभी तो कहा जा सकता है जब जीव द्रव्यका सद्भाव माना जाय। ये सब बातें जीवद्रव्य का सद्भाव न मानने पर नही बन सकती, इस कारण यह सब वर्णन मुक्त जीवमे, मुक्त अवस्थामे जीवके सद्भावको प्रकट करता है।

अपने उपादेय तत्त्वकी स्वतः सिद्धिपर दृष्टान्त—इस गाथामे यह भी दृष्टि दिलाई गई है कि अपने आपमे यह निर्णय करें कि ऐसा जो शुद्ध तत्त्व है वही उपादेय है, सारभूत है। अन्य किसी पर दृष्टि लगाना हितकारी नही है। देखो यह शुद्ध अवस्था टकोत्कीर्ण ज्ञायक रूपसे अविनश्वर है। हुआ क्या सिद्ध अवस्थामे ? जो था वही हुआ। अन्य कुछ नही हुआ। जैसे किसी बडे पाषाणमे से कोई मूर्ति बनवानी है, कारीगरको बुलवाया, पत्थर दिखाया, और जैसी मूर्ति बनवानी है तैसा चित्र आकार नाप तौल सब बताया तो वह कारीगर एक ही नजरमे उस पत्थरमे मूर्तिका दर्शन कर लेता है। यदि कारीगरको उस पत्थरमे मूर्तिका दर्शन न हुआ होता तो वह उसमे से मूर्ति बना ही न सकता था। वह अब उस मूर्तिके आवरक पाषाणखण्डोको किस तरह निकालता है, उसकी कला देख लीजिए। कभी वह अटपट छेनी हथौडे नही चलाता है कि जहाँ चाहे मार दे, पत्थरके टुकडे करदे। वह कारीगर धीरेसे अगल-बगलके मूर्तिके आवरक पत्थरोको हटाता है और ज्यो-ज्यो उस मूर्तिका कुछ व्यक्त रूप होने लगता है, त्यो त्यो कारीगर और बडी सावधानीसे उन आवरक पत्थरोको निकालता है। और जब पूर्ण व्यक्त रूप हो जाता है तब उसकी सफाईके लिए वह छोटे छोटे औजारोको अत्यन्त धीरे-धीरे चलाता है और उसे स्वच्छ बना लेता है। लो कारीगरने क्या किया ? लोग कहते है कि कारीगरने मूर्ति बना दी। अरे कारीगरने कौनसा नया काम किया ? हाँ नया काम उसने उच्छेदका किया। सृष्टिका कोई नया काम नही किया। मूर्तिके आवरक जो पाषाण थे, जो कि मूर्तिको ढके हुए थे उन पाषाणोको दूर किया, चीज वही जो निकली उसमे थी।

मुक्त अवस्थामे विकासकी स्वत सिद्धि—टङ्कोत्कीर्ण दृष्टान्तके अनुसार जब इस जीव को यह भान हो जाता है शुद्ध स्वरूपका वर्णन सुनकर ज्ञान करके महिमा जानकर इस प्रकार जब इसकी भावना हो जाती है कि मुझे तो सिद्ध बनना है, सर्व कर्मोसे विमुक्त होकर केवल बनना है, जब उसकी यह भावना होती है तो उसे इस अपने आपमे जीवमे, जो कि अशुद्ध

पर्यायमे चल रहा है वहाँ भी वह शुद्ध स्वरूप नजरमे आने लगता है। अब यह सम्यग्दृष्टि कारीगर इस ज्ञायकस्वरूपको आवरण करने वाले जो विषयकषायके परिणाम हैं उन परिणामो को दूर करता है। विषयकषायोका उच्छेद हुआ विभाव दूर हुए कि यह ज्ञायकस्वभाव जो अपने सत्त्वके कारण स्वत जिस स्वरूपको रख रहा है, बस वह स्वरूप अब प्रकट हो गया। इसीके मायने है सिद्ध हो गया, मुक्त हो गया। यह सिद्ध अवस्था कुछ बनाई नही गयी, किसी चीज से इसका निर्माण नही किया गया, किन्तु इसके व्यक्त करनेके प्रयोगमे उच्छेदका ही काम किया गया है। पहिले तो भेदविज्ञानके प्रयोगसे बहुतसे विभाव परिणामोका उच्छेद किया, फिर जैसे यह अपने शुद्ध स्वरूपके निकट आया, कुछ व्यक्त होने लगा तो निज अभेद ज्ञानके प्रयोगसे इसने अपने अतरङ्गमे पुरुपार्थ बढाया, मगर चुप्पी अधिक आयी। अब वे तीव्र योग नही रहे जो प्रथम भेदविज्ञानके प्रयोगमे रहते थे। अब लो — इस निज अभेदविज्ञानके प्रयोगसे और भी यह स्वय व्यक्त हुआ। व्यक्त ही हो गया तब, अब मनका भी वहाँ कोई काम नही है, गति नही है, अब स्वय ही अपने आपमे अपने ही शुद्ध परिणमनके प्रतापसे रही-सही औपाधिक अशुद्धि भी दूर हो जाती है। यह आत्मा जब केवल सिद्धके स्वरूपमे व्यक्त हो गया तो वहाँ व्यवहारीजन क्या कहते है—सिद्ध पर्याय उत्पन्न हो गयी, सिद्ध भगवान बन गये। अरे सिद्ध भगवान किसने बनाया ? जो था सो अब प्रकट हो गया। बनना तो उसका नाम है कि जो हो नही वह हो जाय। यह सब बडी सावधानोसे द्रव्य और पर्यायकी दृष्टियोको बराबर अदल-बदलकर ध्यानमे लेते रहनेसे कथन स्पष्ट होता है।

मुक्त अवस्थामे परिणमन—यह प्रभु द्रव्यरूपसे शाश्वत है और पर्यायरूपसे अगुरुलघुत्व गुणके षट् स्थान पतित वृद्धि-हानिकी अपेक्षासे इनका निरतर उच्छेद हो रहा है, इसका अब यह परिणमन किस प्रकारका है ? ससारी जीवोसे तो उपमा कुछ मिलती नही, मात्र एक सिद्धपरिणमनको बताना है। इसमे या तो उपमा यही लगेगी कि सिद्धका चमत्कार सिद्ध को तरह है, दूसरा कुछ उपमाके लिए मिलता ही नही है, अथवा कुछ-कुछ कहना भी चाहे तो जो शाश्वत सत् पदार्थ धर्म, अधर्म, आकाश, काल हैं इसमे जैसे अगुरुलघुत्व गुणकी वृद्धि हानिसे जो परिणमन जिस पद्धतिसे चलता रहता है उस पद्धतिसे जो परिणमन हो रहा है। अब इसका होना किस प्रकार हो रहा है ? निर्विकार, शुद्ध, ज्ञानानन्दस्वभावरूपसे अब सिद्ध का परिणमन हो रहा है, और जो मिथ्यात्व रागादिक विभावपरिणाम चल रहे थे वे तो अब अतीत हो गये ना ? तो जो अतीत हो गए है अशुद्ध परिणामके रूपसे वे कभी भी न होंगे।

हितमयी स्थिति—भैया ! किस अवस्थामे इस जीवका हित है, यह भी साथ ही साथ दृष्टिमे रखते हुए सिद्धस्वरूपपर नजर रखना है। परम निराकुल दशा इस ही स्थितिमे है। एक साल दो सालका भी बालक जरासा हँस दे और कधेपर या सिरपर हाथ रख दे, बस

इतनी ही चेष्टा वह बालक करता है और यह जो अपनेको उसका मालिक मानता है उसको पूरी उलझनमे फस जाना पडता है, उस बालककी थोडीसी ही चेष्टासे समझो अब वह बन्धनमे आ गया। तो बन्धन आपने अपने-आप अपने ही विकल्पसे प्रीति-परिणाम बनाकर ही तो किया है। उस सालभरके बालकमे आपको बन्धनमे डालनेकी कला कहाँ है जो बेचारा बालक अभी बोलना भी नही जानता। यो ही समझिये प्रत्येक पदार्थ चाहे वह चेष्टावान हो अथवा अचेष्ट हो, ये आपका कोई बन्धन नही पैदा करते। आप खुद ही अपने मनका सकल्प-विकल्प बनाकर अन्य पदार्थोके वश होकर पराधीन हो जाते है। तब भी आप पराधीन नही है, किन्तु कल्पनामे पराधीन हो जाते है। और ऐसी पराधीनताकी स्थिति ही अहितरूप है।

परमकल्याण व उसका उपाय—ये सिद्धप्रभु हितकी मूर्ति है, कल्याणमय हैं, शिव-स्वरूप है, परमानन्दमय हैं, यह अवस्था ही हितरूप है। अब जो उनमे शुद्ध अन्तस्तत्त्व पकट हुआ है उस रूपसे वे है, अन्य विभावरूपसे वे नही हैं। अब उनके अनतज्ञान है, मतिज्ञानादि का उनके उच्छेद हैं, ऐसी उत्कृष्ट विकासरूप स्थिति है, उसकी ही हम आप पूजा करने आते है। हमे यह भावना आनी चाहिए कि मुझे तो यही स्थिति उपादेय है। इस शुद्ध विकासकी और शुद्ध विकासके कारणभूत चैतन्यस्वभावकी अभिरुचि जगे, यही कल्याणका प्रारम्भिक उपाय है।

कम्माण फलमेक्को एक्को कज्ज तु णाणमध एक्को।
चेदयदि जीवरासी चेदगभावेण तिविहेण ॥३८॥

चेतयितृत्वके स्वामित्वका निर्देशन—इस अधिकारमे प्रथम गाथामे यह सूचित किया था कि यह जीव है और चेतयिता है आदिक कुछ विशेषण कहे गये थे, उनके ही आधारपर व्याख्या चल रही है। जीवका वर्णन कर दिया, अब चेतयितृत्वका वर्णन कर रहे है। यह जीव चेतने वाला है, ऐसा सुनकर यह प्रश्न होता है कि जीव किसका चेतने वाला है, किसको चेतता है? उसके ही समाधानमे यह गाथा आयी है। कोई जीव तो कर्मोके फलको ही प्रधानतासे चेतता है। कोई जीव ऐसे होते है कि कर्मसहित कर्मफलको चेतते रहते है। क्रिया भी करते है और व्यक्तरूपसे सुख दु खका अनुभव भी होता है, और कोई जीव ऐसे होते हैं कि वे मात्र ज्ञानका ही चेतन करते है।

कर्मफलचेतयितृत्वके अधिकारी—ऐसे भी कुछ जीव है जो प्रधानतासे कर्मफल चेतन करते है। वे जीव है स्थावर। स्थावर जीवोके अगोपाङ्ग न होनेसे उनके देहकी क्रियाएँ नही होती। और इस दृष्टिसे वे कुछ कर्म कर नही पाते। कर्मका अर्थ यहाँ क्रिया है, और उस क्रियाके बिना कर्मके फलको चेतते रहते हैं। चूकि उनमे अङ्गोपाङ्ग न होनेके कारण कर्मको नही चेतते, अत जो कुछ वे चेतते है सुख-दु ख, वे अव्यक्त रूपसे चेतते है। लोगोको भी पता

नही होता। और वे भी त्रस जीवोकी तरह कुछ व्यक्त विकल्प करते हुए न चेतते होगे। उनका विकल्प भी ऐसा अव्यक्त उनके लिए तो उनपर गुजरी हुई विकल्प प्रवृत्ति चलती है। स्थावर जीवोका कितना निम्नतम स्थान है ? जीवराशिमे। ये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और उन वनस्पतियोमे भी निगोद ये कितने निम्न स्थान है, जिनका कुछ व्यवहार ही नही। अनेक लोग तो इनको जीव भी नही मानते। ये जीव अत्यन्त मोहसे मलीमस है, इतने मोहमुग्ध है कि वे अपने आपमे भी अपनी कोई व्यवस्था नही बना पाते। वे मस्त बेहोश पडे हुए है।

स्थावर राशिसे निर्गमनकी दुर्लभता—हम आपने स्थावरराशिमे अनन्तकाल व्यतीत किया है। सुयोगवश आज मनुष्य हुए, उत्तम कुल, उत्तम धर्म, उत्तम समागम सब कुछ पाया, लेकिन वही चाल ढाल अब भी बसाये हुए है जो बहुत पूर्व कालमे बसाये हुए थे। कोई भी परिवर्तन नही दिखता। उल्टा कुछ और विकारोमे ही बढ गये है। फल क्या होगा कि पुन ऐसे स्थावर जीवोमे उत्पन्न होनेकी नौबत आयगी कि फिर वहाँ कुछ भी पुरुषार्थ न किया जा सकेगा। वहाँसे जब जैसे निकलना हो निकलेंगे।

स्थावरोंकी परिस्थिति—ये स्थावर जीव अत्यन्त अधिक मोहसे मलीमस है। ज्ञानावरणका उनके तीव्र उदय है उससे उनका प्रभाव मुद्रित हो गया है। कैसे यह जीव अपने परिणामके कारण निमित्तनैमित्तिक योगसे कैसी कैसी स्थितियोको पा लेता है ? अब पूछा जाय कि बतलावो तुम मरकर पेड बनना चाहते हो ? तो शायद कोई भी छोटासे भी छोटा पुरुष यह न चाहेगा कि हम पेड बन जायें। किन्तु करनीमे अन्तर न डालें, वे ही मोहकी बातें बनी रहे तो पेड आदि बनना ही पडेगा। ये स्थावर जीव जिनकी ज्ञानावरणसे बुद्धि शक्ति अत्यन्त मुद्रित हो गयी है लेकिन है तो आखिर चेतन। वह चेतक स्वभाव जायगा कहाँ ? यदि इतनी खराब हालत हुई है तो जरा और खराब हालत हो जाती, चेतना भी नष्ट हो जाती, तब भी भला था हम अचेतन रहते तो क्लेश तो न भोगने पडते, मगर यह होता कैसे है ? कितनी भी निम्नतम स्थिति हो जायगी, पर इस चेतनका चेतकस्वभाव जायगा कहाँ ? इस चेतकस्वभावके कारण कुछ न कुछ चेतनेका भाव करेगा ही। क्या करेगा ? कार्यकारणकी सामर्थ्य तो विनष्ट-सी हो गयी। वीर्यान्तरायकर्मका वहाँ बडा प्राबल्य है जिससे इसकी शक्ति पूर्ण रुद्ध-सी हो गयी है। अब ये स्थावर जीव शुभाशुभ कर्मफलको भोगने का काम करते रहते है।

स्थावरोमे आत्मशक्तिका अवगुण्ठन—देखो मनुष्योमे, पशुवोमे, पक्षियोमे कुछ शक्ति का अन्दाज होता है। है शक्ति। मन, वचन और कायके रूपसे उनमे कुछ इस प्रकारका काम होता है कि जिससे शक्ति विदित होती है और ये दो इन्द्रिय तक भी इनमे स्थावरोकी अपेक्षा

शक्ति विशेष नजर आती है। ये केचुवा, लट आदि दो इन्द्रियके जीव चलते हैं, फिरते है, मुड भी जाते है, गोल भी हो जाते है, चलते हुए लौट आते है। ये स्थावर क्या करें ? जहाँ पडे है, पडे है, जहाँ खडे है, खडे है। यह शक्तिकी ओरसे वात चल रही है। कोई यह न वीचमे तर्क उठाये कि देखो पेड गिर जाता है तो दसो आदमियोकी हत्या कर डालता है। अरे वह पेड क्रिया करके नही गिरा, यो तो कोई भी काठ, पत्थर अजीव पदार्थ खडा हो और वह गिर पडे तो उससे वहुतसे जीव मर जाते है। तो उनका यह गिरना उनकी क्रियामे शामिल नही है। वह उनकी उस प्रकारकी प्रकृति है। जहाँ वीर्यान्तराय कर्म अधिक उदित है वहाँ कार्य-कारणका सामर्थ्य दव गया है। अव वह चूकि चेतकस्वभाव वाला तो है ही तो अव किसे चेतेगा ? तो वह सुख दु खरूप कर्मफलको ही प्रधानतासे चेतता है।

स्थावरोमे कर्मफलचेतनाकी प्रसिद्धि—भैया ! स्थावरोमे भी क्रियाका सर्वथा अभाव नही होता है, ऐसा कोई पदार्थ नही जिसमे क्रिया न होती हो। परिणमन ही क्रिया है। एक परिणमन क्रियाके बिना सुख दु खका चेतना भी कैसे बनेगा, किन्तु यहाँ कर्मसे मतलब व्यक्त क्रियावोसे है। ये क्रियासे रहित होकर आसक्तिके कारण प्रधानरूपसे कर्मफलको ही चेतते है। इन स्थावरोमे चेतनेका स्वभाव है। चेतन पृथ्वी जो ऊपर धूलरूपमे है यह तो चेतन नही हो सकती, किन्तु जो खोदते हैं, खानसे मिट्टी निकलती है, मिट्टी, मुरमुर, जमीन ककड, पत्थर, भीतरमे जो कुछ पडा है वह जीव है। जल जो बहता रहता है वह जीव है। वहने वाला, बरपने वाला, रुकने वाला ये सब जलजीव है। अग्नि जीव है, हवा जीव है, वनस्पति जीव है। वनस्पतिका जीवपना उपेक्षाकृत उन चारोके स्पष्ट ज्ञात होता है। ये बढते है, हरे होते है, कभी कुम्भलाते है, कभी विकसित होते है। इनमे प्रकृत्या कुछ ग्रहण करने वाली, कुछ फेकने वाली वायु पायी जाती है। इसमे जीवपनेका चेतनेका कुछ विशेष बोध हो जाता है। देखो इसमे चेतना कैसी मूर्छित है कि इसमे चेतन है, यह भी अवगम करना कठिन हो गया है। ऐसे ये स्थावर जीव कर्मफलको ही प्रधानतासे चेतते है।

त्रिविध चेतनाओके विविध विवरणकी पद्धति—इस प्रकरणमे यह कहा जा रहा है कि चेतना तीन प्रकारकी होती है—कर्मचेतना, कर्मफलचेतना और ज्ञानचेतना। इन तीनो का वर्णन समयसारमे जिस प्रकार किया गया है वह एक पूर्व अध्यात्मदृष्टिसे वर्णन है। यह भी कुन्दकुन्दाचार्यदेवकृत ग्रन्थ है, फिर भी एक दृष्टि और प्रकरण कुछ अन्य-अन्य होने से वही वर्णन अपनी विशिष्ट विशिष्ट पद्धतिको रखने लगता है। इस ग्रन्थमे सिद्धान्तस्थापनकी भी दृष्टि अपनाई गई है।

त्रिविध चेतनाओका अध्यात्मविवरण व कर्मचेतना—समयसारमे इन तीन चेतनावो का वर्णन इस प्रकार है। कर्म चेतनाज्ञानके सिवाय अन्य परिणमनोमे इसे मैं करता हू, इस

प्रकारकी चेतना कर्मचेतना कहलाती है। कोई पुरुष अपनेको ज्ञानरूप ही चेते, मैं तो ज्ञानमात्र हूं, ज्ञानप्रकाशरूप हू, जिसका काम केवल जानन है, जाननमे जानन होता है, विकारोका वहाँ स्थान नही। रागद्वेष विभाव, परके आकर्षण परकी दृष्टियाँ ये सब मुझमे कहाँ पडी है ? मै तो केवल ज्ञानमात्र हू। केवल जाननरूपसे ही मै चेतता हू, केवल जाननरूपको ही कर रहा हू, केवल इस जाननरूप हो मे परिणम रहा हू, अन्य मेरा कुछ काम ही नहीं। सर्वत्र मै जानता ही जानता रहता हू, इस प्रकारका चेतन हो तो वह ज्ञानचेतना है, किन्तु ऐसा चेतन न बनकर मैं अमुकको सुख देता हूं, अमुकको दुःखी करता हू, मकान बनाता हू, धन कमाता हू, दूकान करता हू, इतना आरम्भ कर लिया है। ओह करने-करनेका ही बोझ लादना, यही तो कर्मचेतना है।

कर्मफलचेतनाका अध्यात्मविवरण—कर्मफलचेतना—ज्ञानके सिवाय अन्य परिणमनो मे उसे मैं भोगता हू, ऐसा चेतन करना कर्मफलचेतना है। जब कि ज्ञानी जीव अपने आपमे अपने आपको इस प्रकार चेतता है कि जो मेरा जाननस्वरूप है उस जाननको ही भोगता हू। भोगना और परिणमना जुदी-जुदी बातें नही है। करना और परिणमना जुदी-जुदी बातें नही है, और इस दृष्टिसे प्रत्येक पदार्थमे चाहे वह चेतन हो अथवा अचेतन हो, सभी करते हैं, सभी भोगते है। किसे ? अपनी अवस्थाको। सभी पदार्थ अपनी अवस्थाको करते हैं और अपनी अवस्थाको अनुभवते है, किन्तु अचेतन पदार्थोंमे चेतन गुण नही है इस कारण उनमे अनुभवने की बात कही देरमे बैठती है।-अरे अनुभवन उनका उनके ही रूप है, अचेतन रूपसे ही है। हाँ यह आत्मा चेतन है, यह शीघ्र समझमे आता है, क्योकि यह चेतनके रूपसे अनुभवता है ना ? वे अपनी सत्ता परिणमन रूपसे अनुभवते है, ज्ञानके सिवाय अन्य किसीको मैं अनुभवता नही। मैं जब कभी भी जो कुछ भी भोगता हू एक अपने जाननको भोगता हू। यह जीव जब किसी विषयको भी भोग रहा है तब भी वह विषयभूत पुद्गलको नही भोग रहा है, किन्तु विषयभूत पुद्गलके भोगोमे, उनके सम्पर्कमे जो कल्पनाएँ बनायी, जो ज्ञान बनाया उस ज्ञान को ही भोग रहा है, अशुद्ध वृत्तिको भोग रहा है। तो एक दृष्टिसे अज्ञानी भी जब अन्यको नही भोग पाते तो ज्ञानी यहाँ परभावको भी भोगनेकी बात अपने चित्तमे न लगाकर केवल शुद्ध ज्ञान वृत्तिको भोगनेकी वृत्ति कर रहा है। ज्ञानी पुरुष ज्ञानको ही भोगता हुआ इस प्रकार का प्रत्यय रखता है। अज्ञानी जन परतत्त्वके भोगनेका प्रत्यय रखते हैं, यही कर्मफलचेतना है।

ज्ञानचेतना व त्रिविध चेतनाओका प्रकृत उपसंहार—कोई-कोई जीव इतने सामर्थ्यहीन होते हैं कि वे भोगनेका विकल्प भी अपनेमे स्पष्ट नही पाते है और भोगते जाते हैं। वे है स्थावर जीव। समयसारकी उस पद्धतिसे इन तीन चेतनावोका विभाग यह प्रकारसे होना

है। ज्ञानचेतना किसके है ? ज्ञानचेतना अप्रमत्त गुणस्थानसे है। कर्मचेतना और कर्मफल-चेतना पहिले गुणस्थानसे छठे गुणस्थान तक है। फिर दूसरी दृष्टि जगती है कि जो श्रद्धामे और प्रतीतिमे है; वास्तविकता तो उसकी है, मूल्याकन तो वहाँसे है। लो अब है ज्ञानचेतना किसके ? सम्यग्दृष्टिके, और कर्मचेतना कर्मफलचेतना, जो सम्यग्दृष्टि नही हैं उनके। इस प्रकरणमे जिस प्रकार भूमिका आकर वर्णन किया है उसमे यह बताया है कि कर्मफलचेतना है एकेन्द्रिय जीवोके, और कर्मचेतना किसके है ? दो इन्द्रिय जीवोंसे लेकर जब तक केवलज्ञान न हो तब तक। जब यह कर्म और कर्मफलको चेतता रहता है, और इस करणानुयोगकी दृष्टिसे ऐसा कुछ साफ जचता भी है कि यह कर्म अपने उदयसे तब तक कुछ न कुछ कर रहे है, केवलज्ञान होनेके बाद फिर न कोई उपद्रव है और न किसी प्रकारकी बाधा है। वह प्रभु है और वह अब स्पष्टरूपसे ज्ञानको ही चेतता रहता है। ये स्थावर जीव कर्मफलका चेतन करते है।

कर्मचेतनाके प्रधान अधिकारी—त्रस जीव ये भी यद्यपि मोहसे मलीमस है और इनके ज्ञानावरणसे बुद्धि सामर्थ्य भी रुकी हुई है, फिर भी कुछ वीर्यान्तिराय कर्मका क्षयोपशम पाया है जिससे कार्य कारण सामर्थ्य प्रकट होता है। वह किसी बातके कारण बन जायें, किसीके कार्य बन जाये, कुछ पहिचान कर सकें ऐसे कर्मकी सामर्थ्य प्रकट होती है। वे जीव कर्मफल चेतनासे मुक्त नही है, वह तो चल ही रही हैं। सुख दु खरूप जो कर्मफल है उसका अनुभवन उनमे चल रहा है, पर साथ ही वे कर्मोको प्रधानरूपसे चेत रहे हैं। त्रस जीवोंमें कर्मचेतनाकी प्रधानता बतायी है, क्योकि उनमे वीर्यान्तिरायका क्षयोपशम होनेसे कार्यकारणमे सामर्थ्य प्रकट हुई है। चेतक स्वभावके कारण जो भी उनमे सामर्थ्य प्रकट हुई है उसके अनु-रूप ईहापूर्वक, विचारपूर्वक सज्ञापूर्वक, इष्ट अनिष्ट विकल्परूप कार्योको करते है।

ज्ञानचेतनाके स्वामी—तृतीय प्रकारके जीव जो ज्ञानचेतनासे ज्ञानको ही चेतते रहते है वे है केवलज्ञानी जीव। जिन्होंने समस्त मोह कलकको धो डाला है और ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदिक समस्त कर्मोका समुच्छेद कर दिया है। इस ज्ञान चेतनामे भी प्रधानता सिद्ध जीवोकी रखी है। अब आत्माकी जितनी भी शक्तियाँ है समस्त शक्तियाँ अत्यन्त विकसित हो गयी है। वीर्यान्तिराय कर्मका क्षयोपशम हो चुका है, उनके अनन्तवीर्य प्रकट हुआ है। इस कथनमे ज्ञानावरण और वीर्यान्तिराय कर्म इनके क्षयपर प्रधानतया दृष्टि दी है। इससे अरहत भगवानके भी ज्ञानचेतना सिद्धकी तरह मानी गयी है। अब कर्मफल समस्त उनके समाप्त हो गये, कर्म भी समाप्त हो गये, अत्यन्त कृतकृत्य हो गये।

सकलपरमात्माकी निर्वाञ्छ क्रिया—सकलपरमातमाकी क्रिया जब तक वे अरहत भगवान हैं, शरीरसहित है, जो हो रही है वह कैसी क्रिया हो रही है ? विचार नही, विचारो

का चलना नही, इच्छा नही, क्या है, अब तो उनका शरीर बडा सुहावना, स्वच्छ, निर्मल है, एक खिलौनेका सा पुतला है। जैसे ये मेघ क्या विचार कर चलते हैं कि मै इस देशमे जाऊँ और वहाँ पानी बरषाऊँ ? अरे जहाँकी जनताका भाग्य है वह भी एक कारण है और यहाँ वायुका सम्पर्क सयोग है वह भी एक कारण है। बादल पहुचते है और बरसते है। ऐसे ही यह प्रभुका शरीर, यह परमात्माका परमौदारिक शरीर क्या यह जानकर चलता है कि मैं किस ओर जाऊँ, मैं म्लेच्छ देशमे ही जाऊँ, वहाँके लोग बडे धर्मात्मा है। वहाँ पहुचेंगे, क्या उनकी ऐसी इच्छा है ? नही है। फिर भी जहाँके जीवोंका प्रबल भाग्य है उस ओर उनका विहार होता है। जीवोका प्रबल भाग्य है विशेष कारण, और उनमे अघातिया कर्म तो रह ही रहे हैं, उनका उदय चलता है, बस ऐसे ही कारण कलाप मिलकर उस विषयके कारण बन जाते है। उनमे इच्छा नही, रागद्वेष नही, फिर भी यह गमन हो रहा है।

कृतकृत्यता व उपादेयता—केवलज्ञानी जीव अत्यन्त कृतकृत्य है, उन्हे बाहरमे कही करने योग्य कुछ नही है। अन्तरङ्गमें करने योग्य है ज्ञान, उस ज्ञानको ही वे करते रहते है। उस ही ज्ञानरूप वे परिणमते रहते है और ज्ञानरूपको ही अनुभवते रहते है। वे अत्यन्त कृतकृत्य है। वे अपने से अभिन्न स्वाभाविक आत्मीय सुखको और ज्ञानको ही चेतते है। ये प्रभु ज्ञानचेतना सयुक्त है। इस प्रकार ये जीव कोई तो ज्ञानचेतनाको ही चेतते है और कोई कर्म कर्मफलरूपसे चेतते हैं और कोई केवल कर्मफलको ही चेतते है। यह भेद पड गया है। एक स्वरूप, एक स्वभाव, एक लक्षणके भी ठोकर इन जीवोमे उपाधिवशसे ये नाना भेद पड गये हैं। इस प्रकरणसे हमे यह शिक्षा लेना है कि हम इन बाहरी भेद परिस्थितियोको न चेतकर अपने अन्त· शाश्वत विराजमान इस ज्ञानस्वभावको ही चेतें। इसका आलम्बन ही एक बहुत बडा सहारा है। यह सारी दुनिया, यह मोहक जगत सारा धोखा है, इस जीवकी बरबादीका कारण है। मैं मैं, मेरा मेरा—इन ही विकल्पोमे रहकर अपने आपका घात करते चले जा रहे है। अब सुयोग पाया, अच्छी बुद्धि पायी, सामर्थ्य मिला तो इसका सदुपयोग करें। इनको व्यर्थ न गमा दें और अपने ज्ञानस्वभावको बारबार चेतते रहनेका यत्न करें।

सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं।
पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा ॥३९॥

त्रिविध चेतनाओकी प्रभुता—पूर्वगाथामे यह बताया था कि चेतना तीन प्रकारकी होती है—कर्मफलचेतना, कर्मचेतना और ज्ञानचेतना। यह जीव चेतकस्वभावी होनेसे इन चेतनावोमे से किसी न किसीको चेतता ही रहता है। अब जीव किस चेतनाको चेतता है, इसका वर्णन इस गाथामे किया जा रहा है। स्थावरकाय जितने है वे सभी कर्मफलको चेतते हैं। चेतना कहो, अनुभव कहो, प्राप्त करना, वेदन करना—ये सब एकार्थवाचक शब्द हैं।

केवल कर्मफल चेतते है, इसका अर्थ है कि स्थावर जीव अव्यक्त सुख दुःखका अनुभवनरूप शुभ अशुभ कर्मफलको चेतते है। और त्रस कर्मचेतना सहित कर्मफल चेतनाको चेतते है, अर्थात् त्रस जीवोमे दोनो ही चेतनाओकी करीब-करीब प्रधानता है और उनमे भी कर्मचेतना की प्रधानता है। इन्हे कर्मचेतना और कर्मफलचेतनासे चेतनेका कार्य क्यो करना पडा ? उन्होंने निर्विकल्प परम आनन्दस्वभाव वाले आत्मतत्त्वका अनुभवन नही किया। जो ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभव नही करते वे रागद्वेषसे मलीमस बनकर कुछ न कुछ परभावोंमे परतत्त्वोमे इसे मैं करता हू, इसे मै भोगता हूँ—इस प्रकारका अनुभवन किया करते है। ज्ञान चेतनासे कौनसा जीव अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव करता है ? जिनके अब द्रव्य प्राण ही नही रहे, प्राणित्वसे अतिक्रान्त हो गये वे प्रभु ज्ञानचेतनासे चेतते है।

त्रिविध चेतनाओके अधिकारियोंका विवरण—प्राण दस प्रकारके कहे गये हैं—५ इन्द्रिय, तीन बल, श्वासोच्छ्वास और आयु। जिसमे केवल चार ही प्राण पाये जाते हैं—स्पर्शनइन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु वे स्थावर जीव हैं। स्थावर जीवोमे विग्रहगतिमे अपर्याप्तमे तो ३ प्राण होते हैं, श्वासोच्छ्वास नही होता और पर्याप्त अवस्थामे चार प्राण होते है। इन चार प्राणो तकके धारी कर्मफलचेतना तकको ही भोगते हैं। और चार प्राणसे अधिकके व दसो प्राणोंके धारी कर्मचेतना, कर्मफलचेतनाको भोगते है और जो इन दसो प्रकारके प्राणोसे अतिक्रान्त हो गये है वे जीव सिद्ध हैं, वे केवल ज्ञानका ही अनुभवन करते है। उन्हे केवल शुद्ध निज स्वरूपमात्र आत्मतत्त्वकी अनुभूति हुई है, इसकी भावना जो करता है उससे ऐसे शुद्ध आत्माकी अनुभूति होती है और परम आनन्दमय एक सुधारसका स्वाद उन्हे प्राप्त होता है। ये सिद्ध जीव केवल अपने ज्ञानको अनुभवते हैं।

अनुभाव्य तत्त्व—भैया! कोई भी जीव अपनेको अनुभवे बिना रहता नही है, कोई अपनेको कुछ मानता है, कोई कुछ मानता है, पर सबको अपने बारेमे कुछ न कुछ प्रतीति बनी हुई है। अब विवेक यहाँ करना है कि हम अपने आपकी क्या प्रतीति करें जिससे आनन्द प्राप्त हो और कैसी प्रतीति हम करते है जिससे क्लेशोकी प्राप्ति होती है, अपनेको शुद्ध एक ज्ञानप्रकाशमात्र विकाररहित अनुभव करो। उपाधिका निमित्त पाकर हममे विकार हो जाते है। कैसे हो जाते है ? क्या बतावे ? निमित्तनैमित्तिक योग है। आगका निमित्त पाकर पानी गर्म हो जाता है। कैसे गर्म हुआ, कहांसे हुआ ? क्या बतावें ? साक्षात् अनुभव कर लो। ठडा पानी रक्खो, थोडी देर बाद देख लो गर्म। अब कैसे वहाँ गर्म रूप परिणमन हुआ, यह उसकी बात है। मुझमे रागद्वेष विकार कैसे आ गए ? क्या बताएँ, हमारे स्वरूपमे तो विकार है नहीं, पर अवस्थामे विकार चल ही रहा है। हम अपने स्वरूपकी खबर नही रखते, सो यह उपयोग हमारे अपने ज्ञानस्वरूपके सिवाय अन्यत्र चल रहा है, दौड रहा है, हमारी परमुखी

दृष्टि हो रही है. हम स्वमुखी दृष्टिमे नही है, तब यह विकारोकी चाल चला करती है। अपने मे निर्विकार स्वभावका आश्रय करें तो अवस्थामे भी निर्विकारता प्रकट होती है। इस प्रकरण मे जो दूसरा अन्तराधिकार चेतयिताका या उसके सम्बंधमे दो गाथावोमें वर्णन किया है। अब तीसरा अतराधिकार उपयोगका है, उस उपयोगका वर्णन इस गाथामे अब किया जा रहा है।

उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दसणेण सजुत्तो।
जीवस्स सव्वकाल अणण्णभूद वियाणीहि ॥४०॥

उपयोगका वर्णन—आत्माके चैतन्यस्वभावका अनुविधान करने वाले अर्थात् अन्वय रूपसे परिणमने वाले जो व्यक्तरूप है उनका नाम उपयोग है ज्ञान। और दर्शनशक्तिका उपयोग क्या है ? जैसे लोकव्यवहारमे भी कहते है—अमुक बातका उपयोग क्या है, अमुक चीजका उपयोग क्या है ? चैतन्यशक्तिका उपयोग है जानन और देखन। हम कानोसे जानते है, और आँखोसे जानते है। सभी इन्द्रियोसे हम जानते है। ये निमित्त है, जाननहार आत्मा इनसे जुदा है, पर ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक सम्बध है।

हम आँखोसे देखा नही करते, लेकिन ऐसा बोलने लगे है, क्योकि जरा स्पष्ट जानन हो रहा है ना, इसलिए आँखोसे देखना कह देते है, और यह शब्द भी प्रचलित हो गया है। यदि यह बताया जाय कि भाई आँखोसे हम जाना करते है, देखा नही करते। आँखोसे कभी देख ही नही सकते तो गलत-सा लगता है कि क्या कहा जा रहा है ? हम आँखोसे ही तो सब कुछ देख रहे है। जानना होता है सविकल्प और देखना होता है निर्विकल्प। आँखोसे आपने क्या देखा ? उसका आप आकार बता दें, रग बता दें, तो इतने विकल्पोका जहाँ प्रतिभास होता है वह तो जानना है। देखनेमे यह नही कह सकते कि मैंने किसको देखा ? देखना होता है निर्विकल्प, जानना होता है सविकल्प।

इन्द्रियज ज्ञानोसे पहले दर्शनकी उद्भूति—भैया ! आँखोसे जाननेसे पहिले देखना होता है, और ऐसा देखना सभी इन्द्रियोके जाननसे पहिले होता है। कानोसे कुछ जाना, उससे पहिले देखना होता है। आँखोसे देखनेकी बात नही कह रहे है, कानोके जाननेसे भी पहिले दर्शन हुआ, सभी इन्द्रियोसे जाननेसे पहिले दर्शन हुआ। हमारा ज्ञान कमजोर है और, उस ज्ञानका काम करनेके लिए दर्शनसे बल लेते है। ज्ञान बाह्य पदार्थोको जान रहा है। तो एक पदार्थको जाननेके बाद उसका जानना छोडकर जब हम किसी दूसरे पदार्थको जाननेके लिए उद्यम करते हैं तो इस बीचमे हमे अपने अन्तरङ्गमे दर्शन होते है। और उस दर्शनसे बल ग्रहण करके हम फिर दूसरी चीजको जाननेमे सफल हो जाते है। तब ज्ञान हुआ सब जगह यो बाहर, और दर्शन हुआ अपने आपके अन्तरङ्गमे। अपने भीतर झुककर प्रतिभासका बल लेकर फिर बाहरमे हम जाना करते है।

दृष्टान्तपूर्वक मतिज्ञान दर्शनपूर्वत्वका समर्थन—जैसे कोई कूदने वाला लडका, जम्पका जैसे खेल होता है—एक रस्सी तीन चार फिट ऊँची दो बासोमे बाँध दी जाती है, अब जब वह लडका उस रस्सीको लाघनेके लिए तैयार होता है तो वह जितना जमीनकी ओर झुकेगा उतनी ही वह ऊँची कूद कर सकता है। और इसी काममे देख लेना कि जिस जगहसे उचककर उसने रस्सी कूदी है उस जगह गड्ढासा बन जाता है। तो उसमे ऊँची कूद करनेकी शक्ति तब बढी जब कि वह नीचेको झुका। ऐसे ही जब हम अपनी ओर झुक लेते हैं तब हम बाहर की चीजोको जाननेमे सफल होते है। ऐसा काम हम रात-दिन कर रहे हैं। और घटे भरमे हजारो बार काम कर डालते है। क्या ? कि अपनी ओर झुकना, फिर बाहरी चीजोको जानना। लेकिन इसका भान नही कर पाते कि लो हम झुक गए अपनी ओर। इतना भान कर ले तो उसे सम्यक्त्व हो जाय। काम बराबर कर रहे है, पर भान नही कर पाते। हम जो है सो ही तो है। हम भूल भटक गए, पर हम तो वही है। इस जीवने अपनी भूलसे उपयोगमे रमकर उपयोगमे ही हित मानकर अपनी बरबादी कर डाली है, निर्विकार हुए हैं तो निर्विकार स्वरूपका आदर भी तो करें। आदर तो किया जा रहा है विकारोका। वहाँ निर्विकारता अर्थात् आत्मविकास कैसे प्रकट हो ?

हमारा शरण—हमारा सहाय हम ही मे बसा हुआ सहज ज्ञानस्वभावका आलम्बन है। बाहरमें सब जगह धोखा है। पराधीनता, दुःखरूपता, भटकन सभी विपत्तियाँ बाहरी है। जो हम चाहते है, जो हमे अत्यन्त अभीष्ट है, जिनमे हमारा पूर्णतया कल्याण है, पूर्ण निराकुलता है वे सब बाते मेरेमे बसी हुई है। किसी की पगडीमे लाल बधा है, और उसे भूल गया तो वह घास बेचकर लकडी बेच कर अपना जीवन गुजारता है। जिसे अपने घरमे गडी हुई निधिका पता नही है वह गरीबीके दिन गुजारता है, ऐसे ही अपने आपमे जो परमस्वभाव है, चित्स्वभाव ज्ञानमात्र सर्वोत्कृष्ट वैभव है उसका पता नही है तो बाहरमे यत्र तत्र भटक भटककर अपने आपको बरबाद किए जा रहे है। अपनी सुध लेना, अपना उपयोग करना यह ही मात्र एक अपना कर्तव्य है।

सविकल्प निर्विकल्प उपयोगका उपसहार—उपयोग दो प्रकारके होते हैं—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ये ज्ञान और दर्शन सदाकाल जीवसे अभिन्न हैं। जो विशेषको ग्रहण करे वह ज्ञान है और जो सामान्यको ग्रहण करे वह दर्शन है। ये जुदी चीज़ नही है। जीव और उपयोग ये एक ही अस्तित्वमे हैं, भिन्न-भिन्न द्रव्य नही है। अब इन ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगमे से ज्ञानोपयोगके विशेषको बतला रहे हैं।

आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि णाणाणि पचभेयाणि।
कुमदि सुदविभगाणि य तिण्णिवि णाणेहि सजुत्तो ॥४१॥

ज्ञानोपयोगके भेद—ज्ञान ५ प्रकारके होते हैं—आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान । इन ५ प्रकारके ज्ञानोमे से आदिके तीन ज्ञान मिथ्यात्वके सम्पर्कसे विपरीत भी होते है—अर्थात् कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान । यो ज्ञानमार्गणा ८ होते है । जैसे अन्य मार्गणावोमे एक भेदरहितका रहता है ऐसा ज्ञानमे नही है । जैसे अन्य मार्गणावोमे गतिरहित है ऐसे ही ज्ञानमार्गणामें ज्ञानरहित है क्या ? नही है । ज्ञानरहित कोई जीव हो नही होता है । यों ८ प्रकारके ज्ञानोपयोग कहे है ।

आभिनिबोधिक ज्ञान—ज्ञानके इन भेदोमे प्रथम नाम है आभिनिबोधिक ज्ञान । जिसे लोग मतिज्ञान कह देते है । इसका बहुत स्पष्ट और सही नाम है आभिनिबोधिक ज्ञान । इस आभिनिबोधिक ज्ञानके अनेक भेद है । मतिज्ञान, स्मृतिज्ञान, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान । यदि इस प्रथम ज्ञानका नाम मतिज्ञान रखते है तो यो कहना पडेगा कि इस मतिज्ञानके मति, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान ये उसके प्रभेद है, अनर्थान्तर हैं । आभिनिबोधिकका अर्थ है अभिमुख और नियत पदार्थको जाने सो आभिनिबोधिक है । शुरूमे जो दो उपसर्ग लगे है अभि और नि, उसका अर्थ है अभिमुख और नियत अर्थको जाने सो आभिनिबोधिक है । यह लक्षण मति, स्मृति, तर्क अनुमान, चिन्ता इन सबमे घटित हो जाता है । मतिज्ञान तो नाम है साव्यावहारिक प्रत्यक्षका । ऐसे स्पष्ट वर्तमानके बोधको मतिज्ञान कहते हैं जो प्रत्यक्षके रूप मे प्रसिद्ध है । वाह हमने प्रत्यक्ष सुना, हमने प्रत्यक्ष देखा, हमने खाकर प्रत्यक्ष जान लिया, पर इन्द्रियोंसे जाननेको कहीं प्रत्यक्ष भी कहा करते है । प्रत्यक्ष नाम तो है इन्द्रियोकी सहायताके बिना, केवल आत्माके ही सहारे ज्ञान करनेका ।

श्रुतज्ञान—श्रुतज्ञानका सीधा अर्थ तो सुना हुआ है, पर सुना हुआ तो आभिनिबोधक ज्ञान है । आभिनिबोधक ज्ञानसे जानते हुए पदार्थमे कुछ और विशेष जानना सो श्रुतज्ञान है । यहाँ श्रुत उपलक्षण है, दृष्ट स्पृष्ट आदि सब मतिज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान होता है । यह अपने ही ज्ञान करनेकी प्रणालीकी बातचीत चल रही है । हमने आँखोसे जाना, और जिस समय हमने यह सोचा कि यह नीला है, बस यह श्रुतज्ञान हो गया । तो मतिज्ञान कहाँ तक रहा ? इसे हम नही बता सकते, क्योकि मतिज्ञान निर्विकल्प ज्ञान है । इन ५ ज्ञानोमे से मतिज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान ये चार ज्ञान निर्विकल्प है और श्रुतज्ञान सविकल्प है । ग्रन्थमे आता है कि साधु महाराजने अवधिज्ञानसे जानकर बताया, पर अवधिज्ञानसे जानना तो होता है, बतानेका काम नही हो सकता । जैसे मतिज्ञानसे जानकर फिर श्रुतज्ञानसे व्यवस्थाये बताते है यह नीला है, यह खट्टा है, ऐसे ही अवधिज्ञानसे जानकर फिर श्रुतज्ञानसे व्यवस्था बनायी जाती है ।

ज्ञानस्वरूपकी भावना—हम यो इन्द्रियके सहारे वर्तमानमे ज्ञान किया करते हैं, किन्तु

स्वभाव ऐसा नही है। मै केवलज्ञान पिंड हू। जैसे मिश्रीका डला सर्वत्र मीठे रससे भरा हुआ है आगे, पीछे, भीतर, ऐसे ही मेरा आत्मा सर्वत्र ज्ञानरससे ही भरा हुआ है। इसमें अन्तर किसी प्रदेशमे भी नही है। अपने आपको मैं केवल ज्ञानमात्र हू, ज्ञानस्वरूप हू, ऐसे ज्ञानस्वरूप की ही बारबार भावना करें, इसमे ही कल्याण है। जहाँ यह प्रतीति लिए बैठे हैं कि मैं अमुक प्रसाद, अमुक चद, अमुक लाल हू, इतने बच्चोका पिता हू, मैं अमुक व्यापारी हू, अमुक काम करने वाला हू, ऐसी प्रतीतिया तो केवल क्लेश ही पैदा करने वाली हैं। ये जब होती है, इन्हे जानो, पर प्रतीति मूलमे यह रखिये कि मैं तो सबसे न्यारा केवल ज्ञानप्रकाशमात्र हू। ऐसी ही प्रतीति हमारी शान्तिके मोक्षके मार्गमे प्रधान शरण है, अन्य कुछ हमारे लिए शरण नही है। यो यथार्थ जानकर अपनेको अपने ज्ञानस्वरूपकी ओर ही उन्मुख कीजिए।

अखण्डज्ञानात्मकता—यह आत्मा अनत सर्व आत्मप्रदेशोमे व्यापक विशुद्ध ज्ञान सामान्यात्मक है, अर्थात् अपने प्रदेशोमे सर्वमे व्यापने वाला विशुद्ध ज्ञानस्वभावरूप है। यद्यपि जीवका विस्तार प्रदेशकी अपेक्षा असख्यात प्रदेशोमे है। जैसे मनुष्य शरीर पाया तो जितना मनुष्य शरीरका विस्तार है उतनेमे इस जीवका विस्तार है। किन्तु इतने बडे विस्तारमे ज्ञान सर्वत्र वही का वही एक है। जिस एक प्रदेशमे जो ज्ञानस्वभाव और ज्ञानपरिणति है वही स्वभाव वही परिणति अन्य सब प्रदेशोमे है। यहाँ सदृशताकी भी बात नही है कि जैसा ज्ञान पहिले प्रदेशमे है वैसा ही ज्ञान अन्य प्रदेशमे है, किन्तु वही ज्ञान अन्य प्रदेशमे है। यह आत्मा ज्ञानपुज है, वह ज्ञान अखण्ड है, तदात्मक यह आत्मा उतने विस्तारको लिए हुए है जितने विस्तारसे आधार रूपसे ज्ञानपुंजको लिए रहा है।

ज्ञानका आवरण—वह आत्मा अनादिकालसे ज्ञानावरण कर्मोसे ढका हुआ है और इस आवरणके कारण आत्माकी महती ज्ञानशक्ति अवकुन्ठित है। कही जैसे मेघसे सूर्य ढक गया है इस तरह केवलज्ञानावरणसे केवलज्ञान ढक गया है, ऐसा नही है। वहाँ तो सूर्य पूरा का पूरा व्यक्त मौजूद है। और उस व्यक्त सूर्यपर यह मेघपटल पडा हुआ है। ऐसा यहाँ नही है कि केवलज्ञान व्यक्त पूर्ण प्रकट बना हुआ है और उसको केवलज्ञानावरण कर्मने ढक दिया है। यदि केवलज्ञान व्यक्त प्रकट पडा है तो उसको ढकनेकी सामर्थ्य किसी भी द्रव्यमे नही है। किन्तु होता क्या है ? ऐसा निमित्तनैमित्तिक योग है कि केवलज्ञानावरणके उदयका निमित्त पाकर यह आत्मशक्ति व्यक्त प्रकट नही हो पाती है। प्रकाशकी अवरुद्धताके लिये सूर्यमेघका दृष्टान्त है। जिसके उदयसे केवलज्ञान प्रकट न हो सके उसका ही नाम केवलज्ञानावरण है।

आभिनिबोधिक ज्ञानकी उद्भूति—केवल ज्ञानावरणके उदय होते हुए भी उस-उस ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे और इन्द्रिय मनके आलम्बनसे यह जीव मूर्तिक द्रव्यको और अमू-

तिक द्रव्यको एक देश विशेष रूपसे जानता है, यही आभिनिबोधिक ज्ञान है। इन्द्रियका विषय मूर्त पदार्थ ही है और मनका विषय मूर्त पदार्थ भी है और अमूर्त पदार्थ भी है, किन्तु ये सब एकदेश जान पाते है, सर्वदेश नही जान पाते है। जो अभिमुख पडा हो उसे ही जान पाते है और उसे भी नियत। स्पर्शनइन्द्रियसे स्पर्श ही जान पायगा, रसनाइन्द्रियसे रस जानेगा। इन्द्रियका जो-जो विषय है उन इन्द्रियोंके वह-वह जाना जाता है। इस प्रकारका एक सकुचित आभिनिबोधिक ज्ञान हम आप सभी जीवोके है। मिथ्यादृष्टि जीवोके यह कुमतिज्ञान कहलाता है और सम्यग्दृष्टि जीवोके यह सुमतिज्ञान कहलाता है।

श्रुतज्ञानकी परिस्थिति—अब श्रुतज्ञानको सुनिये—श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। मतिज्ञानसे जो जाना मूर्त अथवा अमूर्त पदार्थको उसको एकदेश विशेषरूपसे जाना जाय तो उसका नाम श्रुतज्ञान है। हमने जो शब्द बोले वे शब्द आपके कर्णइन्द्रियसे ज्ञात हुए। वह तो मतिज्ञान है, पर जहाँ आपने यह समझा कि यह कहा है वह श्रुतज्ञान हो गया। शब्दका वाच्य आपकी दृष्टिमे आ जाय तो वह श्रुतज्ञान हो गया। मतिज्ञान तब तक रहता है, कब तक ? जब तक कि निर्विकल्पता रहती है। आपने कुछ विकल्प न किया, क्या कहा और सुननेमे आ गया, मतिज्ञानसे विकल्प कोई रहता नही है वह कर्णेन्द्रियज मतिज्ञान है। यदि मतिज्ञानका ही अनुभव रह जाय तो वह भी बडे भलेकी चीज रहे। उसका अनुभव न करके झट यह जीव श्रुतज्ञानपर पहुच जाता है। आत्मानुभवकी स्थितिमे ज्ञानका भी प्रसार समझिये। श्रुतज्ञान तो विकल्पात्मक है और ज्ञानानुभूति एक निर्विकल्प स्थिति है। हाँ यह बात अवश्य है कि उपकार श्रुतज्ञानका है। ज्ञानानुभूति पानेके लिए श्रुतज्ञानका पहिले बडा भारी सहारा उसे मिला था, और अब यह निर्विकल्प स्थितिमे है।

आत्मानुभूतिकी आत्माश्रयता—भैया! वास्तविकता तो यह है कि अनुभूतिकी दशा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदिक किसी रूपमे नही है। लेकिन इन ५ ज्ञानोको छोडकर छठी स्थिति और क्या होती है ? अत इस ज्ञानानुभूतिसे पहिले जैसा ज्ञानका दौडदौडा था, पुरुषार्थ था, वही ज्ञान ज्ञानानुभूतिमे कहा जाता है। मतिज्ञान तो वह है जो इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न हो, पर ज्ञानानुभूति, आत्मानुभव क्या इन्द्रियसे उत्पन्न होता है ? नही। क्या मनसे उत्पन्न होता है ? नही। वहाँ अनुभवका और मानसिक ज्ञानका कितना विलक्षण मिलाप हो रहा है, सधि हो रही है, जुहार भेंट हो रही है कि यह मन उस आत्मानुभव वाले ज्ञानके निकट पहुचकर, उस ज्ञानमे लीन होकर अपने आपके महत्त्वको खो देता है, वह भी उसमे विलीन हो जाता है। श्रुतज्ञान तो सविकल्प है और जिस जिसकी आपको खबर है, कल्पना है, विचार है वह सब श्रुतज्ञान है। भोजन किया, जीभपर भोजन रखा, इसका ज्ञान हुआ, पर जैसे ही आपने यह मनमे बात बनायी कि यह खट्टा है, वह श्रुतज्ञान हो गया, मतिज्ञान नही रहा। जितने

विकल्प है, विचार है वे सब श्रुतज्ञानरूप है।

अवधिज्ञान व अवधिज्ञान नाम होनेका कारण—अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे विकलरूपसे थोडा-थोडा मूर्त द्रव्यको विशेषरूपसे जो जाना उसे अवधिज्ञान कहते है। इसका नाम अवधिज्ञान क्यो रक्खा, इसके कई कारण हैं। अवधिज्ञानने तो स्वरूप जाना ना? इन्द्रिय और मनकी सत्ताके बिना रूपी पदार्थ एक देश स्पष्ट जाना जाय आत्मशक्तिसे उसे अवधिज्ञान कहते है। अवधिज्ञान नाम रखनेका एक कारण तो यह है कि इस ज्ञानका प्रसार नीची दिशामे अधिक होता है और ऊर्ध्वदशामे कम होता है अर्थात् अवधिज्ञानी जीव जानते है ना सब जगहकी बात, पर नीचेकी बात अधिक दूर तककी जानते है। उतनी दूर तक ऊपर की बात नही जानते। देवतावोको अवधिज्ञान होता है तो वे नीचेकी बात तो नरको तककी जानेंगे और ऊपरकी बात अपनी-अपनी सीमावो तक जानेंगे। उसका नाम अवधिज्ञान है।

अवधिज्ञान नाम होनेका द्वितीय कारण—अवधिज्ञान नाम पडनेका दूसरा कारण यह है कि अवधिज्ञानी जीव अवधि सहित जानते हैं, इसमे मर्यादा लगी हुई है, और यह अवधिज्ञान पाँच ज्ञानोके क्रममे जहाँ रखा हुआ है यह सूचित करता है कि इसमे पहिलेके ज्ञान और यह ज्ञान सब मर्यादा सहित है और इसके बादका जो ज्ञान है वह असीम है। एक शका यहाँ यह की जा सक्ती है कि अवधिज्ञानके बाद तो मन पर्ययज्ञान लिखा है, और मन पर्ययज्ञानकी सीमा है, वह असीम नही जानता। तो इसके समाधानसे यह जानो कि इस पद्धतिसे तो ज्ञानो का क्रम यही है— मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मन पर्ययज्ञान, अवधिज्ञान और केवलज्ञान। यदि इस नम्बरसे आप बोलें, सोचें और न्यायप्राप्त नम्बर यही ठीक है भी और सिद्धान्तमे इस प्रकार की शका करके यह दृष्टि भी बतायी गयी है। अब तो ठीक बैठा ना कि अवधिज्ञान और इससे पहिलेके ज्ञान सब मर्यादासहित है, लेकिन इसके बादका ज्ञान मर्यादारहित है। ठीक है ना? सुधार लिया, समझ लिया? लेकिन चूकि मन पर्ययज्ञान सयमी जीवोके ही होता है, असयमियोके नही, साधु पुरुषोके ही होता है, इस कारण मन पर्ययज्ञानकी पूज्यताके कारण इसे केवलज्ञानके निकट अब रख दीजिए। तब यह नम्बर बन गया—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान।

अवधिज्ञानसे ज्ञात पदार्थका श्रुतज्ञानमे व्याख्यान—यह जीव अवधिज्ञानसे तो रूपी द्रव्योको प्रतिभास लेता है कि क्या है और उसका जब वर्णन करते हैं तब चूकि इस ही आत्माने अवधिज्ञानको जाना ना, तो उस जाने हुएका यह मन स्मरण रखता है और श्रुतज्ञान के उपयोगसे फिर दूसरे लोगोको इसका व्याख्यान करते हैं। जैसे थोडा बहुत ऐसा अदाज कर लीजिए, स्वप्नमे आप जो कुछ देखते हैं वह दुनिया तो आपकी निराली है ना और जगनेके बाद जैसी स्थिति आपकी बनती है वह दुनिया स्वप्नसे निराली है, लेकिन स्वप्नमे देखी हुई

चीज जगनेके बाद भी स्मरणमे रहती है और आप उसका व्याख्यान करते है, दूसरोको बतलाते है। यह एक थोडा अदाजके लिए दृष्टान्त कहा है। कोई पूर्णरूपमे कुछ बात नही घटती, केवल इतनी बात इस दृष्टान्तमे समझ लीजिए कि जैसे किसी अन्य ढगसे स्वप्नमे जानी हुई बातको जगने के बाद जहाँ हम मन चाहा विकल्प बताते है उस स्थितिमे स्मरण करके उस बातको प्रकट करते है, ऐसे ही अवधिज्ञानसे जो जाना वह इसकी निराली दुनिया है निर्विकल्प स्थिति थी। अब उस जाननके बाद जब मतिज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञानका उपयोग हो तो इस सविकल्प अवस्थामे स्मरण कर उसका व्याख्यान किया करते हैं।

मनःपर्ययज्ञानावरण—मनःपर्ययज्ञानावरणके क्षयोपशमसे दूसरेके मनमे ठहरी हुई कोई मूर्तिक पदार्थकी बात एकदेश विशेष रूपसे जान जाय, उसे मन पर्ययज्ञान कहते है। दूसरेके मनमे क्या पडा हुआ है उस मनके विकल्पको और मनमे ठहरे हुए पदार्थको जान जाय, यह विशेष निर्मलतासे साध्य बात है। यह मनःपर्ययज्ञान सयमी साधुवोके होता है, उसमे भी सबके नही। एक इस प्रकारकी विशिष्ट ऋद्धि महिमा अतिशय तपश्चरण हो उनके होता है। इस मन पर्ययज्ञानके दो भेद है—ऋजुमति और विपुलमति। ऋजुमतिज्ञानके धारी तो उस भवसे मोक्ष जाये या न जाये, कोई नियम नही है। वह मनःपर्ययज्ञान छूट जाय अन्य ज्ञान बन जाय, केवलज्ञान न हो यह हो सकता है। किन्तु विपुलमति मन पर्ययज्ञान हो तो अब इसके बाद नियमसे केवलज्ञान होगा और मुक्ति पायगा। ऋजुमति मन.पर्ययज्ञान तो दूसरेके सरल मनकी बात जानता है। सीधा-सादा विचार हो उसे जानता है, किन्तु विपुलमति मन.पर्ययज्ञान कितने ही मायाचारसे कोई चिन्तन करे, उनमे आधा चिन्तन करे, आधा न करे अथवा सोचा था या आगे सोचेंगे, इन सब बातोको जान जाता है।

आत्मनिधिकी वार्ता—यहाँ आत्माके ज्ञाननिधिका कुछ विस्तार बताया जा रहा है कि इस आत्मामे कितने चमत्कार है, कितनी इसकी महिमा है, जिस महिमाको न जानकर जो कुछ विषयसाधन मिला उसमे ही ऐसा विकल्प बनाया कि यह ही सब कुछ है और इन साधनोसे ही हमारा बडप्पन है, हित है, सुख है, सुख है, ऐसा दुर्विकल्प बसाया, यह ज्ञाननिधि दृष्टिमे रहे तो ये दुर्विकल्प ठहर नही सकते। कुछ लोग इस बातके लिए हैरान रहते हैं कि हमारे विकल्प बडे उठते है, धर्ममे मन नही लगता, चित्त अस्थिर रहता है, ठीक है, ऐसा होगा ही। जब तक अपनी आत्मनिधिकी रुचि नही होती है तब तक वास्तवमे धीरता नही प्रकट हो सकती। वास्तविक धीरता और गम्भीरता इस महती आत्मनिधिके स्पर्शमे ही है।

दृष्टान्तपूर्वक धीरता व गम्भीरताका एक कारण—जैसे लोकमे दिखता है—जो कोई विशेष बडा धनिक होता है उसकी चाल-ढाल कुछ गम्भीर-सी नजर आती है। चाहे उसके

हृदयमे गम्भीरता न हो, मगर कुछ ऐसा ही वातावरण है और वह वातावरण भी किसका ? बडप्पनकी कल्पनाका। अपने आपमें जो यह कल्पना आ गयी है कि मै सबसे बडा हू और साथ ही धन भी है, जिसके लौकिक वैभव न हो विशेष और अपनेको बडा बडा मानता रहे तो उसमे बाह्यमे भी धीरता और गम्भीरता नजर नही आती। लौकिक वैभव भी हो, चाहे धनका वैभव हो, चाहे ज्ञानका वैभव हो, उस वैभवके मिलनेपर जो कुछ यह प्रतीति बन गयी कि मै महान् हू तो उसकी धीरता और गम्भीरता दिखने लगती है। यह एक लौकिक बात कही जा रही है, किन्तु जिस आत्माके वास्तविक आत्मनिधि प्रकट हुई उसकी दृष्टि जगी हो, रुचि बढी हो तो वह तो परमार्थसे महान है। ऐसा महत्व आनेपर अधीरता नही रह सकती।

रुचिपरिवर्तन—भैया! कुशलक्षेम चाहती हो तो अब रुचि बदलनी होगी। क्रोध कषाय जगती है तो उसका विषय बदल दो। अब तक क्रोध दूसरे जीवोपर आया है, अब क्रोध अपनी त्रुटियोपर कर लो। मान जगता है, कषाय नही मिटती है तो अब इसका मान बदल दो दूसरे जीवोको निरखकर मान करने लगो। अपने चमत्कार, गुण, वास्तविक स्वरूप महत्त्वको निरखकर तो यह गौरवमे शामिल हो जायगा। मायाचार करते करते बहुत क्षण गुजर गये, आदत बन गयी। नही छूटती है तो इस मायाचारकी प्रक्रिया बदल दो। जिन लोगोके बीच रहना पडता है, जिनसे बोलना पडता है उनसे प्रेमपूर्वक बोलकर आफतसे निपट लो और भीतरमे प्रेमरहित, रागद्वेष रहित इस ज्ञायकस्वभावकी उपासनामे लगो। तृष्णा करते-करते जीवन गुजर गया, उसका रग गहरा चढ गया। अब एकदम त्याग करते नही बनता तो थोडी उसकी दिशा मोड लो। आत्मविशुद्धिकी तृष्णा करो, मेरा अब निर्विकारता और एक शुद्ध ज्ञानप्रकाश बढता रहे। जैसे दूकानमे सोचते हो कि अब १० हजार हुए, अब ११ हजार हुए, ऐसे ही अब अपने घरकी बात सोच लो—जीव गृहकी बात सोच लो। इसमे अब इतना लाभ हुआ, इतनी शुद्ध दृष्टि हुई, अब इतनी निर्मलता बनी, अब इतनी विशुद्धि बढ गयी है–इस ओर अपनी तृष्णा लाइये। कुछ ही समय बाद ये सब कषाय के रूप भी हट जायेगे और एक शुद्ध ज्ञानस्वभावका अनुभव रहेगा। यह उपाय केवलज्ञान प्रकट करने का है।

स्वाभाविक विकास—केवल ज्ञानावरणके अत्यन्त क्षय होने पर यह आत्मा केवल ही अर्थात् इन्द्रिय मनका सहारा लिए बिना मूर्त और अमूर्त समस्त पदार्थोंको जो जानता है वह केवलज्ञान है। यह ज्ञान स्वाभाविक है। इसमे परापेक्षता नही है। यह जीवकी प्रकृति है, स्वभाव है, यह आश्चर्यकी बात नही है। वह तो स्वरूप ही है। आश्चर्यकी बात तो अज्ञानदशाकी है। केवलज्ञानी हो जाय, प्रभु हो जाय, शुद्धविकास बने, लोक अलोक ज्ञानमे

रहे, यह कोई आश्चर्यकी बात है क्या ? यह तो स्वरूप ही है, स्वभाव ही है । आश्चर्य तो इस बातका होना चाहिए कि हम अज्ञान अवस्थामें पडे है, केवलज्ञान तो जीवका स्वाभाविक विकास है ।

मिथ्यात्वके साहचर्यसे ज्ञानमें विपरीतताका आख्यान—भैया ! जो ये ५ ज्ञान बताये गये है, मिथ्यादर्शनके उदयका सम्बन्ध हो तो यही आभिनिबोधिक ज्ञान कुमतिज्ञान कहलाने लगता है । मिथ्यादर्शनके उदयके साहचर्यसे श्रुतज्ञान ही कुश्रुतज्ञान कहलाता है और मिथ्यादर्शनके उदयके सम्बन्धसे यह अवधिज्ञान ही विभङ्गावधिज्ञान कहलाता है । इस प्रकार इस उपयोगके प्रकरणमे पाँच तो सम्यग्ज्ञान और तीन मिथ्याज्ञान, यो ज्ञानोपयोगके ८ भेदोका वर्णन किया है ।

दसणमवि चक्खुजुद अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहिय ।
अणिधणमणतविसय केवलिय चावि पण्णत्त ॥४२॥

दर्शनोपयोगके भेद व चक्षुर्दर्शन—दर्शनोपयोग ४ प्रकारके होते है—चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन । आत्मा तो अनन्त सर्व आत्मप्रदेशोमे व्यापी विशुद्ध दर्शन सामान्यात्मक है । अर्थात् इन ४ प्रकारके दर्शन पर्यायोकी आधारभूत जो दर्शनशक्ति है तन्मात्र यह आत्मा है, किन्तु यह आत्मा अनादिकालसे दर्शनावरण कर्मोंके उदयके निमित्तसे दर्शनके विकाससे अवकुन्ठित है, आत्मविकास स्वाभाविक प्रकट नही हो रहा है, फिर भी जैसे चक्षुर्दर्शनावरण कर्मके क्षयोपशमसे और चक्षुरिन्द्रियके आलम्बनसे मूर्त द्रव्य विकल्प सामान्य रूपसे प्रतिभासमे आये वह चक्षुर्दर्शन है । यहाँ चक्षुइन्द्रियके आलम्बनकी बात कही है । दर्शनोपयोग इन्द्रियका आलम्बन लेकर नही होता, किन्तु यह दर्शनोपयोग छद्मस्थ जीवके किसी ज्ञानके प्रकट करनेके लिए हुआ करता है । तो चक्षुइन्द्रियका आलम्बन लेकर जो ज्ञान बनेगा उसके लिए जो दर्शन होता है उसका नाम है चक्षुर्दर्शन ।

अचक्षुर्दर्शन—ऐसे ही अचक्षुर्दर्शनावरण कर्मके क्षयोपशमसे चक्षुके सिवाय शेष चार इन्द्रियाँ अर्थात् स्पर्शनइन्द्रिय, रसनाइन्द्रिय, घ्राणइन्द्रिय और कर्णइन्द्रिय, इनके आलम्बनसे व मनके आलम्बनसे मूर्त और अमूर्त द्रव्यको सामान्य रूपसे प्रतिभास ले उसे अचक्षुर्दर्शन कहते है । यहाँ यह बात विशेष जाननेकी है कि ज्ञान ५ प्रकारके नही होते, अनन्त प्रकारके होते है । जितने पदार्थ है उतने ही प्रकारके ज्ञान है । ऐसे ही दर्शन भी ये चक्षु और अचक्षु ऐसे दो प्रकारके नही है, इस परोक्षज्ञानीके, किन्तु जितने प्रकारके ये परोक्षज्ञान है उतने ही प्रकारके दर्शन हैं । जैसे प्रकरणमे दो भेद किए है—चक्षुर्दर्शन और अचक्षुर्दर्शन । इनका विस्तार बताना है तो यो करिये—स्पर्शनदर्शन, रसनादर्शन, घ्राणदर्शन, चक्षुर्दर्शन, कर्णदर्शन और अनिन्द्रियदर्शन । ६ प्रकारके ज्ञानोके उत्पन्न होनेके पहिले जो दर्शन होते है वे भी उपचारसे

उतने ही प्रकारके हो गए।

दर्शनकी निर्विकल्पता—दर्शनमे विकल्प नही होता और जो जो विचारात्मक, विकल्पात्मक प्रतिभास जचता है, जिसकी हम सुध-बुध रखा करते हैं वह सब ज्ञान है। दर्शनके लक्षण यद्यपि कुछ विभिन्न पकारके भी पाये जाते हैं, किन्तु उनका लक्ष्य एक ही है। कही यह लक्षण कहा गया है कि पदार्थका आकार न करके जो सामान्य ग्रहण होता है उसे दर्शन कहते है। कही लक्षण कहा है—अन्तर्मुख चित्प्रकाशको दर्शन कहते है। कही लक्षण कहा है—आत्माके प्रतिभासको दर्शन कहते है। इन तीन ही लक्षणोमे दर्शनका लक्ष्य देखिये। यह तो तीनोमे ही सम्मत हो गया कि दर्शन निर्विकल्प होता है। जैसे इन शब्दोमे कह लीजिए कि सामान्यप्रतिभास होता है।

दर्शनके लक्षणोमे निर्विकल्पताका प्रकाश--सामान्यका अर्थ आत्मा है, यो रख लीजिए इस प्रकरणमे, क्योकि जब कभी भी हम सामान्यका प्रतिभास करेंगे तब हमे परपदार्थोंका आकार और विकल्प ग्रहणमे न आयगा। यदि आता है तो वह विशेष है। यह तो दृष्टान्तकी बात है। जैसे कहते है मनुष्य सामान्य और बाह्मण आदिक मनुष्य विशेष। अरे मनुष्य सामान्य ही खुद विशेष है। वह तो दृष्टातमे अपेक्षाकृत सामान्यकी बात कही गयी है। सामान्य तो वस्तुत वह है जहाँ भावोका आकार, पदार्थोंकी विशेषताएँ जहाँ न प्रतिभासित हो, केवल एक सामान्य प्रतिभासमात्र हो वह है दर्शन। तो ऐसा सामान्यप्रतिभास जब होगा तो उनका आश्रय परपदार्थ तो रहा नही और निराश्रय कुछ है नही प्रतिभासका तो उसका आश्रय पारिशेष न्यायमे आत्मा ही रहा। यो सामान्यका अर्थ आत्मा है, सामान्यका प्रतिभास दर्शन है। इसका अर्थ निकला कि आत्माका प्रतिभास दर्शन है। और अन्तर्मुखी चित्प्रकाशका नाम दर्शन है। इसका ही अर्थ यह निकला कि आत्मप्रतिभासका नाम दर्शन है। अपने आपके आत्माकी ओर अभिमुख होकर जो चेतनाका प्रकाश व्यक्त होता है वह दर्शन है। तो यो दर्शनके सभी लक्षणोसे यह तो ज्ञात होता ही है कि इसमे आकार विकल्प विशेषताएँ प्रतिभात नही होती है, तब दर्शन-दर्शन सब एक स्वरूप जानो।

ज्ञान और दर्शनकी समानता--भैया! यद्यपि ज्ञानकी तरह विविधता दर्शनमे नही होती, लेकिन छद्मस्थ अवस्थामे जैसा ज्ञान चला वैसा दर्शन हुआ है, क्योकि यहाँ दर्शनपूर्वक ज्ञान हुआ करता है। तो उपचारसे उतने ही प्रकारके दर्शन है और परमात्माके जितने पदार्थका ज्ञान हो रहा है उस समस्त ज्ञान करने वाले आत्माको प्रतिभासमे ले तो ज्ञानमे जितना आनन्त्य है उतना ही आनन्त्य दर्शनमे है। ज्ञान जितने विस्तारमे है, जितनी अनतताको लिए हुए है उतना ही दर्शनका हुआ।

दर्शनके उपादानकी दुर्लभता--इस दर्शनकी पकड बहुत दुर्लभ है। दर्शन होकर भी

दर्शन मुझे हुआ, इतना तक भी ख्याल नही आ सकता। जैसे ज्ञान होकर यह तो ख्याल आ जाया करता है कि मुझे ज्ञान हुआ, पर दर्शन होकर यह ख्याल नही आ पाता कि मुझे दर्शन हुआ। और दर्शनका ख्याल न आ पानेका कारण यह है कि हमारी धुन बाह्यपदार्थोंकी ओर लगी हुई हैं। इन बाह्यपदार्थोंकी धुनमे यद्यपि एक पदार्थके ज्ञानके बाद दूसरे पदार्थका ज्ञान करनेके बीच दर्शन होता रहता है, लेकिन बाह्यपदार्थोंमे धुन इतनी तीव्र हो गयी है कि बीचमे होने वाले अपने दर्शनकी धुन नही रहती है।

दृष्टान्तपूर्वक दर्शनके अवग्रहणकी दुर्लभताका समर्थन—जैसे एक पुरषको यह इच्छा हुई कि मुझे बहुत बडा धनी बनना चाहिए। एक बार किसीने उपाय बताया कि अमुक पहाड मे कोई पारस पत्थर भी है, वह मिल जाय तो उससे लोहेका स्पर्श होनेसे ही उतना स्वर्ण बन जायगा। उसने वहाँपर बीसो गाडी पत्थर समुद्रके किनारे एक जगहपर इकट्ठा करवा दिया और एक लोहेका मोटा डडा गडाकर एक हाथमे पत्थर उठाकर उस लोहेपर मारने लगा और देखता जाय कि यह लोहा सोना हुआ कि नही। यदि सोना हो जाय तो समझेंगे कि वही पारस पत्थर है। उन हजारो पत्थरोमे से कोई पारस पत्थर भी था। तो वह पत्थर मारे, देखे कि अभी लोहा सोना नही हुआ, वह झट समुद्रमे वह पत्थर फेंक दे। ऐसा ही काम बराबर जारी रक्खा। तेज धुन बन गयी। इसी क्रियाके बीचमे एक बार पारस पत्थर आ गया, उसे भी उठाया, लोहेपर मारा और फेका। जब लोहेको देखा तो वह सोना बन गया। सोचा—ओह! वह तो पारस पत्थर था। तो जैसे एक अन्य धुन बन जानेपर धीरता नही रही और उस पारसपत्थरसे भी हाथ धो बैठा, ऐसे ही बाह्य पदार्थोंकी ज्ञानकी हम आप धुन बनाये रहते है जिस धुनमे हम अपने आपमे प्रकट हुए दर्शनकी सुध नही ले पाते है।

अवधिदर्शन और केवलदर्शन—सामान्य प्रतिभासरूप दर्शन यहाँ उपचारसे अनेक भेदरूप बताया जा रहा है। अवधिदर्शनावरणके क्षयोपशमसे मूर्तद्रव्य विकल्परूपसे सामान्यतया प्रतिभासमे आये उसे अवधिदर्शन कहते है। ये तीन दर्शन ज्ञानके साथ-साथ नही होते। यद्यपि ज्ञान और दर्शन ये दो गुण है और इनका प्रति समय परिणमन होता रहता है लेकिन उपयोगकी बात कह रहे है। जिस समय उपयोग ज्ञानका है उस समय दर्शनका उपयोग नही होता, यह बात छद्मस्थ जीवोमे है। केवल दर्शनावरणके अत्यन्त क्षय हो जानेपर केवल ही यह स्वय मूर्तिक और अमूर्तिक समस्त पदार्थोंको सामान्य रूपसे जो जो प्रतिभासता है वह केवलदर्शन है। यह केवलदर्शन नामका विकास स्वाभाविक विकास है। इस प्रकार दर्शनोपयोगके भेदमे ये चार प्रकारके दर्शन बताये है।

दर्शनोमे उपादेय तत्त्व—इन दर्शनोमे उपादेय दर्शन केवलदर्शन है, पर केवलदर्शन

के उपायमे केवलदर्शनका अविनाभूत अनन्तगुणोंका आधार जो शुद्ध जीवास्तिकाय है वह ही उपादेय है। इस शुद्ध जीवस्वरूपको शुद्ध जीवस्वरूपके अनुभवरूप निर्विकल्प ध्यानसे पाये। जो बाह्यमे किन्ही पदार्थोके सञ्चयके लिए विकल्प करता है उसे न बाहर कुछ मिलता है, न अन्त. सन्तोष निराकुलता होती है, न अन्तरङ्ग समृद्धि प्रकट होती है। और जो अपने अन्त-रङ्ग स्वरूपका दर्शन करता है उसे बाह्य समृद्धिसे प्रयोजन क्या रहा ? अन्तरङ्ग समृद्धि उसके अनन्त प्रकट होती ही है। हम अपनी प्रतीति इस प्रकार रक्खा करें कि मैं केवल ज्ञानदर्शनस्वरूप, अपने आपके सत्त्वके कारण केवल प्रतिभासात्मक एक पदार्थ हू। जो स्वय मे परिपूर्ण है, सुरक्षित है, अन्य समस्त पदार्थोसे न्यारा है, ऐसा एकत्व विभक्त निज अन्तस्त-त्वका आलम्बन केवलज्ञान और केवलदर्शनके प्रकट होनेका कारण बनता है।

ण वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि होंति णेगाणि।
तम्हा दु विस्सरूव भणिय दव्वत्ति णाणीहिं ॥४३॥

ज्ञानकी एकरूपता व नानारूपता—यह ज्ञानी जीव ज्ञानगुणसे पृथक् नही किया जा सकता। ज्ञानगुणमे तन्मय है, तब यही सिद्ध हुआ ना कि यह आत्मा एक ज्ञानस्वरूप है। एक ज्ञानस्वभाव होकर भी इस प्रकरणमे ये ज्ञान मतिज्ञान आदिक नाना रूप बताये गये है। इस कारणसे ज्ञानी पुरुषोने इस आत्मद्रव्यको विश्वरूप कहा है। ज्ञानकी पद्धति ज्ञानके स्वरूप की ओरसे देखा जाय तो यह एक स्वरूप है और ज्ञानमे क्या जाना गया, ज्ञानने क्या क्या ग्रहण किया, उन ग्रहणात्मक रूपोको निरखकर देखा जाय तो यह ज्ञान नानारूप है। दृष्टियोसे आत्माकी यह सब विलक्षणता ज्ञात हो जाती है।

ज्ञानकी ज्ञानसे अभेदरूपता—यह तो प्रसिद्ध है ही कि ज्ञानी ज्ञानसे अलग नही है। जैसे अग्नि गर्मीसे अलग है क्या ? जरा गर्मीको अग्निसे उठाकर दूर रख दो और जब मनमे आये तब उस गर्मीको अग्निमे लगा दो, क्या ऐसा भी हो सकता है ? अरे अग्नि गर्मीस्वभाव को लिए हुए है। ऐसे ही यह ज्ञानी आत्मा ज्ञानसे अलग नही है। यह स्वय ज्ञानस्वरूपको लिए हुए है। दोनोका एक अस्तित्वसे निर्माण है, अस्तित्व एक ही है। स्वभाव और स्व-भाववानका भेद किया गया है। पर चीज वहाँ एक है। किसी भी एक वस्तुको जब हम व्यवहारमे लायें, उसका प्रतिपादन करे तो हम उस एकको एक ही रूपमे बतानेमे असमर्थ है। जैसा वह है तैसा ही का तैसा बता दें तो नही बता सकते हैं, उसके भेद करके गुणगुणी का भेद करके बतावेंगे।

अन्तस्तत्त्वकी अनिर्वचनीयतापर एक दृष्टान्त—भैया ! तत्त्वकी अनिर्वचनीयता तो है ही लोकमे भी हम आपसे पूछें—मिश्री कैसी होती है ? तो जैसी है तैसी ही एकदम 'आप उसी रूपमे नही बता सकते है। उसे कहेगे बडी मीठी है। ' भाई अभी हमारी समझमे नही

आया, कैसी मीठी है ?'' तो हम कैसे समझायें ? तुमने क्या कभी मिश्री खाई है ? नही, शक्कर खाई है ? नही । गुड खाया है ? नही । गन्ना चूसा है ? हाँ हाँ । तो देखो—गन्नेके चूसनेमे जो मिठास आती है, जितनी मधुरता ज्ञात होती है उससे अधिक मधुरता गुडमे होती है' इसका कारण क्या ? रसको पकाकर उसका बहुतसा मैल निकालकर फेंक देते है, वह मैल मधुरताका बाधक है, जो निकला मैल है, उसको चखकर भी देख लो उसमे मधुराई नही है । रसका मल दूर करके गुड बनाया तो अन्दाज कर लो कि रससे गुड़ कितना अधिक मीठा होता है, और गुडसे भी, रावसे भी जब मैल और छाट दिया जाता है तो शक्कर बनती है । वह मैल भी शक्करकी मधुराईमे बाधक है । उस मैलके निकलनेपर जो मिठास प्रकट होती है वह गुडसे अधिक है । शक्करकी भी चासनी करके उसका मैल भी निकालकर फेक दिया जाता है । जब वह समस्त मैल दूर कर दिया जाता, तब उसकी मिश्री बनती है । तब समझो वह मिश्री शक्करसे कितनी अधिक मीठी होगी ? समझे ना अब ? ''हाँ हाँ, बातोंसे तो समझ गये, पर अभी पूरी समझमे नही आयी बात । तब मिश्रीकी एक डली लेकर उसे खिला दो । खानेके बाद पूछो—अब समझमे आया कि मिश्री कितनी मीठी होती है ? हा हाँ अब हमारी समझमे आया ।

अन्तस्तत्त्वकी अनिर्वचनीयता—यह आत्मदर्शनकी बात भी अनिर्वचनीय, किन्तु अनुभवनीय है । बातोंसे तो बहुत समझमे आया है, आतमा जनात्मक है, आनन्दात्मक है, सबसे निराला है और युक्तियोसे भी देखो—जब आदमी मर जाता है तो शरीर यही पडा रह जाता है । जो छोडकर गया है बस वही तो आत्मा है और देखो ये हाथ पैर कुछ जानते नही हैं । जो जानने वाला है वह कोई विलक्षण ही पदार्थ है, समझे ना ? 'हा बातोसे तो कुछ कुछ समझ गया ।'''तो पूर्ण समझ तो तुम्हारे ही पुरुषार्थसे आयगी । जब भेदविज्ञान करके परवस्तुओंकी उपेक्षा करें और अभेद निज अन्तस्तत्त्वकी ओर झुकें, इन बाह्य विकल्पोको त्याग दें, शुद्ध विश्राम पायें तो आपके ही पुरुषार्थसे आपको अपने आत्माका दर्शन होगा ।

उत्कृष्ट वैभव—इस लोकमे सर्वोत्कृष्ट वैभव है तो आत्मानुभव है । क्यो जी ! तुम्हे चाहिए क्या ? आनन्द । किसीसे पूछो तो वह अपनी चाह बतावेगा, आनन्द । और इसके बाद खूब ज्ञान । ज्ञान और आनद दो इच्छायें सबके होती है । मुझे खूब ज्ञान मिले और आनद मिले, ये दो प्रकारकी इच्छाएँ सब जीवोमे पायी जाती है । ज्ञान बढानेकी भी इच्छा आनन्दके लिए है, इसलिए मूलमे तो एक आनदकी इच्छा है, अब आनद जिस विधिसे मिले उस विधि से तो मुख न मोडा जाना चाहिए । परीक्षा करके देख लो । आनन्द किस विधिसे प्रकट होता है ? आचार्यदेव यहा आत्मानुभवको ही शुद्ध परम सहज आनंदका उपाय बता रहे है । श्रद्धान

निर्मल हो, आत्मतत्त्वका झुकाव हो, परमविश्राम मिले तो स्वय ही वह ज्ञानानुभव जग जाता है जिस आत्मानुभवमे उत्कृष्ट आनन्द बसा हुआ है। ऐसे ज्ञानदर्शनसामान्यात्मक आत्मा के उपयोगसे सर्व प्रकारका आनन्द प्रकट होता है। धर्मपालनमे हमे एक यही यत्न करना योग्य है।

ज्ञानी और ज्ञानका अभेदपना—ज्ञानी और ज्ञानमे अभेद है, क्योकि ये दोनो एक ही अस्तित्वसे निर्मित है। अस्तित्व ४ दृष्टियोसे निरखा जाता है—द्रव्यदृष्टि, क्षेत्रदृष्टि, कालदृष्टि और भावदृष्टि। द्रव्य तो ये दो है नही, फिर भी चूंकि शकाकारने अपनी कल्पनामे ये दो पदार्थ सामने रखे है—ज्ञानी और ज्ञान। तो द्वैत तो हो ही गया ना? अब इन दो मे बताया जा रहा है कि अस्तित्व एक ही है। यह तो हुआ द्रव्यसे एकत्व, व्यक्तिसे एकत्व कह लीजिए। शकाकारकी दृष्टिमे चूंकि ये दो आये है, अत. कहना पड़ा है, अन्यथा यह कहना भी क्या शोभा देता है कि ज्ञानी और ज्ञान ये दोनो एक अस्तित्वसे बने है। अरे वह एक चीज ही है। उसमे इस प्रकारका विकल्प बनाना शोभा नही देता, लेकिन जो घीका घड़ा है यही जानता है उसे समझनेके लिए यह कहना ही पडता है कि देखो ना जो यह घीका घड़ा है वह वास्तवमे घीका नही है, किन्तु मिट्टीका है, तो जो व्यवहारी जन है उनकी भाषाका पहिले आलम्बन लेना ही पडेगा। नही तो उसे समझायेंगे कैसे?

क्षेत्र व कालदृष्टिसे ज्ञानी व ज्ञानका अभेदपना—क्षेत्रदृष्टिसे देखो तो इन दोनोके अभिन्न प्रदेश है। ज्ञानी अपने प्रदेश जुदे रखता हो, ज्ञानतत्त्व अपने प्रदेश जुदे रखता हो, ऐसा नही है। दोनो ही एकक्षेत्रप्रदेशी होनेके कारण एक क्षेत्री है। फिर भेद कैसा? कालदृष्टि से देखिये—तो दोनो ही ज्ञानी और ज्ञान एक ही समयसे निर्वृत्त है, अत एक काल है, एक कालका अस्तित्व है ज्ञानीमे और ज्ञानमे याने अनादिसे ज्ञानात्मक है आत्मा।

भावदृष्टिसे ज्ञानी व ज्ञानका अभेदपना—क्या बात कही जा रही है? यह जो मै हू सो ज्ञानस्वभाव हू। मेरा स्वभाव है ज्ञान। ऐसा सुनकर कही यह न जान लेना कि मैं एक पदार्थ हू और ज्ञान कोई मेरा स्वभाव है और वह अलग चीज है। कुछ लोग ऐसा सोचते होगे कि ऐसा तो कोई नही सोचता। या तो उसके सम्बधमे कोई विचार ही नही उठाता और विचार उठाता है तो सीधा यो ही उठाता है कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आत्मा जुदा है, ज्ञान जुदा है, फिर उनका सम्बध होता है, ऐसा तो कोई नही सोचता। अरे भाई हम आप कोई न सोचें, पर कुछ दार्शनिक ऐसे हो गए है जिन्होने इस दर्शनका विस्तार किया है कि आत्मा जुदी चीज है, ज्ञान जुदी वस्तु है। आत्मामे ज्ञानका जब समवाय होता है तब आत्मा ज्ञानी होता है। उस सम्बधमे यह प्रकरण चल रहा है कि आत्मा और ज्ञानस्वभाव ये कोई दो अलग-अलग नही है। द्रव्य एक है, क्षेत्र एक है, काल एक है और स्वभाव वही है, एक

है। अत भावदृष्टिसे भी यह एक है, इसमे भेद है नही।

ज्ञानके उपयोग—ज्ञानका ज्ञानसे भेद नही किया जा सकता। यह तो एक आन्तरिक दृष्टिसे बात हुई, निश्चयदृष्टिसे बात हुई। अब जब हम इसके उपयोगमे आते है, प्रयोगमे जब हम इसका एक व्यावहारिकरूप निरखते है तब यह प्रतीत होता है कि एक होने पर भी और स्वभावदृष्टिसे एक होने पर भी आभिनिबोधिक आदिक ये ५ प्रकारके ज्ञानपरिणमन है, इनका विरोध नही होता, यह भी सिद्ध होता है, क्योकि यह द्रव्य विश्वरूप है, समस्तरूप है। जो इस जीवमे गुण है और जो इस जीवकी प्रवृत्तियाँ है उन समस्त प्रवृत्तियोरूप यह आत्मा है। क्या वह परिणमन जुदा-जुदा है ? जैसे स्वभावको निरखो, स्वभाव एक है और वह ज्ञानसे अभिन्न है, ऐसे ही उस ज्ञानस्वभावकी जब प्रकृति निरखते है तो क्रम भावी विशेष तो होंगे ही। वह शक्ति ही क्या, जिसका कोई व्यक्तरूप न हो, कोई परिणति नही है तो शक्तिकी कल्पनाका श्रम करना बेकार है। शक्तियोका कोई न कोई परिणमन प्रतिसमय होता ही है, चाहे किसी शक्तिकी डिग्रियाँ कम हो कि उनका काम व्यक्त न हो सके, लेकिन कुछ भी जिसका परिणमन न हो सके ऐसी कोई शक्ति नही है। उनका अविभाग प्रतिच्छेद बढनेसे शक्तियां प्रकट व्यक्त हो जाती है, फिर भी ऐसी शक्ति कोई नही है जिसका त्रिकाल व्यक्त परिणमन न हो। प्रथम तो ऐसी शक्ति नही है जिसका किसी भी समय परिणमन रुक जाय। लेकिन कल्पनामे यह बात लाई जाती है कि शक्तियोकी डिग्रिया स्वभावत कम हो जायें तो उनसे व्यक्त परिणमन नही होगा। तो जैसे यह स्वभाव यद्यपि एक है, लेकिन व्यक्तिया तो है ना। उन व्यक्तियोकी दृष्टिसे यह ज्ञान अनेकरूप हो गया और यह ज्ञानी उन अनेक परिणमनोमे तन्मय है।

द्रव्यकी गुणपर्यायभाजनता—द्रव्य सहभावी गुण और क्रमभावी पर्यायका आधारभूत है, इसलिए अनन्त रूप है। प्रत्येक द्रव्य एक होते हुए भी अपने गुण और पर्यायोसे सहित होनेके कारण विश्वरूप है। यहा यह बात बतायी गयी है कि जिस प्रकार परमाणुसे रूप अलग नहीं है, पुद्गलसे रूप, रस, गध, स्पर्श कोई भिन्न चीज नही है, इन चार प्रकारकी शक्तियोका पुद्गलमे त्रिकाल निवास है, और इन शक्तियोके जितने भी परिणमन है काला, पीला आदिक उन सब परिणमनोरूप ये पुद्गल है, ऐसे ही इस जीव द्रव्यके जो गुण है—यह जीवद्रव्य उन गुणोमे शाश्वत तन्मय है और गुणोके जितने भी अतीत कालके, भविष्यकालके, वर्तमान कालके परिणमन है उन समस्त अनन्त परिणमनोमे तन्मय है, इसलिए यह ज्ञान एकरूप होकर भी विश्वरूप है, यह जीवकी सामान्य व्याख्या है।

शुद्ध ज्ञाता व ज्ञानमें अभेदपना—अब शुद्ध जीवकी अपेक्षा निरखिये तो यह शुद्ध जीव शुद्ध एक अस्तित्वसे निर्वृत्त है मायने रचा हुआ है। लोकाकाश प्रमाण असख्यात किन्तु

अखण्ड शुद्ध प्रदेशोमे है। जहाँ केवल एक शुद्ध स्वाभाविक विकास ही रहा करता है। यह प्रभुकी बात कही जा रही है। परमात्माका क्या स्वरूप होता है, उनकी विभूतिका वर्णन है। वह निर्विकार चैतन्य चमत्कार मात्र परिणतिसे भूत वर्तमान समयोंमे रचे हुए चले जा रहे हैं। ज्ञानने समस्त लोकालोकको जाना, आनन्दसे पूर्ण निराकुलताका अनुभव किया, ऐसे शुद्ध परिणमन रूप वे बराबर चलते जा रहे है। तो कालकी अपेक्षा भी वह अनन्त काल तक भी एक-सी परिणतिरूप रहा करते है। निर्मल एक चैतन्यज्योतिस्वरूप होनेसे वह एकस्वभाव है। अब उन शुद्धप्रभुका क्या भेद किया जाय, वहाँ पर भी उनके गुण और पर्यायसे कैसे भिन्नता की जाय ?

अपनी बात—यह जीव पदार्थ ज्ञानानन्दस्वभावी एकस्वरूप है, इतने पर भी जब हम इसके प्रयोगको देखते है तो इसके नानारूप हो जाते है। यह प्रकरण किन्ही की समझमे न आये तो इतना श्रद्धान तो बनाया ही जा सकता है कि अपने वैभवकी हमारी बात कितनी गहराईसे जैनसिद्धान्तमे बतायी गयी है। किस्सा कहानीका मनगढत इतिहास तो बहुत सरल होता है और उसमे दिल भी लगता है और यह तात्विक बात गहनकी है जो कि एक जैन दर्शनमे बडी सावधानी और नयवादके साथ बतायी गई है। उसका चमत्कार कितना अद्भुत विलक्षण है ? मैं उस ही स्वरूप हू। जो चीज मेरेमे गुजरना चाहिए, अनुभवमे आना चाहिए जिस रूप हमारा परिणमन हो जाना चाहिए उस रूप होता नही और उसकी बात भी बडी कठिन और समझसे कुछ बाहर बनी हुई है। तब जानो कि हम कितनी अभी गिरी हुई जगहपर है। हमे मोहको नष्ट करके इस ज्ञानप्रकाशमे बढनेका काम पडा हुआ है।

ज्ञानके भेद प्रभेद—यह आत्मा एकस्वरूप होकर भी नानारूप हो रहा है। इस ज्ञानकी विवक्षावश कितने ही भेद करते जाइये—यह मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान मन.पर्ययज्ञान, केवलज्ञान और तीन कुज्ञान, इस प्रकार ८ ज्ञानोकी पर्यायमे रहता है और उसमे भी मतिज्ञान तीन प्रकारसे गुजरता है—भावना, उपयोग और उपलब्धि। उपलब्धि तो प्रथम होती है—इसे कहते है लब्धि। किसी पदार्थको जाननेकी योग्यता, अर्थग्रहण करने की शक्ति की प्राप्ति होना, फिर जाना, यह हुआ उपयोग हुआ और उसका कुछ देर तक चिन्तन चला, यह हुई भावना। श्रुतज्ञानके तो बहुत भेद हैं। श्रुतज्ञान दो रूपोमे निरखा जाता है—एक तो शास्त्रज्ञानके रूपमे और एक जीवोमे मतिज्ञानके बाद जो विशेष विकल्प करके ज्ञान होता है उस रूपमे। दोनो ही रूप इसके अनेक हैं। अवधिज्ञान भी कोई देशावधि, परमावधि व सर्वावधि यो तीनरूप है अथवा कुछ ज्ञान ऐसे होते है, अवधिज्ञान जिस जगह पैदा होता है उस जगह रहा आये, अवधिज्ञान चलता रहेगा। उस क्षेत्रको छोडकर दूसरे नगरमे गया तो अवधिज्ञान समाप्त, ऐसा भी अवधिज्ञान होता है। ऐसा भी होता है कि दूसरे क्षेत्रमे जाय तब भी

यहीका वही बना रहता है, मरकर जाय तब भी बना रहता है और मरकर जाय तो न भी अवधिज्ञान बना रहे, ऐसा भी होता है। जितने रूपमे अवधिज्ञान पैदा होता है उससे बढ़ता हुआ चला जाय, ऐसा भी अवधिज्ञान है, घटता हुआ चला जाय ऐसा भी अवधिज्ञान है। कभी घटे कभी बढे, यो अनवस्थितिमें होता है जिस रूपमे हुआ उसी रूपमे रहे ऐसा भी होता है, यो भेद अवधिज्ञानके भी बहुत है। ऐसे ही मन.पर्ययज्ञानके भी भेद है। भेद करना चाहे तो उसके सहभावी भेद भी अनन्त हो जाते है। जितने पदार्थोंको जाना उतनी ही ज्ञान की कलायें है। इस प्रकार ज्ञानके यो अनेक भेद होते है।

अपने हितकारी लक्ष्यका कर्तव्य—भैया ! अनेक भेद होकर भी हम आपको निर्विकार अभेदरूप चैतन्यस्वभावमात्र आत्मतत्त्वको निरखना है जिसके आलम्बनसे यह महान् विस्तार वाला ज्ञानविकास प्रकट होता है। जैसे प्रत्येक मनुष्यको किसी न किसी ओर लगन रहती है। किसीको घरकी लगन है, किसीको स्त्रीकी लगन है। जिसका नया विवाह हुआ है वह अपनी स्त्रीके ही गुण गाता है। किसीको अपने पुत्रकी लगन है। प्रथम बार पुत्र हुआ तो वही-वही दृष्टिमे बसा हुआ है। किसीको धनसे लगन है तो वह जहाँ बैठेगा वहाँ धनके प्रयोजनकी ही बात करेगा। वही एक धुन रहती है। किसीको यश नामवरीकी धुन है तो जगह-जगह भ्रमण, यहाँ वहाँ उपयोग करनेकी धुनमे रहता है। प्रत्येक मनुष्य अपने आपके बारेमें किसी न किसी रूप अपनी प्रतोति बनाये रहता है, जिस प्रतीतिके कारण उसकी धुन बना करती है। तो ये सारी धुन बेकार है, अहितरूप है, दु खके हेतु है। अपनी प्रतीति क्या बनायें, अपनी धुन कैसी बनायें ? इस ओर कुछ हितबुद्धिसे दृष्टि दीजिए।

अनात्मप्रतीतिमे हानि—मै अपनी प्रतीति उस रूप करू, जो रूप मेरा कभी रहने का नही, मिट जायगा तो उस प्रतीतिसे लाभ और स्थिरता नही हो सकती। मै अपनेको लडकोका बाप मानू तो यह बापपना सदा निभ नही सकता। खुद मरेगा और कोई लडका मरेगा तो वह क्लेश पायगा। अपनेको इस दुनियामे नेताके रूपमे माना तो उससे भी पूरा नही पडनेका है। कौनसी लौकिक कीर्ति ऐसी है जिससे इस आत्माका पूरा पड जाय ? कौन सी धुन ऐसी है जिसकी धुन लगानेसे आत्मा शान्तिमे ही सदा बसा रहा करे ? वह प्रतीति है अपने सहजस्वरूपकी। मै स्वरसत. चैतन्य भावमात्र हू। मैं केवल एक चित्प्रकाश हू। किसी ने नाम लेकर पुकारा तो इसकी मेरी ओर खिचनेकी क्या जरूरत, यह अन्तर्जल्पसे बोलिये। मै इस नाम वाला ही नही हू। ये सब लोग अमुक नाम बताया करते है। इस नामका न मुझ मे कोई लेप है, न लेख है, न सम्बन्ध है। मै तो एक यह पदार्थ हू। कोई मुझे अन्य-अन्य विशेषणोंसे पुकारे—सफल व्यापारी, पुरुषार्थी, लोकनायक, धर्मात्मा, श्रावक, गृहस्थ, साधु, त्यागी किन्हीं नामोको कहकर पुकारे तो क्यो उसकी ओर मेरा आकर्षण हो ? मैं इस रूप हूं

हो नही।

नानात्मकताकी प्रतीतिमे असारता—मैं तो एक शुद्ध चित्प्रकाशमात्र हू, सबसे न्यारा इस देहसे भी जुदा केवल ज्ञानस्वभावरूप यह मैं आत्मतत्त्व हू, इस प्रतीतिमे कितने ही गुण भरे हुए हैं। नाना प्रतीतिमे कोई सार नही है। काहेका यहाँ सुख है? लडकोका सुख भी माना जा रहा है। वे आज्ञा न मानें तो जी छोडकर उनको डाटते भी जा रहे, बडी गुस्सामे भी रहना पडता है, यह कोई सुख है क्या? परिजनके बीचमे अनेक-अनेक आकुलाहट चलती रहती है। फिर भी मान रहे हैं कि यह मैं हू, ये मेरे है, इनसे ही सुख मानते हैं तो यह कोई सुखमे सुख है क्या?

सांसारिक सुखोका धोखा—अरे भैया! ये सासारिक सभी सुख ऐसे ही दु खोसे भरे हुए है। बिना बुना हुआ कोई पलग हो और उसके ऊपर केवल चादर बिछा दी जाय तान करके और कच्चे सूतसे पायासे चादरकी छोर कस दी जाय। कोई मजाकिया ऐसा कर भी सकता है और किसीसे कह बैठे कि आइये साहब विराजिये। वह उसमे विराज जाय तो उसकी क्या दशा होगी? अरे वह गिर पडेगा, हाथ, पैर, सिर सब इकट्ठे हो जायेंगे। तो ऐसे ही तने हुए चादरकी तरह ये सब समागम लग रहे है, इनमे सारतत्त्व कुछ नही है। आत्मा को ये सतुष्ट कर सके, ऐसी बात यहाँ एक भी नही है। कल भी खाया था, आज भी वही खायेंगे, सतोष तो कुछ भी नजर नही आया। वैभवमे, धनोपार्जनमे इतना तेजीसे जुते जा रहे हैं। किनके लिए? मोहमे जिनको अपना मान रखा है उनके लिए। हैं सब जुदे। जिनको समझ लिया कि यह मेरा है, बस उसके ही लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर किए जा रहे है। यह क्या है? यह अज्ञानका ही तो नाच है।

प्रभुभक्तिका स्थान—ये समस्त विपत्तियाँ अपने प्रभुकी प्रभुताको पहिचाने बिना हो रही है। अपने प्रभुकी प्रभुताको पहिचान जाय तो इस जीवको एक भी सकट नही रह सकता है। इस प्रभुको अपने आपमे बैठालनेके लिए ही प्रभुभक्ति, सत्सग और ज्ञानार्जन है। ये तीन बातें न भूलिए। किसी न किसी दिन अपने अन्तर्मुखमे अन्तःप्रकाशमान हो जायगा। प्रभु-भक्तिको मत छोडिये। देखो प्रभुभक्तिका कोई समय निश्चित नही है कि हम इस समय प्रभु-कि प्रभु सर्वोत्कृष्ट तो आप ही है, यह ही उत्कृष्ट परिणमन है, चमत्कार तो यही सर्वस्व है। भक्ति कर लेंगे। वह प्रभुभक्ति तो योग्यता होनेपर अचानक ही हो जायगी। हाँ उद्यम जरूर करना है ताकि अन्य प्रसगोमे चित्त न लुभा जाय। कहो आपको प्रभुभक्तिकी झलक रास्ता चलते हो जाय, घर बैठे हो जाय, कोई जगह हो जाय। ऐसी अन्तरङ्गमे अनुभूति हो जाय सारभूत तो यही पद है, और साथ ही अपनी असारता, अपनी अनुत्कृष्टताको ध्यानमे देकर विषाद, पश्चात्ताप उत्पन्न हो तो भगवानके गुणोको निरखनेसे उत्पन्न हुआ हर्ष और अपने

वर्तमान क्षणमे अवगुणोको निरखनेसे उत्पन्न हुआ खेद ऐसी हर्ष और खेदकी जहाँ जुहार भेट हुआ करती है वह है प्रभु दर्शनका एक क्षोभनीय रूप ।

सत्संग व ज्ञानार्जनकी वृत्ति—जो विषय पिपासासे अत्यन्त दूर हो, ससार, शरीर और भोगोसे विरक्त हो, जिनकी धुन एक आत्महितके लिए बनी हुई हो, ऐसे पुरुषोके सगमे समय बीते तो वहाँ भी उन जैसी दृष्टि बनानेका अवसर मिलेगा । सत्संग भी उपादेय है, और कुछ न कुछ थोडा बहुत ज्ञानार्जन करते ही रहे, उपयोग निर्मल रहेगा । युवक व बूढ़े होकर भी आप जितनी देर हाथमे पुस्तक लेकर बस्ता लेकर पढते जा रहे है—हम अब पढेंगे, ऐसा परिणाम होता है उस समय बालकवत् निर्विकारताकी झलक तो आप लोग पा ही लेते है । ये तीन चीजे—प्रभुभक्ति, सत्सग और ज्ञानार्जन करके हम अपने आशयको निर्मल बनाये, यही सुखी होनेका उपाय है ।

जदि हवदि दव्वमण्णं गुणदो य गुणा य दव्वदो अण्णे ।
दव्वाणंतियमधवा दव्वाभाव पकुव्वति ।।४४।।

द्रव्य और गुणोकी अभेदरूपताकी प्रसिद्धि—वस्तुस्वरूपके सम्बधमे यह बताया गया था कि द्रव्य गुण और पर्यायोका अभिन्न आधार है । जो भी परिणमन हो, परिणमन अनित्य होता है । नया परिणमन होता है प्रति समय और पुराना परिणमन विलीन होता है । जो व्यक्त स्थितिया है उनका नाम पर्याय है । और वे पर्याये इस ही जातिकी हुआ करें, ऐसी उन पर्यायोका जो मूल है उसका नाम शक्ति है, और शक्ति तथा पर्यायें इन सबका जो समूह है उसका नाम द्रव्य है । यो तो भेदसे अभेदकी ओर आये, अब अभेदसे भेदकी ओर चलें । कोई वस्तु है वह वस्तु एकरूप हैं, अद्वैत हे अपने आपमे । उस वस्तुका जब हम द्वैत रूप देखते है तो यह विदित होता है कि प्रत्येक वस्तुमे प्रतिसमय नवीन-नवीन परिणमन होता है और वह परिणमन अपनी-अपनी शक्तिके अनुरूप होता है । यो अभेदसे भेद बन गया । ऐसे भेदात्मक वस्तुस्वरूपको सुनकर कोई पुरुष यदि भेदको एकान्त करने लगे—द्रव्यसे गुण भिन्न ही होता है, इस प्रकारसे कोई भेदका एकान्त करे तो उस मतव्यमे क्या दोष आता है ? उसका वर्णन इस गाथामे चल रहा है ।

द्रव्य व गुणोको भिन्न माननेपर दोषापत्ति—गुण और द्रव्यके सम्बधमे बात चल रही है । गुण किसी न किसी जगह आश्रित हुआ करता है । जहाँ आश्रित होता है उस ही का नाम द्रव्य है । वह द्रव्य यदि गुणोसे अभिन्न है तो रहा आये अभिन्न, लेकिन इस नियममें भ्रम नही हो सकता कि जहाँ गुण आश्रित रहे उसका नाम द्रव्य है, तब अन्य कुछ द्रव्य खोजिए । जिस द्रव्यको खोजे वह भी अन्य है तो इस प्रकार खोजते जाइये । द्रव्य गुणात्मक होता है, उस द्रव्यके गुण भी द्रव्यसे भिन्न है तो कहाँ टिकेंगे ? क्या गर्मी अग्निसे भिन्न होती

है ? यदि भिन्न है तो उस गर्मीका आश्रय बतावो, वह गर्मी कहाँ ठहरती है ? लो यो अग्नि भी नही रही, गर्मी भी नही रही। बिना आधारके गर्मी क्या, बिना गर्मीके अग्नि क्या ? जैसे अग्नि और गर्मी इन दोनोको भिन्न-भिन्न माननेपर न अग्निकी सत्ता रह सकती, न गर्मी की सत्ता रह सकती, इसी प्रकार द्रव्य और गुणोको भिन्न-भिन्न माननेपर न द्रव्यकी सत्ता रह सकती, न गुणका सत्त्व रह सकता। जो बात जैसी नही है वहाँ वैसी कल्पना करो कितनी आपत्ति आती है ?

गुण गुणीके भेदहठमें एक द्रव्यमे अनन्त द्रव्यका प्रसंग—गुण नाम अशका है और गुणी नाम अशीका है, पूरेका नाम गुणी है और उसके एक धर्मका नाम गुण है। अशसे अशी जुदा नही रह सकता, अश अशीके आश्रय ही रहा करता है। यदि कोई यह हठ करे कि अश से अशी जुदा होता है तो यह तो निश्चित ही है ना, कि अश आधारके बिना नही रह सकता। उसके लिए कोई अन्य अशी चाहिए। गुण द्रव्यके बिना नही रह सकता तो गुणका कोई आधार चाहिए। इस द्रव्यको तो अलग मान लिया, फिर जो भी आधार मानेंगे वहाँ भी भेद की कल्पना हो जायगी। तब गुण और आधार कल्पनाएँ करिये। यो द्रव्य अनन्त हो जायेंगे अथवा यो ही मान लीजिए उतने ही द्रव्य होंगे, जितने गुण है। वे स्वय स्वतत्र द्रव्य हो गये, पर ऐसा है नही। द्रव्य तो गुणोके समुदायका नाम है। क्या यह गुण उस गुण समुदायसे भिन्न है ? गुणसमुदायसे भिन्न माननेपर सीधीसी बात यह है कि गुण रहेंगे और न द्रव्य रहेंगे।

यथार्थज्ञानसे ही शान्तिलाभ—यह बात अतस्तत्त्वकी चल रही है। मूढ लोग तो द्रव्य-द्रव्यका मेल बैठाल लेते है। यह एक चीज है, शरीर है सो मैं हू। अपनी सुध न रखना यह महान गल्ती है। दो चीजोको एक मान लेना भी गलत है और एक चीजको दो मान लेना भी गलत है। जब तक अपने अभेद ज्ञानस्वभावमात्र निज तत्त्वकी सुध न होगी तब तक इस आत्माको धीरता, गम्भीरता, शान्ति, निराकुलता आ ही नही सकती। परवस्तुसे अपना सहारा माना, हितकारी माना, तो पर तो पर ही है। परको जैसा परिणमन परिणमेगा। यहाँ यह व्यामोही जीव अनेक कल्पनाएँ बनाकर अनुकूल परिणमे, प्रतिकूल प्रतिकूल परिणमे इन कल्पनाजालोमे उलझकर खेदखिन्न रहा करता है। प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र है, अपनी गुण-पर्यायोमें तन्मय है। कोई पदार्थ किसीके गुण पर्यायरूप नही होता है। जब ऐसी वस्तुस्थिति है तो एक द्रव्यका दूसरा द्रव्य क्या लगा ? कुछ भी सम्बध नही है। यो भिन्न असम्बद्ध स्वतन्त्र पदार्थको निरखनेसे मोहका विनाश होता है। जहाँ मोह अधेरा नही रहा वहाँ इस जीवको शान्ति प्राप्त होती है। तब वस्तुस्वरूपके सम्बधमे वास्तविकता क्या है ? अब उसका वर्णन कर रहे हैं।

अविभत्तमणण्णत्त दव्वगुणाण विभत्तमण्णत्तं।
णिच्छंति णिच्चयण्हू तव्विरीद हि वा तेसि ॥४५॥

गुणगुणीकी अविभक्तप्रदेशिता—द्रव्य और गुणोका जो अनन्यभाव है, ज्ञान है, सो ही आत्मा है। आत्मा है सो ही ज्ञान है। आत्मा ज्ञानमय है, ज्ञानस्वरूप है, इस रूपसे जो अनन्यता ज्ञान होती है वह अविभक्तता है। पदार्थ तो भिन्न तब कहलाता है जब कि प्रदेश न्यारे-न्यारे हो। वह अपनी बोडीमे हो, वह अपनी बोडीमे हो, तब तो वे दो पदार्थ कहलाते है। पर यहाँ तो अग्निका और द्रव्यका एक ही प्रदेश है। समझानेके लिए गुणगुणीका भेद किया जाता है। यहाँ तो जो है सो है। तो ऐसी अनन्यताको ही अविभक्तपना कहते है। इस अविभक्तपनेमे यह बात बनी हुई है कि कदाचित् द्रव्यकी सिद्धि न हो, द्रव्यका नाश हो तो गुणका भी अभाव होगा। द्रव्यका नाश हो तो द्रव्यका भी अभाव होगा। जैसे एक परमाणु एकप्रदेशी है, क्या वह परमाणु अपने प्रदेशसे विभक्त है ? एक प्रदेशमे जैसे वह परमाणुद्रव्य रह रहे है ऐसे ही रूप, रस, गध, स्पर्श ये सब शक्तियाँ रहती है, पृथक् नही है, ऐसी ही समस्त द्रव्योकी बात है। जिस-जिस द्रव्यके जो जो गुण है वे उस द्रव्यसे पृथक् नही है।

गुणगुणीमे लक्षणभेद होनेपर भी प्रदेशोंका अभेद—द्रव्य और गुणमे लक्षणका तो भेद है, पर प्रदेशका भेद नही है। लक्षणके यो भेद है। गुण उसे कहते है जो एक अशरूप हो, द्रव्य उसे कहते है जो गुणोका पिंड एक अशी हो। यो लक्षणमे तो भेद आता है, पर प्रदेशमे भेद नही आता। जैसे आममे रग, स्वाद, गध, स्पर्श ये चार जाति मालूम होती है ना, स्पर्शका ही तो नाम रस नही, स्वादका ही तो नाम रग नही। रग चीज अलग है, स्वाद चीज अलग है, पर क्या प्रदेशभेद भी है ? रग किसी प्रदेशमे हो, स्वाद किसी प्रदेशमे हो, प्रदेश एक है, पर लक्षणभेदमे उनमे भेद पडा हुआ है। यो तो जीवके गुणो गुणोमे परस्पर व्यतिरिक्तता जानना। आत्माका प्रदेश, रूप आदिकका प्रदेश वह सब एक ही है। ऐसे ही आत्माका और ज्ञानका प्रदेश एक ही है, केवल लक्षणभेद है। आत्मा गुणी है और ज्ञानगुण है। यो गुणीगुणकी व्यतिरिक्तका जाननी। किसी भी एक वस्तुमे ५० बातें हम जानना चाहते है तो प्रदेश तो वही है और उन ५० बातोमे फर्क जरूर है। एक मोटा दृष्टान्त लो—यह एक चौकी है, इस चौकीमे लम्बाई है ना ? चौडाई भी है, रग भी है, तो लम्बाई जिस जगह है रग उस जगह नही होता। चौडाई जहां है वहा रग न हो, दूसरी जगह हो, क्या ऐसा है ? नही है। चीज वह एक है और उस एक चीजके सम्बंधमे हम जि.नी बात समझेंगे उन सबका आधार वही प्रदेश है। यो ज्ञानी और ज्ञानमे भेद न डालना।

ज्ञानी और ज्ञानमे अव्यतिरिक्तताके अवगमका लाभ—ये सब बातें जोर देकर क्यों कही जा रही है ? इसलिए कि हम यह श्रद्धान बनाये कि मैं ज्ञानस्वरूप हू। अन्य बातें तो

जाने, पर अन्य बातोपर लक्ष्य न बनायें। लक्ष्य बनायें असाधारण स्वरूपपर। मैं ज्ञानमात्र हू, ज्ञानस्वरूप हू। जो जानन है, ज्ञानप्रकाश है तन्मात्र हू। ऐसा ज्ञानप्रकाशमात्र कोई अपनेको जाने तो वह ज्ञानकी अनुभूति कर लेगा। और ज्ञानानुभूतिको ही आत्मानुभूति कहा है। आत्मा मे अनेक गुण हैं, आत्मा असख्यातप्रदेशी है। यह आत्मा पैरोसे लेकर सिर तक फैला हुआ है, इतनी लम्बी-चौडी जगहमे आत्मा फैल रहा है, ये बातें तो आत्मानुभूतिके निकट नही करने वाली हैं, इन बातोसे आत्मानुभूति नही हो रही है। अच्छा और-और बातें विचारो, आत्मा आकाशकी तरह अमूर्त है, रूप, रस, गध, स्पर्शसे रहित है। यो दृष्टिमे लेनेसे भी आत्माकी अनुभूति नही हो पाती। आत्माकी और-और बातें सोच लीजिए। आत्मानुभूतिके निकट ला सकने वाली कोई दृष्टि है तो वह ज्ञानदृष्टि है।

मौलिक कल्याणमयी चिन्तन—अब कुछ ऐसा भी सोचने लगिये—मैं ज्ञानमात्र हू, ज्ञानस्वरूप हू, ज्ञानप्रकाशमय हू। ज्ञान क्या ? जानन। जानन क्या ? यह प्रतिभास। यो चिन्तन करते-करते जानन ज्ञानमे आ जाय, स्वरूपकी झाकी आ जाय तो ज्ञानकी तो अनुभूति हुई ना ? उस ज्ञानकी अनुभूतिके ही साथ निर्विकल्प दशा होती है। कारण यह है कि अब इस प्रसगमे जानने वाला भी ज्ञान है और जिसे जान रहा है वह भी ज्ञान है। तो जब ज्ञान और ज्ञेय अभेद हो गया वहाँ निर्विकल्पता आती ही है, विकल्प क्या करेगा ? जाननमे दूसरा आये, जानने वाला दूसरा हो तो वहाँ विकल्प रहता है। जब निर्विकल्प स्थिति हो जाती है तो ऐसी स्थितिका अनुभव आत्मानुभव कहलाता है। यह कल्याणकी बात, आत्मानुभूतिकी बात एक अपने सहज ज्ञानस्वभावके अनुभवमे बसी हुई है। सर्वोत्कृष्ट आनन्द पानेका उपाय हम आप सबमे सहज बसा हुआ है।

बाह्यदृष्टिमे अनर्थलाभ—यह बाह्य पदार्थोंका सयोग, बाह्य पदार्थोंका लक्षण, बाह्य पदार्थोंका प्रेम, परिजन कुटुम्ब आदिकको प्रसन्न बनाये रखनेका यत्न—ये सब बडे कठिन है। ज्यो-ज्यो नम्र बनो, ज्यो-ज्यो परिजनोकी ओर झुको, ज्यो-ज्यो उनसे प्रेम करो, ज्यो-ज्यो अपना सर्वस्व उन्हे सौपनेकी बात सुनावो त्यो-त्यो उनके और मान चढता है, और अपने आपमे वे ऐसा महत्त्व आकने लगते है कि कुछ ही समय बाद उनकी ऐसी चेष्टाएँ होने लगती है कि वे आपकी चेष्टावोको प्रतिकूल मानने लगेंगे। तब फिर क्या करें आप ? यह तो ज्ञानी पुरुषोंके सोचनेकी बात है।

अज्ञानियोका स्पष्ट निर्णय—अज्ञानियोका तो स्पष्ट निर्णय है कि घर वाले कैसे भी रक्खें, वे रहनेके लिए तैयार हैं। जैसे कोई एक बाबाजी को उसके नाती-पोते बहुत परेशान करते थे। कही मूछ पटायें, कही सिरपर चढें। वह बूढा कभी-कभी रोने भी लगे। एक बार

उधरसे निकला कोई सन्यासी, पूछा—बाबाजी ! तुम क्यो रोते हो ? तो उस बूढे बाबाने सारी बात बतायी कि ये हमारे नाती-पोते हमे बहुत तग करते है—कभी सिरपर चढते है, कभी मूछ पटाते है। तो सन्यासीने कहा–अच्छा हम तुम्हारा संकट मिटा दें ? तो वह बूढा बोला, हाँ महाराज हमारे सकट मिटा दो। उसने सोचा कि संन्यासी जी कोई ऐसा मत्र फूक देंगे कि ये नाती-पोते फिर हमारे आगे हाथ जोड़े खडे रहा करेंगे। तो जब कहा कि हमारे सकट मिटा दो तो सन्यासी बोला—अच्छा घर छोडकर हमारे साथ चल दो, तुम्हारे सारे संकट मिट जायेंगे। ··उस बूढेने कहा—अरे ! तुम कौन हमे बहकाने आये, हम तुम्हारे सग नही जायेंगे। अरे ये चाहे कितने ही मारें, पीटें, ये मेरे नाती-पोते ही रहेगे और हम उनके बाबा ही रहेगे। तो अज्ञानियोका तो स्पष्ट ही निर्णय है। निर्णय तो ज्ञानियोको करना है कि हमे क्या करना है ?

ज्ञानी गृहस्थोकी चर्या—गृहस्थजन परिजनोके बीच रहते है, उन्हे सब प्रकारके व्यावहारिक कार्य करने पडते है, करें, पर व्यावहारिक रागव्यवहार कार्य करके जो भी बाधाएँ आ सकती है, उन बाधावोसे दूर होकर अपने काममे तो लग जायें—यही करनेका काम है। धन वैभव परिजन, इनको ही सर्वस्व माननेका मोहाधकार यह दुःखी ही करेगा, बरबाद ही करेगा। कोई इसमे सार नही है, लेकिन परिस्थिति गृहस्थीकी है, वहाँ अनेक बातें करनी पडती है, कर लीजिए, किन्तु जो यथार्थ बोधकी बात है उससे विमुख मत होइये। यह सब साहस सम्यग्ज्ञान होनेपर ही तो हुआ करता है।

ज्ञानबलका महत्त्व—देखिये भैया ! महत्व ज्ञानका ही है। एक भैसा जो कि ६०–७० मन बोझ ढोता है, वह कितना ताकतवर होता है ? पर एक ८, ९ वर्षका लडका उसे जहां चाहे ले जाता है। यह क्या बात है ? अरे उस लडकेमे ज्ञान है, विवेक है और उस भैसेमे उतना ज्ञानबल नही है, इस कारण वह भैसा उस छोटेसे लडकेके वशमे रहता है। तो बुद्धिबलकी, ज्ञानबलकी महिमा अद्भुत है। अपना ज्ञानबल बढावो तो यह साहस भी बढ़ेगा। आध्यात्मिक जीवन अध्यात्म ज्ञान बिना नही बन सकता।

आत्माकी ज्ञानमयता—इस अन्तराधिकारमे यह चर्चा चल रही है कि यह मै आत्मा ज्ञानस्वरूप हू। यह जल और दूधकी तरह भी एक जगह बसा हुआ नहीं है। वहाँ भी प्रदेश भेद है। जलकी अत्यन्त छोटी बूद जो आप हाथसे भी नही कर सकते, सींक डालकर भी नही कर सकते, जिस बूदको आप सुईसे गिराये उसमे भी अनगिनती और बूदें है। ऐसे ही दो-दो एक-एक बूंदें दो-दो एक-एक दूधकी बूंदके आसपास बसी हुई हैं। दूधमें पानी नही है, पानीमें दूध नही है, पर उनका इतना घनिष्ट मिलाप है, सम्पर्क है कि हम आपकी समझमे

नही आ पाता । तो जैसे दूध और पानी भिन्नप्रदेशी है उतने भी भिन्न प्रदेशमे आत्मा और ज्ञान नही हैं । ये एक रूप है । भगवानके स्वरूपकी भक्तिकी बात भी हमारे उपयोगमे तब ही होती है जब हम अपने उपयोगको 'केवल ज्ञानमात्र हू' इस पकार अनुभव करें । वह ज्ञानमात्र प्रभु स्वयमे है ना और उस ही रूपसे हम प्रभुमे निरखें तो यह समानता हो जानेके कारण प्रभुभक्ति बनती है ।

ज्ञानी और ज्ञानमें व्यवहारमे कथंचित् भेद व निश्चय अभेद—इस आत्मा और ज्ञान मे केवल पहिचाननेके लिए भेद है, वैसे भेद नही है कि आत्मा कुछ न्यारी जगहकी बात हो और ज्ञान कुछ न्यारी जगहकी बात हो । अपने आपको मै ज्ञानस्वरूप हू, ज्ञानमात्र हू, जानन-रूप हू, जानन प्रकाशमात्र हू, ऐसा प्रतीत करके इस प्रकारकी भावनामे रत हो जाइये । अन्य बातोको छोड दो । तो अन्य बिकल्प दूर कर लेनेसे और एक ज्ञानमात्र अपने आपकी धुन बना लेनेसे ऐसी निर्विकल्पता आयगी कि बस उस ज्ञानमात्र होनेकी स्थितिमे ही, अनुभवमे ही विशुद्ध आनन्द जगेगा, इससे ही कर्मक्लेश कटेंगे ।

विशुद्ध आनन्दकी कर्मक्लेशसंहारकला—कर्मक्लेश कटेंगे, तो इस विशुद्ध आनन्दके द्वारा ही कर्म कटेंगे । तपस्याकी वेदनाओसे कर्म न कटेंगे । तपस्या तो विषयकषायोके परि-णामोको रोकनेमे एक सहायक उपाय है । जैसे दो बच्चोमे लडाई हो जाय, तीसरा कोई मित्र है तो वह दूसरे बच्चेको मारेगा तो नही, किन्तु उसका कुछ हाथ पकड लेगा, उसको रुद्ध कर देगा और वह मार देगा, उसे अवसर मिल गया । ऐसे ही यह तपस्या बिषयकषायोको रुद्ध कर देती है, रोक देता है, फिर इस ज्ञानको मोका मिलता है । वह अपने आपके स्वरूपमे प्रवेश कर जाता है । यो यही निर्णय रखिये कि मै ज्ञानमात्र हूँ । इस ज्ञानस्वरूपकी भावना बनायें, इस ही रूप अपनी प्रतीति रखें, इस ही रूप अपना आचरण बनायें, इसको ही सार समझें, इससे ही अपने भाव उज्ज्वल होंगे और निकट भविष्यमे ही अवश्य शाति पा लेंगे ।

ववदेसा सठाणा सखा विसया य होति ते वहुगा ।
ते तेसिमणण्णत्ते अण्णत्ते चावि विज्जसे ।।४६।।

अभेदमे विवक्षावश भेदका कथन—इस प्रकरणमे यह बात कही जा रही थी कि आत्मा और ज्ञानमे भेद नही है । न तो आत्माके प्रदेश न्यारे है और न ज्ञानके प्रदेश न्यारे है । आत्मा ही ज्ञानस्वभावको रखता हुआ रहा करता है । ऐसी आत्माकी और ज्ञानकी अनन्यमयता सिद्ध करनेके पश्चात् अब व्यावहारिक प्रयोजनसे आत्मा और ज्ञानमे किसी दृष्टि से भेद भी हुआ करता है, इसका वर्णन इस गाथामे किया जा रहा है ।

अभिन्न व भिन्न दोनोमे भेदकथनकी शक्यता—द्रव्य और गुणके जो भेद होते है वे अन्य-अन्य प्रकारसे किए जा सकते है अर्थात् देखे जा सकते है । उनमे चार मुख्य प्रकार है—

व्यपदेश, सस्थान, सख्या और विषय । ये चार क्या चीजें है ? इनका स्पष्ट विवरण स्वय इनके विशेष वर्णनके समय हो जायगा । सक्षेपमें यो जानो व्यपदेश नाम है नामका । किसीका नाम कुछ, किसीका नाम कुछ । सस्थान नाम है आकारभेदका और सख्या मायने गणना और विषय मायने भाव, आधार, आश्रय ये चार प्रकारके भेदक भिन्न पदार्थोमे भी होते है और अभिन्न पदार्थोमे भी ये भेद देख लिए जाते हैं।

भिन्नमें व्यपदेशादि कथन--जैसे बारूमलकी गाय, तो यहाँ दो चीजें भिन्न है, बारूमल जुदे है, गाय जुदी है, आकार भी भिन्न है ना । ऐसा तो नही है कि कभी चार पैर वाले बारूमल दिख जायें और कभी दो हाथ पैर वाली गाय दिख जाय । आकार न्यारा-न्यारा है और गणना भी यह गायमे है, यह बारूमलमे है, उसके अगोमे गणना न्यारी-न्यारी है, और आधार भी जुदा है, विषय भी जुदा है । बारूमलकी खुराक, बारूमलका रहना अलग है, गाय की खुराक, गायका रहना अलग है । बारूमल महलमे रहते है, गाय आगनमे रहती है तो भिन्न-भिन्न चीजोमे भी तो ये चार प्रकारके भेद निरखे जाते है । और अभेदमे भी चार प्रकारके भेद कर लिए जाते है ।

अभिन्नमें व्यपदेशादि कथन--जैसे वृक्षकी शाखा । क्या वृक्ष जुदी चीज है और शाखा जुदी चीज है, फिर भी एक प्रदेश, एक क्षेत्र होनेपर भी व्यवहारमे तो ऐसा कहा ही जाता है, गलत तो नही है कुछ । कोई यदि यह कह दे कि इस वृक्षमे ५ शाखायें है तो बताओ इस वृक्षकी ५ शाखायें है तो यह गलत बात तो नही कही ? देख लो है इस वृक्षमे ५ शाखायें, पर वृक्ष कोई अलग चीज हो और उसकी ये शाखायें अलग हो, ऐसा तो नही है । तो एक वस्तुमे भी एक चीजमे ही विवक्षा प्रयोजन आदिकके भेदसे भेद कर लिया जाता है । सस्थान भी देख लो, वृक्षका आकार तो उस समूचेको दृष्टिमे रखकर आप जानेंगे । यह वृक्षका आकार और शाखाका आकार उतने अशको दृष्टिमे रखकर जान जावोगे--शाखाका यह आकार है, तो वृक्षका आकार जुदा है और शाखाका आकार जुदा है । जितने रूपमे वृक्षका आकार निरखा गया क्या उतने रूपमे उस पद्धतिमे शाखाका आकार दिख जाता है ? जिस रूपमे जितनी पद्धतिमे शाखाका आकार दिख जाता है, क्या उस पद्धतिमे उस रूपमे वृक्षका आकार दिख गया ? लो आकार भी भिन्न-भिन्न है और सख्या भी न्यारी है । वृक्ष तो एक है, शाखाये ५ है और विषय भी न्यारा है । वृक्षका अवगाह वृक्षमे है, शाखाका अवगाह शाखामे है, इतनेपर भी वे एक क्षेत्रावगाही है, भिन्न क्षेत्रमे नही है । लो अभिन्नमे भी ये ४ प्रकारके भेद दिख जाते है । इनके अलावा और भी भेद तकिये ।

अभिन्न व भिन्न दोनोमे कारकव्यपदेश--बहुतसे कारक भेदमे भी होते और बहुतसे कारक अभेदमे भी होते । जैसे बारूमल बाल्टीमे गायके लिए घरसे दलिया लाकर आगनमे

गायको खुली खिला रहे है। देखो सभी चीजें न्यारी-न्यारी है ना, घर जुदा, बारूमल जुदा, बाल्टी जुदा, दलिया जुदा, गाय जुदा, आगन जुदा, छहोके छहो कारक न्यारे-न्यारे हैं तो भेद मे भी यह ६ कारकोका प्रयोग देखा गया है और अभेदमे देख लो। यह मिट्टी खुद ही खुदके द्वारा, खुदके लिए, खुदको खुदमें घडे रूपको उत्पन्न करती है। यह बात गलत तो नही है? ये अभेदमे कारक हैं, एक चीज है वह मिट्टी, और जो कुछ हो रहा है, जिसके द्वारा हो रहा है, जिसके लिए हो रहा है वे सबकी सब बातें अभेद हैं। तो भेदमे भी षट्कारकका व्यपदेश है और अभेदमे भी षट्कारकका व्यपदेश है। यह आत्मा आत्माके द्वारा अपने लिए अपनेसे अपनेमे अपनेको जानता। है ना यह यथार्थ बात।

भिन्न व अभिन्न दोनोमे संस्थानभेदका कथन—भिन्नमे भी सस्थानका भेद होता है। जैसे हृष्ट-पुष्ट बारूमलकी गाय हृष्ट-पुष्ट है। पुष्टका सस्थान ही तो हुआ है। दो जगह भिन्न-भिन्न जुदे सस्थान है, और अभिन्नतामे भी देखा जाता है। पुष्ट वृक्षकी पुष्ट शाखाये है। वृक्ष और शाखायें कोई जुदी-जुदी चीजें तो नही है एक बात है, फिर भी ये दो सस्थानके भेद दिख गये। यह वृक्ष भी पुष्ट है और यह शाखा भी पुष्ट है या कभी गाय तो हो जाय दुवली और बारूमल ज्योके त्यो रहे तो कहा जा सकता है कि पुष्ट बारूमलकी गाय दुर्बल है। देखो जुदे-जुदे सस्थान दो जगह हो गए। कोई वृक्ष ऐसा होता है कि वृक्ष हो जाय पुष्ट और शाखा तने से बडी दुर्बल निकल जाय तो वहाँ भी यह कह सकते हैं कि इस पुष्ट वृक्षकी यह दुर्बल शाखा है, पतली शाखा है। तो अभेदमे भी सस्थानका भेद किया जाता और भेदमे भी सस्थानका भेद किया जाता। यहाँ आत्माका ज्ञानगुण अभिन्न है, सो अभिन्नमे यह भेद किया गया है।

भिन्न व अभिन्न दोनोमे सख्याभेदका कथन—सख्याका भेद देख लो। जैसे यह कहा जायगा कि बारूमलकी दो गायें है—एक गाय और एक बछिया, तो सख्या दो हो गयी। बारूमल एक ही रहे तो भिन्नमे भी सख्याका भेद है, और ऐसा भी तो बोल सकते कि एक वृक्षकी ५ शाखाये है तो अभेदमे भी गणना हो जाती है, ऐसे ही आत्मद्रव्यके अनन्तगुण हैं तो देखो गुणोकी सख्याएँ तो बहुत है और आत्मा एक ही है, तो अभेदमे भी सख्याभेद निरखा जाता है। यह उक्त ४ प्रकारके भेदोका जुदा-जुदा विवरण चल रहा है।

भिन्न व अभिन्न दोनोमें विषयभेदका कथन—अब विषयभेद देखो—आधारभेद देखो। जैसे बहुत दिनो तक गायकी सेवा करते-करते हैरान हो गए तो सलाह करके यह तय किया कि दिनभर यह गाय चर आया करे। बरेदी सबकी गायें ले जाता है तो उनमे यह भी चली जायगी और दिनभर चर आयगी। तो गायोका जो समूह है सस्कृतमें उसका नाम है—गोष्ठ और हिन्दीमे नाम है हेड। उस हेडका जो उस समय मालिक हो वह हो गया हेडमास्टर याने बरेदी। अब हेडमे गाय जाने लगी तो यो कहा कि यह गाय हेडमे है। तो वह गाय अन्य

गाथोमे भिन्न चीज है। भिन्नता और अभिन्नताका भेद यो जानना कि जहाँ भी प्रदेशभेद हो उसे मानो भिन्न और जहाँ प्रदेशभेद न हो उसे मानो अभिन्न। भेदमे व्यवहार ठीक ही है। आँगनमे गाय है, कमरेमे गाय है। जैसे भेदमे भी विषय होता है यो ही वृक्षमे शाखाये है, यो अभेदमे भी आधार आधेयका भेद किया जाता है। ऐसे ही आत्मामे ज्ञानादिक गुण है यह अभेदमे आधार-आधेयका भेद किया गया है।

अन्तस्तत्त्वके दर्शनकी शिक्षा—इस प्रकरणसे हमे क्या समझना है कि आत्मा और ज्ञानके बारेमे भेद-कथन भी किया जा रहा हो कि आत्मामें ज्ञान है, आत्माका ज्ञान है, ज्ञान का यह स्वरूप है, आत्माका यह स्वरूप है आदिक भेद किए जायें तब भी निश्चयसे यह जानना कि वे भिन्न-भिन्न चीजें नही है। आत्मा और ज्ञान अभेद एक पदार्थ है। प्रकृतमे यो निरखना कि नामकर्मके उदयसे जो मनुष्य नारकी आदि सज्ञा मिली है, आप कौन है? मनुष्य हैं, बाहमल कौन है? मनुष्य है और गाय क्या है? तिर्यञ्च है, पशु है। यद्यपि ये व्यतिरेक नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुए है, फिर भी शुद्ध जीवास्तिकायकी दृष्टिसे निरखिये। कोई प्रकारका जिसमे सस्थान नही है, ऐसा वह सब एक-एक चेतनात्मक पदार्थ है।

व्यक्त उपादेय तत्त्व—अब जरा व्यक्त रूपसे सिद्ध भगवानमे निरखिये शुद्ध जीवास्तिकायपना। अतिम देहसे कुछ कम देहके आकारमे उनके सस्थान है। केवलज्ञानादिक अनन्त गुण हैं। इस आत्मामे अनन्त गुणोंके सस्थान है। लोकाकाश प्रमाण असंख्यात शुद्ध प्रदेशी हैं। पंच इन्द्रियोका अब वहाँ विषय नही रहा। एक शुद्ध आत्माकी भावनासे उत्पन्न वीतराग परम आनद रससे परिणत उनका ध्यान विषय है, तो उस शुद्ध जीवास्तिकायको भी निरखिये जो व्यक्त रूपमे है, वह हम आपके लिए उपादेय है और यह भी स्वभावमे निरखिये जहाँ कि यह भेद गायब हो जाता है, ऐसा शुद्ध अन्तस्तत्त्व हम आपके लिए उपादेय है।

णाणं धणं च कुव्वदि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं।
भण्णंति तह पुधत्तं एयत्तं चावि तच्चण्हू ॥४७॥

भिन्न व अभिन्नमें कर्तृत्वका कथन—इस गाथामे वस्तुधर्मका भेद कहा है, और अभेद किस तरह किया जाता है उसका भी कुछ उदाहरण दिया है। जैसे यह कहा करते हैं कि धन पुरुषको धनवान बना देता है, यह भेदमे व्यवहार है। धन जुदी चीज है, पुरुष जुदी चीज है ऐसा भिन्न-भिन्न पदार्थोंमे जो व्यवहार बनाया गया है यह भेद व्यवहारका उदाहरण है, और यह कहना कि ज्ञान पुरुषको ज्ञानी बना देता है, यह अभेद उदाहरणमें है। ज्ञान जुदी चीज नहीं है, पुरुष जुदी चीज नही है, एक ही पदार्थमे विवक्षावश भेद करके बताया गया है। वस्तुतः वहाँ अभेद है। ऐसा ही सर्वत्र जानना।

व्यवहारकथनका निश्चित लक्ष्य—भैया! व्यवहारकथनको निश्चयदृष्टिसे कुछ न

मान लो । किसमे क्या कहा गया है, किसका सकेत किया गया है उसे सच मानो । जैसे माता अपने बच्चेको गोदमे लेकर ८ बजे रातको छतपर खडी होकर चदामामा दिखाती है—देखो बेटा ! वह है चदामामा । अगुलीसे दिखाती है । कही वह अगुली ही चदा नही बन गयी, पर उस अगुलीके सहारेसे उस सीधे मार्गसे निरखे तो चदा दिख जायगा, ऐसे ही किसी वस्तुके सम्बधमे कुछ भेद कथनसे बतानेकी बात चल रही हो तो उस भेदमे ही उलझ नही जाना, किन्तु उस भेदको एक सकेत ही बनाकर वक्तव्य वस्तुकी ओर दृष्टि करना । जैसे कभी आयुर्वेद की कक्षाके विद्यार्थियोको हिमालय पर्वतपर भ्रमणका प्रोग्राम बने, उनके साथ उनका गुरु भी जाय बतानेके लिए । वह एक बेंतसे बताता जाय देखो यह अमुक रोगकी जडी है, यह अमुक रोगकी दवा है, यो वह गुरु बेंतसे उन सभी विद्यार्थियोको सभी दवाये बताता जा रहा है तो क्या कोई विद्यार्थी उस बेंतको ही दवा मान लेगा ? शायद हो भी कोई ऐसा भौदू विद्यार्थी जो उस बेंतको ही रोगकी दवा जान जाय, पर वहाँ सभी विद्यार्थी बराबर पहिचान रहे है, जिस जडीपर बेंतकी छाया की, झट विद्यार्थी पहिचान गये कि यह अमुक रोगकी औषधि है । तो जैसे उस बेंतके द्वारा औषधिको बताया जा रहा है ऐसे ही शब्दोंके द्वारा वस्तुको बताया जा रहा है, पर शब्द ही वस्तु नही है । जैसे किसीसे कहा जाय कि देखो तुम आत्माको जानो तो क्या इसका यह अर्थ है कि बडा आ, आधा त और बडा मा इन शब्दोको जानो ? इन शब्दोपर ही दृष्टि न दो, क्या कहा गया था इस बातको समझ लो । जो एक निरन्तर जाननहार शाश्वत ज्ञानमय पदार्थ है उसके स्वरूपकी जाप और भावनाके लिए कहा गया है । शब्द तो एक सहारे है । काम तो अन्त' करनेका है ।

भिन्न व अभिन्नमे कर्तृत्वव्यवहारका विवरण—देखो यहाँ भेदमे भी व्यवहार है । धनका अस्तित्व जुदा है ना, पुरुषका जुदा है ना । धनमे शब्द अलग है, पुरुषमे शब्द अलग है, धनका आकार अलग है, पुरुषका आकार अलग है । धनकी सख्या जुदी है, पुरुषकी सख्या जुदी है, धनका आधार विषय जुदा है, पुरुषका आधार जुदा है, फिर भी यह कह डालते हैं कि धन पुरुषको धनी बना देता है, यह भिन्न पदार्थोंमे व्यवहार किया गया है कर्तृत्वका, और ज्ञानकी बात देखो तो ज्ञानका अस्तित्व ज्ञानी पुरुषका अस्तित्व वही है । ज्ञान ज्ञानीको ज्ञानी बना देता है । व्यपदेश वही, सस्थान वही, सख्या वही, आधार वही । तो यह अभिन्नमे भी कर्तृत्वका व्यवहार चल रहा है । तो व्यवहारसे तो यह भेद आत्मामे दिख जाता है, पर निश्चयसे यह भेद नही है । जो जीवके साथ अभिन्न रूपसे रह रहा है, अभिन्न जिसका सस्थान है, सख्या है, अभिन्न ही जिसका आधार है, ऐसा ही यह अतस्तत्त्व इस जीवको समृद्ध बनाया करता है और जिसे इस अतस्तत्त्वका लाभ नही है, उस ज्ञानस्वरूपकी दृष्टि नही है तो मनुष्य तिर्यंच नारकादिक गतियोमे भ्रमण करता हुआ यह जीव इन कर्मोंको भोगकर क्लिष्ट

हो रहा है। ऐसे अपने आपके सहजस्वरूपकी दृष्टिके बिना यह सारी आपत्तियोंका जाल बिछ गया है, और इसकी भावना बन जाय, ऐसा अतर बल प्रकट हो कि निर्मल केवलज्ञान उत्पन्न हो तब ऐसी शुद्ध स्थिति प्राप्त करनेके लिए हम आपका क्या कर्तव्य है कि इस निर्विकल्प स्व-सम्वेदन ज्ञानकी ही हम भावना करे।

सत्यके आग्रह व असत्यके असहयोगका प्रयोग—भैया ! जैसे मोहमे मोहियोको भिन्न पदार्थोंमे तृष्णाका भाव जगता है, अपनानेकी हठ बनती है ऐसे ही ज्ञानी होकर इस ज्ञानस्व-रूपको ही अपनानेका आग्रह करें, सत्यका आग्रह करें और असत्यका असहयोग करे। आत्मा सत्य है, जो शाश्वत चित्स्वभाव है उसका तो आग्रह करो, मुझे अन्य कुछ न चाहिए, और असत्यका, विकारपरिणामोका असहयोग कर दीजिए। हमारा इनका कोई सहयोग न मिलेगा। हमारा सर्वस्व अपने सहजस्वभावके लिए समर्पित हो चुका है। इस सत्यके आग्रह और असत्य असहयोगके बलसे स्वय ही अपने आपमे निर्विकार विशुद्ध आनन्द जगेगा और उस आनन्दके अनुभवमें ही सर्वकल्याण है, ऐसा वह स्वय अपने आपसे समझ जायगा।

णाणी णाण च सदा अत्थतरिदो दु अण्णमण्णस्स।
दोण्ह अचेदणत्त पसजदि सम्म जिणावमद ॥४८॥

ज्ञानी और ज्ञानमें पृथक्त्व माननेपर आपत्ति—इस प्रकरणमे यह बात चल रही है कि आत्मासे ज्ञान जुदा नही है। ज्ञानस्वरूप ही आत्मा है। केवल समझने और समझानेके लिए गुणगुणीका भेद किया है तो केवल व्यवहारके लिए भिन्नता है, किन्तु वस्तुमे उससे अभिन्नता है। इस गाथामे यह बताया जा रहा है कि द्रव्य और गुणको यदि भिन्न-भिन्न मान लिया जाय तो उसमे क्या दोष आता है ? यदि यह ज्ञानी अर्थात् आत्मा और यह ज्ञान सदा भिन्न ही चीजें हो तो ज्ञान रहा अलग, और आत्मा रहा अलग, तो आप यह बतलावो कि ज्ञानरहित आत्माकी स्थिति क्या होगी ? क्या वह चेतन माना जा सकता है ? ज्ञान है नही, मात्र आत्मा है तो वह अचेतन बन गया। इसी प्रकार यह ज्ञान जो कि आत्मासे भिन्न माना गया है, ज्ञानका आधारभूत कुछ रहा नही, बिना किसी आधारके कोई शक्ति हुआ भी करती है क्या ? तो आधारभूत द्रव्य न होनेसे यह ज्ञान भी नही रहा अथवा आधारभूत द्रव्य तो चेतन था। उसका अब सम्बध रहा नही तो यह ज्ञान भी अचेतन हो गया। यह सिद्धान्त जिनेन्द्र भगवानके शासनमे सम्मत नही है। उसको अवमतके रूपमे देखा गया है।

दृष्टान्तपूर्वक ज्ञानी और ज्ञानमें अभेदका प्रतिपादन—जैसे अग्निसे उष्णता यदि भिन्न मान ली जाय, आग अलग चीज है और गर्मी अलग चीज है, ऐसा यदि भेद कर दिया जाय तो इसका क्या अर्थ होगा ? गर्मी नही है और आग है। तो क्या ऐसी आग जिसमे गर्मी नही

है ईंधनको जलानेमें समर्थ हो सकती है ? नही । वह तो गर्मी शून्य है, शीतल है । इसी प्रकार ज्ञान गुणसे अत्यन्त भिन्न यदि यह आत्मा है तो यह जीव किसी पदार्थको जाननेमे समर्थ हो सक्ता है क्या ? नहो । तब यही तो निश्चय हुआ कि आत्मा जड है ।

भिन्नकारणकमें भी अभिन्नकारताकी खोज—कदाचित् कोई ऐसा कहे कि जैसे देवदत्त कुल्हाडीसे काठ काटता है—तो देवदत्त जुदा है, कुल्हाडी जुदा है । तो करण जिसके द्वारा कार्य किया जा रहा है वह है कुल्हाडी, कुल्हाडी जुदी चीज है, देवदत्त जुदी चीज है । जुदे-जुदे होनेपर भी कुल्हाडीके द्वारा देवदत्तने काठ काट ही तो दिया है । यो ही यह आत्मा ज्ञानके द्वारा जानता है । ज्ञान जुदा रहे, आत्मा जुदा रहे, फिर भी यह आत्मा ज्ञानके द्वारा जान लिया करेगा, कौनसी आपत्ति आती है ? एक यह आशका भिन्नवादी ने रखी है । समाधान यह है कि जैसे देवदत्तके दृष्टान्तमे बतलाया कि देवदत्तने कुल्हाडीके द्वारा काठको छेदा, ठीक है, पर देवदत्तके हाथका व्यापार न होता तो क्या काठ छेदा जा सक्ता था ? देवदत्तके हाथ देवदत्तसे अभिन्न है और इस अभिन्न आणिकका व्यापार ही मूलमे प्रेरक हो रहा है । ऐसे ही आत्माका ज्ञान आत्मासे अभिन्न है, वह ही मूलमे जाननके लिए प्रेरक हो रहा है ।

ज्ञानके बाह्योपकरणताका अभाव—चेतन कार्यके प्रति जैसे वह कुल्हाडी बाह्य उपकरण है ऐसे ही आत्माका बाह्य उपकरण ज्ञान नही है । वीर्यान्तिरायका क्षयोपशम होनेपर उत्पन्न हुआ जो आत्माका वीर्य विशेप है, शक्ति है वह आभ्यतर उपकरण है । यदि यह शक्ति न प्रकट हो तो यह आत्मा कैसे जान सकता है ? हाँ कुल्हाडीके दृष्टान्तकी जगह ज्ञानके बाह्य साधन अथवा गुरु आदिक बहिरङ्ग कारण दार्ष्टान्त समझ लीजिये हैं । जैसे गुरुके द्वारा हम ज्ञान सीखते है तो गुरु तो कुल्हाडीकी तरह भिन्न है, पर यह ज्ञान जो एक आत्माका शक्ति विशेप है वह भिन्न चीज नहीं है । अपना बहिरङ्ग कारण भी हो और ऐसा अन्तरङ्ग कारण का अभाव हो तो क्या कार्य हो जाता है ? जैसे बहिरङ्ग कारण कुल्हाडी तो रखी है, पर देवदत्त अपने हाथका व्यापार न करे तो क्या काठ छिद जायगा ? ऐसे ही गुरु शास्त्र प्रकाश सब कुछ सामने मौजूद हो और एक स्वयका ज्ञान विशेप शक्ति विशेषका प्रयोग न हो तो क्या ज्ञान हो जायगा ? तो जिस ज्ञानके अभावसे यह जीव जड हो जाता है उस ज्ञानपर दृष्टि देना अपना कर्तव्य है ।

आत्मा और ज्ञानकी विभक्ततामें दोषका विवरण--ज्ञान जीवसे भिन्न चीज नही है । ज्ञान यदि ज्ञानीसे भिन्न हो तो ज्ञानको कुछ कर्ताका सम्पर्क नही मिला । आत्मा है कर्ता । इस ज्ञानको कर्ताका सम्बन्ध नही रहा तो भला बतलावो कि कुल्हाडी पडी हुई है, काटने वाला कोई पुरुष न हो देवदत्त आदिक तो क्या वह कुल्हाडी स्वय काठको काटनेकी सामर्थ्य रखती है ? नही । इसी तरह इस शकाकारने ज्ञानको भी माना है, आत्माको भी माना है,

पर जुदा-जुदा माना है। तो आत्मा जुदा रहा, ज्ञान जुदा रहा। आत्मा कर्ता है, ज्ञान करण है। क्या यह ज्ञान आत्माके बिना कुछ जाननेमे समर्थ हो सकता है ? नही हो सकता है। तब ज्ञानको और आत्माको जुदा-जुदा माननेपर आत्मा भी अचेतन बन गया और ज्ञान भी अचेतन बन गया।

आत्मामें ज्ञान गुणकी उत्कृष्टता—कुछ लोग ऐसा कहते है कि यद्यपि यह आत्मा और ज्ञान जुदी-जुदी चीज है लेकिन आत्माका व ज्ञानका सयोग हो जाता है। सम्बन्ध हो जानेसे फिर ज्ञान भी चेतन हो गया, आत्मा भी चेतन हो गया। किन्तु बात यह घटित हो नही सकती, क्योकि कोई भी द्रव्य अपना विशेष लक्षण लिए बिना, अपना कुछ स्वभाव किए बिना द्रव्य ही क्या है ? जो अपने असाधारण लक्षणसे रहित है ऐसा द्रव्य तो असत् है। है ही नहो। नाम ही लेना बेकार है। इसी तरह ऐसा गुण जिसका कोई आश्रय नही है, निराश्रित गुणोका भी अभाव है। यो आत्मा और ज्ञान जुदे जुदे ठहर ही नही सकते। आत्मा ही स्वय ज्ञानस्वरूप है।

इस आत्माका ज्ञान एक असाधारण लक्षण है, और है क्या ? आत्मामे अस्तित्व भी है, वस्तु भी है। अनेक साधारण लक्षण है, अमूर्तपना भी है, सो और सब तो मानते जावो, उसमे ज्ञान भर मत मानो, आत्मामे ज्ञानस्वभाव है ऐसा न मानो। उस ज्ञानस्वभावको अलग कर दो तो बुद्धिमे आत्मा कुछ चीज रही क्या ? आत्माका प्राण अर्थात् जिससे आत्माका अस्तित्व रहता है वह लक्षण तो चैतन्य है। ऐसा चैतन्यस्वरूप यह मैं आत्मतत्त्व हू। इसके अतिरिक्त और कुछ नही हू, शरीर नही हू। वैभव परिजन धन ये कुछ मै नही। जितने विकल्पके तरग है वे सब मैं कुछ नही हूँ। मै तो केवल एक चैतन्यस्वरूप तत्त्व हू। यही है निज शुद्ध आत्मतत्त्व।

कैवल्य—शुद्धका अर्थ केवल होता है, सिर्फ उस चीजको रहने दे उसका नाम शुद्ध है। प्योर किसे कहते हैं, उसको जो केवल हो। कैवल्य हुए बिना पवित्रता नाम किसका ? कोई चीज दूसरी चीजसे मिलकर गदी हो गयी तो उसे कैसे शुद्ध करते है ? उसे धो-धाकर अलग कर देते है। जो है उसे वही रहने दिया जाता है। इसी तरह व्यक्त रूपमे यह आत्मा अशुद्ध हो गया तो उसे शुद्ध कैसे करना है ? जितने भी अन्य तत्त्वोका सम्बध हो गया है उनको हटाकर केवल आत्मा ही आत्मा रहने दिया जाय उसको कहते है आत्माका शुद्ध करना। ऐसे ही शुद्ध सिद्ध भगवान है, और उस ही उपायमे अपने आपमे निरखा जाय तो हम आप भी सिद्ध बन सकते है, क्योकि हम आपका भी स्वरूप वही है जो सिद्धका है।

आत्माका सहज स्वरूप—यह मै आत्मा जो कुछ मैं हू, स्वय अपने आप स्वत सिद्ध अपनी सत्ताके कारण क्या हू, कितना हूं, कैसा हू, इसपर दृष्टि दी जाय तो यह विदित होगा

कि यह तो केवल चित्स्वभावमात्र है। किसी परके सम्बध परकी उपेक्षा लगाये बिना परके निमित्तसे जो कुछ होता है उसे भी निरखे बिना केवल अपने सत्त्वके कारण जो इसमे हो वह भाव क्या है ? वह भाव मिलेगा चित्स्वभाव। यह चित्स्वभाव शुद्ध है अर्थात् किसी परकी अपेक्षा रखकर न देखो। केवल एक अपने आपको स्वभावमात्र है, ऐसा इस शुद्ध आत्माका जो अनुभव है, उपयोग है, ज्ञान है वह वीतराग सहज उत्तम आनन्दको भराता हुआ प्रकट होता है। सारी करामात ज्ञानकलाकी ही तो है। हम अपने ज्ञानका जिस प्रकारसे प्रयोग करेंगे वैसा ही हमपर सुख दुःख अथवा आनद बीतेगा। हम विकल्पात्मक पद्धतिसे इसे प्रयोग मे लाये तो दुःख होगा, विकल्प होगा, और निर्विकल्पताकी पद्धतिसे देखेंगे तो निर्विकल्प दशा होगी।

ण हि सो समवायादो अत्थतरिदो दु णाणदो णाणी।
अण्णाणीति व वयण एगत्तप्पसाधग होदि ॥४६॥

समवाय सम्बंध—कोई दार्शनिक आत्मा और ज्ञानको भिन्न-भिन्न मानकर उसमे समवाय सम्बध बताकर जानन क्रियाकी सिद्धि करते है। समवाय सम्बधका लक्षण सयोगसे गम्भीर है, सयोगमे भिन्न क्षेत्रपना है, किन्तु समवायमे भिन्न क्षेत्रपना नही किया जाता। और यो समझ लीजिए—कथचित् तादात्म्य कहा जा सकता है। इस प्रकारका सम्बध माना है, लेकिन समवाय सम्बध मानकर भी वहाँ द्रव्य दो माने गए है जहाँ मूलमे ही द्वैत चल देगा। अब समवाय सम्बंध करके कितनी ही घनिष्ठता उसकी बतायी जाय तो भी स्वरूप नही बन सकता।

तादात्म्यके विपरीत समवायकी असिद्धि—ज्ञानसे भिन्न आत्मा है, वह ज्ञानके समवायसे ज्ञानी कहलाता है, ऐसा कहना युक्त यो नही है कि यह तो बतावो कि इस ज्ञानका आत्मामे जब समवाय न हुआ था, सम्बन्ध न हुआ था तब क्या यह आत्मा ज्ञानी था या अज्ञानी था ? यदि यह कहे कि ज्ञानका समवाय समाप्त होनेसे पहिले भी यह आत्मा ज्ञानी था तो ज्ञानी तो था ही। अब ज्ञानका समवाय सम्बन्ध जोडनेकी आवश्यकता क्या रही ? यह सम्बन्ध निष्फल ही रहा। यदि यह भेद किया गया कि ज्ञानका समवाय सम्बन्ध होनेसे यह आत्मा ज्ञानी न था तो वह अज्ञानी भी कैसे रहा ? क्या अज्ञानका समवाय होनेसे अज्ञानी रहा या अज्ञानके साथ एकत्व माननेके कारण अज्ञानमय होनेके कारण यह आत्मा अज्ञानी रहा ? यदि कहेगे कि अज्ञानके समवायसे यह आत्मा अज्ञानी रहा तो वहाँ पर भी प्रश्न करें कि इस अज्ञानका समवाय सम्बन्ध होनेसे पहिले यह आत्मा अज्ञानी था या नही ? अगर अज्ञानी था तो अज्ञानका समवाय करना निष्फल है और यदि न था, तो अज्ञानका समवाय आत्मामे ही कैसे हो गया। दूसरी बात यह है कि अज्ञानके समवायसे पहिले अज्ञानी न था

तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह ज्ञानी था। तो ज्ञानी स्वयं ही रहा, फिर ज्ञानके समवाय करनेकी क्या जरूरत है ? आत्मा ही ज्ञानस्वरूप प्रसिद्ध हो गया। अब तो कुछ भी समवाय की पद्धति नही रही।

ज्ञानहीन आत्माके साथ ज्ञानके समवाय होनेके कारणकी असिद्धि—आत्माकी ज्ञानरूपता सिद्ध होनेपर भी यदि हठ करोगे कि ज्ञानका समवाय होनेसे पहिले आत्मा ज्ञानी नही है तो इसका कुछ कारण तो बतलावो कि यह ज्ञान इस आत्मासे ही क्यों समवाय सम्बध रखता है ? भीत, ईंट, दरीसे यह ज्ञान अपना समवाय क्यो नही जोड देता ? कौनसी खास विशेषता रही, जो यह ज्ञान आत्मासे तो जुडे और पुद्गल आदिकसे न जुडे। जैसे ज्ञानसे भिन्न चीज पुद्गल है, ऐसे ही ज्ञानसे भिन्न आत्मा है, और जैसे यह पुद्गल ज्ञानरहित है ऐसे ही यह आत्मा ज्ञानके समवायके पहिले अज्ञानी कहलाता है। तो आत्मामे और पुद्गल आदिकमे जब ज्ञानके लिए सब बातें बराबर है तो यह ज्ञान आत्मामे ही जुडे, पुद्गल आदिकमे न जुड़े इसका क्या कारण होगा ? तो शकाके उत्तरमे प्रति शकामे रूप रखकर जो यह बात कही गयी है कि अज्ञानी आत्मा अज्ञानके समवायसे पहिले ज्ञानी था या न था ? यदि था तो अज्ञानका समवाय निष्फल है और यदि न था तो इसका अर्थ है कि ज्ञानी हो गया। ज्ञानी वैसे भी नही कहा है, क्योकि समवायसे पहिले ज्ञान कहाँ रहा ? आखिर तुम्हे यह मानना पडेगा कि यह आत्मा ज्ञानी है तो ज्ञानके साथ एकत्व है। जो पदार्थ जैसा है वह अपनेमें एकत्वको लिए हुए है, अपने स्वभावमे तन्मय है और उसही एकत्वसे उस वस्तुकी सिद्धि होती है तो इसके लिए जैसे अज्ञानके साथ एकता होनेके कारण आत्माको ज्ञानसे रहित मानना पडा है, इस ही प्रकार यह आत्मा ज्ञानी है तो ज्ञानके साथ एकता रखनेके कारण ज्ञान है। ज्ञान जुदा हो, आत्मा जुदा हो, ऐसी बात त्रिकाल भी नही है। यह आत्मा ही एक ज्ञानस्वरूप को लिए हुए है। कभी भी यह आत्मा ज्ञानसे भिन्न नही हो सकता।

व्यक्तरूपमें भी ज्ञानहीनताका अभाव—ससार अवस्थामे यद्यपि यह ज्ञान बहुत अधिक ढका हुआ है, अव्यक्त है, प्रकट नही हो रहा है और ऐसे भी जीव है जिनकी दशा निरखकर आप यह कह बैठेंगे कि आत्मा तो ज्ञानका कुछ नही है। ये पत्थर मिट्टी आदि पृथ्वीकायिक जीव हैं। क्या इनमे यह कल्पना दौडती है कि यह जीव है, इसमे ज्ञान है, यह जानता है। कोई ही सिद्धान्तवेदी ऐसा कहते है कि इनमे जीव है, ज्ञान है, जानते है, पर प्रायः लोग इन्हे ज्ञानरहित बताते है। कदाचित् जीव भी मान लो तो भी कहेंगे कि है तो जीव, मगर ज्ञानरहित है, ऐसी भी निकृष्ट दशायें हो जाती है। उससे भी निम्न दशायें निगोद जीवकी है, ज्ञानरहित मालूम होते है लेकिन जीव है तो कोई ज्ञानरहित नही है। कितना भी ज्ञान ढका हो फिर भी कुछ न कुछ निरावरण होनेसे रहता ही है। पूर्ण ज्ञानपर आवरण

नही है। जितने अशो तक यह ज्ञान निरावरण रहता है, कैसी भी निम्नतम स्थिति हो तो भी प्रकट ही रहा करता है। उसके अतिरिक्त जो आवरण योग्य है उसमे भेद चला करता है कि इसका ज्ञान आवृत है, इसका व्यक्त है।

ज्ञानस्वभावकी प्रतीतिका शिक्षण—यह ज्ञान आत्माका स्वरूप है, इसमे भिन्नता नही की जा सकती है। इस कथनसे अपनेको क्या ग्रहण करना है कि मै ज्ञानस्वरूप हू। ज्ञान के अतिरिक्त मेरा कोई और स्वरूप नही है। वैभव आदिक ये मुझसे प्रकट निराले हैं। इनके साथ मेरा कुछ सम्बन्ध नही है। मैं तो मात्र ज्ञानस्वरूप हू। यह सब मोहका अधेरा है कि जो मै नही हू जिसका मुझसे रच सम्बन्ध नही है ऐसे परिजन वैभव आदिक परपदार्थोंमे आत्मीयता जगती है। यह खुश होनेकी बात नही है, बडे कष्टकी बात है। कोई चीज सुहावनी लगी, किसीके प्रति राग जगा और वह अपने अधिकारमे हो गया, अपना बन गया, बडे बडे प्रेमसे मिल जुलकर रहने लगे तो यह स्थिति सतोष करने लायक नही है। यह महान क्लेशका कारण बनेगा, यह ससार ही महागर्त है। आत्माका जो स्वभाव है स्थिर प्रतिभास उस स्वभावसे चिगे कि सारी की सारी आपत्ति ही आपत्ति है।

ज्ञानभावमे निरापदता—भैया! निरापद तो ज्ञानस्वभाव है। इसको छोडकर बाकी समस्त चीजे तो आपदा ही है। अनुभव करके देखलो। जब अपना उपयोग एक इस ज्ञानस्वभावके स्वरूपके जाननेमे रहता है, निकट रहता है, इस ज्ञानभावको अगीकार करता हुआ जब हमारा उपयोग चलता है उस समय कितनी निर्विकल्पता रहती है, कितनी निराकुलता और शान्ति रहती है? जहाँ मेरा तेरा ऐसा विकल्प उठा और जिसे माना कि यह मेरा वैभव है, वैभवमे सन्तोष किया उसका ही सग्रह बनाये रहनेकी वासना बनाई, ये सारे उपयोग आपत्ति है, समृद्धिया नही है, ये जीवके स्वरूप नही है, ये जीवके कलक हैं। जिन बातोमे बढ कर हम अपनेको चतुर मानते है वे सब चतुराई चतुराई नही हैं, किन्तु जीवका कलक है। चतुराई तो इस जीवकी अपने स्वरूपका परिचय बनाये रहना है। एक ही निर्णय रखिये—एक निज शुद्ध आत्मतत्त्वका अनुभव ही हमारे लिए शरण है, सारभूत है, उसमे ही हमारा कल्याण निहित है। अन्य तो सब पर भाव है। इस प्रकरणसे हमे यह शिक्षा लेनी है कि मैं ज्ञानस्वरूप हू ज्ञानके सिवाय अन्य कुछ भी मेरे मे नही है, ऐसा ही दृढ निर्णय बनाएँ जिससे मोहका विनाश हो और अपने अन्तः प्रभुके दर्शन हो।

समवत्ती समवाओ अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धो य।
तम्हा दव्वगुणाण अजुदा सिद्धिति णिद्दिट्ठा ॥५०॥

गुणीमें गुणके तादात्म्यका समर्थन———गत गाथावोमे इस प्रकरणमे यह बताया गया था कि आत्मा ज्ञानसे अनन्य है। आत्मा ज्ञानमय है। इसके विरोधमे कुछ दार्शनिकोने

अपनी युक्ति रखी। आत्मा और ज्ञान भिन्न-भिन्न पदार्थ है। उनका सयोग होता है तब आत्मा जानता है। इसमे आपत्ति देनेके पश्चात् फिर यह कहा गया कि आत्मा और ज्ञानमे सयोग सम्बध तो नही है, किन्तु समवाय सम्बध है। जैसे घडेमे रूपका समवाय है, रसका समवाय है, ऐसे ही आत्मामे ज्ञानका समवाय है। समवाय सम्बध अपृथक्, अभेदमे होता है और वह अयुतसिद्धमे माना जाता है।

संयोगसम्बन्ध व समवायसम्बंधमें अन्तर——भिन्न-भिन्न पदार्थोमे जो सम्बध बना, उसका नाम है सयोगसम्बध, और उसमे सयोगके कालमे भी वे पृथक्-पृथक् सिद्ध है, किन्तु समवायमे जिमका समवाय कहा जाता है वह पृथक्भूत नही होता है, वह एक होता है। जब यह बात है तब सीधा ही कह लो ना कि द्रव्य और गुण अभिन्न है। अभिन्न तत्त्वको भिन्न बनाकर अभिन्न जैसा बनानेकी कसरत क्यो की जा रही है? इससे तो यह सिद्ध हुआ कि द्रव्य गुणका परस्परमे अभेद है, वे एक ही है। केवल व्यपदेश आदिकके व्यवहारसे भेदका व्यवहार चलता है।

समवायका स्वरूप——समवाय नाम है समवर्तित्वका। समवर्तीपनेको समवाय कहते है। समवर्तीपनेका अर्थ है सहवर्ती! जबसे आत्मा है तबसे ज्ञान है और जब तक आत्मा है तब तक ज्ञान है। जबसे का अर्थ है अनादिसे और जब तकका अर्थ है अनन्तकाल तक। शाश्वत यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है। द्रव्य और गुणका एक अस्तित्वसे रचा जाना, यही सहवृत्ति है। पदार्थ व पदार्थका स्वभाव ये दोनो सहवर्ती है, अनादि अनन्त है और यही समवाय है। जैनसिद्धातमे इसीको समवाय कह लो और अन्य दार्शनिक भी अन्ततोगत्वा यही मानकर रहते है।

अनन्यस्वभावकी प्रतीति——वही एक वस्तु व उसका स्वभाव वस्तुत्वसे यद्यपि अभिन्न है तो भी सज्ञा प्रयोजनादिके भेदसे भेदव्यवहारमे आता है, और भेदव्यवहार किये जानेपर भी वास्तवमे वह अभिन्न है, एक है। यह कथन बहुत समयसे चल रहा है, और कोई भाई सुनते-सुनते ऊब भी गये होगे, ऐसा यह कथन बहुत लम्बा क्यो चलाया जा रहा है और करीब-करीब बारबार वही-वही कथन है। ठीक है, मगर अपनेको धनी माननेकी अथवा कुटुम्बवान माननेकी जो भीतरमे बार-बार प्रतीति बन रही है जो कि मायारूप है, उससे तो नही ऊबते, यह तो परमार्थ निज ज्ञानस्वरूपकी प्रतीतिकी बात है। इसमे क्यो ऊब आये? वह तो भारी गल्ती है जो अपनेको वैभवशाली, धनी माना जा रहा है। अरे वे तो अत्यन्त भिन्न पदार्थ हैं। उनमे क्यो इतनी धुन बनायी जा रही है? उस भूलभरी धुनको काटनेके लिए यह ज्ञानकी अनन्यताकी प्रतीति समर्थ है। मैं ज्ञानस्वरूप हू, ज्ञानमय हू, अन्यरूप नही। यही समवाय है, तादात्म्य है।

गुण व गुणीकी अविभक्तप्रदेशता——जैसे इन दो अगुलियोके परस्परका जो मिलाप होता है उसका नाम तो सयोग है, और उस ही अगुलीमे जो रूपका सम्बध है, जो भी इसमे रग है, जो गधका सम्बध है यह समवाय सम्बध है। कही अगुली अलग हो और उसका रग अलग पडा हो ऐसा देखा है क्या ? तो जैसे अगुलीमे रूपका समवाय सम्बध है इस ही प्रकार इस आत्मामे ज्ञानका समवायसम्बध है। कल्पनामे गुणगुणीका भेद करके फिर उसको अभिन्न बतानेका जो उपाय है उस ही का नाम समवाय कथन है। वह समवाययुत सिद्धमे नही बनता। पृथक् सिद्ध हो उसमे समवाय सम्बध नही बताया जाता। समवाय तो अपृथक् वस्तु को जतानेका कारण होता है। द्रव्य और गुण ये सहवर्ती है, तदात्मा है, ऐसी समवाय वाली बात तो मान लो, पर आत्मा पृथक् है, ज्ञान पृथक् है, इनके समवायसम्बधके कारण यह आत्मा ज्ञान किया करता है, यह अटपट बात यहाँ मानने योग्य नही है।

ज्ञानादि गुणोके तादात्म्यका वर्णन——इस अतराधिकारमे सर्वप्रथम बताया गया था कि ८–९ अधिकारोसे जीवतत्त्वका वर्णन किया जायगा, उसमे यह तीसरा अधिकार है। यह चेतयिता है इन दो अतराधिकारोके बतानेके बाद यह उपयोग विशेषित है ऐसा यह तीसरा अतराधिकार चल रहा है। इसमे उपयोगको आत्मासे अभिन्न बताया गया है। इस व्याख्यान जीवका ज्ञानगुणके साथ अनादि कालसे तादात्म्य सम्बन्ध कहा गया है और जैसे ज्ञानका आत्मासे तादात्म्य है इस ही प्रकार दर्शनका आनन्दका भी तादात्म्य है। जो अव्याबाध रूप स्वय है, रागादिक दोषोसे रहित है, उत्कृष्ट आनन्दका एक स्वभाव है ऐसे आनन्द आदिक अनन्तगुण भी इस आत्माके साथ तादात्म्यपनेको प्राप्त है।

आत्मप्रतीति——भैया ! अपने आत्माको अपने गुणोसे ही अभिन्न रूपसे श्रद्धान् करना चाहिए, और समस्त रागादिक विकल्प व्यापारका त्याग करते हुए निरन्तर ध्यान करना चाहिए। हम अपने आपके सहजस्वरूपके ध्यानके प्रतापसे ही निराकुल रह सकेंगे। इस लोक मे बाहर कोई भी पदार्थ ऐसा नही है जो हमे निराकुलताका कारण बने। उसका कारण यह है कि सभी परद्रव्य है, उनका परिणमन उनमे उनके अनुकूल होता है, उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नही है। जैसा मैं चाहू तैसा बाह्यमे परिणमन हो ऐसा हो नही सकता और अनुकूल परिणमन होता नही तब यह जीव दु खी हुआ करता है ? किसी भी बाह्यवस्तुसे घनिष्टता करनेमे निराकुलता उत्पन्न नही हो सकती है। एक अपने आपके आत्मस्वरूपमे बसे हुए इस शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभावकी उपासना करनेमे ही हम आपका कल्याण है।

वण्णरसगधफासा परमाणुपरूविदा विसेसा हि।
दव्वादो य अणण्णा अण्णत्तपगासगा होंति ॥५१॥

दसरगाणाणि तहा जीवणिबद्धाणि रगण्णभूदाणि ।
ववदेसदो पुधत्त कुव्वति हि णो सभावादो ॥५२॥

दृष्टान्तपूर्वक गुणगुणीके तादात्म्य व पृथक्त्वका वर्णन—इन दो गाथावोमे द्रव्य और गुणका कथचित् भेद बताया जा रहा है । जैसे कि पहले बताया था, उसके उपसहार रूपमे ये दो गाथाएँ है । वर्ण, रस, गध और स्पर्श—ये सब परमाणु पुद्गलकी विशेष सहभावी शक्तियाँ है और परमाणु द्रव्य और उनसे अभिन्न है । लोकमे जो यह कहनेकी पद्धति है कि अमुकमे काला, अमुकमे नीला, अमुकमे लाल रग है, अमुक भोजन मीठा, अमुक खट्टा है, यह जो भेद-व्यवहार किया जाता है वह प्रयोजनवश किया जा रहा है । वस्तुतः पुद्गल जिस कालमे जैसी परिणतिरूप है वैसी परिणतिरूप है । वहा विशेष और सद्द्रव्यका भेद नही है । ये चार पुद्-गल द्रव्यमे गुण है—वर्ण, रस, गध, स्पर्श ।

रूपगुणका विवरण—वर्ण नाम है रूपका—काला, पीला, नीला, लाल, सफेद, ये ५ प्रकारके वर्ण होते है । वर्ण नामकी जो शक्ति है वह तो पुद्गलमे एक शाश्वतरूप है । उस वर्ण शक्तिकी जो व्यक्तियाँ है, परिणतियाँ है वे ५ प्रकारकी है । ये ५ प्रकार सक्षेपमे बताये है । वैसे तो इनके भी अनेक भेद हो जाते है । कोई कम काला, कोई अधिक काला, कोई कम पीला, कोई अधिक पीला, कोई कम नीला, कोई अधिक नीला यो अनेक भेद हो जाते है । इन रगोके मेलसे भी अनेक प्रकारके रग बन जाते है । हरे रगका नाम इन ५ मे नही है । नीला और पीला मिलकर हरा बन जाता है । किसीकी यह भी कल्पना है कि हवाका रग नीला है और पृथ्वीका पीला तो बीजमे से जो अकुर निकलता है वह इसीसे हरा निकलता है उसमे भी प्रथम तो पीला, फिर हवा लगनेसे हरा हो जाता है । खैर कुछ भी हो, हरे रगकी शुमार मुख्य रगोमे नही है, वह दो रगोसे मिलकर बनता है । इसी तरह सुवापखी, केसरिया आदि रग भी तो रगोके मेलसे बना करते है । तो वर्ण शक्तिकी अनेक पर्यायें है ।

रस व गन्ध गुणका विवरण—ऐसे ही रसकी भी अनेक पर्यायें है । सक्षेपमे तो ये ५ प्रकार है—खट्टा, कडुवा, मीठा, तीखा और कषैला । चरपरा कहनेसे तीखा कहना अधिक ठीक बैठेगा, क्योकि उसमे चरपरी चीज भी आ गयी और खारी चीज भी खा गयी । इन ५ रसोके भी बहुत भेद है, कोई कम मीठा, कोई अधिक मीठा, कोई कम खट्टा, कोई अधिक खट्टा इत्यादि । तो यो रसोके भी अनेक भेद हो जाते है । ये व्यक्त जितने रस है वे पर्यायें हैं और उन रसपरिणमनोका जो मूल आधार है वह है रस शक्ति, रस गुण । इसी प्रकार पुद्-गल द्रव्यमें एक गधशक्ति होती है, जिसके प्रकटरूप दो होते है—सुगध और दुर्गन्ध । इसमे भी अनेक तीव्र मदके भेदसे भेद है । कम सुगध, अधिक सुगध आदिक ।

स्पर्श गुणका विवरण—स्पर्श नामकी एक शक्ति है । यह स्पर्श स्पर्शनइन्द्रियके द्वारा

जाना जाता है इसलिए इसे स्पर्श शक्ति कहते है, पर मूलमे पदार्थोंमें दो प्रकारकी शक्ति स्पर्श सम्बन्धी पडी है। एक शक्तिका तो ठड गर्मी इन दो मे से किसी एक रूप परिणमन होता है। पुद्गल द्रव्यमे वस्तुत चार स्पर्श होते है। किन्तु पुद्गलमे जब स्कध बनता है तो इन स्कधोमे चार व्यवहार और चलने लगते है--हल्का, भारी, नरम और कठोर। ये चार पुद्गल द्रव्यमे मूल शक्तिसे उठे हुए गुण नही है, किन्तु पुद्गलका जब पिड बनता है तब इसमे ये चार बातें और प्रकट होने लगती है।

गुणगुणीकी अपृथक्ता—जिस प्रकार ये वर्ण आदिक परिणमन परिणमनकालमे पुद्गलमे तन्मय है, और इनकी मूल आधारभूत जो चार प्रकारकी शक्तियाँ है वे पुद्गलमे शाश्वत तन्मय है, द्रव्यमे तन्मय हैं। ये द्रव्यकी इस तन्मयताका प्रकाश करने वाले है। इसी प्रकारसे जीवमे दर्शन ज्ञानादिक गुण भी जीवमे शाश्वत अभिन्न है। केवल नाम आदिक प्रयोजनसे भेद किया जाता है, पर स्वभावसे भेद नही है। जैसे परमाणुका और वर्णादिकका प्रदेश अविभक्त है, ऐसे ही आत्मा और ज्ञान अविभक्तप्रदेशी है। ऐसा नही है कि परमाणु अन्य प्रदेशो मे रह रहा हो और ये वर्ण आदिक अन्य प्रदेशमे रह रहे हो। ये गुण तो प्रदेशमे कीलित है, अनादि सिद्ध है, इनका यह स्वरूप ही है, अग्निसे गर्मी निकालकर लावो यदि कही मिल जाय तो। यदि आप बुझाकर कोयला ले आयें तो आप अग्नि कहाँ लाये, कोयला ले आये। तो जैसे परमाणुमे वर्ण रस आदिक गुण अभिन्न है, केवल एक विवक्षा और व्यपदेशसे उनमे भिन्नताका प्रकाश होता है, इसी प्रकार ज्ञान दर्शन भी आत्मामे अविभक्त है? जो प्रदेश आत्माका है वही प्रदेश ज्ञानका है। फिर तो सज्ञा आदिक विशेषोसे उनमे पृथक्त्व वर्णित किया जाता है। स्वभावसे वह हमेशा अपृथक् स्वभाव वाला है।

ज्ञानगुणकी प्रधानता—वस्तुतः आत्मा ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानके अतिरिक्त अन्य कुछ नही है। इस आत्माका जितना व्यवहार चलता हैं, जो पुरुपार्थ और कर्तव्य चलता है वह ज्ञानके माध्यमसे ही चलता है। इसी कारण यह आत्मा करता क्या है, ऐसा प्रश्न होनेपर सीधा यही उत्तर मिलता है कि यह जानता है। ज्ञानगुण आत्माका एक असाधारण गुण है। चैतन्यके नाते यद्यपि आत्मामे दर्शनगुण भी है और चैतन्यकी अविनाभावितामे आत्मामे आनन्दगुण भी है, फिर भी सब गुणोकी व्यवस्था बताने वाला, अन्य गुणका सद्भाव बताने वाला, अपने हित और अहितरूप विवरण करने वाला ज्ञानगुण ही है, इस कारण सर्वगुणोमे प्रधान आत्माका यह ज्ञानगुण है, इस ज्ञानगुणसे इस ज्ञानस्वरूपकी जानकारी रखी जाय तो चूंकि ज्ञाता भी ज्ञान बना और ज्ञेय भी ज्ञान बना तो वह कर्ता कर्ममे अभिन्न बन जाता है, एकरस हो जाता है। फिर वहाँ विकल्पोंका अवकाश नही रहता, और ऐसे विकल्पोंके अनवकाशके समय इस आत्माको ज्ञानानुभूति प्रकट होती है।

धर्मपालनके लिये कर्तव्य—धर्मके लिए क्या करना है ? यह ज्ञान जानता तो निरंतर है, कभी किसीको जाने, कभी किसीको जाने तो तुम यह निर्णय कर लो कि हम जाने बिना तो कभी रहते नही, जाने बिना कोई काम नही होता, रोजिगार नही होता। सारे दिन रात बेकार रहे, ढलुवा जैसे पडे रहे, घरके किसी कोनेमे एक जगह बैठे रहे। कोई पूछे क्यो भाई कैसे बैठे हो ? अरे बेकार बैठे है, काम ही नही है, मगर भीतरमें देखो यह काम बराबर प्रतिसमय करता ही जा रहा है। जाने बिना तो जीव रह ही नही सकता। कुछ न कुछ जरूर जानेगा। अब यह निर्णय कर लो कि हम कैसी चीज जाना करे, किस चीजके जाननेमे अधिक देर रहा करें जिससे हमारा कल्याण हो, पवित्रता हो, कर्मबन्धनसे मुक्ति हो, ससारके संकटोसे छूट जाये ? ऐसा कौनसा पदार्थ है जिस पदार्थके जाननेसे हमारे समस्त क्लेश दूर हो जायें ? यह निर्णय कर लो। निर्णय करनेमे विलम्ब न लगेगा, क्योंकि जिसके ज्ञानसे हित नही है, जिन पदार्थोंमे राग करनेसे हित नही है, उन पदार्थोंसे राग कर-करके तबियत बहुत कुछ ठिकाने आ गयी है और उससे ऊब भी बहुत-बहुत बार आ चुकी है, इस कारण अहितकी चीजसे हटनेकी बात समझनेमे विलम्ब न लगना चाहिए। तो ये बाह्यपदार्थ ज्ञानके आलम्बनके योग्य नही है। एक अपना अनादि सिद्ध शुद्ध चैतन्यस्वभाव ही अपने ज्ञानके द्वारा आलम्बन करने योग्य है। ज्ञान ज्ञानको जानता रहे, यही धर्मपालन है।

निश्चयधर्मकी पात्रताके लिये व्यवहारधर्मकी उपयोगिता—भैया ! जितने भी धर्मके नामपर व्यवहार किये जाते है वे सब व्यवहारधर्म हैं। व्यवहारधर्मका लक्ष्य यही है कि हमारी ऐसी स्थिति बन जाय कि यह ज्ञान इस ज्ञानस्वरूपको ही जानता रहे, अन्य पदार्थोंके जाननेका श्रम और विकल्प न करे। उस ही मे निर्विकल्प समाधि प्राप्त होती है, उससे ही वीतराग सहज आनन्द जगता है और सहज परमशुद्ध आनन्द जगता है। यही इस जीवका सर्वोत्कृष्ट वैभव है। इस कारण हमे प्रयत्न करके अपने आपके स्वरूपकी जानकारीका ही उद्यम करना चाहिए।

॥ पचास्तिकाय प्रवचन द्वितीय भाग समाप्त ॥

पंचास्तिकाय प्रवचन तृतीय भाग

जीवा अणाइणिहणा सता णता य जीवभावादो ।
सब्भावदो अणता पचग्गगुणप्पधाणा य ॥५३॥

कर्तृत्व अन्तराधिकार—इस गाथासे पहिले २६ गाथावोमे आत्माके सम्बधमे यह जीव है, यह चेतयिता है और उपयोगसे विशेपित है—इन तीन विशेपणोका वर्णन किया गया है। अब जीवतत्त्वके सम्बधमे प्रभुता और कर्तृत्वका सयुक्तमुखसे वर्णन चलेगा, जिसमे वर्णन तो कर्तापनका होगा, पर कर्तापनके वर्णनसे प्रभुता अपने आप प्रकट हो जायगी। इस कर्तृत्व गुणके वर्णनमे सर्वप्रथम भूमिका रूपमे कह रहे है। जीव अनादि निधन है, अनादिकालसे है और अनन्तकाल तक रहेगा। यह जीव सान्त भी है, अनन्त भी है और ५ प्रमुख गुणो करके प्रधान है।

कर्तृत्वका मर्म जाननेके लिए एक वस्तुके परिमाणके अवगमकी आवश्यकता—कोई भी जीव निश्चयसे परके भावोका करने वाला हो नही सकता, इस कारण स्वके भावका ही कर्ता होगा। एक वस्तु कितनी होती है, इतनी जानकारी हुए बिना वस्तु किसका कर्ता है, किसका भोक्ता है, यह समझमे नही आ सकता। इस कारण सर्वप्रसगोमे यह बात ज्ञानसे ओझल न होनी चाहिए कि वस्तु कितनी है ? एक वस्तु उतनी होती है जिसका कोई एक परिणमन जिससे बाहर न हो और जिस पूरेमे होना ही पडे, उतनी वस्तु एक होती है। जैसे लकडी जलाई जाती है ना, तो कहनेको तो लोग कहते कि लकडी एक है, लकडीका एक छोर जल रहा है, बाकी लकडी नही जल रही है तो फिर कहाँ वह एक रही ? एक तो वह होता है कि जो भी परिणमन हो वह एक ही समयमे जितने पूरेमे हो उसे एक कहते है। जैसे आपका आत्मा एक है, आपका जो भी परिणमन होता है सुखका, दुःखका, ज्ञानका कोईसा भी परिणमन है वह परिणमन आपके सर्वप्रदेशोमे एक होता है। वहीका वही एक परिणमन आपके सर्व स्वक्षेत्रमे होता है तब आप एक कहे जाते हैं। क्या कभी ऐसा भी होता है कि आप सुखी हो रहे हो तो पैरोसे लेकर सिर तक जितना यह आत्मा है उसमे आधेमे सुख हो रहा हो और आधेमे दु ख हो रहा हो, ऐसा तो नही होता। कोई भी परिणमन हो वह आत्मामे पूरेमे हुआ करता है। ऐसी ही बात प्रत्येक पदार्थकी है। प्रत्येक पदार्थका परिणमन अपने आपके पूरेमे

होता है। ये दिखने वाले सर्व समागम एक पदार्थ नही है, वस्तुभूत नही है, परमार्थरूप नहीं है। मायारूप हैं, सयोगजन्य है, अनेक पदार्थोंका समूह है।

आत्माका परिमाण व कर्तृत्व—इस प्रकरणमे यह बताना है कि यह मै आत्मा किसका करने वाला हू ? इसका स्पष्ट निर्णय जाननेसे पहिले अपने आपको यह देख लो कि मैं आत्मा कितना एक हू ? बस यह मैं आत्मा हू, जितने अनुभवका यह विषय बन रहा है वह मै एक हू। तो इस एकसे बाहर जो कुछ भी हो वह तुमसे अत्यन्त जुदा है ना, चाहे एक क्षेत्र मे यह शरीर भी पडा है, यह कार्माण शरीर भी पड़ा है, लेकिन उस लक्षणको देखकर जो परिणमन जिस मुझमे पूरेमे होता है वह मैं एक हू। इस दृष्टिसे शरीर भी अत्यन्त जुदा है और ज्ञान भी अत्यन्त जुदा है। जो मुझसे जुदा है उसपर मेरा प्रयोग नही हो सकता। मेरे परिणमनका प्रयोग मुझपर ही होगा। मेरेसे बाहर मेरी करतूत नही हो सकती। मै परिणम रहा हू तो भी अपनेमे विकल्परूपसे कर्ता हो रहा हू, किसी अन्यसे नही। निश्चयसे यह आत्मा किसी परके भावको करनेमे समर्थ नही है, इससे यह स्वके परिणामोका ही कर्ता हो सकता है।

आत्माका कुछ विवरण—भैया ! स्वके परिणामोका करने वाला यह आत्मा कैसा है, इसके सम्बधमे कुछ विशेष भी जानकारी होनी चाहिए। यह मै आत्मा अनादिसे हू, अनन्तकाल तक रहने वाला हू, क्या ऐसा है ? हाँ है। यह मैं किसी समयसे हू, और किसी समय तक रहूगा, ऐसा भी है क्या ? हाँ ऐसा भी है। यह आत्मा किसी दिनसे हो, किन्तु सदाकाल रहे, ऐसा भी है क्या ? ऐसा भी है। यहाँ कभी स्वभावपर दृष्टि देना है, कभी पर्यायपर दृष्टि देना है, इन दोनो दृष्टियोसे इसका निर्णय होगा। सभी उत्तर न केवल स्वभावदृष्टिसे आयेंगे, न केवल पर्यायदृष्टिसे आयेंगे। जब हम इस जीवको सहज चैतन्यस्वरूप परमपारिणामिक भावको मुख्यतासे देखते है तो यह दृष्ट होता है कि जीव अनादिनिधन है। जो भी पदार्थ है उसका स्वभाव अनादिसे है, जो भी है उसकी सत्ता अनादिसे है। कुछ न हो और बन जाय यह कैसे हो सकता है ? किस मैटरसे बना, कुछ चीज तो होना चाहिए। यह मैं आत्मा प्रति समय कुछ न कुछ बनता चला जा रहा हू। तो मैं मूलमे कुछ तो सद्भाव हू तब तो यह बात बनेगी। मैं चैतन्यस्वभावमात्र हू और चैतन्यस्वभाव अनादि अनन्त है। किसीका स्वभाव कभी बना हो, कभी खतम हो जाय, यह कभी नही हो सकता। यदि कोई स्वभाव कभी बने कभी खतम हो तो वह द्रव्यस्वभाव नही है, पर्यायस्वभाव है, पर्यायकी प्रकृति है ऐसी। कभी प्रकृति बनी और कभी खतम हो गई, पर मैं जो सहजस्वभावरूपमे हू वह अनादिसे हू और अनन्तकाल तक रहने वाला हू। यो स्वभावदृष्टिसे जीव अनादि अनिधन है।

परिणमनदृष्टिमे सादि सान्तता—अब पर्यायदृष्टिसे निरखिये—जो क्रोध, मान, माया,

लोभ आदिक भाव उत्पन्न होते है उन्हें औदयिक भाव कहते है। कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर ये भाव प्रकट होते है। यह भाव बतलावो किसी दिनसे हुए ना और किसी कालमे खतम हो जायेंगे ना ? कोई भी विकार हो, आत्माके परिणामरूप विकार ये अन्तर्मुहूर्तमे बदलते रहते है। क्रोध सदा न रहेगा मान बन गया, मान सदा न रहेगा माया बन गया, माया सदा न रहेगा लोभ बन गया। तो यो क्रोध पर्यायसे परिणत आत्माको यह आत्मा है ऐसा निरखकर क्या यह न कहा जायगा कि यह सादि है और सान्त है ? यह पर्याय मिट भी जाने वाली है, यो औदयिक भावकी अपेक्षासे जीव सादि सान्त है, इसी प्रकार क्षायोपशमिक भाव होता है विचार, विकल्प, कल्पना, तर्क ये सब क्षायोपशमिक चल रहे है। ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम निमित्त है और यह पूर्णापूर्ण ज्ञान प्रकट हो रहा है। ऐसा यह क्षायोपशमिक भाव किसी क्षणसे हुआ है और किसी क्षण तक रहेगा। यह सादि सनिधन है। यो ही औपशमिक भाव भी सादि सान्त है। कर्म दब गया और वहाँ जो निर्मलता प्रकट हुई है वह औपशमिक भाव है। वह भी किसी क्षण हुआ था किसी क्षण समाप्त होगा, यह भी सादि सान्त है। तो यो जीव अनादि अनिधन हुआ, सादि सान्त हुआ।

परिणमनदृष्टिमे सादि अनन्तता—अब क्षणिकभावकी दृष्टिसे देखिये—यह जीव यह सादि अनन्त है। कर्मोंका विनाश होनेके निमित्तसे जो निर्मलता प्रकट होती है वह निर्मलता सादि है, किन्तु क्या यह निर्मलता आगे समाप्त हो जायगी ? क्या यह निर्मलता विलीन हो जायगी ? न रहेगी ऐसा तो नही है। कर्मोंके क्षयका निमित्त पाकर जो निर्मलता प्रकट होती है वह प्रकट होकर अनन्तकाल तक रहेगी। यो क्षायिक भाव सादि और अनन्त है और चूंकि यह आत्मा भावमय हुआ करता है तो क्षायिक भावमयताकी दृष्टिसे यह जीव भी सादि अनन्त हो गया।

यहाँ ऐसा कुतर्क न किया जाना चाहिए कि अगर किसी चीजकी आदि है तो उसका अन्त भी जरूर है, सो क्षायिक भावका जब आदि होता है तो उसका अन्त भी जरूर होता है। यद्यपि सूक्ष्मदृष्टिसे यह कुतर्क नही किन्तु तर्क-वितर्क है। शुद्ध ऋजुसूत्रनयसे पदार्थके प्रत्येक परिणमन किसी समय उत्पन्न होते हैं और किसी समय दूर हो जाते है। क्षायिकभाव जैसा निर्मल परिणाम भी प्रतिसमयमे नवीन-नवीन होता रहता है, सदृश होता है, परन्तु यहाँ क्षायिक साधारणकी बात चल रही है। क्षायिक भाव उत्पन्न होकर वह नष्ट हो जाय ऐसा नही है। जैसे औदयिक भाव उत्पन्न होता है तो वह नष्ट हो जायगा। यो ही क्षायोपशमिक और औपशमिक भाव उत्पन्न होते है और वे नष्ट हो जायेंगे ऐसा क्षायिक भावमे न लेना। क्यो न लेना कि जो क्षायिक भावमे अब विकास है वह पहिले उपाधिके कारण न था। उपाधिके निवृत्त होनेपर जो कुछ भी भाव प्रवर्तमान होता है वह जीवके सहज सत्त्वका

भाव है, वह अलगसे आया हुआ भाव नही है। इस कारण क्षायिक भावकी आदि तो है, पर उसका अन्त नही है।

अपनी बात—यह बात चल रही है अपनी। मै क्या हूं, केवल इतनी ही बात कही जा रही है। मै क्या हू, इसका निर्णय किए बिना जिसने जो नाम धर दिया उसी रूप अपने को मान लेते है और विपदाके प्रसगमे अर्थात् सभी करतूतोके प्रसगमें यह अपने आपको उस रूप पेश कर लेता है। मै अमुक नामका हू, अमुक पोजीशनका हू इत्यादि। ये यथार्थज्ञान नही है, ये तो बाहरी बाते है। यह भी जानना है कि मुझमे जितने विकल्प होते है, जितने विषय-भाव उत्पन्न होते है, इच्छाएँ जगती है ये सब परमार्थसे मैं नही हू, मैं तो शुद्ध सहज चैतन्य-स्वरूप हू, इस ही से अनादि अनिधन कहा है, इस ही को परमपारिणामिक भाव कहा है।

पारिणामिक भावकी दृष्टिसे आत्माकी अनादि अनन्तता—पारिणामिक भावका अर्थ है—परिणमन जिसका प्रयोजन है उसे पारिणामिक भाव कहते है। ये पर्याये क्यो हो रही हैं, इनकी क्या आवश्यकता है ? ये पर्यायें इस ध्रुव पदार्थका सत्त्व बनाए रहनेके लिए हो रही है। तो पर्यायें जिसके प्रयोजनके लिए होती हो उसे पारिणामिक भाव कहते है। यह उसका फलित अर्थ है। वास्तविक अर्थ तो यह है कि जिसके लिए पर्यायें हुआ करती है वह पारिणामिक भाव है। स्वरूप ही ऐसा है, स्वभाव ही यो है कि प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय परिणत होता रहता है। जो पर्याय है वह तो सादि है, सान्त है, किन्तु उन पर्यायोका आधारभूत जो शाश्वत पदार्थ है वह पदार्थ अनादि अनन्त है। यह मैं अनादिसे हू, अनन्तकाल तक रहूगा। जितने दिनोका यह मनुष्य जीवन है मैं उतना ही मात्र नही हू, इससे पहिले अनन्त-काल पहिलेसे मैं हू और इसके बाद भी अनन्तकाल तक हू अर्थात् सदासे हू और सदा तक रहूगा।

ज्ञानीकी चिन्तना—अब इतने थोडेसे जीवनमे जैसे जो कुछ भी समागम पाया है उसमे ही आसक्त हो जायें, यही मेरा सब कुछ है, ऐसा मान लें तो जो इस जीवकी अनादि अनन्तता समझते है वे इसकी इस करतूतपर हास्य करते है। इस थोडेसे समयके लिए मिले हुए समागममे 'यह मैं हू' ऐसी आत्मीयताका यह निश्चय कर रहा है। यह तो-अनादि अनत है, यह जीव परमार्थत' अनादि अनन्त सहज चैतन्यस्वभावको लिए हुए है। इसमे ये विभाव-परिणतियाँ कैसे आयी और उनके कारण यह आदि अन्त वाला कैसे बनता जा रहा है ?

आत्माकी परिणमनशीलता—कोई ऐसी आशका करे कि हमे तो विश्वास नही होता कि यह आत्मा ही स्वय विभावरूप बन रहा है, और कुछ दार्शनिक ऐसे है भी जो इस आत्मा को सदा शुद्ध मानते है। यह न कभी अशुद्ध हुआ, न अशुद्ध होगा, किन्तु जच रहा है भ्रममे ऐसा कि यह मै हू और अशुद्ध हू। खैर, यह तो एक बड़े विस्तृत दर्शनकी बात है। सक्षेपमे

यो समझना कि आत्मा तो सर्वथा अपरिणामी है, कभी बदलता ही नही है। यो कह लो कि इस आत्मामे सुख दुःख नही होते। तब तो फिर सुख दुःख अचेतनमे होते तो अचेतन इसकी फिक्र करें, मैं क्यो फिक्र करूँ ? ये सब आपत्तियां इस चेतनमे ही हो रही है, और ये इसमे अनादिकालसे कर्ममलीमसताके कारण होती है, और जब होती हैं उस समय हम उस आकार रूप परिणम जाते है। जैसे कीचडसे सना हुआ पानी, बरसातका गदा पानी—उस पानीका स्वभाव निर्मल है। कीचडका सम्बध होनेसे वह पानी मलीमस है और उस समय मलीमसता के आकाररूप परिणत है, ऐसे ही यह आत्मा यद्यपि सहज चैतन्यस्वरूप है, किन्तु अनादिकाल से ज्ञानावरण आदिक कर्मोकी उपाधिसे मिला हुआ है और उस विजातीय परद्रव्यका निमित्त पाकर इस जीवमे क्रोध आदिक विकार उत्पन्न हो रहे है, यो यह आत्मा औदयिक भावोंसे तन्मय बन गया, और फिर जब उन भावोका उपशम होता है, कर्मोका क्षयोपशम होता है तब औपशमिक और क्षायोपशमिक भाव भी बनते है, यो यह आत्मा चित्र-विचित्र भी है। हम दुःखी है, मलीमस है, अशुद्ध है और इस कारण निरन्तर दुःखी रहा करते है।

स्वचर्चा व परचर्चाकी स्थितिका अन्तर—देखो जब अपने ज्ञानकी चर्चा अपनेमें की जा रही है, देखी जा रही है उस समयके शान्ति और आनदको परखिये, और जब यह आत्मा ज्ञानदृष्टिसे चिगकर किन्ही बाह्यपदार्थोंमे रमता है उस समयकी शान्तिको देख लीजिए। शान्ति प्राप्त करना तो अपने आधीन बात है, जब चाहे ज्ञान कर लें और शान्त हो लें। इतनीसी सुगम बात अथवा यह योग्यता जिन जीवोके प्रकट हो जाती है वे ही जीव ससारके सकटोको टालनेमे समर्थ होते है। अपने आपका झुकाव अपने आपमे लग जाना, अपने आपको निरखना यह कुछ कठिन बात नही है। एक इसकी जिज्ञासा होनी चाहिए, रुचि बननी चाहिए। रुचि भिन्न पौद्गलिक असार पदार्थोंकी न हो तो यह बात सुगम है। परकी रुचि और अपने आपकी रुचि ये दोनो बातें एक उपयोगमे नही ठहर सकती। जैसे एक सूई एक ही समयमे आगे पीछे दोनो दिशावोकी ओर सीती जाय, ऐसा कभी नही हो सकता, ऐसे ही यह उपयोग बाह्यपदार्थों मे रमे और उस ही समय आत्माके शुद्ध चमत्कारोमे भी रमे तो ये दोनो बाते एक साथ नही हो सकती।

अपने कर्तव्यका निर्णय—भैया ! पहिले तो अपनी छाट कर लीजिए, इस नरजीवन से जीकर आखिर करनेको एक मात्र उत्कृष्ट काम क्या है, खूब निर्णय कर लीजिए। निर्णयमे यह जचे कि मेरा काम मेरे ज्ञानस्वरूपको चेतते रहनेका है, अब इस ओर आपकी साधना शीघ्र सफल हो जायेगी। बल्कि परपदार्थोंकी रुचि कर-करके आप परपदार्थोंमे कभी सिद्धि न पा सकेंगे। अपने आपके अनादि अनत आत्मस्वरूपमे मैं चिन्मात्र हू, ऐसी बारबार ज्ञानभावना बने तो आत्मामे शान्तिका अभ्युदय हो। मुझे अपने ज्ञान, अपने दर्शन और अपनेमे ही रमना

जितना बन सके, सर्व उद्यम करके ऐसे ही रत्नत्रयकी साधना करनी चाहिए।

एव सदो विणासो असदो जीवस्स होइ उप्पादो।
इदि जिणवरेहि भणिद अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्ध ॥५४॥

पञ्च जीवभाव—जीवमे ५ प्रकारके भाव है—औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक। मोहनीय कर्मके उपशमसे जो सम्यक्त्व और चारिभाव होता है उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते है और औपशमिक चारित्र कहते है। यह भाव इस जीवमे किसी समयसे होता और किसी समय समाप्त हो जाता है अर्थात् इस भवकी आदि है और अन्त है। क्षायिक भाव जो कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है उसे क्षायिक भाव कहते है। क्षायिक भावकी आदि तो है किन्तु अन्त नही है। क्षायिक भावमें जो तत्त्व प्रकट हुआ है वह अनन्त काल तक रहेगा। क्षायोपशमिक भाव जो किसी प्रकृतिके उदयाभावी नयसे व उपशमसे और किसी प्रकृतिके उदयसे जो अल्पविकास प्रकट होता है वह क्षायोपशमिक भाव है। इस भाव की भी आदि है और अन्त है। कभी प्रकट हुआ और कुछ समय बाद यह नष्ट हो जाता है। औदयिक भाव जो कर्मोदयके निमित्तसे हो, रागद्वेष विकार विषय कषाय ये सब औदयिक भाव है। औदयिक भावकी आदि है और अन्त है। पञ्चम भाव है पारिणामिक-जीवका जो शाश्वत स्वभाव है उसे पारिणामिक भाव कहते है। इस भावकी न आदि है और न अन्त है

जीवमे असदुत्पाद व सदुच्छेदकी दृष्टि—इन ५ भावोमे आदि अन्तकी विभिन्नता करते हुएमे यह बात बन गयी कि यह जीव भावमयी है, उन भावोकी अपेक्षा जो कि आदि अन्तसे सहित है। उन सत् हुए भावोकी अपेक्षा इस सत् जीवका भी विनाश है और असत्का उत्पाद है। जो विनश्वर भाव उत्पन्न हुए है वे अब नही रहे, सो उन भावोमय जीवका विनाश है और जो भाव न थे और हो गये उन भावोमय जीवका उत्पाद है। इस प्रकार विनाश और उत्पाद दोनो ही एक जीवमे घटित हो जाते है। उनका परस्परमे कुछ विरोध नही होता, क्योकि इन ५ प्रकारके भावोसे परिणमन करने वाले जीवके सत्का विनाश असत् का उत्पाद घटित होता है। कभी जैसे औदयिक एक मनुष्यगति हुई, अब वह मनुष्य आयु समाप्त होनेपर मर गया और आगे किसी देवगतिमे पहुचा तो वह मनुष्यत्व सत् तो था, ऐसा नही कि वह असत् हो, केवल कल्पनाकी बात होने रूप यह जीव अपरिणामी हो। अब उस सत्रूप मनुष्यत्वका भी विनाश हो गया और देवत्व भाव उत्पन्न हुआ है तो देवत्वरूपसे यह जीव था, कहाँ देव था, लेकिन उस असत्का उत्पाद हो गया। इस तरह यह बात घटित होती है कि सत्का विनाश होता है और असत्का उत्पाद होता है।

नयचक्रकी साधनासे परस्पर अविरोध—भैया! यहाँ एक बात ध्यानमे रखिये, पहिले

इसका खण्डन किया था, सत्का कभी विनाश नही होता और असत्का कभी उत्पाद नही होता, यह बात बडी युक्तियोसे समझा दी गयी थी। जो चीज सत् है उसका कैसे विनाश होगा और जो चीज कुछ है नही उसका उत्पाद कैसे होगा ? सो यहाँ नयचक्रकी साधनासे सुनना। ये परस्परके दो प्रकरणके कथन भी इस स्याद्वादमे विरोधको प्राप्त नही होते। जहाँ यह बताया जाता है कि जो सत् है उसका विनाश नही होता, जो असत् है उसका उत्पाद नही होता—वह द्रव्यार्थिक दृष्टिसे कहा गया है, और जहाँ यह कहा जाता है कि सत्का विनाश हो जाता है और असत्का उत्पाद हो जाता है वह पर्यायदृष्टिसे कहा हुआ कथन है। जीव जो सत् है वह क्या कभी विनष्ट हो सकता है ? और द्रव्यार्थिकदृष्टिसे देखा जाय तो जो कुछ है ही नही, जब कुछ है नही तो उसका उत्पाद हो सकता है क्या ? नही हो सकता, किन्तु जब पर्यायार्थिक दृष्टिसे देखते है तो सत्का विनाश है और असत्का उत्पाद है। जो पर्याय नही है वह हो जाती है, जो पर्याय है उसका नाश हो जाता है।

असदुत्पाद व सदुच्छेदपर एक दृष्टान्त—एक दृष्टान्त लीजिए। जैसे समुद्रकी लहरें। लहरोकी दृष्टिसे यह कह सकते हैं ना कि जो नही है वह पैदा हो गया। जैसे जलके जिस स्थलपर लहरे न थी, वहाँ लहरे बन गयी, तो थी तो नही लहरे, अब हो गयी और ये लहरे आगे चलकर नष्ट हो जाती हैं, तो जो है उसका विनाश हो गया। किन्तु समुद्रको तो ऐसा नही कह सकते कि समुद्र न था और वह हो गया, और समुद्र था वह नष्ट हो गया। तो जैसे उस समुद्रकी दृष्टिसे सत्का विनाश नही है, असत्का उत्पाद नही है, ऐसे ही लहरोकी दृष्टिसे सत्का विनाश है और असत्का उत्पाद है। वहाँ यह भी देख लीजिए कि लहरोमय समुद्र है। वे लहरें समुद्रसे कोई जुदी वस्तु नही है, समुद्रकी ही एक अवस्था बनी है। उनमे और अवस्थावानका इस तरह अभेद रहता है। कुछ चीजें वहाँ दो नही हैं। वह ही एक समुद्र लहरोरूप परिणम रहा है।

जीवद्रव्यमे असदुत्पाद व सदुच्छेदका विवरण—ऐसे ही जीवद्रव्यमे निरखिये—इसमे विषयकषाय, रागद्वेष आदिक तरगें उठती हैं, वे तरगें इस आत्मासे भिन्न नही है। हाँ औपाधिक है, नष्ट हो जायेंगी। यो स्वभावदृष्टि देखनेसे वे भिन्न-भिन्न है, पर विभावोका आधार और कुछ हो, जीवका आधार और कुछ हो, ऐसा नही है। वह एक जीवविस्तार है और वह नाना विषयकषायोंके रूपसे परिणम गया है।

पदार्थकी त्रितयात्मकता—पदार्थमे उत्पाद व्यय और ध्रौव्य, ये तीन बातें स्वभावसे पडी हुई है। जो होता है, जो है, जो सत् है उसका नियमसे उत्पाद व्यय और ध्रौव्य होगा ही। लोकमे ऐसा कोई पदार्थ नही है जो बनता तो हो, पर बिगडता न हो, वह बना रहता न हो। ऐसा कोई पदार्थ नही है जो बिगडता तो हो, पर बनता न हो या बना रहता न हो,

ऐसा भी कोई पदार्थ नही है जो बना रहे पर बने और बिगड़े नही। कुछ भी वस्तु हो जो भी सद्भूत है वह नियमसे प्रतिक्षण बनता है, बिगडता है और बना रहता है। यहाँ बिगडने से मतलब उस बिगाडसे नही है जिसे हम आप नही चाहते है। जो अपनेको अनिष्ट जच जाय उसे लोग बिगाड कहते है। लो काम बिगड गया। अरे काम बिगड गया तो कुछ बना भी कि नही ? ऐसा कोई नही है जो केवल बने तो सही पर बिगडे नही या बिगडे तो सही पर बने नही। चौकी जल गयी तो आप क्या कहेगे ? काम बिगड गया कि बन गया ? लोग तो यही कहेगे कि भाई काम बिगड़ गया। अरे बना नही क्या कुछ ? राख तो बन गयी। किसीका घर जल गया, लो लोग कहेगे अरे काम बिगड गया। तो क्या बिगड ही गया, बना कुछ नही ? अरे राख तो बन गया।

स्वार्थाशयमें बने बिगाड़की छांट—आपको घर प्यारा है इसलिए बिगड गए, पर दृष्टि आपकी रहती है, बन गए पर नही। किसी स्वार्थी मनुष्यको राख चाहिये हो काफी अधिक बहुतसे बर्तन मलनेके लिए तो उसकी दृष्टिमे तो उसका काम बन गया और जिसे घर प्रिय है उसके लिए बिगड गया। तो यह तो अपने निर्णयकी बात है। परतु पदार्थमे जो अवस्था बनी है उसका तो नाम बनना है और जो अवस्था विलीन हुई है उसका नाम बिगडना है। आप किसी स्थितिको बिगडा-बिगड़ा ही क्यो देखते है, बना क्यो नही देखते है। मोहका प्रताप है इसलिए आप किसी पदार्थको बना और किसीको बिगडा देखते है। अरे देखो, तो दोनो एक साथ देखो। यह बिगडा और यह बना। पदार्थका स्वरूप ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है। बना है तो कुछ बिगडा है, बिगडा है तो कुछ बना है।

हर्ष विषाद समताके भावसे पदार्थकी त्रितयात्मकताकी सिद्धि—भैया ! यह तो अपने अपने मनकी बात है कि कोई बिगाडमे खुशी मानता है और कोई बिगाड़मे दु ख मानता है। और कोई बिगाडमे न सुख मानता है और न दुःख मानता है। कोई तीन पुरुष बाजारमे गए। एकने सोचा कि मुझे सोना खरीदना है, एकने सोचा कि मुझे भगवानके अभिषेकके लिए सोनेकी दो कलसियाँ खरीदना है। एकने सोचा कि हमे अभिषेकके समयके लिए चार मुकुट खरीदना है। तीनो आदमी बाजार गए। अलग-अलग घरके रहने वाले थे, तो एक सर्राफके यहाँ कलसिया तोड कर मुकुट बनाये जा रहे थे, कलसिया बिक न रही थी, सो सोचा कि इनका मुकुट बनवाकर बेच देंगे। तीनो आदमी उस दुकानपर पहुचे। अब जिस को मुकुट चाहिए था वह तो खुश होने लगा, अब क्या है, अब दो मिनटमे ही मेरा काम बना जाता है, ले जायेगे। वह तो मुकुटके बननेपर खुश होता है। जिसे कलसियाँ चाहिये थी वह दु खी होता है। सोचता है कि यदि मै १५ मिनट पहिले आ जाता तो बनी बनाई कलसियाँ मिल जाती। वह कलसियोंके बिगडनेपर दु.खी होता है। और जिसे सोना चाहिए था उसे

न हर्ष है और न विषाद है। भाई कलसियाँ मिल जायें तो ठीक, मुकुट मिल जाय तो ठीक, सोना लेनेसे मतलब। तो उन तीनोकी अलग-अलग परिणतियाँ हो रही है, उसका आश्रयभूत कारण क्या है ? यह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य।

पदार्थमे उत्पादव्ययध्रौव्यकी अनिवार्यता—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यको छोडकर कोई पदार्थ कभी रह ही नही सकता। है ही कुछ नही। बतावो ऐसा कौन है जिसमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य न हो और हो ? है कुछ ऐसा ? चाहे व्यर्थकी कल्पनाएँ करके गधेके सीग मान लो। वहाँ पर भी आपकी कल्पनाका उत्पाद व्यय और ध्रौव्य रहेगा। जब गधेके सीग होते ही नही है तो उनका उत्पाद व्यय और ध्रौव्य कहाँसे होगा ? यदि कल्पनासे गधेके आपने सीग मान लिया तो वहाँ गधेकी सीगसे कुछ भी मतलब नही रहा। फिर तो वह गधेका सीग आपके दिलमे फिट बैठा है। वह सीग गधेपर न बैठ पाया। कोई पदार्थ ऐसा नही है जो उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे शून्य हो।

उत्पादव्ययध्रौव्यके विशेष प्रतिपादनका कारण—जैनशासनमे इस वस्तुस्वरूपके वर्णनकी बडी प्रधानता दी है। इसके होनेका यह कारण है कि वस्तुके इस यथार्थस्वरूपके ज्ञानसे ही मोह दूर होता है। प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय परिणमते रहते है। इसका अर्थ यह लेना कि वे पदार्थ अपने ही स्वरूपसे परिणमते हैं दूसरेके स्वरूपसे नही परिणमते हैं। हमारा आपका कितना भी घनिष्ट स्नेह हो और आप चाहे हमारी अनुकूल इच्छानुसार कितने ही काम कर लें तिसपर भी हमारे परिणमनको आपने नही किया, किन्तु आपने अपने ही परिणमनसे कार्य किया है। कोई पदार्थ किसी दूसरेके रूपसे नही परिणमता, अपने ही स्वरूपसे परिणमा करता है, तब अपनी ही पर्यायसे विलीन होता है और अपने ही सत्त्वसे बना रहता है। जब प्रत्येक पदार्थकी ऐसी स्थिति है तो फिर यह बतलावो कि एक पदार्थ किसी दूसरेका हो कैसे जायगा ?

माननेके अनुसार वस्तुस्वरूपका अनिर्माण—भैया ! भ्रमसे मानते जावो—यह मेरा है, यह मेरा है, बस मानने ही माननेकी बात है, बन कुछ नही सकता अपना। कैसा भी महाबली हो, कैसा भी महान नायक हो, मनुष्योमे तीर्थंकर और चक्रवर्तीसे बढकर किसका और दृष्टान्त दिया जाय, वैभव और यशमे और किसे मनुष्यकी बात कहे, जब इनका भी कुछ नही रहा यहाँ, तब अन्य बात क्या कही जाय ? तीर्थंकर भी सर्व वैभव त्यागकर केवल एक आत्मीय अनुभवमे रत हुए। तीर्थंकरमे महान बल बताया जाता है। कल्पना कर लो २० बकरोमे जितना बल होगा उतना बल तो एक गधेमे होता होगा और २० गधोमे जितना बल होगा उतना बल एक घोडेमे होता होगा। कुछ कल्पना लगा लो। २० घोडोमे जितना बल है उतना बल एक भैंसामे होता होगा। २० भैंसो बराबर बल एक हाथीमे और अनेको

हाथी बराबर बल एक सिंहमे और सैकडो सिंहो बराबर बल मान लो एक देवमे और सैकडो देवो बराबर बल इन्द्रमे और सभी इन्द्रो बराबर बल तीर्थंकर भगवानकी एक अगुलीमे । अब उसे किसी भी रूपमे देख लो, प्रतापकी दृष्टिसे, पुण्यकी दृष्टिसे, शक्तिकी दृष्टिसे । ऐसे महाबली वैभववान सर्वपूजित तीर्थंकर भी किसी वस्तुको अपनी नही बना सके ।

वस्तुस्वरूपकी अनादिता—किसी वस्तुको कोई अपनी बना ही नही सकता । प्रत्येक पदार्थ अपने ही उत्पादव्ययध्रौव्यमे तन्मय है, दूसरेमे नही । इसी कारण सभी पदार्थ अब तक टिके है और अनन्तकाल तक टिके रहेगे । न कोई पदार्थ कम हो, न कोई पदार्थ ज्यादा हो । जो है जितना है उतना अनादिसे है, अनन्तकाल तक है । कुछ लोग व्यर्थ ही अपने दिमागको तकलीफ देते है, ऐसा सोचकर कि था क्या इस दुनियामे पहिले, और यह दुनिया कबसे बनी ? बनानेके सिद्धान्त वाले बनानेके ढगसे सोचते है और विकासके मतव्य वाले विकासके ढगसे सोचते है, लेकिन वे दोनोके दोनो अन्य द्रव्योंसे अन्य द्रव्योका उत्पाद होता है, विकास होता है, इस विधिसे सोचते है । तत्त्वभूत बात तो यह है कि यह समस्त लोक अनादिसे है और अनन्तकाल तक रहेगा । इसमे न कुछ कभी बढ़ा है, न कुछ कभी घटा है । जितने परमाणु है वे अनन्तानन्त है, पर जो है सो ही है । असत् बनता नही, सत् मिटता नही, लेकिन पर्यायदृष्टिसे उत्पाद कह लीजिए, विकास कह लीजिए, सब घटित होता है ।

जीवमे उत्पाद व्यय ध्रौव्यका निर्देश—अपने आपके जीवद्रव्यमे व्यञ्जन पर्यायसे उत्पाद व्यय देखें तो यो समझिये कि जिस पर्यायका विनाश किया है और जिस नवीन पर्यायका ग्रहण किया है वहाँ उत्पादव्यय है । गुणपर्यायकी दृष्टिसे सोचो तो आत्माके गुणोमे जिसका विकास हुआ है वह तो उत्पाद है और शक्तिका जो विकास हुआ है उस समयमे पूर्व विकास विलीन हो जाता है वह व्यय है, और चाहे व्यञ्जनपर्यायमे देखो अथवा गुणपर्यायमे देखो—आधारभूत जीवद्रव्य वहीका वही रहता है ।

उपादेयता व भलाई—भैया ! हम अपने आपकी ऐसी यात्रा बनाए हुए चले जा रहे है—कहाँसे आये हैं, कहाँ जायेंगे ? न कोई बता रहा है और न कोई यो पूछ भी रहा है, न इसे खुद मालूम है और न दूसरोको कुछ मालूम है कि यह कहाँसे आया है, कहाँ जायगा ? यह आत्मा पूर्वमे कहाँ था, कैसा था, इसको क्या जाने, पर इतना तो निर्णय है ही कि यह पहिले जरूर था और इस भवके मरनेके बाद भी यह जरूर रहेगा । इसका मूलसे विनाश नही है । ऐसे विनश्वर और अविनश्वर स्वरूप अपने आत्मामे यह बात निरखिये कि शुद्ध निश्चयनयसे अनादि अनन्त टकोत्कीर्णवत् एक ज्ञानस्वभाव जो कि निर्विकार है, सदा आनदस्वरूप है, ऐसा यह आत्मतत्त्व ही उपादेय है । एक इस अमर ज्ञानस्वभावपर दृष्टि देना ही शरण है, इसमे ही अपनी भलाई है ।

णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसजुदा पयडी ।
कुव्वति सदो णासं असदो भावस्स उप्पाद ॥५५॥

जीवभवोके निमित्त उपाधिका वर्णन—जीवमें नवीन भवका उत्पाद और पूर्वभवका विनाश क्यो हो जाया करता है, इसके निमित्तभूत उपाधिका प्रतिपादन इस गाथामे किया है। नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव नामकी कर्मप्रकृतिया है, वे प्रकृतिया सत्का नाश करती है और असत्भावका उत्पाद करती है। जैसे समुद्र है तो समुद्रमे समुद्रकी दृष्टिसे, जलराशिकी दृष्टिसे न तो उसमे असत्के उत्पादका अनुभव है और न सत्के उच्छेदका अनुभव है। पानी है तो पानीका अभाव तो नही है, और जो नही है उसका सद्भाव तो नही है, फिर उत्पाद व्यय कैसा ? तो जलकी राशिकी दृष्टिसे उत्पादव्यय नही है, किन्तु चारो दिशावोसे या किन्ही दिशावोसे क्रमसे बहने वाली जो हवा है वही समुद्रकी लहरोमे असत्का उत्पाद करता है और सत्का विनाश करता है। यह निमित्तभूत कारण बताया जा रहा है।

जीवमे असदुत्पाद व सदुच्छेदपर समुद्रका दृष्टान्त—जैसे समुद्र स्वय अपने समुद्रपनेका विनाश नही करता और उसमे से अन्य चीजका उत्पाद नही करता, पर समुद्रमे जो लहरो की परिणति होती है उस परिणतिकी दृष्टिसे असत्का उत्पाद है और सत्का विनाश है, यह क्यो है उसका कारण है हवा। तो यो व्यवहारदृष्टिसे चूकि हवाने असत्का तो उत्पाद किया, जो चीज न थी उसे तो उत्पन्न कर दिया और जो चीज थी उसका अभाव कर दिया। लहरोमे होता क्या है ? जहाँ कि जलपर कुछ भी उठाव नही है वहाँ उठाव आ जाना, जहाँ उठाव है वहाँ समान हो जाना, इसीके मायने लहरें हैं। तो जहाँ लहरें नही है वहाँ लहरें बन जाना, जहाँ लहरें है वहाँ लहरें मिट जाना अथवा बिना लहरो वाली स्थितिका अभाव हो जाना, लहरो वाली स्थितिका उत्पाद हो जाना इसका कारण है हवा। तो वह हवा असत्का उत्पाद और सत्का उच्छेद करती है। ऐसे ही इस जीव पदार्थमे देखो जीवका जीव स्वरूपसे न तो सत्का उच्छेद है और न असत्की उत्पत्ति है, पर क्रमसे उदयमे आने वाली जो नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव नामकी प्रकृति है वह प्रकृति सत्का उच्छेद करती है और असत्का विनाश करती है।

पदार्थका परिणमनस्वभाव—प्रत्येक पदार्थका स्वभाव है कि वह अपने रूप परिणमे, किन्तु पदार्थके विपरीत परिणमनकी योग्यता हो तो अन्य उपाधिके सम्बन्धका निमित्त पाकर विपरीत परिणमन हो जाया करता है। जीवका यह काम न था कि यह अमूर्त, ज्ञानघन, आनन्दपुञ्ज, शुद्ध ज्योतिस्वरूप आत्मतत्त्व कही नाना प्रकारके इन शरीरोरूप फसा रहे और अपने स्वभावसे विरुद्ध अन्य-अन्य परिणमनोका अनुभव करता रहे। यह जीवका स्वभाव नही है, किन्तु हो तो रहा है ऐसा ही। उसका कारण कर्मउपाधि है।

शरीररचनाकी विभिन्न मान्यतायें—जीवका शरीर मरनेके बाद कैसा बन जाता है, इस सम्बधमे भिन्न-भिन्न लोग अपने भिन्न-भिन्न विचार बढा रहे है। कोई कहते है ऐसी अनहोनी बात कि जीव मर जाय और दूसरा शरीर पा जाय, ऐसी अद्भुत बात ईश्वरके बिना और कौन कर सकता है, पर यह तो बतावो कि ईश्वरको इस प्रकार बनाते रहनेकी अभिरुचि लग गयी है या उसकी ड्यूटी बनी हुई है या उसे ऐसा किए बिना कोई तकलीफ है या इन जीवोपर उसे दया आयी है, इसलिए कर रहा है ? कुछ तो बतावो। और सबसे पहिले ईश्वर का स्वरूप भी निश्चित कर लो, ईश्वर आनन्दमय है या क्लेशमय है। जो क्लेशमय हो वह ईश्वर कैसा ? ईश्वर अज्ञानी है या ज्ञानमय ? जो अज्ञानी हो वह ईश्वर कैसा ? ईश्वर तो पूर्ण शुद्ध ज्ञानमय है और शुद्ध आनन्दमय है। अब जरा निगाह डालो, इस ईश्वरको लोगोका शरीर बना बनाकर चिपकाते रहना, इसकी अभिरुचि है क्या ? और वह भी अभिरुचि इतनी कठिन है कि सारी दुनियाका भार रखे, चिन्ता रखे, हिसाब रखे, लेखा-जोखा रखे, इतना बडा शौक इच्छाके बिना हो सकता है क्या ? कितनी वाञ्छायें, कितने यत्न, फिर दूसरी बात यह कि मान लो ईश्वरने ही शरीर बना दिया, पर असत्का सत् बनाया या सत्का रूपान्तर किया ? असत्को सत् बनाया, इसे माननेको तो कोई तैयार न होगा। कुछ भी न हो और बन गया वह तो नजरबन्दी है, कुछ बात ही नही है, और सत्का रूपान्तर किया तो इतना तो सिद्ध हो गया कि चीज थी, उसका रूपांतर हुआ, भले ही कारण ईश्वरको मान लो। उत्तम तो यह है कि ईश्वरको आराधनीय रूपमे रखना चाहिए जिससे हम प्रभुकी शक्तिका स्मरण करके, स्वभावकी उपासना करके अपने परिणामोको निर्मल बनायें।

जीवफलोपभोगकी कर्मानुसारिता—हम सब जीवोका शरीर बनाते रहना यदि प्रभु की ड्यूटी कह दी जाय तब तो उस ईश्वरको भी पद-पदपर खेद अनुभव करना पडेगा। फिर आनदमयता कहाँ रही ? यदि जीवोपर दया करके ऐसा किया करते है तो फिर दया ही दया क्यो नही करते ? दया करने वालेका तो दयाका साधारणतया स्वभाव होता है। घरमे कुपूत पैदा हो जाय तो उसे कोई कुवेमे ढकेल देता है क्या ? मान लो लोग पापी हो गए तो ईश्वर को तो नरकमे न ढकेलना चाहिए, उसे तो दया ही करना चाहिए जब दयाका ही स्वभाव है। आप कहे कि नही कर सकते दया तो यह तो उनकी कमजोरी मानना चाहिए। यदि यह कहा जाय कि जो मनुष्य जैसे कर्म करता है उस ही प्रकारका उसे ईश्वर फल दे सकता है। तो मूल बात तो यही रही ना कि जो जीव जैसे कर्म करता है वह उस प्रकारका फल पाता है। अब उसका विधिविधान बनानेमे ही विवाद रह गया, मूल बातमे तो विवाद नही रहा।

शरीररचनाका कारण व कर्मका स्वरूप—होती कैसे है शरीरकी रचना एक शरीर छूटनेके बाद ? उसका समाधान यह है कि यह जीव जैसे परिणाम करता है उस परिणामका

नमित्त पाकर इसके कर्म बँधते रहते है। वे कर्म क्या चीज हैं, इस सम्बधमे स्पष्ट निर्णय तो किसीने बताया नही। कोई कहेगा तकदीर है, कोई कहेगा कि माथेकी हड्डीमे लिखा रहता है। क्या भाग्य है, किसका नाम तकदीर है, कर्म क्या है, स्पष्ट निर्णय किसीने नही बताया। जैनशासनमे यह कहा है कि कार्माणवर्गणा नामक सूक्ष्म पुद्गल होते हैं, उन पुद्गलोका इस जीवके साथ सम्बध बन जाता है, उनका ही नाम कर्म है। जीवकी तरह ये पुद्गल कर्म भी किसीसे रुकते नही है। यद्यपि जीव अमूर्त है और वह अमूर्तताके कारण पहाड, बन आदिकसे रुकता नही है, और कर्म यद्यपि मूर्त है, किन्तु इतने सूक्ष्म है कि ये वज्र पर्वत आदिकसे आडे आनेपर रुकते नही है। ऐसा सूक्ष्म कार्माण जातिका द्रव्य है और इसका रग भी सफेद है। हालाकि कर्म आँखो नही दिख सकते, पर सतोकी, प्रभुकी परम्परासे जो आगम चला आ रहा है उसमे बताया है कि कर्म श्वेत होते है, युक्तिसे भी देख लो। जो अत्यन्त सूक्ष्मसे सूक्ष्म चीज होगी, विज्ञान भी सम्भव बताता होगा कि अत्यत सूक्ष्म चीजका रग प्रकृत्या श्वेत हुआ करता है। श्वेत रग स्थूल होता है, तो ऐसी ये कार्माणवर्गणायें इस जीवके साथ बँध जाती है और ऐसा निमित्तनैमित्तिक योग है कि उन कार्माणवर्गणावोमे जैसा फल देनेके निमित्तकी प्रकृति रहती है और जितने दिनो तक ठहरनेकी स्थिति रहती है और जितने अनुपातमे फल देनेका निमित्तपना रहता है, वे सब बाते शरीररचना, रागद्वेषादिक जब उनका निकलना होता है जीवसे तब होने लगती है।

कर्मप्रकृतियोकी विभिन्नतायें—निकलनेका नाम उदय है। कर्मबध गये, पर जब तक स्थितिमे है तब तक उनका फल नही मिलता, किन्तु जब वे निकलनेके सम्मुख होते है, उदय होता है तब उनका फल प्राप्त होता है। वह है उनका विपाककाल। तो ऐसी ऐसी कर्म प्रकृतियाँ असख्यात प्रकारकी होती है। जिन-जिन जीवोका जिस-जिस ढगका शरीर है उस उस ढगकी प्रकृतियोका उदय है। किसीका लम्बा हाथ है तो किसीका छोटा हाथ है, किसीका सावला रूप है, किसीका गोरा है, किसीके शरीरमे दुर्गन्ध है तो किसीके शरीरमे दुर्गंध कम है, कितने आकारका है, कितने ढगका है, शरीरोमे कितनी विभिन्नता है? केवल एक नाककी ही बात ले लो। चेहरेपर नाक लगी है, साधारणतया यह तीन अगुलकी नाक सबपर लगी है और एकसा ही सबका ढग है। इस नाकमे ही देख लो कितनी विभिन्नताएँ है? कोई खास बात तो नही है मगर अरब आदमी होगे मान लो दुनियामे दिखने वाले, सबकी नाक देखलो किसी की नाक किसीसे मिलती है क्या? और बात एकसी है। यह तीन साढे तीन अगुलकी नाक और आँखोके बीचसे निकलना, दो छिद्र रहना सारी चीजें वही की वही हैं, फिर भी किसीकी नाकसे किसीकी नाक न मिलेगी। जब एक नाकमे ही अरबो ढग हो गए तो शरीर के अग-अगमे जितनी विभिन्नता है और अन्य भावोमे भी जितनी विभिन्नताए हैं उतनी ही

प्रकार की कर्मप्रकृतियाँ है। उनके उदय का निमित्त पाकर ये सकल सृष्टिया हुआ करती है।

कर्मोका विविध निमित्तपना—ये कर्मप्रकृतियाँ कोई तो शरीरके रचे जानेमे निमित्त बनती है, कोई कर्मप्रकृतियाँ इस शरीरको जीव आचरणसे सहित इस भवका ऊँचा और नीचा प्रसिद्ध करनेमे कारण बनती है। कुछ कर्मप्रकृतियाँ जीवके ज्ञानके आवरणका काम करती हैं, जिससे एक ज्ञानस्वभावकी दृष्टिसे समान होनेपर भी जीवोमे यह भेद देखा जा रहा है, कोई कम ज्ञानी है, कोई अधिक ज्ञानी है। कुछ कर्मप्रकृतियाँ इस जीवको अतरङ्गके मालूमात न करनेमे कारण बनती है अर्थात् दर्शन नही होने देती है। कुछ कर्मप्रकृतिया नाना प्रकारके सुख और दु खका अनुभवन करानेमे कारण है। ये केवल शरीरकी रचनाकी ही कारण हो, इतना ही नही है। मान लो जीवका शरीर रचा गया तो इतनेसे क्या होता है? यो तो मिट्टीका खिलौना बन गया, पर और-और भी बातें इसके साथ है ना। कुछ कर्मप्रकृतिया ऐसी होती है जो जीवको सही रास्ता नही मालूम करने देती और सही रास्तेपर चलने नही देती। यह सब निमित्त दृष्टिसे कथन किया जा रहा है। कुछ प्रकृतिया ऐसी है जो इस जीवको शरीरमे रोके रहती है, जा नही सकता यह जीव शरीरके बाहर जब तक उसका सम्पर्क है। कुछ प्रकृतिया ऐसी भी है जो जीवको मनचाही बात होनेमे विघ्न उत्पन्न कराया करती है। ऐसे ही कर्मोका जाल इस जीवके साथ लगा है। वे कर्मप्रकृतिया इस जीवकी विभिन्न रचनाका कारण बनती है।

नैमित्तिक देहमे विधिकी निमित्ततापर दृष्टान्त—प्रकृतियाँ देहादि सृष्टिकी कारण कैसे बनती है, इसे कुछ दिखाकर तो नही बताया जा सकता, पर ऐसा स्पष्ट तो आप कुछ भी नही बता सकते कि कैसे यह काम हो रहा है? जो कुछ आप कहेंगे वह स्थूलरूपमे कहेंगे। आगपर रोटी धर दिया, सिक गयी, हम पूछते है बतावो प्रतिसमयकी बात कि रोटी कैसे सिक रही है? अरे आग नीचे है, रोटी ऊपर है और सिक रही है सो देख लो, युक्तिसे समझ लो, आगम से समझ लो। ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक सम्बध है कि कोई ऐसी चीज इस जीवके साथ लगी है जिस कारणसे इस जीवकी विभिन्न दशाएँ बनती है, इसमे बाधा आती हो तो बतावो। किसी भी पदार्थमे विपरीत परिणमन क्या उस ही पदार्थके कारण हो सकता है? नही हो सकता है। खुद ही पदार्थ खुदका बिगाड करनेमे असमर्थ है, अपने ही निमित्त और अपने ही उपादानसे। क्या पानी अपने पानीके ही कारण अग्नि सूर्य आदिकका सम्बध पाये बिना गर्म हो जाता है, खौल जाता है? गर्मस्रोत भी निकलते हैं जैसे राजगृहीमे निकल रहे है तो वहाँ आग नही है, सूर्य नही है, मगर कोई चीज साथ है, कोई उस प्रकारका द्रव्य पासमे लगा हुआ है, गधक है या अन्य कुछ है। यह एक दृष्टान्त दिया है, पानी कोई द्रव्य नही है, पर

एक स्थूल दृष्टान्त है।

जीवमे असदुत्पत्ति व सदुच्छेदका कारण उपाधि—कोई पदार्थ अपने ही स्वभावसे अपने आपमे उपाधिसन्निधान बिना विपरीतपरिणमन नही करता। यद्यपि विपरीत परिणमन करने वाला स्वय है, किन्तु परउपाधिका सम्बघ पाकर ही विपरीत परिणमन कर पाता है, इतना तो सुनिश्चित हुआ ना। इस जीवके साथ कोई परउपाधि लगी है जिसका निमित्त पाकर जीव नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, क्रोधी, मानी आदिक बन रहे है। विकारकी बात जीवके स्वभावमे नही है, उस रूप भी परिणमे विकारी बन-बनकर तो उसमे जानना चाहिए कि कोई परउपाधिका सम्बघ है। वह परउपाधि क्या है कर्म नाम रख लो। कर्म नाम रखनेसे चिढ़ हो तो कुछ और नाम रख लो, पर इस मूल बातमे तो भग नही किया जा सकता कि परउपाधिके बिना यह जीव नाना विचित्र परिणमता जाय। शरीर नामक नामकर्मकी प्रकृतियाँ भी असख्यात प्रकारकी हैं। उनका उदयकाल आनेपर ये सब बातें बनती रहती है। तो इस जीवमे जो न था उसकी उत्पत्ति और जो था उसका विनाश होता है, इसमे निमित्तकारण उपाधि है नामकर्म।

स्वभावविरुद्ध परिणतिकी उपाधिसन्निधि बिना असंभवता—निश्चयसे यह जीव सहजानन्दस्वरूप एक टकोत्कीर्णवत् ज्ञानस्वभावी है, नित्य परमार्थभूत है, लेकिन जब हम व्यवहारदृष्टिसे देखते हैं तो स्वभावदृष्टिसे निकलकर हम अगल-बगलकी बात देखते हैं तो यह समझमे आ रहा है कि अनादिकालसे ही कर्मोदयके वशसे अर्थात् उसका निमित्त पाकर यह जीव निर्विकार शुद्ध आत्माकी उपलब्धिसे गिर गया है। इसे शुद्धस्वरूपकी दृष्टि नही रही है और इसका नाना भवोंके रूपसे उत्पाद व्यय हो रहा है। उसका कारण जीवका ही स्वभाव नही है, किन्तु नरकगति आदिक कर्मप्रकृतिया है। जैसे समुद्रमे लहरें हवाके सयोगके बिना उठती हैं क्या? या समुद्र अपने आप हवा का सम्बन्ध पाये बिना क्या स्वय ही उचकने लगता है? वहा तो वह शान्त धीर रहा करता है। उसका स्वभाव ही नही है कि कुछ गडबड करे। वह तो जल है और वह जल भी घन है। वह तो स्वभावत स्थिर रहेगा, किन्तु लहरोका उत्पाद व्यय, निष्तरग भी रहना उत्तरग भी होना, यह बात हवाके सम्बन्ध और असम्बन्धसे है, ऐसे ही इस जीवमे ये सब पर्याये जो डूबती है और उठती है पानीकी लहरकी तरह इसमे विभाव जो डूबते है और उठते है उसमे कारण कर्मउपाधि है। हा ऐसा डूबना और उठना जो पदार्थके स्वरूपकी रक्षाके लिए है अर्थात् अगुरुलघुत्वगुणके ही कारण जो स्वयमे उत्पादव्यय चलता है धर्म आदिक द्रव्योकी तरह उसमे कालातिरिक्त कोई उपाधि नही, किन्तु इतना बडा जाल बन जाय इसमे कारण तो कोई विकट पर-उपाधि है।

विभावविधिके अवगमसे कर्तव्यशिक्षा—हम इस विभावकी विधिको जानकर और

इस जालका परिज्ञान करके हम यहाँ कौनसा सारभूत तत्त्व अपनी दृष्टिमे लें, यह देखो कि शुद्ध निश्चयनयसे अपने सहजस्वभावकी दृष्टिमे जैसे यह कर्मरहित वीतराग परम आनन्दसंयुक्त चित्प्रकाशमय जो शुद्ध जीवास्तिकाय है, चित्प्रकाश है वह चित्स्वभाव ही उपादेय है। हम ऐसे सहज स्वभावरूप चित्प्रकाशका आलम्बन करे, उसको ज्ञानमे लेकर एतावन्मात्र मैं हू, इस प्रकारकी प्रतीति करके हम सुखदुःखरहित विशुद्ध आनन्द पर्यायको प्राप्त कर सकते है। किसी भी परपदार्थपर गयी हुई दृष्टि इस जीवको विह्वल कर देती है। हम अपने आपमे विभावकी पकड न करके एक शुद्ध ज्ञानमात्र स्वभावको दृष्टिमे लें और एतावन्मात्र ही मैं हू, ऐसी प्रतीति बनायें तो यह चारो गतियोके परिभ्रमणका जाल नष्ट हो जायगा और अपने आप इस आत्माका जैसा स्वरूप है वही प्रकट हो जायगा। यही ईश्वरता है, ईश्वरका यही शुद्ध रूप है, इसमे ही परम आनन्द है। हम आपका मूलमे यही कर्तव्य है कि अपने आपको चित्स्वभावमात्र अनुभवमे लिया करे।

उदयेण उवसमेण य खयेण दुहि मिस्सिदेहि परिणामे।
जुत्ता ते जीवगुणा वहुसु य अत्थेसु विच्छिण्णा ॥५६॥

औदयिक, औपशमिक और क्षायिक भाव—जीवके गुण बहुत प्रकारके भेदोमे विस्तृत है और वे सब उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम और परिणाम—इन ५ प्रकारके भागोसे सहित है। उदय नाम है कर्मका निकलना। कर्म जब तक बन्धनमे रहते है, सत्त्वमे रहते हैं तब तक उन कर्मोका विपाक भोगनेमे नही आता, किन्तु उदय होते समय इस जीवमे एक प्रभाव उत्पन्न होता है वह है जीवका ही प्रभाव। पर कर्मोके उदयका निमित्त पाकर यह प्रभाव उत्पन्न होता है। कर्मोका फलदानमे समर्थ होनेके रूपसे उसकी उद्भूति न हो उसका नाम है उपशम। ये कर्म अपनी आखिरी स्थितिसे पहिले उदयमे न आ सके इसका नाम है उपशम। आखिरी स्थितिसे पहिले उदयमे आनेका नाम उदीरणा है। उदीरणा न हो सके इसका नाम है उपशम। उन कर्मोका फल देनेकी समर्थताके रूपसे कुछ उद्भूति होना और कुछ अनुद्भूति होना इसका नाम है क्षयोपशम। क्षयोपशममे कितनी ही प्रकारकी परिस्थितियाँ होती है, लेकिन उन सब परिस्थितियोका प्रयोजन इतना ही है कि कुछ गदगी रहना, कुछ निर्मलता रहना। ऐसा जो मिश्रित भाव है उसका नाम क्षयोपशम भाव है।

एक ही प्रकृतिमें क्षयोपशम—जैसे मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरण—इन चारोके क्षयोपशमसे मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्ययज्ञान प्रकट होते हैं। वहाँ क्षयोपशमका अर्थ यह है कि जैसे मतिज्ञानमे २ प्रकारके स्पर्धक है—सर्वघातीस्पर्धक और देशघाती स्पर्धक। स्पर्धक नाम है वर्गणाओंके समूहका। तो कुछ स्पर्द्धक, मतिज्ञानमे ऐसे हैं, जो मतिज्ञानका अभाव कर देनेके लिए समर्थ हैं, और साथमे देशघाती प्रकृतिया भी है जो

मतिज्ञानका सर्वथा घात् नही कर सकती, किन्तु कुछ प्रकट रहेगा, तो वहाँ सर्वघाती स्पर्धकोका उदयाभावी क्षय रहता है और आगामी कालमे जो उदयमे आ सके, ऐसा सर्वघाती स्पर्धकोका उपशम रहता है और देशघातीका उदय रहता है, ऐसी स्थितिमे मतिज्ञान प्रकट होता है। यह मतिज्ञान, चूँकि देशघातीका उदय है इस कारण तो मलिन है और क्षय व उपशम सर्वघातीका है इससे प्रकाशित भी है। यहाँ क्षयका नाम उदयाभावी क्षय है। देखिये जीवकी महिमा, ये सर्वघाती स्पर्धक पडे तो हैं, पर जब मतिज्ञान हो रहा है तो यह सर्वघाती स्पर्धक न की तरह हो गए। जो है उनका उदयाभावी क्षय हुआ और उपशम हो गया। हाँ उस समयमे अवधिज्ञानावरणके सर्वघाती स्पर्धकका उदय है। जिसके अवधिज्ञान नही है तो उसके अवधिज्ञानका पूरा लोप है, पर ससारअवस्थामे कोई ऐसा नही है जिसके मतिज्ञानका लेप हो। मति और श्रुतज्ञान ये समस्त ससारी जीवोके होते है तो यहाँ क्षयोपशमका यह लक्षण बना कि उस ही प्रकृतिमे सर्वघाती स्पर्धकोका उदयाभावी क्षय और उनका ही उपशम और देशघातीका उदय है।

एक ही कर्ममे क्षयोपशम—जहाँ यह बताया जाता कि अप्रत्याख्यानावरणके क्षयोपशमसे श्रावकोको व्रत उत्पन्न होता है वहाँ यह एक ही प्रकृतिके क्षय उपशम उदय वाला लक्षण नही घटित होता, क्योकि अप्रत्याख्यानावरण प्रकृतिमे सर्वघाती स्पर्धक और देशघाती स्पर्धकके विभाग जैसा कार्य नही है। वहाँ क्षयोपशमका लक्षण यह है कि अप्रत्याख्यानावरणका उदयाभावी क्षय और उपशम तथा प्रत्याख्यानावरणका उदय ऐसी स्थितिसे श्रावकका व्रत उत्पन्न होता है। यद्यपि प्रत्याख्यानावरणका सर्वघाती प्रकट है, लेकिन श्रावकोके व्रतके लिए तो वह सर्वघाती नही है। वह मुनिव्रत न होने देनेके लिए सर्वघाती प्रकृति है। तो किसी भी परिस्थितिसे क्षयोपशम बने, पर क्षयोपशमकी ये दो बातें एक साथ मिली हुई होती है, कुछ मलिनता और कुछ निर्मलता।

क्षायिकभाव—कर्मोका अत्यत वियोग हो जाना, मिट जाना, अलग हो जाना, इसका नाम क्षय है। किसी भी प्रकृतिका क्षय होता है तो उस प्रकृतिके अनुभाग और स्थितिका खण्डन करके अन्तमे क्षय होता है। किसी प्रकृतिका यो क्षय नही हो जाता कि पहिलेसे उसमेसे कुछ भी छाट न की जाय और किसी समय एकदम वह प्रकृति विलीन हो जाय। पहिले निर्मल परिणामोके कारण उस प्रकृतिके अनुभागके खण्ड नष्ट किए जाते है और स्थितियाँ नष्ट की जाती हैं। जो उनकी विधि है, सक्रमणपूर्वक भी उनका विनाश होता है, पर उस विनाशका नाम क्षय नही है, उसका नाम है निर्जरा। एकदेश कर्मका क्षय होनेका नाम निर्जरा है और सर्वदेश कर्मोके क्षय होनेका नाम क्षय है, अभाव है। जब सब कर्मोका क्षय होता है तो इतना तो कहोगे ना कि इन कर्मोसे मुक्ति हो गयी। जैसे चतुर्थ गुणस्थानमे

मे भी क्षायिक सम्यक्त्व हो तो यह कहनेमे कोई आपत्ति नही है कि इन जीवोंके दर्शनमोहनीय कर्मकी मुक्ति हो गयी। उसे मोक्षअवस्था इसलिए न कहेंगे कि सर्वकर्मोंके क्षयका नाम मोक्ष है। तो ये प्रकृतियाँ क्षीण होती हुई इनका अनुभाग नष्ट करते-करते स्थितियोंको भी काटते-काटते अन्तमे जब गुण सक्रमण और सर्वसक्रमण होता है, अतिम फालिका भी विनाश हो जाय तब क्षय नाम कहलाता है। तो प्रकृतिका सदाके लिए अत्यन्त विप्रयोग हो जाना, इसका नाम क्षय है।

पारिणामिक भाव—परिणाम नाम है द्रव्यके स्वरूपके लाभका कारणभूत जो भाव है उसका नाम। सहज स्वभावके कारण तो वस्तुकी सत्ता बनी हुई होती है वह परिणाम सर्वथा अपरिणामी नही है किन्तु अपरिणामी धर्मको निरखकर देखने से अपरिणामी ज्ञात होता है। वस्तु स्वभावमात्र है और स्वभाव यदि सर्वथा अपरिणामी हो तो इसका अर्थ है वस्तु अपरिणामी हो तब वस्तुका अभाव हो जायगा, पर इस परिणामको हम एक शाश्वत और सहजरूपमे निरखते है तो ऐसे निरखनेमे अपरिणामीपना देखा जाता है। तो जो जीव द्रव्यके स्वरूपके लाभका कारणभूत भाव है उसको जीवका पारिणामिक भाव कहते है। ये ५ प्रकार की स्थितियाँ जीवमे होती है।

उदय और मोहमद—उदयसे सयुक्त जो भाव है उसका नाम औदयिक है। उययसे उत्पन्न हुए भावको औदयिक भाव कहते है। विषयोके परिणाम, कषायोके परिणाम ये सब औदायिक भाव है। इन औदयिक भावोंके कारण जीवकी कितनी बरबादी हो रही है, फिर भी यह मोही जीव उन औदयिक भावोंको ऐसे प्यारसे पकडता है कि यह अपनी सत्ताकी सुध भी नही कर सकता और उसकी दृष्टिमे जो अत उठा हुआ औदयिक भाव है तन्मात्र ही वह अपने आत्माका श्रद्धान किया करता है। जो यो राग करने वाला है, द्वेप करने वाला है जो कुछ यह है यही तो मै हू, मैं रागद्वेपसे भिन्न केवल सहज ज्ञानप्रकाशमात्र हू इसकी सुध नही होती है। यही मदिरापान है। यह जीव अनादिकालसे ऐसा ही महामद पीकर मतवाला होता चला आ रहा है और जब जिस भवमे पहुचता है उस भवमे जो समागम मिलता है वही इसके लिए सब कुछ हो जाता है। उसके आगे उसके पीछे कही चारों ओर कही भी कुछ नजर नही आता। केवल वे ही दो चार जीव इसके सर्वस्व बन जाते है। मरेंगे, पचेंगे तो उनके लिए, अन्य जीवोंके प्रति तो मानो इनमे जान है या कुछ नही, यो ही अनध्यवसाय-सा रहा करता है।

मोहमहामदपानसे बरबादी और कुटेव—मोहमहामद पीकर यह जीव कैसे-कैसे भ्रमण कर रहा है? ऐसी-ऐसी स्थितियाँ भी मिल जाती है जहाँ ज्ञानका कुछ नामसा भी नही जचता। स्थावर जीव, निगोद जीव, दोइन्द्रिय आदिक जीवोंकी क्या स्थिति है? हम आप भी

तो इन स्थितियोमे गये होगे और न चेते तो इन कुयोनियोमे अब जायेंगे। यह मोही जीव हठी बनता है तो मोहमे ही तो हठी बनता है, पर यह अपने स्वरूपकी हठ नही बना सकता। बाह्यपदार्थोमे ऐसा होना ही चाहिए, इसको इस तरह कहना ही चाहिए, पालना ही चाहिए, करना ही चाहिए। न कहे, न करे तो उसपर छा जाता है, हठ करता है। किसी भी पदार्थमे कुछ भी परिणमन करनेके लिए यह जीव आग्रही हुआ करता है। परन्तु मैं केवल ज्ञानप्रकाश-मात्र हू ऐसी सच्ची समझके लिए यह आग्रह नही करता है। बाहरी-बाहरी विकल्पोके लिए इसके बडे-बडे आग्रह चलते है। जो कर्मोके उदयका निमित्त पाकर भाव उत्पन्न हुए हैं उनका नाम औदायिक भाव है।

अज्ञानीकी औदयिक भावमे आस्था—इन औदायिक भावोका अज्ञानी जीवको बहुत विश्वास बना हुआ है। इतना विश्वास कि उसके मुकाबलेमे इसे गुरुवचनपर विश्वास नही है। ये शास्त्र, ये गुरुवचन बारबार समझाते है तू यथार्थस्वरूपकी परख कर, उस ओर तू दृष्टि बना, वहाँ तुझे अद्भुत आनन्द प्रकट होगा, यह बात सुन ली जाती है और चूंकि लोकमे ऐसा व्यवहार चल रहा है कि धर्मकी बात यदि कहे सुने तो उसमे बडप्पन साबित होता है। उस बडप्पनको रखनेके लिए धर्मके नामपर ये चर्चाएँ भी कर ली जाती हैं और सुन ली जाती है, किन्तु विश्वास बना है उस औदयिक भावपर और यह चर्चा, ये धर्मक्रियाकी बातें ये सब मानसिक सुख बनानेके लिए की जाती है। जिस क्षण इस जीवको औदयिक भावपर हित-कारिताका विश्वास न रहे और अन्तरङ्ग रुचिसे देव, शास्त्र, गुरुपर श्रद्धान जगे, देव, शास्त्र गुरुके स्वरूपपर पद्धतिपर इसका श्रद्धान चले तो समझना चाहिए कि उस क्षणसे इसके जीवन मे प्रकाश उत्पन्न हुआ है। यही एक काम इस दुर्लभ मनुष्यजीवनको पाकर करनेका है। बाहरी बातोमे क्या रखा है ?

समागमके लगावकी व्यर्थता—भैया! जो औदयिक भाव हैं उनपर ही इस मोहीका विश्वास हो इतना ही नही है किन्तु औदयिक जो बाह्य समागम है, धन वैभव जड सम्पदा उन समागमोपर भी इसे बहुत विश्वास है। यह मनुष्य अपने इस जीवनसे जीकर और बडी बडी सम्पदा इकट्ठी करके आखिर अन्तमे करेगा क्या ? शायद कोई यह कहे कि करेंगे क्या, अपने बच्चोके लिए सब छोड जायेंगे और वे बडे आनन्दसे रहेगे। अरे गुजर जानेके बाद तुम्हारे फिर कौन बच्चे हैं ? अनन्तानन्त जीव है, उनमे ही अब शुमार है वे सब। जैसे और हैं तैसे ही ये रहेगे। इस जीवको अपने आपके भावोपर जो आत्मलाभका हेतुभूत है उस पर श्रद्धान नही है। कर्तव्य यह है कि हम ऐसा ज्ञान बनाएँ, ऐसा सत्संग करें, ऐसा अपना व्यवहार बनायें, अपनी न्यायकी वृत्ति रक्खें, सदाचारका आदर करें। शुद्धदृष्टिके लिए उत्सुकता जगे, जिससे हम औदायिक भावोंके श्रद्धानरूप महाबन्धनसे छूट जायें और अपने

स्वरूपकी ओर आ सकें।

औपशमिकभावका संक्षिप्त विवरण—जो कर्मोंके उपशमसे युक्त भाव है उस भावका नाम औपशमिक भाव है। कर्मोंके ठहरनेका जो काल है उस कालसे पहिले ये कर्म उदीरण रूपमे आ सकें उसीका नाम उपशम है। यह उपशम आत्माके निर्मल परिणामोंसे उत्पन्न होता है। कोई कर्म आगे उदयमे आनेको थे, उसे उदयमे ला दे यह तो जीवके बिगाडके लिए बात है ना? ऐसा न करने दे, न होने दे, इस बातके लिए आत्मामे निर्मल परिणामोकी आवश्यकता है और उस आत्मनिर्मलताके कारण कर्मोमे यह परिस्थिति आ जाती है कि वह कर्म कालसे पहिले विपाकमे नही आ सकता। इस ही का नाम उपशम है और उस उपशमसे युक्त जो परिणाम है उस उपशमका निमित्त पाकर जीवमे जो परिणाम हो उसका नाम औपशमिक है। औपशमिक भाव दो प्रकारके होते हैं, एक उपशम सम्यक्त्व और दूसरा उपशम चारित्र। उपशम सम्यक्त्व तो चौथे गुणस्थानसे लेकर सप्तम गुणस्थान तक रहता है और उपशम सम्यक्त्वका जो द्वितीय भेद है द्वितीयोपशम उसकी अपेक्षा ११वे गुणस्थान तक रहता है और उपशम चारित्र पूर्णतया ११वे गुणस्थानमे प्रकट होता है। आंशिक रूपसे ९वे और १०वें मे प्रकट होता है। ८वें गुणस्थानमे भी उपशमकी तैयारीमे औपशमिक चारित्रकी दृष्टिसे औपशमिक भाव कहा है।

उपशमका वर्तमान और भावी आश्चर्य—जीवके ये परिणाम है, किस-किस जीवमे क्या-क्या स्थितियाँ गुजरती है, अपनी ही बात इसमे कही जा रही है। औपशमिक सम्यक्त्व मे सम्यग्दर्शन निर्मल रहता है, क्योंकि सम्यक्त्वके घाती जो ७ प्रकृतिया है—अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, इन ७ प्रकृतियोका उपशम है और वह उपशम भी अन्तरकरणपूर्वक है, यह उसकी खास विशेषता है। जैसे किसी वकीलकी यह इच्छा है कि भादोकी दसलाक्षणीमे हमे कचहरी न जाना पडे तो उसके लिए वह एक महीना पहिलेसे ही यह उद्यम करता है कि उन दिनोमे कोई तारीख पड़े तो जजसे कहकर कोशिश करके उस तारीखका दिन पहिले या बादमे लगवा देता है। और कभी पहिलेसे दस लाक्षणीमे लगी हुई तारीख हो तो उसे पहिले या आगे करा देता है। दसलाक्षणीके दिनोमे वह तारीख ही न हो कचहरी जानेकी। इसी तरह यहाँ जिस कालमे औपशमिक भाव रहेगा उस कालमे जो पडी हुई कर्मस्थितिया है उन स्थितियोको कुछ पहिले डाल देता है, कुछ आगेके कालमे डाल देता है, उतने कालका सत्त्व तक भी नहीं रहता है। जिस समयमे औपशमिक भाव हो रहा है औपशमिक सम्यक्त्व, उस समय दर्शनमोहनीय अनन्तानुबधीका सत्त्व तक भी नही है। औपशमिक चारित्रमे भी चारित्रमोहके अन्तरकरणपूर्वक चारित्रमोहका उपशम हो जाता है। इतना निर्मल परिणाम है यह। लेकिन कर्मोका उपशम

करके बना है तो जब उपशम काल समाप्त हो जाता है तब इसे उसी चक्रमें फिर जाना पडता है। यह आत्मा अपनी निर्मलताके कारण इतनी भी अच्छी स्थिति पा लेता है और फिर गिर जाता है।

क्षायोपशमिक, क्षायिक व पारिणामिक भावकी व्याख्या—कर्मोंके क्षयोपशमका निमित्त पाकर जो आत्मामे भाव होता है वह क्षायोपशमिक भाव है। इसमे कुछ निर्मलता है, कुछ मलिनता है। यह क्षायोपशमिक भाव प्रत्येक ससारी जीवोंके पाया जाता है। जैसे कोई ससारी ऐसा नही है जिसके उदय बिल्कुल नही रहे, इसी तरह कोई ससारी जीव क्षायोपशमिक भाव बिना भी नहीं रहता। औपशमिक भाव किसीमे होता और किसीमे नही होता। कोई विरला ही जीव अनन्तवें भागका ऐसा है जो औपशमिक भाव पा लेता है। औपशमिक भाव बिना अनन्तानत ससारी जीव पडे हुए हैं। कर्मोंके क्षयसे युक्त परिणामका नामक क्षायिक है अथवा कर्मोंके क्षयका निमित्त पाकर जो जीवमे भाव उत्पन्न होता है उसे क्षायिकभाव कहते है। जैसे ज्ञानावरणके क्षयसे केवलज्ञान प्रकट होता है, ऐसे ही दर्शनावरणके क्षयसे केवल दर्शन प्रकट होता है, जितने भी अरहत भगवानके परिणमन हैं वे सब क्षायिक भाव हैं। क्षायिक भाव प्रकट होनेके बाद तो अनन्तकाल तक ये परमात्मा ही रहेंगे। पारिणामिक भाव कहते है परिणामसे सहित भावको अथवा कर्मोंके उदय उपशम, क्षय, क्षयोपशमकी अपेक्षा न रखकर केवल जीवद्रव्यमे आत्मलाभका हेतुभूत जो भाव है उसका नाम पारिणामिक भाव है।

भाववर्णनका उपसंहार व उपादेयताकी शिक्षा—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक व पारिणामिक—ये ५ जीवके गुण है। इन ५ गुणोमे चार तो उपाधिनिमित्तक है। औदयिकभाव हैं तो कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर होते हैं। औपशमिक भाव कर्मोंके उपशमका निमित्त पाकर होते है। क्षायिकभाव भी कर्मोंके क्षयका निमित्त पाकर होता है और क्षायोपशमिक भाव कर्मके क्षयोपशमके निमित्तसे होता है। यद्यपि क्षायिकभाव निर्मल है और सद्भावरूप निमित्तसे नही होता, लेकिन इस भावमे जो क्षायिकता होता है वह नैमित्तिक है। इसमे चार परिणाम तो उपाधिनिबधनक हैं, किन्तु स्वभावनिबधनक परिणाम केवल एक है और वह है पारिणामिक भाव। आत्मामे आत्माके ही सत्त्वके कारण जो सहजस्वभाव है उसका नाम पारिणामिक भाव है। इन ५ प्रकारके परिणामोंमे से जो पूर्वके चार गुण हैं वे तो और और भी भावोको लिए हुए है। स्वरूपभावसे और उपाधि भावसे इन ५ मे भी अन्तर है, पर उन चारके और भी प्रभेद होते है। पारिणामिक भाव एक स्वरूप है। वह केवल एक सहज स्वभावका सकेत करता है। सहज स्वभावमे कोई भेद नही पडता। वह भेदरहित है। इस प्रकार इस कर्तृत्वके अन्तराधिकारमे भावका वर्णन किया और चूंकि आगे वर्णन बतायेंगे उसमे इन भावोकी जानकारी करनेसे कर्तृत्वका विवरण समझमे आवेगा।

इस कारण यहाँ इन भावोका वर्णन किया है। अब आगेकी गाथामे कर्तृत्वका स्पष्ट विवरण आयगा।

कम्म वेदयमाणो जीवो भाव करेदि जारिसय।
सो तेण तस्स कत्ता हवदित्ति य सासणे पढिद ॥५७॥

व्यवहारनयसे जीवका कर्तृत्व व भोक्तृत्व—उदयमे आये हुए द्रव्यकर्मका अनुभवन कराने वाला यह जीव जैसे अपने परिणामको करता है उस ही प्रकारका यह आत्मा कर्ता होता है। ऐसा जिनेन्द्रभगवानके शासनमे तत्त्ववेदियोने बताया है। किसी परपदार्थके निमित्तसे इस जीवमे कुछ अनुभवन बने अथवा किसी परपदार्थका आश्रय करके, विषय करके जीवमे कुछ अनुभवन बने तो परका कर्मका अनुभवनकर्ता यह जीव है, ऐसा व्यवहारनयसे कहा जाता है। निश्चयसे तो जीव अपने आपमे उत्पन्न हुए परिणमनोका कर्ता है। जीव तो इस ससारमे निश्चयनयसे कर्मजनित रागादिक भावोका ही कर्ता है। चूकि यह रागादिक भाव स्वय अपने आपके सत्त्वके कारण जीवमे नही हुआ करता है। होता तो अपने ही परिणमनमे है, किन्तु किसी परपदार्थको निमित्त पाये बिना यह नही हुआ करता है। अतएव व्यवहारनय से ऐसा कहना युक्त ही है कि यह जीव कर्मोंके फलको भोगता है।

कर्मबन्ध और कर्मफल—जीव जिस प्रकारका भाव करता है और उस भावसे जिस प्रकारका कर्मबध हुआ है वह कर्म बधकर सत्तामें रहता है और जब उसका विपाक काल होता है तब जीव उसके अनुरूप अपनेमे विभाव करता है। उनका फल पाये बिना निपटारा कर लेना बडा कठिन है। भले ही किसी परिस्थितिमे पुण्यका उदयविशेष है तो अपनी खोटी करनी असर न दिखाये और कोई यह समझे कि हम यह सब गुप्त ही तो कर रहे है, कोई न्याय, कोई असत्यव्यवहार किया जा रहा है और उसका कोई प्रत्यक्ष फल नही मिल रहा बल्कि सम्पदा बढ़ रही, आराम बढ रहा आदिक और अभीष्ट फल उसे मिल रहे है, लेकिन जो बाँधा है कर्म वे भोगे बिना निर्जीर्ण नही होते। कोई विशिष्ट महात्मा सत ही किन्ही कर्मोको भोगे बिना उसे निर्जीर्ण करदे ऐसी शक्ति रखते है, किन्तु प्राणः ऐसा होता नही है। जो करनी की है, जो कर्मबध किया है उसका फल अवश्य भोगना पडता है।

देर है अन्धेर नहीं—एक पुरुषके कोई संतान न थी तो उसे किसी ने यो बहका दिया कि देख यदि तू किसी बालककी बलि करदे तो तेरे बालक हो जायगा। उसने कोई अवसर पाकर किसी बालककी बलि कर दी। खैर, कुछ दिन उसका उदय ठीक चला, पूर्वकृतकर्मसे उसके बालक हो गया, धन वैभव बढ़ गया। एक गाँवका बड़ा जमीदार कहलाने लगा। उसकी गाँवमे बडी चला हो गयी। किन्तु कुछ ही समय बाद वह वैभव भी नष्ट हो गया, स्त्री पुत्र सब खतम हो गए। भिखारी बन गया, अकेला रह गया। अब उसे कुछ बोध जगा

कि मैंने बहुत खोटा कार्य किया था, उस बालककी हत्या कर दी थी, उसके दिमागमे उस बातका एक बहुत बडा पछतावा हुआ। उसका दिमाग कुछ चलित-सा हो गया। अब वह दिन रात यही कहता फिरे कि देर है अधेर नही, सिवाय इसके और कुछ न बोले। लोगोंने उसे पागल मान लिया। अथवा कुछ पागल-सा ही समझ लीजिए। यही चिल्लाता फिरे, देर है अधेर नही। उस शहरका जो सूबेदार प्रधान पुरुष था उसके महलके पाससे यह कहता हुआ जब कई बार गुजरा तो सूबेदारने उसे बुलाया। बुद्धिमान था सूबेदार, बडे आरामसे खूब खिला-पिलाकर रखकर ५-६ दिन बाद उसने पूछा कि भाई क्या बात है जो तुम देर है अधेर नही, ऐसा कहते हो ? तब उस पुरुषने सारा हाल कह सुनाया। मैंने एक बालककी बलि की थी अपनेको सुखी रखनेके लिए। कुछ समय तो सुखसे गुजरा, अन्तमे बहुत बुरी हालत हो गयी, तो मुझे तो यही जचा कि कोई पापकर्म करे तो उसका फल अवश्य मिलता है, चाहे देर हो जाय, पर अधेर नही है।

सावधानीका यत्न—जो आज थोडीसी सम्पदाकी तृष्णामे और अन्य प्रकारके स्वार्थो मे या विषयसाधनोमे जैसा चाहे बर्ताव किए जा रहे है, दगा देना, झूठ बोलना, झूठ लिखना, कुछ कहना, कुछ सोचना, कुछ बताना, अनेक प्रकारके मायाचार अनेक व्यवहार किये जाते है किन्तु यह समझसे ओझल न करना चाहिए कि जो भी हम करते है उसका फल अवश्य भोगना पडेगा। ऐसा निर्णय रक्खे और अपनेको सावधान बनायें कि खोटी परिणतियोंमे अपना उपयोग न फसे। सम्यग्दर्शन जागृत रखें। मेरा स्वभाव, मेरा स्वरूप सबसे न्यारा ज्ञानमात्र है, वही मैं हू और ऐसा ही अपनेको निरखनेसे अपना कल्याण है। अपनेको रागादिक रूप, अनेक कर्मफलरूप परपदार्थरूप शरीररूप निरखनेमे कुछ भलाई नही है, ऐसा अपनेको सावधान बनाएँ और ऐसी ही दृष्टि बनाये रखनेके लिए हम व्यावहारिक कुछ प्रयत्न करें जिससे इसके विपरीत विषयकषायोका हमपर आक्रमण न हो सके।

कुदेवपूजापरिहारकी आवश्यकता—देव, शास्त्र, गुरुका श्रद्धान यह तो धर्ममे सर्वप्रथम आवश्यक है। जिसे सच्चे देवका निर्णय नही है वह धर्म क्या पालन करेगा ? जो रागी द्वेषी अपनो मनचाही चीज देने वाला ऐसा देवका स्वरूप मानता है उसकी धर्ममे कहाँ गति है ? कुछ मुकदमेकी विजय चाहना, धनका लाभ चाहना, विवाह चाहना, सतान चाहना, किन्ही बातोकी इच्छासे जिस चाहे रागी देवी देवतावोकी मान्यता करना, भूत-प्रेत, व्यन्तर, यक्ष इनकी उपासना करना, और की तो बात क्या, इस इच्छासे तीर्थंकरका नाम लेकर भी उन्हें पूजना, महावीर जी पूज रहे है, अन्य क्षेत्रकी वन्दना कर रहे है। अरे वन्दना किसकी कर रहे हो ? एक खोटा आशय लेकर कोई तीर्थपर जावे तो वहाँ इस ज्ञानस्वरूपमात्र इस कैवल्यस्वरूप आत्मतत्त्वपर कुछ दृष्टि भी है क्या ? मोक्षमार्गकी ओर कुछ दृष्टि भी है क्या ?

नही है तो धर्म कहाँ रहा ?

मोहियों द्वारा देवमें भी कुदेवत्वकी जबर्दस्ती—भैया ! चाहे दरिद्रताकी भी कितनी ही कठिन स्थिति आये, पर किसी देवसे यह बिनती करना कि मुझे अच्छे साधन मिलें, मुझे वैभव सम्पदा मिले, इस मलिन आशयको लेकर कोई किसी देवकी आराधना करे तो यह उसकी अज्ञानता है। ज्ञानी पुरुष इस आशयसे भगवानको नही पूजते। भगवानमे जो बात है जो स्वरूप है उस स्वरूपको निरखकर ही भगवानको पूजते है। किसीके पुण्यका उदय हो तो उसके पुण्यके उदयसे मनचाही चीज उसे भगवानकी पूजा करनेसे मिल जाती है। कोई यह कहे कि देखो हमने महावीर स्वामीसे अमुक चीज मागी सो मिल गई, ऐसी बात नही है। क्या कोई यह नियम है कि जो भगवानकी पूजा करे, आराधना करे, उसके मनचाही चीज उसे प्राप्त ही हो जाय। देखा तो इसका उल्टा भी जा रहा है। जो महावीर स्वामीके विरोधी है, जो इस ओर जरा भी चित्त नही करते, धर्मकी ओर जिनका चित्त भी नही है ऐसे बहुतसे लोग व्यवहारमे सम्पन्न और आराम वाले निरखे जाते है। यह तो पूर्वकृत सुकृतका फल है। और कभी मनचाही बात न हुई तो महावीर स्वामीमे विश्वास भी नही रहता। यह तो कुछ नही है और कभी मान लो उस मनौतीसे बालक पैदा हो गया तो यह कहेगे कि देखो प्रभुने बालक दिया है और वह मर जाय तो कहते है कि देखो अब महावीर जीने मार डाला है। क्या-क्या विकल्प, क्या-क्या कल्पनाएँ इस जीवनमे बना-बनाकर इसको यो ही खोया जा रहा है। अरे आत्मन् ! तू अकेला है, अकेला ही था, अकेला ही रहेगा। इस समय भी तेरा कोई दूसरा नही है। तू अपने इस अकेले चेतनकी कुछ भी दया नही करता।

निजभावपर भवितव्यकी निर्भरता—अगला काल कैसा व्यतीत होगा ? यह सब तेरी कलापर ही निर्भर है। जैसे करीब-करीब शरीरको सुधार लेना, बिगाड लेना, रोगी बना लेना, निरोग बना लेना, यह अपनी कलापर निर्भर है। यह बात करीब-करीब है, चूँकि शरीर परद्रव्य है। वहाँ कोई नियम नही है, अधिकार भी शरीर पर कुछ नही है, पर यह बात यहां करीब-करीब देखी जाती है, पर मेरा मेरे भवितव्यपर तो पूरा अधिकार है। मेरा जैसा भाव होगा उसके अनुसार ही तो मेरी सृष्टि होगी। हम अपनेको सुखी करना चाहे तो सुखी करनेकी भी हममे ही कला है, दुःखी करना चाहे अर्थात् दुःखी होनेकी पद्धतिसे चलें तो दुःखी होनेकी कला भी हममे ही है और विशुद्ध आनन्दका अनुभव करनेके उपयोगमे आये तो ऐसा अनुभव करनेकी कला भी हम ही मे है। हम अपने आपको सावधान बनायें और सत्य श्रद्धानसे चले।

सच्चा देव—सच्चा देव वही होता है जो निर्दोष है, सकल गुणसम्पन्न है। जिसमें

एक भी दोष नही है और गुणोका पूर्ण विकास है वही सच्चा देव है। हम ऐसे देवको क्यो पूजें ? इसलिए कि ऐसा ही मेरा स्वभाव है, ऐसा ही मैं बन सकता हू और ऐसा ही अपना भाव भरनेके लिए हम सच्चे देवके स्वरूपपर दृष्टि किया करते है। भगवानको माननेके दो ही कारण हो सकते है—एक तो यह हो सकता है कि भगवान मुझे सुखी कर देगा तो चलो भगवानको माने। एक यह हो सकता है कि भगवान जैसे हम भी बन सकते है, इसलिए भगवानके स्वरूपकी उपासना करके अपने गुणोको विकसित कर लें। इन दो बातोमे से पहिली बात तो है नही, इसका कारण यह है कि कोई भी परद्रव्य किसी परद्रव्यका कुछ करने वाला नही हो सकता। वस्तुके स्वरूपमे ही यह बात नही है कि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका कुछ कर सके। हाँ यह दूसरी बात अवश्य है। प्रभु चेतन है, हम भी चेतन हैं, स्वयकी समानता है। हमारे भी दोष कभी कम होते, कभी और भी कम हो, जो उपाधि पाकर हुआ करते है और उनमे कमी नजर आये तो निश्चय रखो कि उन दोषोका कभी सर्वथाके लिए अभाव भी हो सकता है। और जो उपाधिके दूर होनेसे कुछ विकास बढता है तो उसमे यह निर्णय रखो कि यह विकास कभी पूर्ण भी हो सकता है। जो निर्दोष है और सकल गुणसम्पन्न है वही हमारा देव है, वह चाहे ऋषभदेव हो, चाहे महावीर स्वामी हो, चाहे श्री राम हो, किन्ही भी शब्दोमे कह लो, प्रभुके नाममे, प्रभुकी उपासनाके प्रसगमे नाम की मान्यता नही है, नामका जिक्र नही है, नामका सम्बन्ध व्यवहार अवस्थासे है। हम जब सही स्वरूपमे निरखना चाहते है प्रभुको तो वहा नाम नही है। जो निर्दोष हो और सर्वगुण-सम्पन्न हो ऐसा प्रभु ही हमारा सच्चा देव है। उसकी श्रद्धा हो।

सत् शास्त्र और सद्गुरु—सच्चे देवके प्रसगसे जो उपदेश हमे प्राप्त होते है वे सच्चे शास्त्र है। जिसमे निर्दोष होने और गुणसम्पन्न होनेकी कला लिखी है, उपाय बताया है वही सच्चा शास्त्र है। और उस उपायपर जो अपनी शक्तिको न छिपाकर चल रहे है, उस मार्ग पर बढ रहे है, निर्ग्रन्थ, निरारम्भ ज्ञानरत होकर जो इस आत्मतत्त्वके विकासमे लग रहे है वे हमारे सच्चे गुरु है।

कार्यसिद्धिमे देव शास्त्र गुरुका आश्रयण—देखो किसी भी काममे सफलता पानेके लिए देव, शास्त्र, गुरुका सहारा लिए बिना काम नही चलता। ये धर्मके देव हैं, धर्मके शास्त्र है, धर्मके गुरु है। ससारके काम भी कोई किए जायें तो उनमे भी उस कामके देव, उस कामके शास्त्र और उस कामके गुरु—इन तीनका सहारा वहाँ भी लेना होता है। मान लो आप व्यापारमे कुशल बनना चाहते है तो आपकी दृष्टि किसी न किसी ऐसे व्यक्तिपर जरूर रहती होगी जो कुछ व्यापारमे बहुत ऊँचा कार्य करने वाला है और विशेष धनी है। जिसको दृष्टिमें लेकर आपके चित्तमे यह बात रह सकती है कि मुझे ऐसा बनना है। जैसे धर्मीपुरुष

धर्मके देवको दृष्टिमे लेकर यह भावना करता है कि मुझे यह देव बनना है। यो ही एक धनार्थी धनके प्रसगमे किसी समृद्धिशालीको अपनी दृष्टिमे रख रहा है। जिसका केवल एक सोचना ही सहारा हैं मुझे ऐसा बनना है और फिर उस प्रकारकी विधिया लिखे कागजात पुस्तक अध्ययन वे सब व्यापार या धनसञ्चयके कर्तव्यमे शास्त्र हुए और फिर जिससे रोज काम पड सकता है, जो अपने निकट अपनेसे कुछ बडे लोग है वे उस विषयके गुरु हुए। कोई-सा भी काम करो, देव, शास्त्र, गुरु ये तीन बातें हर काममे आ पडती है।

भोजनविधिमे भी पूर्णसाधक साधनावचन व उस्तादकी आवश्यकता—किसीको रोटी बनाना सीखना है तो उसकी नजरमे कोई एक व्यक्ति ऐसा जरूर रहता है जो सबसे बढिया रोटी बना लेता है। देखो इस जैसी रोटी बनाना है—यह ध्यानमे रहता है। अब किसी की किसीपर निगाह रहे। और फिर वह कैसे रसोई बनाई जाय उसके शब्दोको भी सुनता है—भाई एक घटा पहिलेसे आटा गूमकर रख लो और फिर बनाते समय उसको एक बार मसल लो। उसे बहुत गीला होना चाहिए जो कि पीछेसे पुन गीला करनकी जरूरत न पडे। यो पो लो, यो तवापर डालो। पहिले पर्तको जल्दी उठा लो, दूसरे पर्तपर कुछ ज्यादा आँच लगना चाहिए, फिर उठाकर दहकती हुई आगपर डाल दो। उसे जल्दी ही पलटते जाओ ताकि कोई छिद्र न हो जाय। किसी छिद्रसे हवा निकलने लगे तो उसे चिमटेसे दबा दो। जो कुछ बतावेंगे वही उस विषयके शास्त्र हो गए। और वचन भी मिल जाये, व नजरमे चाहे रोटी बनती भी देखी है कि यो बनती है, पर कोई उस समय बनानेकी प्रक्रिया न सिखाये तो कैसे वह बनायेगा ? तो जो रोटी बनाना सिखाने वाला हुआ वह गुरु हो गया। तो देव, शास्त्र, गुरुके बिना किसी काममे पूरा पडता है क्या ?

संगीतशिक्षरणमें संगीतके देव शास्त्र गुरुका आश्रय—किसीको सगीत सीखना है तो सगीत सीखने वालेके चित्तमे कोई एक ऐसा व्यक्ति नजरमे रहता है कि मुझे ऐसा बनना है, इस प्रकारका बाजा बजाने वाला बनना है, इस तरहका गायन करने वाला बनना है। वह उसके सगीतका देव हुआ और सगीतकी विधिया जिन किताबोमे लिखी है—सा रे गा मा पा धा नी सा, सा नी धा पा मा गा रे सा, सरेगा, रेगामा, गामापा, पाधानी, धानीसा आदिक अनेक प्रकारके सरगम स्वरोका और उसमे यह तीब्रसे बोलना यह मदसे बोलना इस प्रकारके सकेत लिखे हो, आरोह अवरोहकी प्रक्रियाएँ लिखी हो या कोई मुखसे बतावे तो वे सगीतके शास्त्र हुए। इतनेपर भी मुहल्लेका गानेका सिखाने वाला अवश्य होना चाहिए। उस देवको कहाँसे लायें, शायद जिन्दगीभर भेंट भी न हो सके, काम तो उस्तादोसे पडेगा, वही उसका गुरु हुआ। तो जरा-जरासी लौकिक बातें भी जब देव, शास्त्र, गुरुके बिना सफल नही हो पाती भला तो मोक्ष पाने जैसा इतना महान कार्य और उसे स्वच्छन्दतासे पा लें, यह कैसे हो सकता

है ? मोक्ष तो मोक्षके ही ढगसे चलकर पाया जा सकता है ।'

धर्मफलसिद्धिमे धर्मके देव शास्त्र गुरुका आलम्बन—धर्मके देव, धर्मके शास्त्र, धर्मके गुरु–इनका शुद्ध श्रद्धान होना आवश्यक है । यह एक पहिली बात धर्मपालनके लिए कही जा रही है । इसके अतिरिक्त अपना आचरण साधारणतया त्याग और उदारताका होना ही चाहिए । विशेष तपश्चरण न कर सके, त्याग न कर सके, बडी उदारता न पा सकें, लेकिन एक साधारण उदारता त्याग तपश्चरण जिसमे मोटे पाप तो न हो, इतनी बात तो होना आवश्यक ही है । यो हम सत्य श्रद्धान और साधारणतया भले चारित्रका पालन करके हम अपने जीवनमे उन्नतिके लिए बढे । जो हम करते है उसका परिणाम हमे अवश्य भोगना पडेगा । हम भले कार्य करेंगे तो भला फल पायेंगे, बुरे कार्य करेंगे तो बुरा फल पायेंगे । जैसे कर्म करते है उसके विपाककालमे उसके अनुरूप फल भोगना होता है, ऐसा जिनेन्द्रदेवके शासन मे सभीने पढा है ।

प्राकरणिक शिक्षा—भैया ! इन पाये हुए समागमोपर, इन परिजन कुटुम्बीजनोपर मोह मत करो, विश्वास मत करो, इन्हे ही सर्वस्व मत मानो, क्योकि ऐसा माननेसे कुछ सिद्धि न होगी, दु खी होना पडेगा ? जिसका सयोग हुआ है उसका वियोग नियमसे होगा । सयोगके समयमे जितना मौज माना गया उससे कई गुणा अधिक दु ख वियोगके समय भोगना पडेगा । इसलिए सब दशावोमे समान वृत्तिसे रहे और अपने यथार्थश्रद्धान, यथार्थज्ञान, यथार्थआचरण रखकर अपने इस दुर्लभ नरजीवनको सफल बनाएँ और शक्तिकी धारा हमारी वृद्धिगत बनी रहे, ऐसी सावधानी अपनी वर्ते इसमे ही कल्याण है, क्योकि करनीका फल अवश्य भोगना पडेगा । हम शुभ और शुद्ध कार्योंमे अपना उपयोग लगायें ।

कम्मेण विणा उदय जीवस्स ण विज्जदे उवसम वा ।
खइय खओवसमिय तम्हा भाव तु कम्मकदं ॥५८॥

कृत्रिमता व अकृत्रिमता—द्रव्यकर्मके बिना अर्थात् द्रव्यकर्मकी किसी अवस्थाका सन्निधान हुए बिना आत्माका उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम भाव नही होते है, इस कारण इन भावोको कर्मकृत कहा गया है । जीव अपनी सत्ताके कारण अपने आप एक ज्योतिस्वरूप है, प्रतिभासस्वरूप है, और इस प्रतिभासस्वरूपताके कारण स्वय आनन्दमय है । जब इस प्रतिभासस्वभावमे उपयोग आता है, तब शान्तिका अभ्युदय रहता है । अन्य उपाधिकी किसी अवस्थाके कारण कुछ नवीन बात जगती है, स्वभावसे विपरीत बात बनती है तो इस जीवके ये भाव कृत्रिम कहलाने लगते है । पदार्थमे जो स्वभाव पडा है वही बात उसमे जगे वह अकृत्रिम है । जो बात नही है वह उत्पन्न हो तो वह कृत्रिम है । तो जीवमे एक चैतन्यस्वभाव तो अकृत्रिम है, शाश्वत है, निरपेक्ष है, अपनी ही गाठकी बात है और औदयिक भाव

ये कर्मकृत है। ये भाव जीवमे जीवके कारण स्वभावसे नही होते, कर्मका उदय हुए बिना क्रोधादिक कषायें नही जगती, इस कारण ये औदयिक है।

पराधीन कार्यमे अरुचिकी प्रकृति—भैया! आप सबकी ऐसी प्रकृति है कि जो बात पराधीन होती है उसमे आप दिल नही लगाते, उसकी चाहमे अधिकार नही समझते और इसी कारण व्यापार आदिक मामलोमे आप यह तसल्ली रखा करते हैं कि इस मामलेमे हम कही दूसरेके आधीन फस तो न जायेंगे? हमारे हाथके तो नीचे रहेगे न सब काम? ऐसी प्रकृति पडी हुई है। मेरे आधीन मेरा सब ऐश्वर्य रहे, उसमे आप सन्तोष मानते है और जो बात परके आधीन बन जाय। जैसे बिना लिखा-पढी करे उसे आप हजार दो हजार रुपये दे दें तो आप अब परके आधीन हो गए। उसकी मर्जी आये तो बताये कि मैंने लिया, न मर्जी आये तो न बताए। ऐसी भी बात की जा सकती है। आप लिखा लेते है अथवा कुछ मावजा रख लेते है तो सन्तोष करते है, अब अपने अधिकारकी बात है। भला यह बतलावो कि ये औदयिक भाव, ये विषयकषाय, ये विकार, ये मसूबे, ये सब आपके आधीन बातें है या पराधीन है? सब पराधीन बाते है। जैसा उदय हो, जैसा भवितव्य हो, सुयोग हो, होता है, आपके आधीन उसमे कुछ नही है। लेकिन कोई पराधीन बातोमे ही बैठे-बैठे सन्तोष माना करे तो उसे लोग बुद्धिमान नही कहते। ऐसे ही इन पराधीन भावोमे जो लोग सन्तोष माना करें—मै बहुत पुण्यवान हू, मैं बहुत उत्कृष्ट हू, बुद्धिमान हू, चतुर हू, यो कोई सन्तोष किया करे तो उसे फिर कोई ज्ञानी पुरुष बुद्धिमान कह सकेगा क्या?

कृत्रिमताके सन्तोषका धोखा—ये औदयिक भाव कर्मोके उदयके बिना नही हुआ करते। यद्यपि कर्मोका द्रव्यकर्मका गुण, द्रव्यकर्मकी पर्याय कुछ भी इस जीवमे नही पहुचती है। कर्मोकी परिणति और गुणोका कुछ भी इस जीवमे सम्बन्ध नही है फिर भी ऐसा निमित्त-नैमित्तिक योग है कि कर्मोके उदयका निमित्त पाकर इस जीवमे ये विषयकपायोके परिणाम हो जाते है। इनसे जो अपनी पोजीशन मान लेता हो, उसमे सन्तुष्ट होता हो, वह सब उसके लिए धोखेकी बात है। ये भाव कर्मकृत कहे जाते है।

औपशमिक भावकी कर्मकृतता—इस ही प्रकार जीवमे जो औपशमिक भाव है अर्थात् विषयकषायोके उत्पन्न करने वाली प्रकृतियोका उपशम होने से जो निर्मलता प्रकट होती है उस निर्मल परिणामका भी विश्वास नही है। वह निर्मलता भी निमित्त दृष्टिसे पराधीन है। जब तक कर्मोका उपशम है, कर्म दबा है, तब तक यह निर्मलता है। कर्मोका उपशम दूर हुआ कि निर्मलता नष्ट हो जायगी। यो यह निर्मलता भी पराधीनतामे आ गयी। औपशमिक भाव भी कर्मके उपशमरूप कर्मकी अवस्था हुए बिना नही हुआ करता है। अत औपशमिक भाव भी कर्मकृत कहा गया है।

क्षायिक व क्षायोपशमिक भावकी कर्मकृतता—कर्मोके क्षयसे उत्पन्न होने वाले परिणामका नाम क्षायिक भाव है। यह भाव भी चूँकि कर्मोंके क्षयका निमित्त पाकर हुआ है अतएव कर्मकृत है। क्षायिक भावमे जो विकास है और जो विकास चलता रहेगा वह यद्यपि पराधीन नही है किन्तु वह भाव कैसे विकसित होता है उसके उत्पादकी विधिपर दृष्टि डाल कर निहारनेसे यह क्षायिक भाव भी कर्मकृत हो गया। कर्मके क्षयका निमित्त पाकर उत्पन्न हुआ है, इसी प्रकार क्षायोपशमिक भावके कुछ कर्म दब जायें, कुछ कर्म उखडे रहे ऐसी स्थिति मे आत्माको कुछ निर्मलता है, कुछ मलिनता है, ऐसा जो मिश्रण है वह मिश्रण भी कर्मोंके क्षयोपशमका निमित्त पाकर होता है, अतएव यह क्षायोपशमिक भाव भी कर्मकृत है, पराधीन है।

पारिणामिक भाव व स्वभावकी व्यक्ति—केवल एक पारिणामिक भाव अनादि निधन निरुपाधि और स्वाभाविक है। मेरे पारिणामिक भावका तात्पर्य है-मेरे आत्माका जो स्वभाव है, शाश्वत भाव है। जिस स्वरूपके कारण मेरा अस्तित्व है वह स्वरूप तो अनादि अनन्त है। कभी प्रकट हुआ हो, कभी नष्ट हो जाय, ऐसी बात इसमे नही है। यद्यपि यह क्षायिक भाव पारिणामिक भावका एक शुद्धरूप है। जो पारिणामिक भावमे सामर्थ्य है, शक्ति है, स्वभाव है उसका स्पष्ट व्यक्तरूप है क्षायिक भाव। इस कारण क्षायिक भाव स्वभावका व्यक्तरूप है और वह अनन्त है, अविनाशी है। शाश्वत रहेगा फिर भी कर्मोंके क्षयका निमित्त पाकर उत्पन्न हुआ है अतएव क्षायिक भावको सादि कहा गया है, कर्मकृत कहा गया है। यदि और सूक्ष्मदृष्टिसे निहारो तो क्षायिकभावमे प्रथम समयमे होने वाला क्षय तो कर्मकृत है, पर द्वितीय आदिक समयोमे जो निर्मलता रहती है वह अब निमित्तदृष्टिसे कर्मकृत नही है। यह तो स्वभावका व्यक्तरूप है। अब इसे भी कर्मकृत समझें, क्षायिक समझें तो यह पुरानी दृष्टि लेकर समझा जा सकता है।

जीवकी स्वभावव्यक्तिको क्षायिक कहे जानेका कारण—अब क्षायिक कहनेका भूतपूर्व कारण यह है कि इस जीवके साथ बहुत-बहुत कर्म बधे हुए थे, उनका क्षय होनेपर ही यह क्षायिक भाव हुआ था अतएव ये सब विकास क्षायिक भाव है और कर्मकृत है। यह केवल एक उपचारकी बात है। कर्मोका क्षय हरदम नही होता रहता है। वह तो किसी क्षण हुआ था। जिस क्षण कर्मोंका क्षय हुआ था उस क्षणमे जो आत्माका विकास होता है उसे क्षायिक कह लीजिए, किन्तु वह विकास अब आगे भी सदाकाल रहेगा तो उन सब विकासोको कर्मकृत कहो, क्षायिक कहो, कर्मके क्षयसे उत्पन्न हुआ कहो तो यह सब भूतपूर्व न्यायसे नैगमनयसे कही बात है किन्तु वर्तमान बात नही है। सर्व कर्मोंसे विमुक्त हो जानेके बाद फिर यह आत्मा तो धर्म आदिक द्रव्योकी तरह अपने स्वरूपमे शुद्ध निरपेक्ष स्वच्छ परिणमता रहता

है। वहाँ कौन उपेक्षा लगाता है ? ये सब चूँकि इस जीवने पहिले अपराध किये थे उन अपराधोंकी वजहसे अब उनकी वचनकृत अशुद्धता बनाई जा रही है।

मुक्तिव्यपदेशमे गतापराधके स्मरणकी सूचकता—किसी मनुष्यको ऐसा कहो कि अब तो तुम जेलसे मुक्त हो और वह जेल कभी गया ही न था, तो वह उस बातको सुनकर बुरा मान जाता है। अरे बुरा क्यो मानते हो ? तुम जेलसे मुक्त हो कि नही, अलग हो कि नही। कुछ भी हो वह बुरा मान जाता है। जो कभी जेलमे गया हो वह भी बुरा मान जाता है। अरे यह मूढ यह स्मरण कराता है, सब लोगोको यह जता रहा है कि यह जेलमे गए हुए थे। ऐसे ही अब सदा ही सिद्ध भगवानको ये मुक्त है अथवा इनके क्षायिक भाव है, ऐसा कहो तो यह ठीक नही है। सिद्ध भगवान कुछ बोलते-चालते नही है। यदि बोलते-चालते होते तो वे भी खफा होकर यही कहते कि तू हमारे भक्त लोगोको यह स्मरण दिला रखा है कि ये भी पहिले पापी थे, कर्मबद्ध थे, अब ये कर्मोसे मुक्त हो गए है। अरे जब मुक्त हुए तब के क्षण गुजर गए, तक तो मुक्त कहना, क्षायिक भाव कहना ठीक था। अब तो एक शुद्ध दृष्टिसे ऐसा कहा जाना चाहिये कि अब ये सिद्धप्रभु कालद्रव्यका निमित्त पाकर अपने ही अगुरुलघुत्व गुण के पट् स्थान पतित वृद्धि हानिसे अपने ही स्वरूपमे परिणमते है।

शुद्ध द्रव्यके परिणमनकी मूल पद्धतिकी समानता—द्रव्योकी अपनी-अपनी विशेषता है कि धर्मद्रव्य अपने स्वरूपमे परिणम कर अपने ही ढगसे परिणाम रहे है। ये सिद्धप्रभु अपने स्वरूपमे परिणामकर अपने ही ढगसे परिणाम रहे है, मगर परिणमनकी पद्धतिमे अब जो बात आकाश आदिक द्रव्योंमे है वही बात इन सिद्ध भगवतोमें है, इस दृष्टिसे देखा जाय तो वह विकास निरपेक्ष है, क्षायिक नाम तो पहिले था। जिनका पहिले जो नाम पड जाता है वह अन्त तक कहा जाता है, यह बात अलग है। क्षायिक भावमे क्षायिकताकी बात कहना कर्मकृत समझना चाहिए। औपशमिक भावकी बात तो विशेष स्पष्ट ही है। कर्मोके उपशम होनेपर औपशमिक भावकी उत्पत्ति होती है और कर्मोंका अनुपशम होनेपर अर्थात् उपशम मिट जाने पर वह औपशमिक भाव विच्छिन्न हो जाता है, इस कारण औपशमिक भाव भी कर्मकृत ही है।

दूर हटो परकृत परिणाम—उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमरूप, ये द्रव्यकर्मकी अवस्थायें है। और उनका निमित्त पाकर जीवमे जो भाव होते है वे भाव चूंकि जीवके स्वय स्वभावसे उत्पन्न होते नही हैं इस कारण उनको भी उन कर्मोकी ही अवस्थाएँ जान लीजिये। यह उपचार कथनसे कहा जा रहा है, किन्तु स्वभावकी बडी तीव्र रुचिके कारण कहा जा रहा है। एक अतस्तत्त्वका रुचिया ज्ञानी सत अपने आपमे शाश्वत सहज चैतन्यस्वरूपको निरख रहा है और उसका चमत्कार देख-देखकर प्रसन्न हो रहा है। इस ही बीचमे कुछ कषायभाव

की, औपशमिक भावकी कोई कुछ निगाह पहुच जाय तो उस समय उसे ऐसा लगता है कि ये गैर भाव यहाँ क्यो घुस आये ? मै इतने अद्भुत विलक्षण आनन्दमे था, केवल एक आत्मस्वरूपका अनुभव करके मैं अपनेमे आनन्दविभोर हो रहा था, निर्विकल्प चल रहा था, ये गैर कहाँसे घुस आये और ये भाव प्रभाव गैर ये किसके है ? मेरे तो नही है, मेरा तो केवल एक शाश्वत चित्स्वभाव है। देखिये स्वभावकी इतनी पवित्र रुचि जगी है कि अपने आपमे उत्पन्न हुए विकार इसे अपने आपमे तो जच नही रहे, ये आ कगे गये ? किस तरह आ गये ? कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर आ गए, तो ये कर्मोंकी ही दशायें है, ये कर्मोंकी चीजे है, दूर हटो परकृत परिणाम। इस तरह अपने आपमे उत्पन्न हुए अपने विभावोसे एकदम परका बता देना यह ललकारनेके लिए है। तुम दूर जावो। मै तो सहज आनन्दस्वरूप अपने आपके ही ही आत्मप्रदेशोमें रहूगा। ऐसी रुचिके साथ निरखिये, एक शाश्वत चैतन्यस्वभावके अतिरिक्त अन्य समस्त भाव आपको कर्मकृत जँचेंगे।

जिनसिद्धान्तके मर्मके अवगमकी पात्रता—औदयिकादिक ये जीवकी अवस्थायें एक शुद्ध चित्स्वभावरूप नही है, इस ही कारण कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमके निमित्त से उत्पन्न हुए आत्माके परिणामोके कर्ता ये द्रव्यकर्म है। इनका कर्ता मैं नही हू। जिन सिद्धान्तका मर्म नयोकी कुशलता पाये बिना नही हो सकता और अपने आपके कल्याणकी शुद्ध दृष्टि जगे बिना नही हो सकता। सिद्धान्तका मर्म पानेके लिए ये दो बातें होनी आवश्यक हैं— एक तो निज कल्याणकी दृष्टि हो और दूसरे नयोमे बहुत कुशलता प्राप्त की हो। नयोके सम्बन्धमे कोई हठवाद न हो, एकान्त न हो तब ही इस जिन सिद्धान्तरूप अपार समुद्रके भीतर पडे हुए रत्न कर्मोंकी प्राप्ति हो सकती है। तत्त्वके कथनमे शब्द शब्दके प्रति नयोकी कैसी-कैसी छटायें चला करती है एक ही वाक्यमे पद-पदमे कि नयका मर्म पडा हुआ है, यह बात जिन्हे बोलने सुननेके साथ-साथ शीघ्र शीघ्र ग्रहणमे नही आती है वे जिनसिद्धान्तके मर्मको यथार्थतया क्या जानें ?

धर्मपालनका उद्यम—किसी भी एक बडे कामके लिए वर्षों तैयारी करनी पडती है। मिलेटरीमे योद्धा लोग कही आज ही भर्ती हो और आज ही काममे आ जायें ऐसा नही होता। १०-५ वर्ष वे तैयारी किया करते हैं तब उनके यह कुशलता जगती है कि वे सग्राममे अपनी कला दिखा सकें। यह धर्मका पालन ससारके सब कामोसे अधिक महान् है। यह धर्मपालन किसी बिरलेको ही तुरन्त हो ले वह बात अलग है, किन्तु यो नही हो जाता। आज मनमे आया कि आजसे धर्म करने लगे, क्या कि भाईके साथ मदिर पहुच गए। अब भादो आने -वाला है भैयाके साथ पूजनमे खडे हो गए, धर्म पाल लिया। अरे धर्मपालनके लिए सारा जीवन तैयारी तैयारीमे ही लगाना है तब किसी दिन धर्मपालनकी विधि मालूम पडेगी और धर्म

पालनका आनद अनुभवमे आयगा। इसके लिए पात्रता जगायें, उदारता जगाये, मदकषाय करें ज्ञानार्जन करें और वह भी सत्सगसे, गुरुमुखसे और मर्मज्ञ पुरुषोसे उसका अध्ययन करें। वह भी अध्ययन नम्रता, उपासना, सेवा, हार्दिक भक्ति आदिक गुण प्रकट हुए बिना नही हो सकता, क्योकि कोई भी शिष्य कोई भी विद्याका अर्थी जितनी उसमे योग्यता है पात्रता है, नम्रता है, भक्ति है उतना ही वह समझता है, अथवा यो कहने अथवा वचनोमे से अर्थ खीच लेता है।

दृष्टान्तपूर्वक धर्मपालनके पुरुषार्थका समर्थन—एक ब्राह्मण किसी सन्यासीके पास गया। बोला महाराज हमे कुछ उपदेश दो। हमारे कल्याणके लिए कुछ हमे बतावो। तो साधु ने कहा—ब्रह्म अस्मिका चिन्तन करो, मै ब्रह्म हू।···महाराज कुछ और बतावो। ब्रह्म अस्मि। कई बार उसने कहा कि कुछ और बतावो तो सन्यासी बोला कि अमुक गाँवमे एक पडित रहता है, उसके पास जाकर विद्या सीखो। वह उस पडितके पास पहुंचा। बोला पडित जी हमे कुछ विद्या सिखा दीजिए। तो पडितने कहा अच्छा देखता हू घरमे कोई काम बाकी तो नही रहा, क्योकि बिना कुछ सेवा कराये विद्यार्थीको विद्या ही नही आती। कोई पैसा खर्च करके किसी मिस्त्रीसे कुछ मशीनरीका काम सीखे तो वहाँ भी उसके साथ बडे विनय पूर्वक रहकर मशीनरीकी विद्या सीखी जा सकती है। तो बिना कुछ सेवा कराये विद्या न आयगी। पडित जी ने कहा—देखो तुम रोज यह गोबर डालकर गौशाला साफ कर दिया करना। यही तुम्हारा रोजका काम है और विद्या सीखना। वह बेचारा दो तीन घटे रोज गौशालाकी सफाईका काम करे और विद्या सीखे। १२ वर्ष तक इसी तरह विद्या सीखी। जब अतिम दिन बिदा होनेको हुआ तो उस ब्राह्मणने कहा—पडित जी, अब हमे दक्षिणाके रूपमें दीक्षातकी तरह एक अन्तिम शिक्षा दीजिए। तो पडित जी बोले—चिन्तन करो—ब्रह्म अस्मि तो वह ब्राह्मण बोला—पडित जी इतनी बात तो एक सन्यासीने हमे १२ वर्ष पहिले बताई थी, तो क्या मैने १२ वर्ष तक गोबर मुफ्त ही मे उठाया? पडित जी बोले—मुफ्तमे इतने दिन तुमने गोबर नही उठाया, इतनी विद्या सीखनेके लिए बिना इतने दिन इस प्रकारका श्रम किए यह विद्या आ ही न सकती थी। तो जिसे धर्मपालन कहते है वह यो ही नही कर लिया जाता, इसके लिए तो सारा जीवन ही तैयारीमें लगाना पडता है। इसके लिए महान् ज्ञानबलका प्रयोग करना पड़ेगा तब जाकर धर्मपालनकी स्थिति आती है। कर्ता भावसे रहित शुद्ध चैतन्यस्वभावकी दृष्टिमे मग्न होना यही धर्मपालन है और यह ही कल्याणकारी महान् पुरुषार्थ है।

भावो जदि कम्मकदो अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता।
ण कुणदि अत्ता किंचिवि मुत्ता अण्ण सग भावं ॥५६॥

कर्तृत्वविषयक एक आशंका—पूर्व गाथामे जीवके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक—इन चार भावोको कर्मकृत कहा गया था। द्रव्यकर्मके उदयसे औदयिक भाव होता है अतः औदयिक भावका कर्ता द्रव्यकर्म है। इस ही प्रकार द्रव्यकर्मके उपशम, क्षय, क्षयोपशम अवस्थाका निमित्त पाकर औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव होते है, इस कारण उन्हे भी कर्मकृत कहा है। इस वर्णनको सुनकर एक आशका हो सकती है, उस ही आशका का इस गाथामे वर्णन है। यदि ये भाव कर्मकृत है तो फिर आत्मा इन कर्मों का अर्थात् भावकर्मोंका कर्ता कैसे हो जायगा? बात तो यह थी कि यह आत्मा अपने भावोको छोडकर अन्य किसीका कर्ता नही है, किन्तु तुम तो इससे विपरीत ही बात कह रहे हो। आत्माके भावोका करने वाला द्रव्यकर्मको बता दिया। अब आत्मा अपने आत्मभावको कैसे करे, यदि यह कहे कि जीवको अकर्ता रहने दो, वह अपने परिणाम भी न करे। जीवके परिणामोका करने वाला कर्म हो गया तो क्या आपत्ति है, तो यह भी फिट नही बैठता कि जीव को सर्वथा अकर्ता कह दिया जाय। ऐसा लोकमे कोई पदार्थ नही है जिसका कभी कुछ परिणमन ही न हो। जिसका जो परिणमन है वह उसका कर्ता है। जीव एक अमूर्तिक चैतन्य विशेष धर्मको लिए हुए सद्भूत पदार्थ है।

अनुभवकी प्रामाणिकता—यह जीव है, यह बात सब विदित होती है जब अपने आपको ज्ञानमात्र रूपमे अनुभवा जाय। जो ज्ञानप्रकाश है, ज्ञान प्रतिभास है निज स्वभावमे तादात्म्यरूप यह वास्तविक कोई सत् है इसका परिज्ञान होता है। लोग जीवके बारेमे जानना तो चाहते है बडे स्पष्ट और विस्तारमे, पर जाननेका जो उपाय है उस उपायको नही करना चाहते। इन इन्द्रियोसे अथवा युक्तियोसे उसे पहिचानना चाहते है, पर ये इन्द्रिया भी सत्य बात जाननेके साधन हैं ऐसा भले ही स्वीकार करे, पर कही-कही फेल हो जाते हैं। जो सत्य-सा दिखता है वह भी असत्य हो जाता है और इसके पश्चात् कोई युक्तियोका विश्वास करे तो युक्ति मानो सचसी लगती, पर फेल हो जाया करती है। युक्तिमे जैसा उतरता है वैसा सही नही है। एक अनुभव ही ऐसी चीज है जो पूर्ण प्रामाणिक हुआ करता है।

इन्द्रियज ज्ञानोंमे अप्रामाणिकताकी भी संभावना—एक ऐसी घटना हुई कि राजमहलमे राजाके पलगको सजाने वाला कोई नौकर था। जिसका केवल यही काम था कि उस महलके कमरेकी सफाई रखे और पलगको इतना बढिया सजाये कि जिसपर सोते ही नीद आ जाय। वह नौकर रोज पलग सजाया करता था बहुत कोमल सुगधित। एक दिन उसने सोचा कि मैं रोज यह पलग सजाया करता हू इतना कोमल तो आज जरा इसपर दो मिनट लेटकर देख तो लूं कि राजा किस आरामसे इस पलगपर सोते है? उस नौकरको दो मिनटमे ही नीद लग गयी। अब वह पलगपर लेटा रहा। रानी आयी, समझा कि राजा सो रहे हैं, सो वह

भी उसी पलगपर लेटकर सो रही। थोड़ी देर बाद राजा आया, यह दृश्य देखकर उसे इतना क्रोध आया, सोचा कि इन दोनोके तलवारसे सिर उड़ाकर जान खत्म कर दें। फिर कुछ विवेक किया, देखे आखिर मामला क्या है, कौन है कैसा है? कुछ परीक्षा तो करे। अब देखो न नौकरको रानीका पता, न रानीको नौकरका पता। राजाने सबसे पहिले रानीको जगाया तो जगकर वह बडे अचरजमे पडी। सोचा कि यह मामला क्या है, राजा तो अब आये है। बडे विस्मयके साथ वह चिन्ता करने लगी। राजासे पूछा रानीने विस्मयके साथ कि आप तो यहाँ खडे है यह कौन पड़ा है? यह तो मेरे आनेके पहिले इसमे पडा हुआ था। नौकरको जगाया तो वह तो राजा और रानी दोनोको देखकर डरके मारे कापता हुआ बोला महाराज भूल हुई। मेरे आज एक कुबुद्धि उत्पन्न हो गयी थी। मेरे दिमागमे आया कि बहुत दिनोसे पलग बिछा रहा हू, लेटकर देखना चाहिए कि राजा कैसे पलगपर सोते है। जब मैं इसमे लेट गया तो लेटते ही नीद आ गयी। तो अब देखो देखी हुई बात है, राजाने आँखो देखी है फिर भी क्या वह सच है जो राजाने कल्पनामे किया था? तो इन इन्द्रियोसे प्रत्यक्ष की हुई बात भी फेल हो सके, ऐसा हो जाता है।

युक्तियोकी भी कभी अप्रमाणिकताकी संभावना—चलो युक्तिकी बात देखो। युक्तिकी बात शायद फेल न होती हो। एक पुरुषके दो स्त्रिया थी। एक स्त्रीके एक लडका था और एकके न था। तो जिसके लडका न था उसने राजाके पास अपना मामला दायर कर दिया कि महाराज यह लडका मेरा है। राजा ने दोनो स्त्रियोको बुलाकर पूछा तो एक स्त्री कहे मेरा लडका है, दूसरी स्त्री कहे मेरा लडका है। जिस स्त्रीका लड़का न था उसका वकील चतुर था। बोला—महाराज जरा बुद्धिसे तो सोचो पिताकी जो सम्पदा होती है उस सम्पदा पर हक स्त्रीका होता है कि नही? तभी तो शायद ऐसा माना जाने लगा कि कोई पुरुष अपनी स्त्रीके नाम कोई जायदाद कर दे तो वह अलग नही समझी जाती। हाँ हाँ युक्तिमे तो उतर रहा है कि जो पतिकी सम्पदा है, पतिकी चीज है वह स्त्रीकी भी पूरी है। यह लडका इसका ही तो है। बडा विवाद चला।

अनुभवकी प्रामाणिकताका एक दृष्टान्त—राजाने एक दिन छोडकर दूसरे दिन इस मुकदमेको लिया तो राजाके चित्तमे निर्णय समा गया और सिपाहियोको समझा दिया हम ऐसा आर्डर देंगे, तुम यो करना, यो न करना सब बता दिया। जब दोनो स्त्री सामने आयी तो यह निर्णय दिया कि देखो तुम दोनो एक ही पतिकी स्त्री हो। जो पतिकी जायदाद होती है उसपर उसकी स्त्रीका हक होता है, इसी कारण हमारी ओरसे यह फैसला है कि इस लडकेपर तुम दोनोका हक है। ऐ सिपाहियो! इस लड़केका ठीक बीचसे पेटसे काट दो और एक हिस्सा एक स्त्रीको द दो, दूसरा दूसरी स्त्रीको। अब जिस स्त्रीका बच्चा न था वह मन

ही मन बडी खुश हो रही थी, सोचती थी कि इससे बढकर मुझे और क्या मिल जायगा ? मेरे तो बच्चा है ही नही और इसके भी बच्चा न रहेगा। और जिस स्त्रीका वह बच्चा था वह कहती है—महाराज यह मेरा बच्चा नही है, यह बच्चा इसका ही है, आप इसको ही दे दो, मुझे न चाहिए। तब राजा ने उस मना करने वाली स्त्रीको वह बच्चा दे दिया। उस स्त्रीकी यह चाह थी कि बच्चा जिन्दा तो रहे, चाहे मेरे पास रहे चाहे इसके पास। मैं तो इसकी शकल ही देख देखकर खुश रहूगी। तो अनुभवने इसको प्रमाणित किया। अनुभवमे उतरी हुई बात दिलमे आयी हुई बात प्रामाणिक होती है। कदाचित् ऐसा भी हो सकता कि भ्रममें कुछसे कुछ मान ले तो प्रमाणित नही है। ठीक है किन्तु विवेक हो तो अनुभवमे प्रमाणिकता आती है।

यथार्थ ज्ञानके लिये विपरीताशयके परिहारकी अनिवार्यता—अपने आत्माके सम्बंधमे यदि यथार्थ जानकारी करना है तो विपरीत अभिप्रायको दूर करना होगा, परपदार्थोसे उपेक्षा रखनी होगी। शरीर, धन, परिवार, घर, यश, नाम समस्त परतत्त्वोकी उपेक्षा करनी होगी। इतना विशुद्ध आशय बनाए बिना आत्मतत्त्वके बारेमे कुछ नही जाना जा सकता है। फिर इतनी तैयारीके बाद सहज विश्रामसे यह अपने आत्मतत्त्वको देखे तो इसे अपने आपमे अपने स्वरूपका दर्शन हो सकता है। मै ज्ञानमात्र जो एक आल्हाद और आनन्दस्वरूपको लिए हुए हू, ऐसा सहज ज्ञानानन्दस्वरूप यह निज आत्मतत्त्व अपने आपको स्पष्ट अनुभवमे आ जायगा।

आशंकाका पुनः विवरण—इस आत्माके सम्बधमे यह एक चर्चा रखी जा रही है, यह आत्मा अपने परिणामोका कर्ता है, यह बात आगम प्रमाणसे, युक्तियोंसे, अनुभवसे सब प्रकारसे निश्चित कर दी थी। अब यह क्या पन्ना पल्टा दिया, जीवके भावको कर्मकृत ही कह डाला और एक पारिणामिक भाव छोडा, उसे कर्मकृत नही कहा, सो उसे कार्य भी तो नही माना क्रिया भी तो नही माना, काम भी तो नही माना, फिर कृत बात कहनेकी गुंजाइश ही क्या है ? जो काम है, जो परिणाम है वह चाहे क्षायिक हो, औदायिक हो, औपशमिक हो, क्षायोपशमिक हो, उन सबको भी कर्मकृत कह डाला, तब फिर यह आत्मा किसे करेगा ? ऐसी आशका इस गाथामे रक्खी जा रही है। यदि ये औपशमिक आदिक चार भावकर्मोके द्वारा किए जाते है तो अर्थ यह हुआ ना कि जीव उन भावोका कर्ता नही है। उनके कर्ता कर्म हुए। तब जीव उन भावोका कर्ता नही। इसका भाव यह हुआ कि किसीका भी कर्ता नही, यह बात तो इष्ट है नही, सिद्धि न होगी। यथार्थ है भी नही।

कर्तृत्वविषयक समाधान—जीव तो अब यहाँ कर्ता रहा नही तुम्हारी शकामे। तो अर्थ यह हुआ कि जीव अपने भावोका कर्ता नही किन्तु द्रव्यकर्मका कर्ता हो गया। तो परस्पर मे जुहार हो गयी। द्रव्यकर्मने कर दिया जीवके भावोको और जीवने कर दिया द्रव्यकर्मको।

लो कैसे कलकसे बचे ? पदार्थको अकर्ता भी न रहने दिया, परिणमनसे रहित भी न रहने दिया। और बात भी कुछसे कुछ रख दिया। जीव हुआ द्रव्यकर्मका कर्ता और पुद्गलकर्म हुआ जीवके भावोका कर्ता, मगर यह बात कैसे घटित हो, क्योकि निश्चयसे यह आत्मा अपने भावोको छोडकर अन्य किसीको कर ही नही सकता, करता ही नही है। यदि एकान्त से ये रागापिक भाव कर्मो के द्वारा ही किए गए हैं तब आत्मा द्रव्यकर्मका भी कर्ता कैसे हो सकता है, क्योकि रागादिक परिणाम तो करता है कर्म, सो रागादिक परिणामोका धनी तो नही रहा यह जीव और जीवमे रागादिक परिणाम हुए बिना द्रव्यकर्म बन नही सकता तब कुछ सिद्ध न हो सकेगा। अतः यह बात जचती नही है कि द्रव्यकर्म जीवके भावोका कर्ता है।

दार्शनिक एक पक्षकी झांकी—इसमे एक बात और दार्शनिकताकी बतायी है। कुछ लोग ऐसा मानने है कि जीव स्वभावका कर्ता है, स्वके भावका नही, किन्तु स्वभावका कर्ता है अर्थात् जीवमे जो चैतन्यतत्त्व है, स्वभाव है उस चैतन्यका कर्ता है यह जीव, पर जीवके जो परिणमन है उनका कर्ता नही है। चेतनके परिणमन ही नही हुआ करते। ये जानन देखन, विचार, राग, द्वेष जो कुछ होते है यह जीवकी क्रिया नही है, प्रकृतिकी क्रिया है, यो साख्य सिद्धान्तके अनुसार यह पक्ष रखा जा रहा है कि जीव तो कर्ता ही नही रहा किसीका। इस ही पक्षको लेकर कुछ लोग ऐसा कहा करते है कि चेतन तो अकर्ता है, कुछ नही करता। और चेतन निर्गुण है, भेदरहित है, ये ज्ञान, दर्शन, आनन्द जो कुछ तुम समझ रहे हो ये इस चेतन आत्माके गुण नही है, ये प्रकृतिके हैं ऐसा साख्यदर्शनके अनुसार आत्माका स्वरूप बताया जा रहा है। यह आत्मा शुद्ध है, रागद्वेषसे परे है। इस समय लोग यह भ्रम कर रहे हैं कि यह आत्मा रागद्वेष करता है। रागद्वेष कर रही है और दूसरी कोई शक्ति और भ्रम हो गया है कि यह जीव रागद्वेष करता है। जिस दिन यह भ्रम मिट जायगा और जीवको निर्गुण अकर्ताके रूपमे परख लेगा तब ही कल्याण बनेगा। इस आधारको लेकर इस जीवको अकर्ता और निर्गुण कहा गया है। यह चेतन अकर्ता है, निर्गुण है, इसी कारण यह शुद्ध है, नित्य है, एक है, सर्वव्यापक है।

अध्यात्म आशंकाका समाधान—भैया! देखिये कहीकी बात कही जोडी गयी है उक्त अध्यात्मसिद्धान्तमे। बाते सब सही है, गलत कुछ नही है जो कुछ भी कहा जा रहा है, पर कहीकी बात कही जोडे, बस उसका एक रूप बन गया है यह। यह चौकी है इसमे चार पाये है, अगल-बगल ये चार पाटियां भी लगी है, उसके ऊपर यह पाटिया भी लगा है, यह तो ठीक है जो लगा है, मगर इस चौकी बननेसे पहिले ये सारेके सारे अवयव अलग-अलग थे या नही थे। अब उनको कोई बेढगे ढगसे जोड दे, पाटियापर पावा जोड दे, पावा पाटीकी तरफ जोड़ दे तो इस तरह जोड देनेसे चौकी बन जायगी क्या ? नही बनेगी। इसी तरह बातें तो

ये सब सही है। आत्मा अकर्ता है कि नही ? है, देख लो खूब। और ये धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य अकर्ता है कि नही ? हाँ है। इनकी बात तो जरा जल्दी समझमे आ जाती है कि ये पदार्थ अकर्ता हैं। ये कहाँ कुछ करते है ? कुछ भी नही करते है। तो क्या ये सभी पदार्थ परिणमन बिना रहते हैं ? हाँ परिणमन बिना तो नही रहते। तो वे अपना परिणमन करते है कि नही ? अरे अपने परिणमन करनेकी बात लेना फिट नही बैठती। वे पदार्थ है और उनमे परिणमन होता है। होनेकी बात सही लगती है, करनेकी क्या बात है वहाँ ? पदार्थ है, परिणम रहे है। हाँ उन पदार्थोमे यह बात ठीक घटित हो गयी और चित्तमे भी जम गयी कि ये आकाश आदिक द्रव्य परिणमते रहते है, करते कुछ नही हैं। अरे तो यही बात तो जीवकी है। ये जीव परिणमते रहते है, करते कुछ नही है।

अकर्तृत्व और निर्गुणत्वके भ्रमका कारण व सिद्धि—लोगोको करनेका भ्रम क्यो हो गया ? यो हो गया कि इसमे एक चेतनकी विशेषता है, समझनेकी विशेषता है। बुद्धि और आशयमे आया कि क्या है तब इसमे करनेका नाम लग रहा है। साहित्यमे किसी पदार्थका करने वाला किसी प्राणीको बताया जाय तो उसमे वह अलकार नही मानता, किन्तु वह अजीव किसी अजीवको करनेकी बात बताई जाय तो उसमे अलकार मानता है। तो इससे भी आप यह जान जायें कि अचेतनमे करनेका व्यवहार नही होता। चेतनके करनेका व्यवहार होता है, मगर पदार्थके नाते जो स्थिति अचेतनकी है वही स्थिति चेतनकी है, फिर यहाँ करनेकी बात क्यो कहते हो ? खूब परख लो, इस दृष्टिसे यह जीव अकर्ता है कि नही ? है। और निर्गुण, आत्माके जब हम शुद्ध साधारण चैतन्यस्वरूपको निरखने चलते हैं तो यह सामान्य तत्त्व जब हमारे अनुभवमे आता है तब हमारे विकल्प कुछ नही रहता, और जब विकल्प नही रहता तो कोई गुण नही है। गुणका अदाजा, गुणका प्रयोग, गुणका व्यवहार तो विकल्प अवस्थामे है। तब देखो आत्मा निर्गुण हुआ ना ? परसे विविक्त केवल स्व मात्र है ना।

नित्य व सर्वगतत्व आदिकी सिद्धि—देखो नित्य है ना, और सर्वगत है ना यह जीव। प्रथम तो इस लोकमे कोई प्रदेश ऐसा नही है जहाँ जीव न हो और फिर एक स्वभावदृष्टि अगर करें, जहाँ एक केवल चैतन्यस्वरूप ही दृष्टिमे आये तो वह चैतन्यस्वरूप बतावो कौन सीमामे है ? यह स्वरूप चेतन है, यहाँ तक ही है, आगे नही है। अरे उसका न कोई खास केन्द्र है, न विस्तार है, न छोटापन है, न बडप्पन है। वह तो बडीसे बडी सीमावोको छोडकर एक चैतन्यमात्र है। तब सर्वगत हुआ ना ? अक्रिय है, अमूर्त है, ये सब बातें जो साख्यदर्शनमे है वे सब सही है, मगर किसी नयसे कुछ चीज जोडना चाहे, किसी नयके कुछ चीज जोडना चाहे, यह जुडावा न करके नयविभागपूर्वक सबको एक जोड दें, बस सही बात हो जाती है। यह पूर्व पक्ष चल रहा है, इसका और विवरण अभी किया जायगा।

नयविभागकी व्यवस्थासे स्वरूपनिर्णय—जैसे खाटके ८ अग—४ पाया, २ पाटी, २ सीरा ये सही है, पर किसी अगको किसी अटपटे अंगके साथ जोड दिया जाय तो क्या खाट का स्वरूप बन जायगा ? पावामे पावा जोड़ दो, पाटीमे पाटी जोड दो तो खाट बन जायगा क्या ? नही बनेगा, ऐसे ही आत्मामे ये सभी धर्म है। यह आत्मा अकर्ता है, इसका जो शाश्वत स्वरूप है उसमे रग तरग नही है, फिर कर्ता किस बातका ? यह आत्मा निर्गुण है, केवल एक ज्ञानस्वभावस्वरूप है, यह आत्मा शुद्ध है, सर्वसे विविक्त केवल अपने सहजस्वभाव मे तन्मय है। यह आत्मा नित्य है, शाश्वत है, सदा रहने वाला है। यह आत्मा सर्वव्यापक है। स्वभावदृष्टिसे देखा जाय तो इस दृष्टिसे केवल वही-वही असीम नजर आता है, इसलिए सर्वगत हुआ ना ? पदार्थदृष्टिसे देखा जाय तो इस लोकमे ऐसा कोई भी प्रदेश नही बचा जहाँ अनन्ते जीव न हो। एक जीवकी तो कहानी क्या है ? यह सारा लोक जीवोसे खचाखच भरा हुआ है ना, और ये सब जातिदृष्टिसे एक ही तो है, इसलिए सब जीव है, यो कहा जा सकता है। जीव सर्वव्यापक है, यह जीव निष्क्रिय है। यह तो केवल अपने भावरूप है। निश्चयदृष्टि रखकर सब सोचते जाइये। यह जीव अमूर्त है, रूप, रस, गध, स्पर्शसे रहित है। यह जीव चेतन है, जडतासे शून्य है, स्वभावमय है। यह जीव भोक्ता है, कुछ तो परिणमता है। वहा उसका अनुभवन है। ये सारी बातें इस आत्मामे सही बैठती है, किन्तु जो धर्म जिस नयसे कहा जाने योग्य है, समझा जाने योग्य है उसको उस नयसे न समझें और जो चाहे धर्म जिस चाहे धर्मके साथ जोड बैठे तो यह तो स्वरूप न बन जायगा।

धर्म द्वारा धर्मीकी वक्तव्यता—इस प्रसगमे एक बात और समझना है कि कोई भी किसी धर्मीका सीधा प्रतिपादन नही कर सकता। जब भी प्रतिपादन करेगा तो किसी धर्मका प्रतिपादन करेगा किसी अशका करेगा। समग्र वस्तुको कोई कह नही सकता। जैसे आत्माके सम्बन्धमे जब यो कहा जायगा कि यह ज्ञानी है, ज्ञानमय है तो एक अश ही तो बताया गया ना ? समग्र आत्मा कहाँ कहा गया ? यह आनन्दस्वरूप है, एक ही अश तो कहा गया है। समग्र आत्मा किसने कहा है ? कहा नही जा सकता, तब समग्र पदार्थको हम समझें कैसे ? कौनसा शब्द है, कौनसा ढग है, बस वहाँ केवल एक ही अग है। जिस धर्मको हम प्रधान मानकर वस्तुके ज्ञानके लिए चलते हैं वह धर्म तो धर्मी बन जायगा और शेष धर्म धर्म बन जाते है। तो इससे भी बात यही ध्वनित हुई कि धर्मको धर्मीसे जोडा जा रहा है। यदि अट-पट रूपसे जोड दिया जाय तो वह आत्मस्वरूप न बन जायगा। किस नयसे किस धर्मको किस प्रकार समझना है, जानना है, प्रतिपादन करना है उस ही पद्धतिसे चर्चा चले तो वहाँ आत्मस्वरूप बनेगा।

कर्तृत्वके सम्बन्धमें सिद्धान्तस्थापनसे पूर्व पक्षकी भूमिका—यह प्रकरण चल रहा है

कर्तृत्वके सम्बन्धमे एक आशकाका। यदि रागादिक भाव या कुछ भी आत्मभाव कर्मकृत है तब फिर जीवने क्या किया ? कर्मने किया जो कुछ किया। और जैसे कि यहाँ कुछ आगमका माध्यम लेकर कहा जा सकता कि देखो जीवको ज्ञानी बनाया तो जीवके ज्ञानावरणके क्षयोपशमने बनाया। न हो ज्ञानावरणका क्षयोपशम तो कैसे ज्ञानी बने, और देखो—जीवको अज्ञानी बनाया तो ज्ञानावरणके उदयने बनाया न, न हो ज्ञानावरणका उदय तो यह जीव अज्ञानी कैसे हो ? रागद्वेष मोह ये सभी बाते कर्मने किया ना ? इस प्रकार सर्वभावोको कर्मकृत ही सर्वथा मान लिया जाय तो फिर जीवने और कुछ किया क्या सो बतावो ? कहोगे कि जीवने द्रव्यकर्मको कर दिया। यह भी बात ठीक नही है। यह आत्मा अपने स्वभावको छोडकर अन्य कुछ नही करता। अच्छा यही मान लो कि जीवका जो स्वभाव है शाश्वत अपरिणामी चिद्रूप जो तत्त्व है उसको किया। अरे उसको क्या किया ? अब इस प्रसगके सम्बन्धमे सिद्धान्त उपस्थित करते हैं।

भावो कम्मणिमित्तो कम्म पुण भावकारण होदि।
ण दु तेसि खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तार ॥६०॥

निमित्तदृष्टि व उपादानदृष्टिसे कर्तृत्व—ये मिथ्यात्व रागादिक भाव जीवमे कर्मके निमित्तसे उत्पन्न होते हैं अर्थात् कर्मोंके उदय होनेपर ये रागद्वेष मोह आदिक भाव होते है, और ये कर्म भावकारणक होते हैं अर्थात् जीवके रागादिक भावोका निमित्त पाकर ये कार्माणवर्गणायें कर्मरूपसे परिणम हो जाया करती है। वस्तुत जीवमे और कर्ममे परस्पर कर्तृत्व सम्बध नही है। निश्चयदृष्टिसे, उपादानदृष्टिसे जीव न कर्मका कर्ता है, कर्म न जीवका कर्ता है। इससे यह सिद्ध होता है कि जीवमे जो भाव उत्पन्न हुए हैं उनका उपादानकर्ता जीव है और कार्माणवर्गणाकी जो अवस्थायें उत्पन्न हुई हैं उनका उपादानकर्ता कर्म पुद्गल है।

वस्तुविज्ञानका प्रयोजन विभक्त तत्त्वका परिचय—देखिये यह प्रसग प्रयोजनभूत ज्ञातव्यतत्त्वका प्रकरण है, इष्टोपदेशमे लिखा है—जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसग्रह। यदन्यदुच्यते किञ्चित्सोऽस्तु तस्यैव विस्तर ॥ जितने भी उपदेश होते हैं, जितने भी वर्णन हो धर्मके प्रसगमे उन सबका निचोड केवल इतना ही है कि जीव जुदा है और पुद्गल जुदा है। इसके अलावा जो भी वर्णन हो रहा हो वह सब इस ही का विस्तार है। धर्मपालनके लिए सर्वप्रथम यह ज्ञान होना आवश्यक है कि जीव जुदा है और पुद्गल जुदा है। यह मैं चैतन्य जीव जुदा हू और ये धन वैभव, परिजन, देह इत्यादि सब प्रकट जुदे है। यह जुदापन क्यो सलझना ? ताकि मोह न आये। यह ही मेरा सर्वस्व है, इस वैभवसे ही मुझे शान्ति है, इसमे ही मेरा बडप्पन है, हित है, यह कुबुद्धि न समाये—इसके लिए भेदविज्ञानकी आवश्यकता है। यह तो प्रकट भिन्न पदार्थोकी बात कही है। अब इससे और भीतर चले तो-ज्ञानावरणादिक

८ कर्म है और यह जीव है। इन दोनोंमें भेदविज्ञान करना चाहिए, जीव जुदा है और ये पुद्गलकर्म जुदे है, यह बात आप तभी तो समझ पायेंगे जब यह निर्णय हो जायगा कि जीव जीवके भावका स्वामी है। जीव जीवके भावका कर्ता है। जीव जीवके भावका अधिकारी है, और पुद्गल पुद्गलका ही स्वामी, अधिकारी एव कर्ता है।

निमित्तनैमित्तिक सम्बंध व वस्तुस्वातन्त्र्यका परिचय—द्वैतकी दृष्टि रखकर उपादानके रूपमे इन दोनोका सम्वध निरखा कि वहाँ निर्मोहता सिद्ध नही हो सकती। जीवभावका और कर्मभावका परस्परमे निमित्तनैमित्तिक सम्वध भी है और निमित्तनैमित्तिक सम्बंध होनेपर भी ये दोनो एक दूसरेसे अत्यन्त जुदे है, और प्रत्येक अपने आपमे अपने परिणमनमे स्वतत्र है। ये दो बाते जिनके उपयोगमे स्पष्ट निर्णीत हो जाती है वे तत्त्व मर्मज्ञ है। यदि कोई दुराशयसे किसी एक बातकी ओर ही हठ कर ले तो उसने वस्तुके स्वरूपका जलवा नही समझ पाया। प्रत्येक पदार्थ अपने आपके स्वरूपमे स्वतंत्र है और वह मलिन भी है और मलिन भावोसे परिणमेगा भी तो भी स्वतत्र होकर अपने परिणमनसे ही परिणमकर वह मलिन बनेगा। किन्तु ऐसा होनेमे कोई पर-उपाधि निमित्त हुई। पर-उपाधि निमित्त होनेपर भी निमित्तभूत उपाधिने अपने द्रव्य गुण कर्म कुछ भी उस परिणमते हुए भिन्न उपादानको कुछ नही दिया।

नयचक्रकी साधनामे ज्ञानप्रकाश—भैया! निमित्तनैमित्तिक सम्वन्धका और उपादान उपादेय भावका स्पष्ट निर्णय एक ज्ञानी संतमे रहा करता है। कर्म जीवके भावोका कर्ता है। जीव ही जीवके भावका कर्ता है। जीव और कर्म बिल्कुल जुदे पदार्थ है। जीव और कर्मका परस्पर एक क्षेत्रावगाह घनिष्ट सम्वन्ध है आदिक समस्त कथन जो सुननेमे विरोधी कथन जैसे लगते है वे भी नयचक्रके साधनोसे सब अविरोधी मालूम होने लगते है। यह नयचक्र एक कठिन चक्र है। इसका साधन जब तक नही हो पाता है तब तक वस्तुस्वरूपके प्रकाशन मे उसे सफलता नही मिल सकती। अज्ञान और मोहसे युद्ध करनेमे वह विजयी नही हो सकता। इस कारण इस समस्त वर्णनको नयचक्रकी साधना सहित सत् आशयके साथ सुनना चाहिए।

जीवभाव व कर्मभावमे निमित्तनैमित्तिकता—जीवभावका कर्ता कर्म है, क्योकि ये औदयिक आदिक जो भाव उत्पन्न हुए है वे कर्मोका निमित्त पाकर हुए है। कर्मोके उदयका निमित्त हुए विना यह जीवभाव उत्पन्न नही होता। यदि कर्मस्थितिका निमित्त पाये विना जीवभाव उत्पन्न हो जाय तो यह औदयिकभाव ही जीवका स्वरूप वन जायगा और जो जिसका स्वरूप होता है वह उससे त्रिकाल भी अलग नही किया जा सकता, तव यो इसे सदा काल रागी ही मोही ही बना रहना पडेगा और दुःखी रहना होगा। जीवका विभाव कर्मका निमित्त पाकर होता है अतएव व्यवहारदृष्टिसे कर्म जीवभावका कर्ता है और इस ही प्रकार जीवभाव द्रव्यकर्मका भी कर्ता है। कार्माणवर्गणामे जो कर्मत्वकी प्रकृति आती है वह आत्मा

के रागद्वेष भावोका निमित्त पाये बिना नहीं आती, अतएव जीवभाव द्रव्यकर्मका कर्ता है। पर साथ ही यह भी देखते जाना कि यह निमित्तनैमित्तिक सम्बध भी पर्यायका पर्यायके साथ है, द्रव्यका द्रव्यके साथ नही है। द्रव्यका द्रव्यके साथ भी सम्बध कहा जाय तो यो समझना कि चूकि द्रव्य पर्यायमय है और पर्यायको प्रधान करके द्रव्यको निरख करके कहा गया है। शाश्वत स्वभावरूपमे निरखा गया द्रव्य किसी भी द्रव्यका निमित्त भी नही है।

निमित्तनैमित्तिक सम्बंधमे पर्यायकी मुख्यता—जैसे घड़ा बननेमे कुम्हारके हस्त आदिककी क्रिया निमित्त है कि वह समस्त कुम्हार देह मात्र निमित्त है? अरे कुम्हारकी हस्तक्रिया चाक, डडा, मिट्टी ये सब निमित्त हैं। तो जैसे कुम्हारकी क्रिया हाथ आदिकका चलाना, इस प्रकारकी चेष्टा घटनिर्मितिके निमित्त है ऐसे ही कर्मबध होनेमे कर्मकी दशा बनने मे जीव निमित्त नहीं है, किन्तु जीवकी जो रागद्वेष मोह आदिक चेष्टायें है वे निमित्त है। इस ही प्रकार जीवके परिणाम रागद्वेष आदिक बननेमे कार्माणका द्रव्य निमित्त नही है, किन्तु उस पुद्गल द्रव्यमे जो एक कर्मत्व अवस्था आयी है और विपाक अवस्थाको प्राप्त है वह अवस्था जीवके भाव बननेमे निमित्त होती है। तो यो व्यवहारदृष्टिसे जीवभाव कर्मभावका कर्ता है और कर्मभाव जीवभावका कर्ता नही है, किन्तु निश्चयसे देखा जाय तो जीवभावका कर्म कर्ता नही और कर्मोका जीवभाव कर्ता नही। अभी यहाँ निश्चयदृष्टिको परम शुद्ध निश्चयदृष्टि नही कहा है, किन्तु कर्तापन भी देखा जाय और निश्चयदृष्टि भी लगाई जाय तो इस ढगसे निश्चयसे जीवभावका कर्ता कौन है और कर्मभावका कर्ता कौन है, ऐसी चर्चा होने पर यह उत्तर मिलेगा कि निश्चयसे जीवभावका जीव कर्ता है, कर्मभावका कर्म कर्ता है और जब परम शुद्धनिश्चयकी दृष्टि लगायी तो वहाँ यह दिखेगा कि यह जीव न जीवभावका कर्ता है, न कर्मभावका कर्ता है। यह तो अकर्ता है। यह पुद्गल न पुद्गलस्थितियोका कर्ता है, न जीवभावका कर्ता है वह तो अकर्ता है।

निजपरिचयमे यथेष्ट विहार—जैसे जिसका बहुत बडा बगीचा हो और उसमे उसका महल भी बना हो, वह वहाका मुख्य स्वामी हो तो वहाँ किसी भी जगह डोलनेमे शका नही रहती। कभी छतपर घूमे, कभी फव्वारेपर घूमे, कभी कमरेमे जाये। कही भी घूमने-फिरनेमे उसे कोई शका नही रहती है, अपने ही महलमे है, अपनी भूमिमे है, अपने घरमे है, ऐसे ही जिस ज्ञानी पुरुषको अपने इस चैतन्य गृहका परिचय हुआ है वह किसी भी चरणसे किसी भी नयसे जैसा चाहे विहार करे। अभी अकर्ताको समझे, अब कर्तापन समझे अब परका कर्ता समझे, जैसा चाहे अपनेको निरखे, परको निरखे, यथार्थ जाने और सब जानते हुए भी यह कही चूकता नही, इसके पैर कही फिसलते नहीं, सब कुछ यथार्थ समझ जाता है और सभी समझोमे अपनी प्रसन्नताका अनुभव करता जाता है। उस प्रसन्नताका कारण निज चैतन्य-

स्वभावकी दृष्टि है। व्यवहारसे भी कह रहे है कि यह जीव भावकर्मका कर्ता है, तो भी अन्त-रङ्गमे यह प्रतीति बनी हुई है कि यह जीव तो निश्चयत अकर्ता ही है।

ज्ञानीका सब ज्ञानोमें मूल ज्ञान—व्यवहारदृष्टिसे देखो तो जीवभावका कर्ता कर्म है और कर्मका कर्ता जीवभाव है, और निश्चयसे देखो तो जीवभावका कर्म कर्ता नही और कर्म का जीवभाव कर्ता नही, लेकिन साथ ही एक बात और नजरमे आये कि वे दोनोके दोनो किसी कर्ताके बिना हो नही सकते। तब यही फलित अर्थ निकला कि निश्चयसे जीवके परि-णामोका कर्ता जीव है और कर्मके परिणामोका कर्ता कर्म है। यह आत्मा स्वभावदृष्टिसे कर्मोदय रहित है, चमत्कार मात्र ही इसका परमात्मस्वभाव है, उसके विरोधी ये कर्म है अथवा जीवके विभाव है जिनकी चर्चा चल रही है। यह यथार्थतः ज्ञानी पुरुषको विस्मृत नही होता। जैसे मनुष्य प्रत्येक कार्योंमे, प्रत्येक प्रसगोमे अपने नामके लगावसे चिपके रहते है, उसे भूलते नही है। मेरा तो अमुक नाम है। इस नामका कभी भी विस्मरण नही होता, सदा ख्याल रहता है कि मै यह हू—ऐसी ही ज्ञानी पुरुषको अपने आपके उस निर्विकार चित्स्वरूपकी खबर प्रतीति बनी रहती है। कुछ भी चर्चा हो, कही भी उपयोग हो, कैसी ही परिस्थितिमे हो, निज चैतन्यस्वभावकी प्रतीति उस ज्ञानी पुरुषके सदा रहती है।

आत्मप्रकाशमें विमोहताका अभाव—देखो जीवगत रागादिक भावोका जीव ही उपा-दान कर्ता है और द्रव्य कर्मोंका उन वर्गणावोमे पडा हुआ जो पुद्गल है वह कर्ता नही है। यह मैं तो स्वतत्र हू, अपने ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमे रहने वाला हू। यद्यपि शुद्धनिश्चयनयसे जीव अकर्ता है तो भी विचार कीजिए तो अशुद्धनयसे यह जीव कर्ता है, यह भी व्यवस्थित होता है। यो जीवके बारेमे कुछ से कुछ जो कुछ सम्भव है, विचारा जाय, चिन्तन किया जाय तो भी यह ज्ञानी जीव किसी भी परिणमनमे किसी भी चर्चामे विमोहको नही प्राप्त होता और अपने इस शाश्वत् शुद्ध चैतन्यस्वरूपकी प्रतीतिसे चिगता नही है।

जीवका कर्तृत्व व अकर्तृत्व—इस प्रकार इस गाथामे दो बाते सिद्ध की गई है कि निश्चयसे जीव जीवभावका कर्ता है। दूसरी बात यह सिद्ध की गई है कि शुद्धस्वभावदृष्टिसे तो जीव अकर्ता है, किन्तु सर्वथा ही अकर्ता नही समझना। यह अशुद्धनयसे अपने परिणमनोका कर्ता है। इस प्रकार जीवके कर्तृत्व और अकर्तृत्व दोनो सिद्ध किए गए है। इसको समझकर हम अपने अकर्तास्वभावी शुद्ध ज्ञानमात्र स्वरूपकी ओर झुकें। अपनेको सर्व परसे भिन्न निरख-कर इस मोह रागद्वेषके बन्धनको समाप्त करें, इस ही मे अपना कल्याण है।

कुव्व सग सहाव अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स।
ण हि पोग्गलकम्माण इदि जिणवयण मुणेयव्व ॥६१॥

निश्चयसे जीवकी कर्तृत्वव्यवस्था—जिनेन्द्रदेवकी दिव्यध्वनिकी परम्परामे ऋषि सतो

द्वारा चले आये हुए ये वचन मानना ही चाहिए कि आत्मा अपने स्वभावका कर्ता होता है, अपने भावोका कर्ता होता है, पुद्गल कर्मोका कर्ता नही है। निश्चयसे जीव अपने भावोका ही कर्ता है। निश्चयमे दो शब्द है निर् उपसर्ग है और चय चयने धातुसे बना हुआ चय शब्द है। चयका अर्थ है सचय करना, इकट्ठा करना और नि का अर्थ है निकलना। जिसमे सग्रह करना खतम कर दिया गया है उसे निश्चय कहते है। ऐसी दृष्टि जिस दृष्टिमे दूसरे पदार्थोका मिलान न किया जाय उसे निश्चय कहते है। इस दृष्टिमे केवल एक ही पदार्थ देखा जाता है। लोकव्यवहारमे निश्चयका अर्थ निर्णय, यथार्थ, पक्का ज्ञान कहा करते है। यह फलित अर्थ है, शुद्ध अर्थ नही है। जैसे ज्ञानमे वही-वही पदार्थ जाना जाय, दूसरी बातोका लाग-लपेट न किया जाय, जैसा है तैसा ही समझा जाय ऐसी बातमे व्यवहारिक प्रमाणिकता ज्ञान मे हुआ करती है, इसलिए उसका नाम निश्चय रखा गया है। निश्चयका शुद्ध अर्थ है—जहाँ अन्यभावका सचय न किया जाय। निश्चय दृष्टिमे किसी दूसरे पदार्थका सग्रह नही किया जाता है। तब निश्चयदृष्टिसे आत्मा किसका कर्ता है ? यह पूछने पर दूसरा पदार्थ तो यहाँ दिख नही रहा है, तब यही उत्तर आयेगा कि यह आत्मा अपने ही भावोका कर्ता है।

उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूपताके अवगमसे उपादेय मर्म—वस्तुस्वरूपमे यही बात पडी हुई है कि प्रत्येक पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है, ऐसा जाननेसे हमे मर्म क्या मिला कि प्रत्येक पदार्थ खुद ही खुदमे परिणमते है, किसी भी परपदार्थसे मुझमे कुछ नही आता है और न कभी किसी परपदार्थसे कोई बात मुझमे आती है। मेरा गुण, मेरी पर्याय मुझसे निकल कर किसी परमे नही जाता है, अर्थात् किसी भी प्रसगमे दूसरेका धर्म मुझमे आ जाय, मेरा धर्म किसी दूसरेमे पहुच जाय, यह बात नही हुआ करती है। इस शिक्षाके लिए वस्तुके स्वरूपका प्रतिपादन किया गया है, पर सब वर्णन तो सुनें और उसका प्रयोजन न जानें कि किसलिए यह बात कही गयी है तो यो समझिये कि प्रयोजन तीन बात अटपट हो जाया करती है। जैसे कोई प्रसग चल रहा है और उसमे कुछ अटपट बोल दिया, बिना प्रयोजनके कोई शब्द बोल दिया तो वे सारी ही बातें अटपट हो जाती हैं।

प्रयोजनसे कथनकी सफलता—आप कोई बात कितनी ही भली कह रहे हो, पर मेरे खिलाफ है। मुझे कुछ प्रयोजन नही है तो मुझे आपकी बात न जचेगी। चाहे आपकी बाते ठीक हो, सबको भी जच रही हो, पर मेरे को बिल्कुल अटपट जचेंगी, क्योकि उनसे मेरा कुछ प्रयोजन नही निकलता। जिसकी दृष्टिमे जो प्रयोजन हो उसके माफिक बात हो तो उसके लिए वह ठीक है, प्रामाणिक है। शास्त्रके उपदेशकी बात चल रही हो, बडे ऊँचे तत्त्वका भी व्याख्यान चल रहा हो और जिसके प्रयोजनमे केवल कमायी कमायी ही बसी है, धनकी ओर ही जिसका चित्त है, उपदेश हो चुकनेके बाद नीचे जाकर पूछा जाय—कहो भाई आज क्या

हुआ प्रवचन् ? तो बतायेंगे अजी आज तो कुछ पल्ले ही नही पडा, वहाँ तो ऐसी बातें हुई जो किसी के कामकी न थी। देखो जो खुदके काममे न आयी तो उसे किसीके कामकी नही है ऐसा बता दिया, कोई भी प्रसग हो, प्रयोजनसे वह बात मिलान खाती है तब तो वह काम की है, नही तो नही है।

प्रयोजक प्रतिपादनकी ग्राह्यतापर एक दृष्टान्त--एक बार किसी मुनिसे किसी सन्यासी का वादविवाद हो गया किसी तत्त्वचर्चापर, तो अन्तमे यह बात हुई कि किसी तीसरेसे पूछो। वह तीसरा जिसे सत्य बतायेगा कि यह ठीक कहता है वह सत्य है। अच्छा भाई चलो तीसरे के पास चले। जगलका मामला था। तीसरे व्यक्तिको ढूढने चले तो जगलमे भेड बकरी चराता हुआ एक गडरिया मिला। उसीको कहा कि यह है तीसरा आदमी। इसके सामने अपनी-अपनी बात रखो। जिसको यह ठीक कहेगा वही ठीक है। सन्यासीने बडे-बडे सस्कृत भाषाके श्लोकोको लेकर व्याख्यान झाड दिया। अब उसे वह बेचारा गडरिया क्या समझे ? बादमे मुनि उपदेश देने लगे। मुनि भी प्रकाण्ड विद्वान थे, किन्तु साथ ही प्रतिभाशाली भी थे। बोले देखो, घर गृहस्थीमे कुछ धर्म भी करना चाहिए, कुछ अपनी आजीविका भी करनी चाहिए। यदि किसी भेड़ बकरीके कोई बीमारी हो जाय, टांग वगैरह टूट जाय तो उसका इलाज यो करवाना चाहिए, बडे विधानसहित उस गडरियाके मतलबकी १०–५ बातें मुनि ने बता दी। गडरियाकी समझमे मुनिकी सारी बाते आ गयी। अब जब उससे पूछा गया कि किसकी बात ठीक रही तो उसने मुनि महाराजकी बातको ठीक बताया। यो ही और आगे चले, गाये चराने वाला मिला, उसे भी उसके प्रयोजनके अनुकूल दस पाँच बातें मुनिने बता दी, सन्यासीकी बातें उसे भी बेकार और अटपट-सी लगी। तो जिसका जिसमे प्रयोजन नही मिलता उसके लिए तो वे बाते बेकार और अटपट-सी जचती है।

अवगत दृष्टिके समर्थनपूर्वक अशेष प्रतिपादन—ऐसी ही बात दृष्टियोके सम्बधमे है। जो जैसी दृष्टिको लिए हुए है उसे उस दृष्टिकी बात समझायी जाय तो उसे समझमे आती है। यदि वह हठमे है तो पहिली उसकी बातको समर्थित करना चाहिए और फिर दूसरी बात कहना चाहिए। पहिलेसे ही किसीने उसके विरुद्ध कोई बात कह दी तो वह तो उसे सुनना ही नही चाहता। पहिले उसे यह विश्वास तो होने दो कि जो मैं जानता हू, उसे सही यह भी मानता है, यह भी ठीक है, इसका पहिले परिचय तो होने दो। परिचय हुआ करता है भावोसे भाव मिलनेका, कषायोसे कषाय मिलनेका, विचारोसे विचार मिलनेका। जिसे समझाना है पहिले उसके विचारके अनुकूल अपना विचार प्रदर्शित किया जाय तो फिर उसे अन्य कुछ बात भी समझायी जाय। यह दो नयोका आख्यान चल रहा है। व्यवहारदृष्टिसे तो आत्मा द्रव्यकर्मका कर्ता है, किन्तु निश्चयदृष्टिसे आत्मा अपने भावोका कर्ता है।

स्वहितकी आवश्यकता—जब तक यह जीव अपने आपके हितकी आवश्यकता न विदित करे, अपने आपको केवल अनुभवमे न लाये, परसे असम्बद्ध जैसा है अमूर्त स्वचतुष्टयात्मक तैसा अपने अनुभवमे न लाये अर्थात् निश्चयरूप अनुभवमे न लाये तब तक इस जीवको शान्तिका पथ नही मिलता। बाहरी परिग्रहोके प्रसगमे उनमे ममता रखकर जो मौज माना जाता है वह मौज नही है, आनन्द नही है, वह तो खेद है, दु ख है किन्तु मोहमे दु ख ही सुख कर मान लिया जाय तो वह सुख ही जचेगा। आत्मीय आनन्द तो केवल निजस्वभाव ही दृष्टि मे रहे, अन्यके विकल्प न आयें तो वहाँ उसे विदित होता है कि यह निश्चयदृष्टिका प्रताप है। हम अपनेको दूसरी बातोसे लदा हुआ देखा करें तो वहाँ इस आनन्दकी गध नही आ सकती है। दृश्यमान व ज्ञायमान ससारी जीव त्रिभागात्मक है। देह, कर्म, और ज्ञानादिक गुणपुञ्ज—इन तीनोका जो एक क्षेत्रावगाह है, एक ढग है, मिश्रण है, ऐसी स्थितिसे बना हुआ यह जगतजाल, मायाजाल, प्राणिसमूह यह ही जिसके लिए सर्वस्व दिख रहा है वह शान्तिका कहाँसे मार्ग ग्रहण कर सकेगा ? जो शान्त है उसका स्वरूप ही न समझें तो शान्ति कहाँसे मिलेगी ?

नयदृष्टियोकी अनुकम्पा—निश्चयदृष्टिकी बडी अनुकम्पा है। और व्यवहारदृष्टिकी भी बहुत बडी अनुकम्पा है। इस व्यवहारदृष्टिके पथसे चलकर हमने सब कुछ जाना, समझा और निश्चयदृष्टिका चमत्कार भी जब हम समझनेको हुए तो उसमे इस व्यवहार पथका सहारा रहा और यह व्यवहारदृष्टि कितनी कृपाशील है कि यह निश्चयदृष्टिके निकट पहुचानेपर अपना विनाश कर लेती है और इस निश्चयदृष्टिकी भी कितनी बडी अनुकम्पा है कि यह अनुभवके निकट तक पहुंचाकर खुदका विनाश कर लेती है। अन्तमे दोनो विकल्पोसे रहित जब केवल स्वभाव ही अनुभवमे रहता है तब उसे आत्मानुभूति कहते है। ऐसी पात्रता हममे तब जग सकती है जब हम वस्तुकी सीमा, वस्तुका कर्तृत्व, वस्तुका स्वरूप अपनी समझमे रखें। आगम और निगम—ये दोनो भी जहाँ एक रूप हो जायें बात तो वही प्रामाणिक है। आगम हुए शास्त्र और निगम हुआ यह अनुभव। आगमका अर्थ है जो आया, जो प्रभुकी दिव्यध्वनि की परम्परासे आचार्योसे सतोसे आये उसका नाम है आगम और जो अपने आपमेसे पैदा हो उसे कहते है निगम अर्थात् अनुभव। जहाँ अनुभव और शास्त्रका कथन—ये दोनो एक हो जाते है प्रमाणिकता तो वहाँ होती है।

ज्ञानबललब्ध उदासीनताका महत्त्व—कभी-कभी किसी उद्दण्ड अथवा जबरदस्त अपने घरके कुटुम्बमे से किसीसे परेशान होकर कुछ बुद्धि व्यवस्थित-सी जचने लगती है तो उपेक्षा करके कहने लगते है कि कोई किसीका नही है, सब स्वार्थी हैं, मतलबी हैं, मगर उसकी यह आवाज दु खसे निकल रही है आनन्दसे नही, इतना अन्तर है। ज्ञानी जनोकी, योगी पुरुषोकी आवाज भी ऐसी ही होती है। कोई किसीका नही है, सब अपने-अपने स्वरूपमे परिणत होते

है, यह उनकी आवाज समता और आनन्दसे निकल रही है। तभी बडे-बडे उपद्रव होने पर भी, आक्रमण होने पर भी ये योगी पुरुष खेद-खिन्न नही होते है। कोई लाठी मारे, गाली दे, आक्रमण करे, कैसा भी अनुचित व्यवहार करे उस व्यवहारको भी ये ज्ञानी सत बुरा नही मानते है, क्योकि उनकी दृष्टि ऐसी विशुद्ध जगी हुई है कि ये मेरा क्या करते है, इनका भाव है, इनका परिणमन है, इनकी कोई भी बात इनसे निकलकर मुझमे नही आती। रही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धकी बात तो पुद्गल और पुद्गलमे तो निमित्तनैमित्तिककी बात दूर करना कुछ कठिन है। किसीने लाठी मार दी तो वह तो शिरपर ही पडेगी, उसे कैसे दूर करे लेकिन आत्माकी बात इससे हट सकती है। ज्ञानबलसे ऐसा जान लिया कि यह शरीर जुदा है, मै आत्मा जुदा हू, परका इस आत्मामे तो कुछ नही लगा। यह तो अमूर्त ज्ञानानन्दस्वरूप है, इतना ही मात्र मै हू। लो वह उसके प्रहारसे बच गया।

ज्ञानीका आशय—धन्य है वह ज्ञानी जिस ज्ञानीको अपना यह शरीर भी, जिसमे बधा है कही छोडकर जा नही सकता, वह भी ऐसा पर जच रहा है, ऐसा भिन्न जच रहा है जैसे और शरीर है और चीज है, ठीक उसी प्रकारसे। कुछ यह बात सोचनेमे कठिन लग रही होगी। भला इतना भिन्न कैसे समझा जा सकता है ? वस्तुका स्वरूप जिसके निर्णयमे है, पदार्थ यह मैं उतना ही हूँ जितना मै अपनी शक्तिसे गुणोसे तन्मय हू, इससे बाहर मैं कुछ नही हू और ये शरीर आदिक पुद्गल अणु भी उतने ही है जितना कि उनका चतुष्टय है, उस से बाहर इनका कुछ नही है। भले ही ऐसा निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है, परतत्रता है जिसमें इतना बन्धन बन गया है। फिर भी स्वरूप दृष्टिसे देखा जाय तो यह शरीर उतना ही भिन्न जचेगा जितने कि अन्य सब पदार्थ हैं। जैसे दूधमे पानी मिला दिया तो कितना विकट मिल गया, उसे अलग-अलग करना कठिन हो रहा है, फिर भी दूध दूधमे है और पानी-पानीमे है, दूध और पानी अत्यन्त न्यारे-न्यारे है। जब ऐसी पदार्थकी स्वभावदृष्टि जगती है तब यह बोध जगता है—ओह ! मैने अनतकाल मिथ्यात्वमे यो ही गवा दिया भ्रम ही भ्रममे, जो मेरा न कभी था, न है, न होगा, जब जब जो जो मिला उस उस समागमको मैने अपनाया और मानता रहा कि यही मै हू।

आत्मदोषनिर्णय—भैया ! जैसे आज यह शरीर है तो कुछ जरा अन्तरकी आवाजसे कुछ भीतरमे निर्णय करके यह तो बतावो कि भीतरमे क्या यह श्रद्धा पडी है कि यह शरीर ही मै हू ? अपनी बात खुद खुद ही समझी जा सकती है। अपना निर्णय अन्तरमे देखो—कहने की बात और होती है। कहनेको कह दिया जाता है लेकिन बाह्यमे धन वैभवका कोई नुक्सान हो या कोई त्यागका समय हो या कोई प्रसग हो उस समयमे उन विभावोमे लोभ कषाय आ जाना यह तो इस बातका द्योतक है कि उसे अभी शरीरसे मोह नही छूटा।

कृपणोंका देहमोह—भले ही कुछ कजूस लोग ऐसे होते है कि शरीरसे जितना चाहे श्रम कर डालें, जितनो चाहे सेवा कर डाले, जितना चाहे परोपकार कर लें, पर कभी पैसेके त्यागकी बुद्धि न जगे । क्या ऐसे पुरुषको भी यह कहा जा सकता है कि इसके शरीरसे मोह नही है ? देखो ना कितनी ही जनताकी सेवा करता है, कितना उपकार करता है, बोझ उठाता, धरता, शारीरिक श्रम करके दूसरोका दु ख दूर करता तो इसे अपने शरीरसे मोह नही है तभी तो अपने शरीरसे इतनी मेहनत लिए जा रहा है, पर यह बात नही कही जा सकती क्योकि शरीर तो वैभवसे भी अत्यन्त निकटकी चीज है । जिसे अत्यन्त भिन्न चीजमे भी लोग हैं, जो जड पदार्थ एक क्षेत्रमे भी नही है, बाहर पडे है, जिन पर कुछ अधिकार भी नही है, कहो आज है कल न रहे, पापका उदय आ जाय तो यो ही चोरी हो गयी, माल लुट गया, ऐसे कितने ही प्रसग रोज-रोज सुननेमे आते है । तो जो अत्यन्त भिन्न वस्तु है जब उसमे अत्यन्त ममता है तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उसे शरीरमे ममता नही है ।

योद्धाओंका देहमोह—योद्धा लोग रणमे हँसी खुशीसे अपने प्राण गवा देते है । क्या यह कहा जा सकता है कि उन्हे शरीरमे रच भी ममता नही है ? अरे रणमे प्राण गवानेसे दिगदिगान्तरमे मेरी कीर्ति फैलेगी, लोग मुझे सही कहकर बडी सच्ची दृष्टिसे देखेंगे, यह तो हमारा देशोन्नतिके लिए कर्तव्य है, इसमे हमारी उन्नति है । यहाँ किसकी उन्नति मानी जा रही है ? इस शरीरकी, पिन्डोलेकी । तो इस शरीरकी ममताके ही कारण योद्धा लोग अपने शरीरका विनाश कर देते है तब क्या उनका शरीरसे मोह न कहा जायगा ?

ममताकी परख—जब तक सर्वपरसे विभक्त ज्ञानानन्दस्वरूपमात्र निजकी सुध न हो तब तक धर्मदृष्टि हुई है—यह बात कैसे कही जा सकेगी ? सभी लोग अपनी-अपनी बातमे अदाज कर लो । कितनी कुटुम्बसे आत्मीयता है, कितनी वैभवमे आत्मीयता है । शरीरकी आत्मीयताका अभी विचार न करें । पहिले अत्यन्त भिन्न पदार्थोकी छाट करलो कि मेरी इन पदार्थोंमे कितनी आत्मीयता लगी हुई है ? जब भिन्न पदार्थो मे अहकार और ममकार बना हुआ है तो यह तो पूर्ण निश्चित है कि इसको शरीरसे भी भेदविज्ञान नही जगा है । हाँ बाह्य पदार्थोंमे भी ममता न हो तब शरीरोपर प्रयोग करके देखो कि मुझे इसमे ममता है अथवा नही है । यदि बाह्य पदार्थोमे इतनी घनिष्ट आत्मीयता है तो अपने को अभी एक मिथ्यात्व की दशामे जानकर कुछ अपनेपर खेद होना चाहिए । यह व्यर्थकी दृष्टि, व्यर्थका ममत्व क्यो हो रहा है ? क्यो मैं अपनी बरबादी अपने आप ही किए जा रहा हू ? उस पर खेद होना चाहिए और उस अपराधको मिटानेके लिए जो उपाय है—सत्सग करना, ज्ञानार्जन करना इन उपायोको अविलम्ब अधिक उपयोगके साथ किया जाना चाहिए ।

स्वरूपपरिचय—भैया ! निर्मोहताकी झलक जब आनेको होगी उससे पहिले यह

जीवमे निश्चयदृष्टिका विज्ञान इसके उत्पन्न होगा ही। यह मै आत्मा केवल अपने भावोको किया करता हू। यह मै आत्मा जो मुझमे परिणत हुए भाव बनते है उन भावोको ही भोगा करता हू। इसी कारण यह मै अपने गुणपर्यायोका स्वामी हू, अधिकारी हू, ऐसा निज एकत्व का परिचय होने लगता है जब निर्मोहताकी अवस्था आनेको हुआ करती है। तो यह एक स्थूल उपाय सब ही जानते है। निर्मोहता वहाँ ही तो हुआ करती है जहाँ यह बोध हो जाय कि मेरा दूसरा कोई नही है, मेरा तो मात्र मैं ही हू। मैं दूसरेका आसरा तकू तो उससे कुछ सफलता मिलनेको नही है। मै अपने आपके ही मनको समझा लूँ, अपने आपमे ज्ञानबल बढा लू, अपने आपको ही सन्तुष्ट कर लू तो वह उपाय मेरी शान्तिके लिए सही है। बाह्य पदार्थो मे मुझमे कुछ आता नही है, मेरा कही कुछ नही है ऐसा स्पष्ट निर्णय रखना चाहिए।

जगजालमे शान्तिका अनुपाय—जरा गभीरतासे अपने हितकी दृष्टि कीजिये। जो भी समागम आज मिले है वे सब जरूरतसे ज्यादा है। मोहमे तीन लोकका वैभव भी मिल जाय तो भी वह कम है, पर व्यवहारिक दृष्टिसे देखो जितना जो कुछ भी मिला है वह सब जरूरत से कई गुणा ज्यादा है। जिनके पास आपसे बहुत कम धन है क्या उनका गुजारा नही होता है ? मान लो जितना जो कुछ आपको मिला है उससे कई गुणा कम आपके पास धन होता तो क्या गुजारा न चलता ? एक दृष्टि भर बनानेकी बात है। यथार्थ ज्ञान बनाकर अपनेमे सन्तोष मानना चाहे तो सब निभ सकेगा, किन्तु परपदार्थोंके सचयकी बुद्धि मनमे हो तो वहाँ शान्तिका मौका नही मिल सकता, चाहे वह कैसी भी स्थिति हो। क्या हो रहा है इस जमानेमे ? जो करोडपति है वे भी चैनसे नही बैठ पाते है, वे भी निर्विकल्प धर्मपालनमे नही लग पाते है। तो इस लौकिक वैभवके हिसाबसे हम क्या सोचें ? कैसे हम महान बन पायेंगे ? यह सब मायाचार है, धोखा है, इसमे कही भी शान्ति नही मिलती है। शान्ति मिलेगी तो एक शुद्धज्ञानमे, आत्मज्ञानमे, उपेक्षाभावमे। शान्तिका उपाय कोई दूसरा नही है। यह बात हमे निश्चयदृष्टिसे अधिक प्राप्त होती है, क्योकि इसमे चयका काम ही नही है। यहाँ चयदृष्टि से अपने स्वरूपको निरखा जा रहा है कि निश्चयसे यह जीव अपने भावोका ही कर्ता है। पुद्गलकर्म आदिक किसी अन्य पदार्थका कर्ता नही है। ऐसा निश्चचयदृष्टिसे आगममे ऋषि सतोने बताया है।

कम्म पि सग कुव्वदि जेण सहावेण सम्ममप्पाण।
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण ॥६२॥

निश्चयदृष्टिसे कर्तृत्वका निर्णय—इस गाथामे निश्चयदृष्टिसे जीव किसका कर्ता है और कर्म किसका कर्ता है, यह बात कही गयी है। निश्चयसे देखा जाय तो एक ही पदार्थमें अभिन्नकारकता दृष्टिमे आती है। परम शुद्ध निश्चयसे तो कारकताका विकल्प ही नही उठता

है, पर जहाँ कारकता भी न हो और अद्वैत दृष्टि की जाय वहाँ क्या परिस्थिति होती है, इसका वर्णन इस गाथामे है। कर्म अपने भावोंसे अपने परिणमनसे अपनेको करते है और जीव अपने परिणमनसे अपने परिणामोको करते है। उपादान दृष्टिसे जो पदार्थ जिस रूप परिणम रहा है उस ही का उसे कर्ता कहा जाता है।

जीव और अजीव तत्त्व—यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि यह पदार्थ वस्तुत कितना है, किसका अधिकारी है, कैसा परिणमन है, कहाँ तक इसका विस्तार है–ये सब बातें निरख लेनी चाहियें। एकत्वदृष्टि कहो, उपादानदृष्टि, निश्चयदृष्टि, अद्वैतदृष्टि ये सब इस प्रसग मे एकार्थक शब्द है। यहाँ दो तत्त्व रखे गये है जिनके सम्बन्धमे निर्णय किया जा रहा है। जीव और कर्म मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्वोमे मूल तत्त्व दो हैं—जीव और अजीव। शेषके ५ तत्त्व पर्यायरूप है। पर्यायरूपमे तो इन सात तत्त्वोको ही रख दिया गया है क्योकि निर्णयका प्रसग है और जीव और अजीव तत्वमे भी जहाँ इन ५ पर्यायोरूप बना करता है ऐसी दृष्टि रखी है, वहाँ शुद्ध स्वभाव नही देखा गया है, लेकिन इन सात तत्त्वो को जानकर भी प्रयोजनभूत शुद्धस्वभावका दर्शन उपादेय है। परन्तु, जिसके हम भेद करेंगे, उसकी उस रूपमे पहिलेसे भावना बनायें और जिसके भेद करने चले तो वह भी एक शुद्धरूप के देखने पर न बन सकेगा। यहाँ जीवका अर्थ जीव है और अजीवका अर्थ कर्म हैं।

जीवाजीवविषयक पञ्च तत्त्व—जीवमे कर्मका आना इसका, नाम आस्रव है और जीवमे कर्मका न आना, इसका नाम सवर है। जीवमे जो कर्म पहिलेसे बधे हुए है उनका एक देश छूटना इसका नाम निर्जरा है और जीवसे कर्मोका बिल्कुल जुदा हो जाना इसका नाम मोक्ष है। ये पाचो पर्यायें जैसे अभी जीव और कर्म ऐसी द्वैतदृष्टि रखकर बतायी हैं ऐसे ही केवल जीवमे भी ये पाँचो पर्यायें देख सकते है।

जीवाजीवविषयक पञ्च तत्त्व—यद्यपि ये पाचों पर्यायें एक दूसरेका निमित्त पाये बिना नही हुई है, लेकिन हो, फिर भी परिणमन एकका एकमे निरखा जा सकता है। जैसे दर्पणमे मुख देखा तो इस मुखके निमित्तसे दर्पणमे वह छाया पडी है, प्रतिबिम्ब पडा है, इतने पर भी मुखको नही देखे, केवल छायाको देखे, यह तो हो सकता है। या किसी वृक्षकी उसमे छाया पडी है तो हमने वृक्षको नही देखा, उसकी छायाको देखा, ऐसा तो हो सकता है। इसी प्रकार यद्यपि जीवमे ये रागादिक भाव उत्पन्न होते है कर्मोदयका निमित्त पाकर, लेकिन इन कर्मोंके विषयमे कुछ तर्क वितर्क न करें, केवल जीव भावको ही नजरमे लें तो क्या ले नही सकते ? यो ही इस जीवमे भी पाचो पर्यायें बनी आस्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष और कर्ममे भी ये पाँचों पर्यायें बनी। तब वहाँ यह कहना होगा ना कि इस जीवमे जो रागादिक भाव आये वे आस्रव है। ज्ञानबलसे जीवमे जो रागादिक भाव न आ सके, यह सम्वर है।

जीवमे रागादिक भाव बँध जायें, इसे यह जीव ग्रहण करे, हठ करे वह बध है। जीवोमे से रागादिक भाव शिथिल हो जायें, दूर होने लगें, नाश होने लगे यही निर्जरा है और विभाव बिल्कुल न रहे इसका नाम मोक्ष है। देखो ये सब काम जीवने अपनेमे अपने परिणमनसे किया ना कि कर्मके परिणमनसे किया ?

कर्मविषयक पञ्च तत्त्व—अब कर्मकी बात कर्ममे देखो—कर्मद्रव्यमे कर्तृत्व आना, यह आस्रव है।कर्ममें कर्मत्व बना रहना यह बध है। कर्ममे कर्मत्व आना रुक जाय यह सम्वर है। कर्ममे कर्मत्व अर्थात् स्थिति अनुभागका खण्डन होना निर्जरा है, और कर्ममे कर्मत्वका दूर हो जाना यह मोक्ष है। यह पचपर्यायोका वर्णन तीन प्रकारसे हुआ ना, उभयदृष्टिसे, जीव-दृष्टिसे और कर्मदृष्टिसे। अब यहाँ जब व्यवहारदृष्टि लेते है तो जीवका और कर्मका परस्पर आस्रव, बध, सम्वर, निर्जरा, मोक्ष निरखे जाते है और जब निश्चयदृष्टि लेते है तो जीवमे ही जीवकी पर्याये, कर्ममे कर्मकी अवस्थाएँ ये जुदे-जुदे अद्वैतमे निरखी जा रही है।

कर्मपरिणतिविषयक अभिन्न कर्तृकरणकर्मता—अब कर्मोंकी विशेषरूपसे बात निरखिये कि कर्मत्व रूप बर्त रहे पुद्गल स्कध है ना, इस दृष्टिसे कर्मका कर्म ही कर्ता हुआ, कोई दूसरा उन्हे कर्मरूप नही परिणमाता। ये कार्माणवर्गणाएँ ये द्रव्य कर्मत्वरूप गमनके लिए कर्मत्वके लिए कर्मत्व दशाको पानेकी शान्तिरूपसे साधक कौन हुआ ? ये कर्म ही हुए। तो यह कर्म ही साधन बना, करण बना। निश्चयदृष्टिसे बतायें तो वहा अभिन्न साधकपना ही नजरमे आयगा। तो ये कर्म अपनेमे ही कर्मत्वरूपसे बन सकें, ऐसी शक्ति पडी हुई है। शक्तिरूपसे यही स्वय अपने आपके कर्मबँधनका कारण बन गया। अब यहाँ कर्मने क्या किया ? तो प्राप्त जो कर्मत्व परिणमन है वह कर्मत्व ही हुआ ना, कर्ममे कर्म अवस्थाको पाया, अतएव यह ही कर्म कर्म बना, कर्म कारक बना।

कर्मविषयक अभिन्न अपादानकारकता—अब ऐसे कार्माण द्रव्यमे कर्मत्व आये तो किस प्रकारसे आये, इसमे ढग क्या बना ? इसमे जो पहिली अकर्तृत्व स्थिति थी उसका विनाश हुआ और कर्तृत्वस्थिति आयी। यह कार्माणवर्गणा कर्मरूप बननेसे पहिले कर्मरूप न थी। अब कर्मरूप बनी है तो अकर्मत्व स्थितिका तो विलय हुआ और कर्मत्वस्थिति आयी। इस प्रसगमे हुआ क्या ? वह तो ध्रुव ही रहा ना द्रव्य। उस ध्रुव द्रव्यमे से यह कर्मत्व अब निकलनेको हुआ तो कर्मदशा उदित हुई, पर जो मूलभूत द्रव्य है यह विनष्ट नही हुआ, इस कारण उपादान भी यह द्रव्यकर्म हुआ। जैसे वृक्षसे पत्ता गिरा, हुआ क्या वहाँ ? पहिले सपत्र दशा थी वृक्षकी, अब इस वृक्षकी अपत्र दशा बनी तो अपत्र दशामे भी वही वृक्ष था और पत्ते का निकलना हुआ तब भी वहीका वही वृक्ष ध्रुव खडा है। तो जो ध्रुव रहा करे जिससे व्यक्ति होती है उसे अपादान कहते है। तो ध्रुव कौन है ? कर्मत्वसहित बननेपर वह वही

कर्म है, यो अभिन्न अपादान कारक भी कर्म हुआ।

कर्मविषयक अभिन्न सम्प्रदानता—यह कर्म कर्मरूपसे किसलिए परिणमा, किसके लिए परिणमा, उसे गरज क्या थी, प्रयोजन क्या था जो पडा हुआ था और बन गया। प्रयोजन क्या था? प्रयोजनकी बात, मतलबकी बात, खुदगर्जीकी बात, ये चेतन मनुष्य आदिक ढूंढा करे, कल्पनामे आयी बात, मनकी बात, लेकिन जो एक-एक साधारण प्रयोजन है जिसमे खुदगर्जीकी बात घुसी हुई है वह साधारण रूपसे प्रयोजन प्रत्येक द्रव्यमे यही है कि उस द्रव्य की सत्ता बनी रहे। प्रत्येक द्रव्यके परिणमनका प्रयोजन इतना ही है कि उस पदार्थका अस्तित्व बना रहे। न परिणमे तो अस्तित्व न रह सके। सत्ताका स्वरूप ही ऐसा है कि वह बने, बिगडे और बना रहे। तो कर्मरूप परिणाम हुआ तो क्या, वह कार्माणवर्गणा अकर्मरूप परिणमा हो तो क्या, जिस चाहे रूप परिणमे, उन सब परिणमनोका प्रयोजन द्रव्यका अस्तित्व कायम बनाये रखना है। उस समय जो कर्ममे कर्मपरिणाम रूप उत्पन्न हुआ है उस कर्मके द्वारा आश्रयमाण यह कर्म ही है, इसीलिए सम्प्रदान यह कर्म है।

सम्प्रदानताकी स्थितिया—सम्प्रदानताको समझनेके लिए ये दो दृष्टियाँ इसमे गर्भित है। एक तो इससे सिद्धि क्या होती है, किसलिए होती है। दूसरी बात ये कर्म किसका आश्रय करते है? आश्रयमाण कौन हुआ? जैसे यह कहा जाय कि इस धर्मात्माने गरीबके लिए कम्बल दिया तो काम क्या हुआ? कम्बल दिया। उस कम्बलने अब आश्रय किसका लिया? उस कम्बलके द्वारा आश्रयमाण कौन है? वह गरीब है। तो इसका सम्प्रदान गरीब हुआ, ऐसे ही कर्ममे जो कर्मत्वरूप परिणमन होता है वह परिणमन आश्रय किसका ले रहा है? उस ही द्रव्यका। तो वह कार्माणवर्गणा रूप द्रव्य ही उस कर्मत्वका सम्प्रदान हुआ। इसी प्रकार वह कर्मत्व जो परिणमन है वह किस आधारमे हुआ, कैसे हुआ, उसका आश्रयमाण परिणामका आधार-देखो तो वही कर्म है।

कर्मविषयक अभिन्नाधिकरणता—अब आधार देखिये—कर्मत्व हुआ? कर्ममे कर्मत्व हुआ। कोई पूछे कि तुमने यह प्रभुभक्ति कहा की? तो लोग यही कहेगे कि मदिर जी मे की। तो द्वैत दृष्टि वाली यो भिन्न चीज दिख रही है, उसने मदिरमे प्रभुभक्ति की, और किसी समझदारको, तत्त्वमर्मज्ञको यह दिख रहा है कि इस आत्माने आत्मामे प्रभुभक्ति की, मदिरमे नही की। प्रभुभक्तिका आधारभूत परमार्थसे यही आत्मा अधिकरण है। यो ही कर्मका जो कर्मत्व आया है उस कर्मत्वका आधार यही पुद्गल कर्म है। यो अधिकरण भी अभिन्न रूपसे यही कर्म हुआ।

अभिन्नकारकताका एक उदाहरण—एक साप ऐसे ही सीधा पडा हुआ था। वह अब गोल बनकर अपने आपमे समा गया अर्थात् अपना एक गोल घेरा बना लिया दोहरा तेहरा।

जैसे कि सपेरे लोग जब बीन बजाते है और सर्पका खेल करते है तो वह सांप पूरा घेरा बनाकर थोडा फन उठाकर रह जाता है। उस सापने क्या किया ? गोल बना लिया अपनेको, कुँडली बना ली, तो इस सापने किसको बनाया ? अपनेको बनाया है ? और इस सर्पने किसकी शक्तिसे ऐसा बनाया ? अपनी शक्तिसे ऐसा बनाया। किसके लिए ऐसा बनाया ? खुदके लिए बनाया, और किससे बनाया ? अपने शरीरसे बनाया। पहिले वह सीधी दशामे था, उस दशाका परित्याग करके अब यह गोल दशामे आ गया। इतनेपर भी वह शरीर वही है ना ? सो ध्रुव है यह अपादान हुआ, और यह गोल किसमे बनाया ? कहा बनाया ? अपनेमे बनाया। तो जैसे इस सर्पने अपने गोलाकार रूपमे परिणमनका काम किया तो वहां सब अभिन्नकारक है, ऐसे ही जानना कि इन द्रव्यकर्मोंने जो भी कर्मत्वरूप परिणति प्राप्त की वह कर्मने कर्मशक्तिसे, कर्मके लिए, कर्ममे कर्मसे कर्मको किया। यह निश्चयदृष्टिसे चर्चा चल रही है।

अभिन्नकारकताका द्वितीय उदाहरण—किसी महिलाने भोजन बजाया, कढी पकाया तो उस कढ़ीने क्या किया ? अपने आपमे अपनी शक्तिसे अपनी कचाई अवस्थाको त्यागकर एक पक्की अवस्थामे आयी। वहा महिलाने भी कुछ किया क्या ? व्यवहारमे यो ही दिखता है, पर निश्चयसे कढीको महिलाने नही पकाया। सर्वत्र यही बात है। लोग तो सभी प्रसंगोमे अपनी ही चेष्टा करते है और भ्रममे ऐसा कहा करते है कि मैंने अमुकको यो किया। भिन्न कारकमे द्वैतदृष्टिकी सृष्टि है। तो इस प्रकार अभिन्न षट्कारक रूपसे अवस्थित यह कर्म किसी अन्य कारककी अपेक्षा नही करता।

अभिन्नकारकताके अन्य उदाहरण—जैसे किसी पुरुषने तबला बनाया, क्या किया ? उसने हाथके थपेडे लगाये, पर उस तबलामे से जो आवाज निकली, यह तबला क्या अपनेमे आवाजरूप परिणमनेके लिए भी किसीकी अपेक्षा रखता है ? थपेड लग गयी, अब क्या यह तबला अपनी आवाज उत्पन्न करनेमे किसीकी अपेक्षा रखता है ? इसका दृष्टान्त दिया है दिव्यध्वनि। प्रभुकी दिव्यध्वनि स्वय खिरती है। किसीकी प्रेरणासे, किसीकी जबरदस्तीसे नही खिरती है। व्यवहारदृष्टिसे ऐसा लगेगा कि भव्य जीवोके पुण्यकी ठोकर लगी, ठीक है, भव्यो के पुण्योदयका भी कारण रहा, और और कुछ भी कारण ढूंढ लो, फिर भी जब प्रभुका शरीर एक दिव्यध्वनिरूप परिणम रहा है उस परिणमते हुए की स्थितिमे वह किसीकी अपेक्षा रखता है क्या ? यह मर्मकी बात अतीव सावधानीसे समझनेमे ठीक जचेगी।

अभिन्नकारकताका एक और अन्य उदाहरण—एक पुरुषने गाली दी और यह दूसरा पुरुष क्रुद्ध होने लगा। व्यवहारदृष्टिसे तो यो कहा जायगा कि इस गाली देने वालेने ख्वामख्वाह इसे क्रोधी कर डाला, लेकिन इस गुस्सा करने वालेने अपने गुस्सेके परिणमनमे किसीकी अपेक्षा

नही की। भले ही वहां गाली देने वाला निमित्त बन गया। इतना माननेके बाद अब यहाँ परिणमन विधिसे देखो तो इस क्रोध करने वालेने क्या क्रोध करनेके लिए किसीकी अपेक्षा की। यह तो होगा।

जीवमे अभिन्नषट्कारकताकी दृष्टि—इस चीजको और गम्भीर दृष्टिसे सोचनेपर यह व्यवस्थित होना है कि इस कर्मने जो कर्मत्वरूप परिणमन किया इस परिणमनमे किसीकी अपेक्षा नही की। हाथ लगा मृदगमे, इसे न तकना, यह तो दूरकी बात कही जा रही है, भीतरकी बात नही है, वस्तुके बाहरकी बात भी दिखती नही है अभी। क्योकि सब भीतरी चीजें सभी खोजी जा रही है, निश्चयदृष्टि की जा रही है, यह तो कर्मके सम्बधमे कर्मका कर्म-रूप परिणमनकी बात निश्चयदृष्टिसे कही गयी है। अब जीवके सम्बधमे ऐसी पट्कारवता देखो तो वहा भी यह नजर आयगा कि इस जीवके जीवको किया, परिणममान अपनी शक्तिसे किया, अपने लिए किया, अपनेसे किया, अपनेमे किया।

जीवद्रव्यमें अभिन्नषट्कारकताके अवगमकी सरलता—इस जीवद्रव्यके सम्बधमे इस षट्कारकताका वर्णन जब किया जायगा तब इसकी बात बहुत अधिक समझमे आयगी। कर्मों की बात समझनेमे कुछ हैरानी हुई होगी और हैरानी होनेका कारण यह हैं कि कर्म एक तो कुछ दिखते भी नही है, स्पष्ट समझमे भी नही आते। उसकी अपेक्षा अगर इन चौकी, चटाई, दरीकी बात कही जाती तो ठीक समझ जाते। जैसे अभी उदाहरणमे सापकी बात कही तो वह झट समझमे आ गयी होगी। ये कर्म दिखते नही है, सूक्ष्म है और फिर उस कर्ममे कुछ दौड लगाये बिना, चुपचाप उसीको कुछ कह डाला, यह बहुत गुप्त बात-सी लगी कही गयी है और चुपचाप पद्धतिसे कही गयी है, उसका कुछ भी विस्तार नजरमे नही आया, अतएव कर्ममे जो षट्कारकताका वर्णन किया है यह कठिन सा लगा है। लेकिन जीवोंके विषयमे यही सब बाते बहुत साफ-साफ समझमे आयेंगी। और वे सब बातें रुचिकर भी होगी। अत-रङ्ग भी कह उठेगा कि बात बिल्कुल ठीक कही जा रही है, यह तो इसमे गुजर रहा है। यद्यपि जीवोकी बात धर्मादिक द्रव्योकी तरह कठिन है थोडीसी कि उस जीवमे अभिन्नषट्कार-कताका बता दी जाय, लेकिन वह स्वयकी समझमे यो आयगी कि खुदकी चर्चा है, खुदकी खुद के अनुभवमे है, खुदपर गुजर रही है। अतएव यह जीव यद्यपि कर्मोंसे अत्यन्त सूक्ष्म है, कर्म तो फिर भी पुद्गल है, रूप, रस, गध, स्पर्शका पिंड हैं, किन्तु यह जीव तो रूप, रस आदिसे रहित अमूर्त है, फिर भी जीवकी कोई बात कही जाय तो वह शीघ्र अपनी समझमे उतरती है। अब उस जीवद्रव्यमे से यह षट्कारकता अर्थात् जीव किसे करता है, किसके द्वारा करता है, यह कौन करता है, किसके लिए करता है, किसमे करता है? यह षट्कारकता बतायी जायगी।

सम्बन्धनामक कारकके अभावका कारण—यहा दृष्टिमे एक खास बात लेनी है कि इन षट्कारकोमे सम्बन्ध नामका कारक नही रखा। जैसे कहते है ना मेरा मकान, मेरी दुकान, मेरा देह, मेरा घर यह तो किसी कारकमे नही आया, क्यो नही आया ? ये सब बातें बिल्कुल झूठ है, गप्प है और गप्प वाली बातसे किसीका कोई प्रयोजन नही है। यहां तो वस्तुकी बात वस्तुको दिखाई जा रही है।

जीवकी अभिन्नकर्तृकर्मरूपता—जिस प्रकार कर्ममे कर्मका अभिन्नकारकपना बताया है इसी प्रकार जीवमें भी अभिन्नषट्कारकता होती है। यह जीव जो असंख्यातप्रदेशी अपनी गुणपर्यायमे तन्मय सद्भूत द्रव्य है उसमे जो भी रागद्वेष आदिक भावपर्यायें होती है, उन भाव पर्यायोके रूपसे प्रवर्तमान हो कौन रहा है ? यही जीव पदार्थ। इस कारण उन कर्मोका स्वतंत्र कर्ता होनेसे अर्थात् रागद्वेप आदिक भावकर्म प्रवर्तमान होनेसे यह जीव कर्ता है, और इस जीवमे उत्पन्न हुए विभाव इस जीवके कर्म है। इस जीवके द्वारा प्राप्त करने योग्य भाव क्या है ? इस जीवने क्या पाया ? जीवका विभाव जो पाया जाता है, जिसे पा लिया गया हो उसको कर्म कहते हैं। यों जीव ही कर्ता है, जीव ही कर्म है।

परके कर्तृत्वकी असंभवता—अपने आपमे इस मर्मको घटाते हुए सुननेसे स्पष्ट हो जायगा, यह मैं जो इस देहपिंडके भीतर गुप्तरूप विराजमान हू, बडे सुरक्षित मजबूत किलेमे रहता हुआ पुरुष जैसे सुरक्षित है, ऐसे ही यह मैं निश्चयसे तो अपने स्वरूपके किलेमे बैठा हुआ सुरक्षित हू और देहमे रहता हुआ भी अतः सुरक्षित हू, ऐसा यह मैं कर किसे रहा हूं ? अपनी-अपनी बात सोचो। जिसमे जैसे भाव हो रहे है, जिसकी जैसी विचित्रता है अपने उन भावोको कर रहा हू। इसके आगे और क्या कर रहा हू ? शास्त्र सुनने बैठे हो तो वहां भी अपने आपमें जो भी पक्ष और विकल्प हुए है उन विकल्पोको बना रहा हू। ये वचन आदिक तो उनका निमित्त पाकर निमित्तका निमित्त परम्परा रूपसे ये वचन निकल जाते है, इन वचनोंका मै कर्ता नही हू। ये तो जिह्वा, ओठ, कंठ आदिकका निमित्त पाकर ऐसे हो ही जाते हैं। यदि कोई वैज्ञानिक ऐसा ही मुह, ऐसा ही लचीला ओठ, कठ, जिह्वा आदि बना ले और उनको इस तरह प्रेरित करे कि बटन स्टाप वगैरा भी लगा सके तो सम्भव है कि वहांपर भी वचन निकल जायेंगे। वह तो पुद्गल पुद्गलका निमित्तनैमित्तिक सम्बंध है। न बन सकनेकी बात और है। इन वचनोका मैं कर्ता नही हू और कभी किसी भावुकतामे कुछसे कुछ हस्त उठायें, इशारा करें, इन सब क्रियावोका भी कर्ता मैं नही हूं। केवल एक अपने भावोंका कर्ता हूं, विकल्प कर रहा हूं।

अपने ही कर्तृत्वकी युक्तता—सब अपनी-अपनी सोचते जाइए। कितना ही तृष्णावश वैभव संचयका विचार किया जा रहा हो, वहां भी आप वैभवका कुछ नही कर रहे है।

केवल एक विकल्पका विस्तार बनाया जा रहा है। किसी भी परिस्थितिमे कोई जीव किसी अन्य द्रव्यका करने वाला नही होता। निमित्त पाकर अन्य द्रव्योमे कुछ परिणति हो जाती है तो उपचारसे उसे कर्ता कह दिया जाता है। वस्तुत जिस परिस्थितिके रूपसे जो प्रवर्तमान हो वही कर्ता कहलाता है और उस द्रव्यमे जो परिणति चल रही हो वही कर्म कहलाता है। यो प्रत्येक पदार्थ अपनी ही अवस्थाके करने वाले है और उनका कर्म उनकी अवस्थामात्र है। इन विभावोको इस जीवने किया किस शक्तिके द्वारा ? वह शक्ति भी किसी दूसरे द्रव्यसे खीचकर प्रयोग की गई हो, ऐसा नहीं है। किन्तु जो भी विभाव हो रहा है उस विभावपर्याय रूपसे गमन करनेकी परिणमनकी शक्तिरूप यह स्वय जीव है। इस जीवने राग किया। किसे किया ? जीवकी ही किसी दशाको किया। किस शक्तिके द्वारा किया ? जीवमे ही ऐसी परिणमनकी शक्ति है उसके द्वारा किया। यो इन विभावोके करनेका करण भी यह जीव स्वय है।

वस्तुगतता—भैया ! यह चर्चा बडी सावधानीसे सुननेकी है। कही नयकी दृष्टि चूक न जाय। हालांकि ये विभाव द्रव्यकर्मके उदयका निमित्त पाकर ही हो पाये हैं। केवल एक जीवमे ही उपाधि बिना, परसम्पर्क बिना होता हो ऐसा नही है। फिर भी जब निश्चयदृष्टि लगाते है तो वहा यह दिख रहा है कि ये सब स्वतत्ररूपसे प्रवर्तमान होकर जीवके द्वारा हो रहे हैं। इसमे परका सम्पर्क नही है। किसी घरके ही बच्चेको किसीने पीट दिया और वह बच्चा रो रहा है तो क्या वह मारने वालेकी शक्तिसे रो रहा है ? वह अपनी ही शक्तिसे अपने ही आपमे अपना परिणमन कर रहा है। भैया ! निश्चयदृष्टिसे जितना तत्त्व तकना है उतने तत्त्वको देखनेके लिए कही बाहर अगल-बगल भाकनेकी जरूरत नही है कि कौन उपाधि है, कौन निमित्त है ? इस तरहके विकल्पोको उपयोगमे अभी स्थान न दें। वस्तुमे वस्तुगत बात देखी जानेको निश्चयदृष्टि कहते हैं और वस्तुमे वह भाव स्वभाव तो न था, किन्तु हो गया, यो अगल-बगल तक कर निर्णय करनेका नाम व्यवहार दृष्टि है।

जीवमे अभिन्नकरण कारकता—यह जीव ही स्वय अपने परिणमनमे साधकतम है। जैसे कोई मनुष्य बिना हाथ लगाये पद्मासनसे बैठ गया तो बतावो इस पद्मासनका करने वाला कौन है ? यह मनुष्य, और किया किसे ? अपने अगको। किसके द्वारा किया ? अपनी शक्ति और किसलिए किया ? इसमे सुख दु ख आदिक जो परिणमन होते हैं वे खुदके लिए होते है, और किससे किया ? इस देहसे। पद्मासन न लगाये तब भी यह देह ध्रुव है, लगाये तब भी यह देह वही की वही है। इस ध्रुव देहसे एक पद्मासनकी अवस्था बन गयी। और किसमे बनी ? यह काम इस देहमे ही तो हुआ, यहा कोई दूसरा कर्ता नही, कर्म नही, करण नही, सम्प्रदान नही, अपादान नही, अधिकरण दूसरा नही। एक मोटा दृष्टान्त है। यो ही जीवके भाव परिणमनका करने वाले दूसरे कर्म करण आदिक तो नही है। यह जीव अपने

ही उस प्रकारके पर्यायरूप परिणमनकी शक्तिसे पर्यायरूप परिणमनको किया करता है।

नयोके अविरोधका ज्ञानधाम—जैसे जिन दो भाइयोमे बडा घनिष्ट प्रेम है। किसी एक कामको करते जा रहे है। वहा किसीसे कही कुछ क्रिया हो गई, कुछ काम कम बन रहा तो दूसरे भाईको भी विरोध नही है, अविरोध रहते है, इसे कहते है हिल-मिलकर एक कार्यको पूरा कर लेना। कोई प्रधानतासे कर रहा, कोई गौण रूपसे कर रहा, फिर भी चित्तमे मलिनता नही है। ऐसे ही वस्तुस्वरूपके प्रतिपादनमे ये निश्चय और व्यवहारनय दोनो कार्य कर रहे है। हितमार्गमे मोक्षमार्गमे यह निश्चयनय कुछ अधिक रूपसे कार्य कर रहा है, पर अविरोध है, और किसी-किसी प्रसगमे यह व्यवहारदृष्टि भी उस निश्चयदृष्टिके लक्षणका पोषण कर देती है। जैसे अय परकृत विभावो तुम अलग हटो, ऐसा साहस इस व्यवहारदृष्टिने कराया है, और अन्त मे सहज ज्ञानानन्दस्वरूप रहो, यह भीतरसे निश्चय साहस दे रहा है।

मूढतामे मूर्च्छाका भार—यह जीव केवल अपने ही परिणमनका कर्ता है। अब सोच लीजिए—जितना मूर्छाका भार बना रक्खा है और इतना ही नही किन्तु उसमे इतना पक्षपात बढ़ गया है कि ये ही परिजन कुटुम्ब २-४ जीव ये ही सब कुछ मेरे है, और ये विभाव वैभव जो कुछ पाया है वे सब मेरे है। ये जायेंगे कहासे ? इन्हे कौन छुडा लेगा ? रजिस्ट्री आफिसमे दर्ज है, म्यूनिसिपल्टीमे नाम चढ़ा है। मैं इन दुकान मकान आदिका मालिक हू, ये तो मेरे ही बनकर रहेगे। ऐसी कुछ भीतरमे जो दृष्टि जमी है ना अथवा यह पुरखोसे चला आया है, इसे कौन छिना लेगा, यह तो मेरा ही बनकर रहेगा। मेरा जो वैभव है वह सब बैंकमे जमा है। बैंकमें अपने निजी तालेमे रखा है, हम सब कुछ बड़ी सावधानीसे बडा पक्का काम किया करते है। भाई यह सब ठीक है। पर यह तो बतावो कि शरीरपर भी कुछ आपका पक्का काम चल सका है या नही ? जायगा कहा यह देह ? मै ठीक समयपर पथ्यका भोजन देता हू, कसरत करता हू, भूखसे कम खाता हू। जायगा कहा यह देह ? अरे ये सब कल्पनाकी बाते है। सब कुछ चला जायगा। धीरे-धीरे जाय या एकदम ही एक सेकेण्डमे चला जाय। रहेगा क्या ?

धर्मदृष्टि बिना मनुष्योकी पशुओसे अविशेषता—यह जीवद्रव्य समस्त पदार्थोंसे निराला अत्यन्त स्वतत्र तत्त्व है। इस निज तत्त्वपर दृष्टि न जाय और बाहरी मोह ममतामे ही उपयोग फसा रहे तो वह कौनसी जिन्दगी है ? पशुवोमे, मनुष्योमे और कौनसी विशेषता है ? आप कहेगे यशकी विशेषता है। पशुवोमे यश नामवरीकी बात तो नही है, मनुष्योमे तो है। अरे ऐसी यश नामवरी पशुवोमे भी चला करती है। ये पशु लोग जानते है, यह बडा है, यह समर्थ है, यह धनीको ज्यादा प्यारा है। इसका वे पशु भी अन्दाज रखते हैं। कोई बलवान जानवर हो, पुण्यवान जानवर हो तो दूसरे जानवर उसके आगे नीची गर्दन करके

उसका सम्मान करते है। वहा पर भी ये सब चीजें चल रही हैं जो मनुष्योमे चलती है। अन्य कौनसी विशेपता है मनुष्योमे ? आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये सब मनुष्य भी करते है, पशु भी करते हैं। सारी वातें तो समान है। विशेपता किस वातकी है ?

पशुओसे मनुष्यमे विशेषता—विशेपता यही है मनुष्यमे कि देहसे भिन्न अपने अन्तस्तत्त्वको पहिचाने और इस ही परिचयमे, इस ही के उपयोगमे अपनी दृष्टिको स्थिर रखे, इससे ही है मनुष्यकी विशेपता है। और यही काम न किया जाय तो फिर निर्णय कर लो, कैसी जिन्दगी है और यहाँ दो चार पुरुषोने कुछ भला कह दिया, कुछ प्रशसा कर दी तो कौनसा लाभ लूट लिया सो तो मनमे निर्णय बनावो ? ससारके क्लेश घट गए कि आत्मामे पवित्रता बढ गई, कि कुछ शान्ति मिल गई या भविष्य अपना निर्वाध बन गया, या इस ही भवमे ये हमारे हो गये, या ये शरण सहाय वन जायेंगे, कौन सा लाभ लूट लिया सो तो बतावो ? इन वातोमे एक भी वात नही मिली, उल्टी ही उल्टी सारी वातें हुईं। जितनी दगा मित्र दे सकता है उतनी और कोई गैर व्यक्ति नही दे सकता।

वातोंकी मित्रता—मित्रता होती है वातोंसे। वातोके सिवाय और मित्रताका क्या उपाय है ? भली बात कहे, रुचिकी वात कहे, मन लगनेकी वात कहे लो मित्र हो गए। मित्रतामे और क्या देर लगती है ? तो जितनी मित्रता बनेगी उस मित्रताके बीचमे जरा भी प्रतिकूल काम हो जायगा तो बस विमुख हो जायगा और विमुख हो तो विमुखताका और ताता वढता जायगा। उस तातेमे जो बिगाड गैर नही कर सकते वह बिगाड मित्र कर डालते है। इस लोकमे भी लाभ क्या लिया ? शान्ति कहा रही ? वह प्रशसा करने वाला तो अपने विकल्पोकी चक्की चलाकर चला गया। उसने तो उतनी बात ही कही और आपको उसको खुशी रखनेके लिए बडा श्रम करना पडेगा तो आप तो टोटेमे ही रहे ना। और परलोकका भी कौनसा सुधार है ? स्त्री है, संतान चाह रहे, धन जोड रहे, और और चाह रहे, यह सब नामके लिए चाहते है। ये व्यर्थमे क्यो विडम्बनाएँ की जा रही है।

जीवकी अभिन्नसम्प्रदानकारकता—देखो यह जीव जीवके भावोका ही कर्ता है, अपनी शक्तिसे ही किया गया है और जो कुछ भी बात गुजरी, परिणमन हुआ उस परिणमन का प्रयोजन यह जीव स्वय है। उत्पन्न हुए विभाव पर्यायरूप कर्मके द्वारा आश्रयमाण कौन है ? लो क्रोध हुआ। इस क्रोधका फल किसे मिलेगा ? मिलेगा क्या, मिल तो रहा ही है। जिस समय क्रोध कर रहे है उस ही समय तुरन्त क्रोधी फलको पाता जा रहा है, क्षोभ, बेसुधी सक्लेश तुरन्तके तुरन्त मिल रहे हैं। फल मिलनेमे एक सेकेन्डकी भी देर नही है। तो जो पर्यायें बनती है उन कर्मोंका फल पाता कौन है ? यह ही करने वाला। लोग कहते हैं जो करेगा सो भरेगा। ठीक है। इसमे और सुधार कर लो। जो करेगा वह उसी समय

भरेगा। आगे पीछे अन्तरकी बात नही है। तो उस विभाव कर्मके द्वारा आश्रयमाण यह जीवपदार्थ स्वयं है। अतएव यही सम्प्रदान है।

जीवमें अभिन्नापादानकारकता—जो पर्यायें हुई दूसरी समय विलीन हो गयी, यों अनन्त पर्यायें विलीन होती चली जाती है। उन पर्यायोका विलय होनेपर भी ध्रुवताका आलम्बन जिसमे है, यही उपादेय हुआ। समुद्रमे नवीन नवीन लहरे उत्पन्न होती है, विलीन हो जाती है। उत्पन्न होने और विलीन होनेपर भी यह समुद्र वही का वही रहा। ये सब बातें जैसे वहाँ भिन्न दिखती है ऐसे ही सब कुछ इस जीवद्रव्यकी पर्यायें भी विलीन हो गयी, पर रहा जीवद्रव्य वही। सब अभिन्नता दृष्टगत होती है। यही आत्मा अपादान है, यह सब लीला किसी आधारमे हुई है। रागद्वेष आदिक विभाव होना या जो भी विभाव हो, साधारण प्रकरणमे विभाव या स्वभाव व्यक्ति न देखो। कुछ भी हो, भावमे पर्यायोका आधार कौन है? यही जीवद्रव्य।

जीवमे अभिन्नषट्कारकताके समर्थनमे समुद्रका दृष्टान्त—समुद्रमें लहरें उठी। उठीं वायुके निमित्तसे। उपाधि वायु है, लेकिन बार-बार अब इसे रटना नही है, वायु उपाधि है, वायु उपाधि है। समझ लो। उसका विरोध न करके उसको एक जगह आसन दे दो। आप यहाँ विराजिए। आपकी बात बिल्कुल ठीक है। वायुके निमित्तसे समुद्रकी तरगे उठी, ठीक है, विराजिए, अब चलो वस्तुमे पाई जाने वाली कलायें देखिये। इस समुद्रमे लहरे उठी, इन लहरोको समुद्रने किया, क्योकि उन लहरोंरूपसे प्रवर्तमान यह समुद्र है और समुद्र ही उस रूपमे पेश हुआ, प्रवर्तमान हुआ। अतएव समुद्र ही कर्म हो गया और यह सब समुद्र उस समुद्रकी स्वय शक्ति है ना इससे हिल जाता है। नही तो हवाके चलनेपर यह लोहेका गाटर क्यों नही जरा भी हिल जाता? उसमे इस तरहकी योग्यता ही नही है। समुद्रकी ही वह शक्ति है। अपनी ही शक्तिसे अपने ही करणसे वह रूपक बन रहा है और ऐसा लहराता हुआ समुद्र लहलहा रहा है, उसमे वह परिणमन होना अवश्यभावी है, जो होना है वह हो रहा है, उस सत्त्वका फल है और उन लहरोकी स्थितिका आश्रीयमाण कौन है? उन लहरों ने आश्रय किसका लिया, वही सम्प्रदान है। आपके हाथमे कोई वस्तु है, और किसी दूसरे योग्य व्यक्तिको आप दे रहे है तो देनेके मायने क्या है? यह वस्तु अब इसका आश्रय करेगा। तो वस्तु जिसका आश्रय करे बस वही सम्प्रदान है। यों इससे जीवकी दृष्टिमे सम्प्रदान जीव ही हुआ। समुद्रकी दृष्टिमे समुद्र सम्प्रदान है और उसमे लहर निकली, फिर भी वह ज्योका त्यो है, वही अपादान है, यही अधिकरण है। ऐसे ही जीवमे जीव भावका अभिन्न षट्कारक घटित होता है। यह जीव अपने ही परिणमनके किसी अन्य कारककी अपेक्षा नही रख

अभिन्न षट्कारकताके अवगमका प्रयोजन—इतनी सब बातें बतानेका निष्कर्ष यह

है कि यह निर्णय रख लीजिए कि कर्मका कर्ता जीव नही है। ज्ञानावरण आदिक द्रव्यकर्मका कर्ता वही है, जीव नही है। जीवके भावोका कर्ता जीव है, कर्म नही है। जीव ही जीव भावोसे स्वतत्रया प्रवर्तमान हुआ है ऐसा समझकर हम अपनेको अन्य सर्व पदार्थोंसे न्यारा निरखे और इस निज अतस्तत्त्वमे उपयोग लगाकर तृप्ति और सन्तोषका अनुभव करे। यह कर सके तो हमने कुछ शरण पा लिया और यही न कर पाये तो जैसे अनन्त काल व्यतीत किया जिस चक्रमे उस ही प्रकार उसी चक्रमे समझ लीजिए कि आगे भी रहेगे। इससे बचना अपना कर्तव्य है और इससे बचनेके लिए अर्न्तज्ञान ही नितान्त आवश्यक है।

कम्म कम्म कुव्वदि जादि सो अप्पा करेदि अप्पाण।
किध तस्स फल भु जदि अप्पा कम्म च देदि फल ॥६३॥

अभिन्नषट्कारकताके विरुद्ध एक आशंका—पञ्चास्तिकायकी ६२वी गाथामे अभिन्न-पट्कारक पद्धतिसे यह बताया गया था कि यह अशुद्ध आत्मा अपने ही अशुद्ध षट्कारक रूपसे परिणमता हुआ परिणमनको करता है और इसी तरह शुद्ध आत्मतत्त्वका श्रद्धान ज्ञान और अनुष्ठान होनेसे अभिन्न षट्कारकरूपसे परिणमता हुआ अपने शुद्ध परिणमनको करता है और कर्म अपने ही अभिन्न पट्कारकरूपसे अपने आपकी स्थितियोको किया करते है। ऐसी चर्चा सुननेके बाद शिष्यको एक शका हुई है कि यदि कर्म कर्मको करता है और आत्मा आत्माको करता है तो यह आत्मा कर्मोंके फलको कैसे भोगेगा और ये कर्म भी आत्माको कैसे फल दे सकेंगे, फिर तो यह कोई झगडा ही न रहना चाहिए था, जो यह ससार बना है, इतना जग-जाल है, व्यर्थकी भ्रमणायें है, विकारोका नाच है, ये सारी विडम्बनाएँ तो सामने रखी है। ये तो तब ही हो पायेंगी जब आत्मा कर्मको करे और कर्म उसे फल दे और आत्मा उसका फल पाये। ये सब बाते मानी जानेपर ही यह ससारकी व्यवस्था बन सकती है।

अभिन्नषट्कारकतापर शंकाका साराश—यहाँ शकाकारके कथनका साराश इतना है कि कर्म और जीव यदि ये एक दूसरेके कर्ता नही है तो प्रथम तो यह बात है कि यह जीव फल कैसे पायगा? कुछ करेगा ना अटप्ट दूसरेको, तभी तो फल मिल पायगा, और फिर यह कहा जाय कि अजी फल देने वाला दूसरा है। तो उसमे भी यह आपत्ति आती है कि जब किया ही कुछ नही तो दूसरा फल भोगने लगे। कुछ भी वस्तु व्यवस्था न बनेगी। सब अनवस्थितता हो जायगी। तब वास्तवमे मामला है क्या? कैसे यह ससार बन गया। कैसे ये विडम्बनाएँ चल उठी? यदि एकान्तसे अर्थात् जीवके भावके निमित्तकी बात न कह कर अथवा निरपेक्ष होकर जीव भावके निमित्त बिना यदि यह कर्म कर्म है, यह द्रव्य कर्म कर्मरूप बनता है और यदि आत्मा आत्माको ही करता है द्रव्यकर्मको नही करता है तो जिसने कोई कर्म नही किया फिर कर्मका फल वह कैसे भोगेगा और जीवने जो कर्म नही किया वह कर्म

जीवको फल कैसे देगा ? ऐसो आशका होनेपर आचार्यदेव समाधान देंगे । वह समाधान चूकि भूमिका पूर्वक कहनेके पश्चात् ही समझमे आ पायगा, इसलिये कुछ सिद्धान्त सूत्र कह रहे हैं—

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकायेहि सव्वदो लोगो ।
सुहुमेहिं वादरेहिं य णंताणंतेहि विविहेहि ।।६४।।

कर्मफलव्यवस्थाके प्रसंगमें भूमिकारूप सिद्धान्तप्रदर्शन—यह समस्त लोक सर्व ओरसे पुद्गल स्कधोसे अत्यन्त भरपूर भरा हुआ है । ये पुद्गल काय नाना प्रकारके है—कोई सूक्ष्म, कोई वादर, अनेक अवगाहना अनेक शक्ल सूरतोके अनन्त पुद्गल कायोसे भरा हुआ यह लोक है । पुद्गल कायमे यहाँ मुख्यतया कार्माणकाय लेना । ५ शरीरोमे कार्माण शरीर भी है और अन्य भी अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुके चार शरीर भी है । इन चार शरीरोमे जितने है परमाणु उन चार शरीरोसे भी कई गुणित उन कर्मयोग्य पुद्गलोसे यह लोक भरा हुआ है । यह सिद्धान्त सूत्र बताया जा रहा है । इसमे से अर्थ यह निकाल लेना अपने प्रयोजनका कि इस जीवको कर्म कहीसे खोजकर लाना नही पडता ।

जीवके प्रदेशोमें विस्रसोपचित कर्मका भी उपचय—प्रथम तो इस जीवके साथ अनन्तानन्त कार्माणपुद्गल स्कध ऐसे घेरे पड़े है जो अभी कर्मरूप तो नही है, किन्तु जीव जहाँ जायगा वहाँ जायगा वहाँ वह भी सब जायगा, और मरनेपर भी कार्माणस्कध जीवके साथ जायेंगे वे, अभी जो कर्मरूप नही हुए है, किन्तु कर्मरूप होनेकी योग्यता रखते है, इनका नाम है विस्रसोपचय । विस्रसा उपचय । विस्रसा मायने प्रकृत्या उपचय मायने ढेर रूपसे । ऐसे कार्माणद्रव्य जो कर्मरूप तो नही है, पर कर्मरूप बननेकी योग्यता रखते है । ऐसे एक-एक कार्माण द्रव्य जीवके साथ ऐसे लगे हुए है कि मरनेके बाद एक भव छोडकर दूसरे भवमे जायेंगे । यो समझ लो कि बँधे हुए कर्मोकी ही तरह ये भी लग बैठे है । फर्क इतना है कि बँधे हुए कर्म कर्मरूप है और वे कर्मरूप नही है ।

विस्रसा उपचयकी एक मोटी झांकी—कभी देखा होगा किसी बागमे जगलमे घूमते चले जायें तो कभी-कभी सिरके ऊपर सैकडो छोटी-छोटी मक्खी भिनभिनाती है और वे इस रूपमे सिरके ऊपर आ जाती है कि आप जहाँ जायें वहाँ ये मक्खियां भी आ जाती है । आप दौड लगायें तो वे भी दौड लगाती हुई सिरपर चलेंगी । आप कही ,बैठ जायें तो वे भी वही भिनकनी रहेगी । वे मक्खियाँ आपमे आपके कुर्ताकी तरह नही चिपटी हुई है तो भी वे आपके साथ-साथ जा रही है । उन मक्खियोमे आपने क्या कर दिया, पर उनकी प्रकृति है । ये अनत विस्रसोपचय कार्माणद्रव्य जो अभी कर्मरूप नही हुए, फिर भी जीवके साथ लगे हुए है । जीव अशुद्ध विचार करे, सकल्प-विकल्पमे मस्त रहे तो कर्म कहीसे लाना नही पडता, हमारे साथ ही बँधे पडे है । जहाँ परिणाम खोटा हुआ कि वे ही परिणाम कर्मरूप बन जाते है ।

कार्माणद्रव्यप्रदर्शक सिद्धान्त सूत्रसे प्रयोजनीभूत वक्तव्य—इस सिद्धान्त सूत्रसे यह बात लेना है—कोई एक अलगसे नियत आत्मा हम लोगोको दड देने वाला हो तब तो फिर उस प्रभुसे अनन्त बार चूक होती रहती। अनन्तानन्त जीव है, जिनमे से अनन्त भी मोक्ष चले जाये तो भी अनन्तानन्त रहते है और अनन्तकालसे मोक्ष चले जा रहे है फिर भी अनन्तानन्त है। आजकी ही स्थिति देख लो, कितने जीव समझमे आते है। इन सबको दुःख देने वाली यदि कोई प्रकृति नही है। ओटोमेटिक सिस्टम न हो तो व्यवस्था नही बन सकती है। वह ओटोमेटिक सिद्धान्त यह है कि जीवने परिणाम किया, वह अपने आपके परिणामोका निमित्त पाकर इसमे कार्माण व ंणा कर्मरूप हो गई और उनमे प्रकृति स्थिति प्रदेश अनुभाग भी बन गया।

कर्मत्वपरिणमनपर एक दृष्टान्त—आप भोजन करते है तो भोजन पेटसे बँध गया ना? यही तो भोजनका आस्रव है और बंध गया। तुरन्त तो नही निकल भगता। अब उस भोजनमे ऐसा विभाग हो जाना कि इतना अश खून बनने योग्य है, इतना पसीना बनने योग्य है, इतना मल बन जायगा, इतना मूत्र बन जायगा, इतना भोजनका अश हड्डी बन जायगा और इतना यह अन्य अन्य धातु बन जायगा, यह प्रकृति विभाग तुरन्त ही हो जाता है। हड्डी चाहे कितने ही दिनोमे बने। वह परमाणु चाहे कितने ही दिनोमे हड्डी रूप हो, लेकिन ऐसी प्रकृतिका विभाग तुरन्त हो जायगा और उनमे स्थितिका भी विभाग है। भोजनके जो परमाणु हड्डी रूप बन गये वे पचासो वर्षों तक ठहरेंगे। जो मूत्र रूप बन गये वे तीन चार घटेमे ही निकल जायेंगे। तो उनमे सबकी स्थिति भी बँध गयी। कौन स्कध कितने दिनो तक रहेगा? और उनमे अनुभाग भी बध गये। जो हड्डी रूप बन गए उनमे ताकत ज्यादा है। जो पसीना, रुधिर, मल, मूत्र बन गए उनमे शक्ति भी निश्चित हो गयी। अब विपाक आयगा अवसरपर। यो ही उनमे प्रदेशका बध तो है नही। इसे कौन करता है? पेटमे अन्न पहुचने के बाद विभाग हो जाया करते है। यह ओटोमेटिक सिस्टम रहा कि नही? आप कोई पेटमे नौकर तो भेज नही देते कि जावो तुम्हे ऐसा ऐसा कार्य करना है।

कर्मफल—यो ही जब उन कर्मोका उदयकाल आता है, विपाक काल आता है तो वहाँ भी कुछ प्रभाव होता है। डालीमे फल लगा है। वह फल पककर जब झडता है तो झडते समय डालीमे भी कुछ न कुछ प्रभाव आ ही जाता है, डाली हिल जाती है। यो ही ये चिरकालसे बँधे हुए कर्म जब निकलनेको होते है अर्थात् जब इनका उदय होता है तब इस जीवमे विभाव परिणामरूप प्रभाव पडता है। तत्त्वकी बात बडी सावधानीसे सुननेकी होती है। लो यो जीवने कर्म बांधा और कर्मोने फल दिया, इतने पर भी जीवने जोवमे ही स्वय कुछ किया और जीवने जीवमे ही कुछ भोगा। कर्मने कर्ममे ही कुछ किया, कर्मने कर्ममे ही

कुछ भोगा।

यथार्थज्ञानकी उदारता—अहा, कैसा स्वच्छ ज्ञानका प्रताप है ज्ञानी पुरुषका कि उसकी सब कुछ बातें जिसकी एक-एक किरण लेकर लोग लड़ा करते है, विवाद करते है, ज्ञानीके ज्ञानमे सब एक साथ समाया हुआ है। इस ज्ञानीके उपयोगमे ज्ञानियोका और अज्ञानियोका दोनोका स्थान है। कितना उदार है यह ज्ञानी कि ज्ञानियोकी बातका भी समर्थन करता है और एकान्त हठवादियोका भी समर्थन करता है। भगवानको एक जगह प्रमाता कहा है स्वयभूस्तोत्रमें। हे प्रभो! तुम प्रमाता हो। प्रमाताका सीधा अर्थ है प्रमाण करने वाले और प्रमाताका दूसरा अर्थ है उत्कृष्ट माता। हे प्रभो! तुम सबसे बडी माता हो। जैसे माता अपने बच्चेके हितरूप अनुशासन करती है, ऐसे ही हे नाथ! आपने इन समस्त अज्ञानी बच्चोके हितके लिए हितरूप अनुशासन किया है।

तीर्थंकरका प्रमातृत्व—किसी कविने तो यह कल्पना की है कि जब कोई पूछे कि तीर्थंकरके शरीरमे सफेद खून क्यो होता है? अतिशयमे बताया गया है कि तीर्थंकरके शरीर में सफेद खून होता है, अपन लोगोका लाल खून है। किन्तु शायद डाक्टर भी बतायेंगे कि अपन लोगोके भी लाल और सफेद दोनो खून है। लाल और सफेद दोनोका मिश्रण खूनमे मिलता है। सफेद खून जब कम होता है तो इसमे विकार आने लगता है, रोग बढ़ने लगता है। सफेद खून रोगहारी है। खैर, तीर्थंकरके सफेद खून क्यों होता है? तो कविकी कल्पना है कि मा को एक बालकपर तीव्र अनुराग है तो उस बच्चेके अनुरागके कारण जब सफेद दूध निकल आता है तो तीर्थंकरको जिनके कि जगतके सारे जीवोसे अनुराग है, करुणा है उनके सारे शरीरका खून अगर सफेद हो जाय तो इसमे क्या आश्चर्य है?

तत्त्ववेदीकी उदारचेतस्कता—तत्त्वज्ञानका अधिकारी प्रमाता जीव इतने विशाल उदार हृदय वाला है कि उसको किसी भी दार्शनिकपर रोष नही आता। उस दार्शनिकको योग्य दृष्टिसे उसकी बात समझाकर दूसरी भी बात हितके लिए आचार्यदेव बता देते है और इतनेपर भी कोई हठवादी दार्शनिक हठ ही करे, न माने, रोष करे, झगडा करे तो भी वह सत पुरुष तत्त्ववेदी मध्यस्थ हो जायगा, पर विसम्वाद न करेगा, क्योकि वह जानता है कि किसीके साथ विसम्वाद करनेसे हमारा ही नुक्सान है, हमारे ही विकल्पोकी सृष्टि बनेगी। हम ही उसका फल भोगेंगे। ज्ञानी तो बहुत पटु जीव है जिसकी पटुताके कारण न दूसरेका विनाश हो, न स्वयका विनाश हो।

आशङ्का और सिद्धान्तस्थापन—प्रकरण यह चल रहा है, इस शकाका समाधान चल रहा है कि आत्मा आत्माका ही कर्ता हो, कर्म कर्मका ही कर्ता हो तो आत्मा कर्मका फल कैसे भोगेगा, क्योकि आत्माने तो कर्मोको किया ही नही और यदि बिना किए हुए फल मिलने लगे

तो सब अव्यवस्था हो जायगी और इसी तरह कर्म आत्माको फल कैसे दें, उसने तो कर्म किया ही नहीं। जिसने नही किया उसे कर्मफल देने लगें तो बड़ी अटपट व्यवस्था बनेगी। सब अव्यवस्था हो जायगी। ऐसी अव्यवस्था हो जाय कि कहो पापीको पापका फल न मिले और उस पापका फल सिद्धपर थोप दिया जाय। इस शकाके उत्तरमे समाधान आगे आयगा। उससे पहिले इस गाथामे यह सिद्धान्तसूत्र रक्खा है—जैसे काजलकी डिबिया जिसे रोज-रोज इस्तेमालमे लाया जाता है वह काजलसे भरपूर होती है, ऐसे ही यह लोक सूक्ष्म और बादर अनन्तानन्त पुद्गलोसे खचाखच भरा हुआ है और उसमे ये कर्म योग्य पुद्गल भी खचाखच भरे है।

प्रत्येक संसारी जीवके प्रदेशोंमें कार्माण द्रव्यका बृहत् उपचय—देखो एक जीवके साथ अनन्त तो कर्म वर्गणाये कर्मरूप बँधी हैं और उस ही जीवके साथ अनन्त कार्माण वर्गणाये ऐसी भी पडी है जो कर्मरूप नही है, पर उसके साथ चिपकी है और वह एक जीव चाहे तिलके दाने के असख्यातवें भागकी अवगाहनाका हो उस जीवमे भी अनन्तानन्त कर्मवर्गणायें पडी है और जिस जगह वह छोटा जीव है उस जगह ऐसे अनन्त जीव भी पडे हुए है और उनमे भी एक एकके साथ अनन्त कार्माणवर्गणायें भरी है। फिर ३४३ घनराजू प्रमाण लोक मे अदाज तो करो। कोई शुमार है। इन कार्माणवर्गणावोको कहीसे लाया नही जाता। ज्यो ही जीवमे खोटा परिणाम हुआ ये कार्माणवर्गणायें कर्मरूप बन जाती है। जहाँ आत्मा है वहाँ ही ये कार्माण वर्गणाके योग्य पुद्गल जो अनन्तानन्त है बिना लाये हुए है। बस बात इतनी होती है जिस समयमे जीवके विभावपरिणाम होते है तो वे कर्मरूपसे उपस्थित हो जाते है इस ही का नाम आस्रव है।

कर्मसिद्धान्तसे ग्राह्यदृष्टि—इस सिद्धान्तमे भी यह दृष्टि अपनायें कि यद्यपि ये कार्माणवर्गणायें व आत्मा एक क्षेत्रमे दूध और पानीकी तरह ठहरे हुए है तो भी ये भिन्न है। आत्मा एक स्वतत्र तत्त्व है और ये सब कार्माणवर्गणायें अचेतन है, हेय हैं। इनसे आत्माका कुछ हित नही है। इन सब कर्मोंसे भिन्न शुद्ध ज्ञानमात्र ही जिसका एक स्वभाव है ऐसा यह परमात्मतत्त्व ही हमे ग्रहण करने योग्य है। धर्मपालन करना है तो उस ढगकी पद्धति अपनानी होगी अन्यथा कष्ट भी भोगा और धर्म भी न मिला। हम इतने समागमोंके बीच पडे है, ये भिन्न विभाव, ये शरीर, ये कार्माण वर्गणायें, ये रागादिक भाव, अनेक परतत्त्वोंके बीच पडे है फिर भी मैं इन परतत्त्वोरूप नही हूँ। मैं तो केवल उस सहजस्वभावरूप हूँ जिसकी अनुकम्पासे इनकी भी कदर हो रही है। एक मूलभूत सहजस्वभावको निकाल दीजिये फिर तो सारा मामला बिखर जायगा। मैं केवल सहज ज्ञानानन्द स्वभावमात्र परमात्मतत्त्व हूं। मेरा शरण, मेरा सार, मेरा सर्वस्व मेरा यह सहज स्वरूप है, अन्य कुछ नही है, ऐसी दृढता

पूर्वक श्रद्धान हो तव उसमे धर्मपालन बनेगा। सत्सग ज्ञानार्जन द्वारा इस प्रतीतिको मजबूत वनायें, यही हम लोगोका एक प्रधान कर्तव्य है।

अत्ता कुणदि सहाव तत्थ गदा पोग्गला सभावेंहि।
गच्छंति कम्मभाव अण्णोण्णागाहमवगाढा ॥६५॥

कार्माण द्रव्यका प्रयोग—पूर्व गाथामे यह वताया गया था कि कर्म होनेके योग्य पुद्गल इस समस्त लोकमे इस तरह व्यापी है जैसे अञ्जनचूर्णसे भरी हुई डिब्वीमे कालिमा पूर्ण रूपसे व्याप्त है और वह सर्वत्र पड़ी हुई है। यह प्रथम सिद्धान्त सूत्र इसलिए कहा गया है कि उस सिद्धान्तको वतानेके वाद अव यह सुगमतया दर्शाया जा सकता है कि इन भरे हुए कर्मयोग्य पुद्गलोका होता क्या है ? जहाँ ये कर्म पुद्गल पडे है वहाँ ही सर्व जीव है और जहाँ यह ससारी जीव है वहाँ उनसे सम्वधित विस्रसोपचयरूपसे कर्मरूप पुद्गल पडे हुए हैं तथा अन्य भी पुद्गल है। यह जीव केवल अपने भावोका कर्ता है। उन भावोका निमित्त पाकर वहां पर अवस्थित कर्म योग्य पुद्गल अपने ही स्वभावसे वे कर्म अपनी ही प्रकृतिसे कर्मभावको प्राप्त होते है और वे जीवमे अन्योन्यावगाह रूपसे निश्चित हो जाते है।

कर्मोको खीचकर लाकर वांधनेकी आवश्यकताका अभाव—कही कोई यह कहे कि यह जीव अपने परिणामोसे कर्मोको खीचता है, इसका अर्थ यह नही है कि अपनेसे बाहर पडे कर्मोको खीचता है, किन्तु अपने ही प्रदेशमे विस्रसोपचयके रूपमे अवस्थित इस कर्म योग्य पुद्गलको कर्मरूप बना लेता है, यह व्यवहारदृष्टिका कथन है, यह उसका भाव है। कदाचित् कोई वाहरके भी कर्मयोग्य पुद्गल अपनी परिणतिसे जैसे स्थानान्तरित होते रहते है, ऐसे ही यह आत्मप्रदेशोंमे आ जाय तो वह भी कर्मरूप हो सकता है, किन्तु यह जीव वाहरसे कर्मोंको लाकर फिर कर्मरूप वनाता हो, ऐसी वात नही है।

संसारी जीवकी अनादिबन्धनबद्धता—यह आत्मा ससार अवस्थामे अनादिकालसे बन्धनमे बद्ध है। कोई यह शका करे कि यह जीव तो वडे शुद्ध स्वरूप वाला है। इसने ऐसा क्या अपराध किया कि इसमे कर्म बँध गये ? तो उसका समाधान इतना है कि यह अपराध की शुरुआत किसी क्षणसे नहीं है, किन्तु जवसे जीव है तवसे ही यह अपराध बना हुआ है। जीव है अनादिसे। प्रत्येक सत् अनादिसे है। केवल जीवकी ही क्या वात है ? सभी पदार्थ अनादिसे है। जबसे यह जीव है तवसे ही अपराधमय है। पहिले यह निरपराध हो, पीछे अपराध आया हो, ऐसी बात नही है, क्योंकि यदि यह निरपराध था, धर्म आदिक द्रव्योकी तरह विशुद्ध था तो अपराध आनेका कोई कारण ही नहीं है। क्या ऐसा नहीं होता कि कोई शुरूसे ही ऐसा हो ? और पश्चात् उपायोसे उस दोषको दूर कर दिया जाता हो।

अनादिबद्धतापर एक दृष्टान्त—तिलके दानेमे तेल कहांसे आया ? तिलका दाना

निकल चुका, फिर उसमे तेल भरा जाता हो, क्या ऐसा है ? अरे तिलका दाना जबसे बनना शुरू हुआ तबसे ही उसमे किसी न किसी रूपसे तेल भी शुरू है। दाना भी कमजोर है, तेल भी कमजोर है। जब वह दाना पुष्ट होता है तब वह तेल भी पुष्ट होता है। तिलमे तेल कबसे है ? जबसे तिल है, और उस तिलसे तेल जब निकाला गया तो तेल अलग हो गया, तिल अलग हो गया। ऐसे ही इस जीवमे रागादिक विभाव परम्परा और यह द्रव्यकर्मकी परम्परा कबसे है ? जबसे यह जीव है तबसे है, फिर भी उसे ज्ञान और वैराग्यके बलसे बाह्यपदार्थोंसे हटकर केवल निज अन्तस्तत्त्वमे उपयोग जमाये और इस उपयोगकी स्थिरता रखे तो कर्म और रागादिक विभाव दूर किये जा सकते है।

जीवकी अनादिबद्धताका अन्तःकारण—यह जीव अनादिसे बन्धनमे बद्ध है। इसका कारण यह है कि यह अपने अस्तित्वका, चैतन्यस्वभावका त्यागी हो रहा है उपयोग द्वारा। जीव अपने स्वभावको कभी त्याग नही सकता। प्रत्येक पदार्थका स्वभाव पदार्थमे शाश्वत होता है। लिये रहो। जब ज्ञानमे नही है कि मेरा स्वरूप तो चैतन्यमात्र है तब तो इसका त्याग हुआ ही समझलो। अपने पारिणामिक शुद्ध चैतन्यस्वभावको तजता हुआ यह जीव अनादि कालके बन्धनसे बद्ध चला आ रहा है और इस बद्धताके कारण अनादिसे ही मोह रागद्वेषके स्नेहसे परिणमता चला आ रहा है। जैसे कहते हैं—चिकने घडेपर पानी नही ठहरता ऐसे ही जो जीव रागद्वेष मोह विभावकी चिकनाईसे चिकने है वहाँ ज्ञान वैराग्यरूपी जल नही ठहरता है। यह जीव ऐसे ही मलिन भावोसे परिणमता चला आ रहा है। वह जब और जिस समय मोह रूप, राग रूप अथवा द्वेषरूप अपने परिणामोको रचता है तब उस समयमे परिणामोको निमित्त मात्र करके जीव प्रदेशोमे परस्पर अवगाहरूपका प्रवेश करके अपनी ही प्रकृतिसे यह पुद्गल कर्मरूपताको प्राप्त हो जाता है। निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध और समग्र वस्तुवोके परिणमनकी स्वतन्त्रता—इन दोनोका यथार्थ परिज्ञान जो करे वही तत्त्व का मर्मज्ञ है। किसी एक पक्षके एकान्तको ही माने और दूसरी दृष्टिके विषयका निषेध करे तो वहाँ मर्म नही पाया जा सकता।

निश्चय एकान्तमे अनिष्टापत्ति—एक निश्चयदृष्टिसे निरखनेपर यह विदित होता है कि यह जीव अपनी ही परिणमन शक्तिसे अपने लिए अपनेमे अपने रागादिक परिणमनमे स्वय परिणमता हुआ, स्वतत्र होता हुआ यह रागादिक परिणमनका कर्ता है। जान तो लिया यह, किन्तु इसकी ही हठ हो और यह बात विदित नही हो कि ये रागादिक परिणाम परउपाधिका निमित्त पाकर हुए है। जब तक यह भी श्रद्धा न हो तब तक उन रागादिक परिणामोको छोडनेका उत्साह कैसे जगेगा ? जब यह दृष्टिमे रहता है कि ये रागादिक विभाव परउपाधिका निमित्त पाकर आये है, मेरे घरकी निजी गाठकी वस्तु नही हैं और यह दु.खकारी है तो यह

पुद्गल कर्मके उदयका निमित्त मात्र पाकर जीवमे जीवकी शक्तिमे जीवके लिए जीवरूप भाव को बनाता रहता है। निमित्तनैमित्तिक सम्बध और स्वतन्त्रताका ज्ञान—ये दोनो ज्ञानमे एक साथ बने रहते है। हाँ प्रतिपादन नम्बरवार हो पाता है।

वस्तुस्वातन्त्र्यकी झाकी—रसोईघरमे खिचडी बनानेके लिए चूल्हेपर पानीकी बटलोही धर दी, पानी तेज गर्म हो गया, अधन हो गया। आदहन—चारो ओरसे जिसमे दहन आ जाय उसे कहते है अधन। पानी गर्म हो गया, यह पानी आगका सन्निधान पाकर आगका निमित्तमात्र करके अपनी शक्तिसे अपने आपको गर्म कर बैठा। जहाँ उस पानीके परिणमनको निरखते है वहाँ तो यही बात मिलेगी कि यह पानी अपनी शक्तिसे अपने आपमे अपने आपको गर्मरूप कर लेता है, किन्तु ऐसा अपने आपको गर्म बना लेनेका काम परउपाधिके बिना नही कर पा रहा तो अग्निको परउपाधिका मानना आवश्यक हुआ। है उपाधि तिसपर भी यह अग्नि अपनी गर्मी, अपनी पर्याय, अपना गुण अपनेको बाहर निकाल-निकालकर पानीमे फेंकता हो और फिर पानी गर्म हो रहा हो, ऐसी बात नही है।

अग्निका जलादिमे गमनका अभाव—खाली चूल्हेमे जितनी लकडी आधा घटा तक जलती है ठीक उतनी ही नाप तौलकी लकडी पानीकी बटलोहीकी चूल्हेमे रखें तब भी जलती है। वह आधा घटेमे जल सकने वाली लकडी पानीकी बटलोही रखनेपर कहो १० ही मिमट मे जल जाय और बटलोही न रखे तो आध घटे तक जलेगी, ऐसा अन्तर देखा है क्या ? यदि यह अग्नि अपनी गर्मी निकालकर इस पानीमे डालकर पानीको गर्म करती होती तो उसका अर्थ यह था कि बजाय आधा घटेके वह १० मिनटमे ही जलकर खाक हो जाती, पर टाइम उतना ही रहता है अग्निका जितना कि बटलोही धरी है तब, नही धरी है तब। और शायद यह भी सम्भव है कि बटलोही धरकर भी ५-७ मिनट और देर तक वह लकडी जले। तो जहाँ यह भी निरखा जा रहा है कि अग्निका निमित्त उपाधि पाकर पानी गर्म हो रहा है वहाँ यह भी निरखा जा रहा है कि अग्निका सब कुछ अग्निमे ही रहता है, अग्निसे बाहर अग्नि की गर्मी निकलकर नही भगती। और वहाँ केवल अग्निको निमित्तमात्र करके यह पानी अपनी शक्तिसे अपनेमे अपनेको गर्मरूप बना लेता है।

अग्निके प्रसगमे निमित्तनैमित्तिक प्रसार—यहाँ आप एक शका उठा सकते है कि अग्नि यदि यहाँसे ५-७ हाथ दूरपर है, उसकी गर्मी ५-७ हाथ दूर तक लगती है तो ५-७ हाथ दूर तक तो अग्निने अपनी गर्मी फेंकी या नही। जब होली जैसी आग रहती है तो लग-भग २० हाथ तक गर्मी फेंकती है। तो क्या अग्निने अपनी गर्मी फेंकी नही ? उत्तर यह है कि अग्नि अपनी गर्मी फेकती नही है। कितनी भी अग्नि जल रही हो, अग्नि जितनेमे है उतनेसे बाहर उसकी गर्मी नही फिकती है। होता क्या है कि जैसे अग्निका सन्निधान पाकर

बटलोहीका पानी गर्म हो गया, ऐसे ही अग्निका सन्निधान पाकर उस अग्निके पासके जो और स्कध है उन्हे आप सूक्ष्म कह लो, क्योकि आँखोसे दिखते नही है अथवा बड़े बडे नही दिखते, पर है स्थूल वे सब। तो अग्निका सन्निधान पाकर अग्निके निकटके स्कध गर्म हो गए। वे स्कध अपने आपके उपादानसे गर्म हुए है और उनका निमित्त पाकर निकटके स्कध गर्म हो गए, यो गर्म होते-होते ये १०-२० हाथ दूर तकके भी स्कध गर्म हो जाते है।

शब्दपरिणमनसे स्वातन्त्र्यकी झांकी—जैसे ये आवाजके तरग, ये शब्द वहीके वही आपके कानमे नही आ रहे जो हम मुखसे बोल रहे है, क्योकि जो हम शब्द बोल रहे है वे शब्द यदि किसी एक महाशयके कानोमे पहुच जाये तो बाकी पचासो महाशय तो बिना सुने ही बैठे रहेगे। आपके शब्द केवल एक व्यक्तिके कानमे चले गए, बाकी लोग क्या करे ? अरे ये शब्द सिर्फ एक ही दिशाको जाते, आपके आगे पीछे सभी तरफ बैठे हुए लोग ये निकले हुए शब्द कैसे सुन लेते है ? ये निकले हुए शब्द सिर्फ किसी एक व्यक्तिके पास नही पहुचते। इस लोकमे सर्वत्र भाषावर्गणायें भरी है और जब शब्द बोले जाते है तो उन शब्दोका निमित्त पाकर पासकी भाषावर्गणायें भी उसरूप परिणम जाती है। ये भाषावर्गणायें हम आप सभीके चारो ओर भरी पडी है। जो भी शब्द बोले गए है वे उनका सन्निधान पाकर ये भाषावर्गणायें उन शब्दोरूप परिणम जाते है और सब लोग उनको सुन लेते है। यहाँपर भी निमित्तनैमित्तिक सम्बध और वस्तुकी स्वतत्रता—इन दोनोका परिज्ञान एक साथ कर लिया जाता है।

निमित्तनैमित्तिक सम्बंध और स्वतंत्रकर्तृत्वका अविरोध—एक ही घटना क्या, सारी घटनाएँ ऐसी ही हो रही है। जो घटनाएँ स्वभावके विरुद्ध है उन सब घटनावोकी यही पद्धति है। चाहे वे पुद्गलकी घटनाएँ हो, चाहे जीवकी घटनाएँ हो, पर उपाधिको निमित्तमात्र करके प्रत्येक पदार्थ अपनी ही उपादान शक्तिसे स्वय स्वतत्र होता हुआ उन घटनावोरूप परिणम लेता है। यहाँ इस ही सिद्धान्तको प्रसगमे घटाते हुए बता रहे है कि यह जीव तो अपने भावो का कर्ता है और उस सम्वधमे आत्मा शरीरके ही अवगाह क्षेत्रमे अवस्थित कार्माणवर्गणाके योग्य पुद्गल स्कध अपने ही उपादान कारणसे कर्म पर्यायरूप परिणमन लेता है। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बध और कर्मका कर्ममे स्वतत्र कर्तृत्व जीवमे जीवका स्वतत्र कर्तृत्व—ये सब निर्विरोध सिद्ध हो जाते है, यह बात शकाके उत्तरमे कही जा रही है। जब यह शका उठायी गयी थी कि जब कर्म कर्मका कर्ता है, आत्मा आत्माका कर्ता है तो कर्मका फल आत्मा कैसे भोग सकता है और ये कर्म आत्माको फल कैसे दे सकते है। इस सम्बधमे सिद्धान्तसूत्र कहा जा रहा है। अब इसके आगेकी बात अगली गाथामे कही जायगी।

जह पोग्गलदव्वाण बहुप्पयारेहि खधणिव्वत्ती।
अकदा परेहि दिट्ठा तह कम्माण वियाणाहि ॥६६॥

कर्मोकी आठ मूल प्रकृतियां—जीवके साथ बन्धनको प्राप्त हुए कर्ममे कितनी विचित्रता होती है, जिसका वर्णन किया जाना अशक्य है, फिर भी थोडा दिग्दर्शन करनेके लिए कुछ बताया गया है। ये कर्म ८ प्रकारकी प्रकृति वाले है, कोई ज्ञानका आवरण करने वाले है, कोई दर्शनका आवरण करते है, कोई सुख दु खके कारण है। कोई श्रद्धा और चारित्रको बिगाडने वाले है, कोई शरीरमे रोकते है, कोई शरीरकी रचनाके कारण है, कोई ऊँच नीचके व्यवहारके हेतुभूत है, और कोई अभीष्ट विषयमे विघ्न डालने वाले है।

कर्मप्रकृतियोकी विविधता—ये प्रकृतियाँ ८ कही है, किन्तु ८ ही न जानना। जैसे ज्ञानावरणमे ५ प्रकारके ज्ञानको ढाकनेकी प्रकृतियाँ है, वहाँ भी केवल ५ न जानो, मतिज्ञान के ३३६ भेद है। इन ३३६ प्रकारसे होने वाले ज्ञानोपर ये आवरण करते है। यो ३३६ प्रकृतियाँ हुई और मतिज्ञानकी ३३६ ही प्रकृतियाँ न जानो, किन्तु जितने पदार्थोंका ज्ञान किया जा सकता है और न हो तो उतने मतिज्ञानावरण है। भटज्ञानावरण, पटज्ञानावरण, स्वानुभूत्यावरण आदि अनेक प्रकारके होते है। जितने मतिज्ञान हो सकते है उतने ज्ञानावरण नाम लेते जावो। तब समझ लीजिए श्रुतज्ञानावरण कितने है? अवधिज्ञानावरण, मन पर्यय-ज्ञानावरण, केवलज्ञानावरण कितने है? कितनी विचित्रता है? ऐसे ही ऐसे सभी कर्मोंमे जानना। यह तो हुई प्रकृतिकी बात।

कर्मस्थिति व अनुभागोकी विविधता—स्थितिकी विचित्रता देखो—कौन कर्म अधिकसे अधिक कितने काल तक बन्धनमे रह सकता है? जघन्यमे कितना और मध्यममे कितना? स्थितियोकी विचित्रता देखो, अनुभागोकी विचित्रता देखो। कमसे कम कोई एक अनुभाग रहता है, फलदानकी शक्ति, जिसका कुछ व्यक्त असर भी नही हो पाया और है शक्ति अनुभाग और अधिकसे अधिक इतना अनुभाग है कि यह जीव जड सरीखा अचेतन हो जाय और अनुभागकी डिग्रियाँ कितनी है? इसमे इसीसे अन्दाज कर लो, जैसे कोई ज्ञानी जीव किसी कर्म प्रकृतिकी स्थितिका खडन कर रहा है। मानो किसी कर्मकी १० करोड वर्षकी स्थिति काटना है तो उसमे जो उद्यम होगा तो ऐसा अन्दाज लगा लो कि मानो १ दिनमे करोड समय होते है। होते तो असख्यात है पर मान लो। अब करोड समयकी स्थितिको तोडना है तो उस तोडते हुएके प्रसगमे यह पद्धति बनती है कि मानो १० लाख अनुभागकी डिग्रियाँ खतम हो तब एक समयकी स्थिति खतम होनेका मौका मिलता है। यह बात ऐसी अदाज करानेके लिए कही जा रही है कि स्थितियोमे जितना मालूम होता है उनसे अनन्त-गुणाफल देने की डिग्रियाँ होती हैं। अनुभागकी विचित्रता देखो।

निषेकोकी विविध पिण्डरूपता—निषेकोकी विचित्रता देखो—कर्म बधते है—मानो एक समयमे ६३०० परमाणु बधे कर्मोंके। माननेकी बात है, बधते तो अनत है। उन ६३००

परमाणुवोकी स्थिति मान लो ६४ समय हुए तो १६ समय तक तो वे कर्म उदयमे आ नही सकते। यह आबाधाकाल है। अब उन ४८ समयोमे पहिले समयमे आने वाले प्रथम निषेक के परमाणु मान लो ५१२ आये तो दूसरे समयकी स्थितिके निषेक आयेंगे ४८०, तीसरे समयमे उससे भी ३२ कम, इस तरह ८ समयोमे ३२ कम लेते जाइए। जब ८ वा समय आयगा तो १६, १६ कम चलेंगे। ऐसे ८ × ६ = ४८ मे ८ गुणहानि हानि हुई और नाना गुणहानि हुई। तो अन्तमे कितना समय मिला उदयमे आनेके लिए? अन्तिम ८ समय के परमाणुवोका जोड है १०० और एक एक कम हो गये तो अन्तमे कितने हो गये? बिल्कुल थोडे परमाणु आये, लेकिन जो अधिक परमाणु उदयमे आये उनमे फल देनेकी शक्ति कम है और जो निषेक कम परमाणुवोका बना, उसमे उन ५१२ वालोसे कई गुणी अनुभाग शक्ति है। आज विज्ञान सिद्धान्त भी यही कहता है कि जितना छोटा एटम बनेगा उतनी शक्ति बढेगी। कैसी कैसी विचित्रताए है और शरीर-रचनाको देखकर लोगोकी आदत चाल-चलन व्यवहार इच्छा निरखकर यह बात अधिक स्पष्ट हो जाती है कि कर्म भी कितने विचित्र हुआ करते है? इतनी विचित्रता कर्मोंमे किसने उत्पन्न की है? इस आशकाका उत्तर इस गाथामे किया गया है।

अकृत रचना—जिस प्रकार बहुतसे पुद्गलद्रव्योका बहुत प्रकारसे जो उनकी रचना हो रही है वह किसी भी परके द्वारा नही की हुई देखी गई है, इसी प्रकार कर्मोकी भी बात जानना। करना किसका नाम है? जीवने भाव किया। उन विभावोका निमित्त पाकर कार्माण वर्गणा यदि कर्मरूप बन गईं तो इसमे करना क्या हुआ? जीवने उनमे क्या किया? वे हो गईं निमित्त पाकर स्वय कर्मरूप। यह बात यहाँ भी घटा लो। कुम्हारने घडा बनाया, कुम्हार जीव कितना है भीतर निरखो। उस जीवने इच्छा की, और अपने प्रदेशोमे इच्छाके अनुकूल योग हलन-चलन किया, इतने तक ही तो वह करने वाला हुआ, इसके आगे कुछ नही किया। अब ऐसा यहाँ हो बैठा तो ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक सम्बध है कि शरीर भी हिल उठा और उस अनुकूल फिर उस प्रसगमे फसी हुई मिट्टी भी घडेरूप परिणम गई। कुम्हारने वहाँ क्या किया? जीवकी भीतरकी रचना निरखकर सोचियेगा सब। कोई लोग विवाह-बारातमे फटाका छुडवाते है। उस फटाकामे ऊपरी हिस्सेमे फटाका घालने वालेने आग धर दी, इतना भर ही उसने किया, वस्तुतः उसने इतना भी नही किया, पर व्यवहारसे मान लो कि उसने आग धर दी, इसके बाद फिर उस फटाकेका जो कुछ भी हुआ वह फटाका घालने वाले पुरुषने नही किया, वह फटाका अपने आप ही चल गया। वह घालने वाला पुरुष उस फटाकेसे चिपककर फोडता हो, ऐसा नही है।

अन्यके द्वारा परमे अकर्तृत्व—भैया! सभी बातोमे घटा लो, आप हम किन्ही भी

बाहरी पदार्थोंमे कुछ नही करते, पर मान रखा है सब कुछ कि यह मैंने किया, इसने किया। इस ही विकल्पका तो सारा विवाद है परस्परका। घरमे, समाजमे, देशमे, दुनियामे मैंने किया, इसने किया, इसी बातका सारा विवाद है, और किया कुछ नही है। बात कुछ नही है और झगडा इतना बढ गया है। अच्छा यही देख लो अपनी सृष्टिमे, इस जीवको बडे विचित्र विचित्र शरीर मिलते रहते है। मगरमच्छ, केचुवा, हाथी, घोडा, कीट, पतिंगे, न जाने किस-किस तरह के विचित्र शरीर इस जीवके है ? इन विचित्र शरीरोको किसने बनाया, जीवने क्या किया, जरा भीतरी दृष्टिसे इसपर विचार तो कीजिए। जीवने कुछ नही किया। उसने तो केवल मिथ्याभाव किया, परको यह मैं हू, इतना माननेका भाव किया।

भावात्मक अपराध—क्यो जी, परधनके प्रति यह मेरा है ऐसा मनमे कोई माने और आपकी चीज न छीने, आपको न छेडे तो आप उसे बडा अपराधी तो नही मानते। विकल्प कर रहा है, सोच रहा है सोचने दो। आपकी चीज छीने झपटे तो आप उसे डाटेगे। लेकिन यहाँ तो देखो—केवल भाव ही किया और कुछ किया नही, न कर सके, लेकिन दण्ड इतना मिला है कि ऐसे विचित्र शरीरोमे फसना पडा है, और इतना ही नही, शरीरोको छोड-छोड-कर विचित्र नये-नये शरीरोको धारण करता रहेगा, यह कितना बडा झगडा है ? लोग तो हवेली बन गई, बढिया आँगन बन गया, बैठक बन गयी, तो बडा सन्तोष मानते है, अब हमने सब कुछ कर लिया, अब हम निरापद हो गये। अरे यह शरीरोंके मिलते रहनेका झगडा तो अभी लगा हुआ है। अभी खैर नही है। चाहे महल बनवा लो, चाहे बडे-बडे मिल कार-खाने खोल लो, पर अभी खैर नही है। इतना बडा झगडा, इतनी बडी विपदा इस जीवपर पडी हुई है केवल एक मिथ्या कल्पनायें बनानेके अपराधमे।

भावापराधका कठोर दण्ड—कोई न कुछ सा अपराध करे और उसे आप दड दे दे तो लोग आपका नाम धरते है, न कुछ सी बात पर इसे पीट दिया, यह कितना बडा आपने अन्याय किया, आप बडे जालिम हो, यो धिक्कार देते है और यहाँ तो किसीने कुछ छीना नही, कुछ नही किया, अपने ही भीतरमे ऐसा भाव होने लगा कि यह शरीर मैं हू, इतनी सी बातका इतना कठोर दड मिला कि इस लोकमे कोई प्रदेश ऐसा नही बचा जहाँ यह जीव अनन्त बार पैदा न हो चुका हो ? तब समझ लीजिए कि यह छोटासा अपराध नही है, यह सर्वाधिक महान अपराध है इस जीवके क्लेशके लिए। परद्रव्योको ऐसा स्वीकार करना कि यह मैं हू, लो यही महान अपराध हो गया। जिसके फलमे यह महती विपदा भोगनी पडी है, कहा सन्तोष करते हो ? किस कार्यकी सिद्धिमे तुम सन्तुष्ट होकर अपनेको कृतार्थ मानते हो ? निजस्वरूपकी सुध न हो, दृष्टि न हो तो सब बेकार जीवन है।

कर्मोंकी प्राकृतिक विचित्रता व एक दृष्टान्त—यह कर्मोंकी विचित्रता न किसी दूसरे

जीवने की और न खुद मैने किया। जो मुझमे बँधे हुए कर्म है उनकी विचित्रता मैने उत्पन्न नही की। मुझे तो इनका पता भी नही रहता, मुझे तो ये दिखते भी नही। हा आगमबलसे हम आपने जान लिया है, पर जब आगम न हुवा था तबकी बात सोचो। कुछ कर्मोंकी बात जानते थे क्या? हम उनमे कुछ नही करते, वे होते है अपने आप। हा हम निमित्त अवश्य है। जैसे सध्या कालके समय अथवा प्रात काल चन्द्र अथवा सूर्यका सन्निधान पाकर बादल लाल पीले हो जाते है तो वह ललाई किसने किया? न इन्द्र आकर करने गया, न कोई राजा करने गया, न सूर्य, चन्द्र आदि करने गये, वह बिम्ब तो अचेतनकी भाति है, किसी परद्रव्यमे कुछ बात करनेका जिनमे आशय नही बन रहा वे तो अचेतनकी तरह है। भले ही एक इन्द्रिय जीव है ये चमकीले पृथ्वीकाय, एकेन्द्रियका जिसके लिए है उसके लिए है। यह विचित्र बादल की ललाई किसीकी बनाई हुई नही है, यह तो किसी दूसरेका योग्य निमित्त पाकर अपने आप हुई है अथवा बरसातके दिनोमे कभी-कभी बादलपर अर्द्धवृत्ताकार इन्द्रधनुष बन जाता है। उसमे कैसे सीमित रग आ जाते है, यह सब किसने किया? योग्य वातावरण पाकर स्वयमेव उसरूप परिणम गया ना।

प्राकृतिक विचित्रतापर अन्य दृष्टान्त—और भी देख लीजिए भैया! देहरादून मसूरी के पासकी जो बरसाती नदियाँ है उनमे कैसे विचित्र गोल-मटोल बढिया आकारके पत्थर है? उनको किसने बनाया? अरे योग्य सन्निधान होनेपर वे स्वय उस आकारमे परिणम गये। किसी ने प्रोग्राम रचा हो उनके बनानेका और फिर बनाया हो, ऐसा तो नही है। उन पत्थरोमे वह विचित्रता तो अपने आप आयी। तो जैसे ये अनेक पुद्गल स्कध अन्य कर्ताकी अपेक्षा बिना स्वय उत्पन्न हो गए है, निमित्तके सन्निधानकी बात बराबर है, पर जो परिणाम है उसके भीतरकी बात तो निरखो। निमित्तभूत पदार्थोंने स्वय अपना परिणमन तो नही किया। तो जैसे ये अनेक पुद्गलस्कधके विकल्प भेदप्रकार अन्य कर्तासे निरपेक्ष होकर, अन्य कर्ताके बिना उत्पन्न हो जाते है इस ही प्रकार योग्य जीवपरिणामका सन्निधान पाने पर ये कार्माण, ये ज्ञानावरण दर्शनावरण आदिक बहुत प्रकारोके कर्म बिना अन्य कर्ताके अर्थात् स्वय उपादान कर्तासे ही ये सब कर्म स्वय उत्पन्न हो जाते है।

तत्त्वज्ञान—भैया! वस्तुगत सीमाकी दृष्टि बन जाना यही तो तत्त्वज्ञान है। किसी भी परिस्थितिमे आप कही कुछ भी बाहरमे परिणाम नही करते है, अपने जीव तत्त्वको सभालो और उस ही को निरखकर देख लो, मै किसी भी परमे कुछ करता हू क्या? केवल विकल्प इच्छा योग करता हू। हम योग और उपयोगके कर्ता है, इससे आगे जो कुछ होता है अपने आप होता है। हाँ इसमे निमित्त जीवका मिथ्यात्व रागादिक परिणाम है और ये मिथ्यात्व रागादिक परिणाम जीवमे जीवके उपादानसे हुए है। ये हुए है इस ही स्थितिमें

कि यह जीव निज कारणसमयसारकी दृष्टिसे रहित है, इसके अपने सहजस्वभावका श्रद्धान नही है, प्रतिभासात्मक सच्चिदानन्दस्वभावका इस जीवको ज्ञान नही है, इस कारण जीवमे मिथ्यात्व रागादिक परिणाम उपजते रहे आये है। अब उनका तो पाया निमित्तमात्र और यहाँ कार्माण वर्गणाये योग्य पुद्गल स्वय कर्मरूप बनी तो उपादान जीवने नही किया। जीव उन कर्मोरूप नही परिणमा और यह उन परिणामोका निमित्त पाकर मूलभेद उत्तरभेद नाना प्रकृतियोमे ये कर्म परिणम गये है।

चेष्टाओमे अकर्तृत्व—वस्तुस्वातन्त्र्य व निमित्तनैमित्तिक सम्बधकी पद्धतिकी बात अपनी हर एक बातमे घटाते भी जाइये। यह तो कर्मोकी बात कही। हाथ उठाना, हाथ जोडना, अगुली मटकना, जिह्वा, ओठ चलाना, पलक उठाना, गिराना, कुछ भी तो चेष्टा यह जीव नही किया करता। जीव तो अत निर्दोष केवलज्ञान इच्छा और योग प्रयत्न करता है। वह प्रयत्न भी अपने प्रदेशोमे चलने चलानेरूप क्रिया। इस जीवको चाहे उपचारसे कर्ता कह लीजिए, पर इसने निजस्वरूपसे बाहर कुछ नही किया। और देखो सिस्टेमेटिक हाथ पैर हिलते, सारी बातें ढगसे हो रही है, पर जीव यह कुछ नही कर रहा है। केवल जीवके भावो का निमित्त पाकर यह सब स्वय हो रहा है। ऐसे इस जीवकी भीतरकी रचनाको ज्ञानी सत यहा बतला रहे है कि कर्मोकी यह सारी विचित्रता जीवके भावकर्मसे स्वय हुई है।

जीवा पोग्गलकाया अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा।
काले विजुज्जमाणा सुहदुक्ख दिति भुजति ॥६७॥

भोक्तृत्व अन्तराधिकार—निकटपूर्वमे यह आशका की गयी थी कि कर्म यदि कर्मको करते है और आत्मा आत्माको ही करता है तो कर्म उसे फल कैसे देता है, और आत्मा कर्म का फल कैसे भोगता है? इस आशकामे दो भाग है—एक कर्तृत्वके विषयमे शका और एक भोक्तृत्वके विषयमे शका। कर्तृत्व सम्बधी शकाका समाधान कर दिया गया है और भोक्तृत्व-सम्बधी शकाका समाधान किया जा रहा है अथवा इस ग्रथमे पूर्वरगके बाद एक अधिकार-सूचक गाथा कही गयी थी कि यह जीव है, चेतयिता है, उपयोगविशेषित है, कर्ता है, भोक्ता है, प्रभु है, कर्मसयुक्त है आदि। उन अधिकारोमे कर्तृत्व अधिकार तो यहा समाप्त किया गया है, अब भोक्तृत्व अधिकारकी बात कह रहे है।

व्यवहारका अविरोध—इस गाथामे यह बात दिखायी है कि निश्चयदृष्टिसे जीव जीव का कर्ता है और कर्म कर्मका कर्ता है, फिर भी व्यवहारसे जीव कर्मप्रदत्त फलका भोक्ता होता है, इस बातका विरोध नही है। जीव और पुद्गलकाय, जीव और कर्ममे अन्योन्यावगाहग्रहणसे प्रतिबद्ध है अर्थात् इनका परस्परमे एक क्षेत्रावगाह और निमित्तनैमित्तिक बन्धन है। जब ये कर्म अपने समयपर विमुक्त होते है तो सुख दुःखको देते है और आत्मा सुख दुःखको भोगता

है। निश्चयदृष्टि और व्यवहारदृष्टिके कथनका क्या अंतर है ? इसको जरा एक दृष्टांतसे सुनिये।

नीलरंग व भीतका सम्बंधव्यवहार—यह भीत नीले रगसे पुती हुई है। लोग क्या कहते है कि इस नीले रगने भीतको नीला कर दिया, पर यथार्थतया यह तो बतावो कि नीले रगमे नीले रगने वह नीला रग किया या भीतमे ? नीला रग जो पहिले डिब्बीमे एक ढेलेके रूपमे था अथवा एक पाउडरके रूपमे था, अब वह नीला रग एक बहुत पानीमे आकर उस पानीका निमित्त पाकर और कूची वगैरा साधनोका निमित्त पाकर वही रग जो ढेलेके रूपमे था वह अत्यन्त पतला बनकर इतनेमे फैल गया। इस नीले रगने भीतको नीला नही किया। इस रगके भीतर भीत तो वहीकी वही है। इस रगने रगको ही नीले विस्तारमे फैला दिया, लेकिन व्यवहारदृष्टिसे तो यह कहा जा रहा है और लोग इसे बहुत ठीक मानते है कि हाँ इस नीले रगने सारी भीतको नीला बना दिया। क्या किया इस नीले रगने ? नीले रगको नीला किया, इस बानका विश्लेषण यदि करायें तो कुछ थोडासा कठिन पडता है।

नीलका नीलमे सर्वस्व—नीलेने नीलेको नीला किया, तो वह नीला दूसरा कुछ है क्या जिसको नीला किया और वह नीला दूसरा दूसरा कुछ है क्या, जिसने नीला किया। कोई अन्य चीज है क्या ? नही है। यह नीला रंग किसका है ? लोग कहेगे कि यह भीतका है नीला रग। क्या यह भीतका है नीला रग ? यह तो नीले रगका नीलापन है, भीतका नही है, वह नीलापन उसी नीले रगका है। इस नीले रगने अपनेको भी कुछ नही किया। यह था पहिले और भाँति, पर्यायरूपसे अब हो गया और भाँति।

अन्यका अन्यपर मोहपरिणमनका अभाव—अब जरा और उतरकर देखो। लोग कहते है कि इसने अपने पुत्रपर बडा मोह कर रक्खा है। क्या इस पिताके जीवमे ऐसी सामर्थ्य है कि वह इस दूसरे जीवपर मोह कर सके। किसी भी वस्तुकी कोई भी परिणति उस वस्तुके प्रदेशके बाहर त्रिकाल भी नही हो सकती। यह एक अमिट सिद्धान्त है। कही घटा लो। यह पिताका जीव जितना है। विस्तारमे उस जीवमे जो भी तरग उठेगी वह तरग उन प्रदेशोमे ही उठेगी। इसका मोहरूप परिणमन होता है तो इसके प्रदेशोमे वह मोहरूप परिणमन होता है। तब इसने अपने आपमे मोहरूप परिणामको किया और भोगा। दूसरे जीवपर मोह नही किया, न दूसरे जीवपर मोह भोगा। किन्तु कोई पूछे कि जीव तो न्यारे सभी है। इसी जीवके बारेमे इसी पुत्रके सम्बधमे अपना मोह किया, इस प्रकारका व्यवहार क्यो बना ? अन्य जीव पर क्यो व्यवहार नही बना ? उसका कारण यह है कि इस पिताके जीवके मोहरूप परिणामका आश्रयभूत यह पुत्र जीव है, इसलिये यह व्यवहार बन उठा कि इसने पुत्रपर मोह किया। कोई किसीपर मोह नही कर सकता, न प्रेम कर सकता, न द्वेष कर सकता। जो कोई जो कुछ कर रहा है अपने आपमे विकार परिणाम कर रहा है। पर मेरा जो आश्रयभूत है, जिस पर-

को विषयमे लेकर यह मोहपरिणामकी तरग उठती है, उपचार उसीपर किया जाता है कि इसने इसपर मोह किया। निश्चयसे बात ऐसी है और ऐसी ही स्वतन्त्रता कर्मकी कर्मरूप परिणमनमे है। यहाँपर निमित्तकी बात बराबर मानकर भी अतः की बात निरखनेपर अतः के नाते ही पूरे जोरसे निरखा जाय तो बात सम्मत हो जाती है।

अन्तः स्पष्ट निर्णय—भैया! अन्य धर्मका विरोध करके देखनेपर भी बात ठीक नही जमती और जिस दृष्टिसे देख रहे हैं, उस दृष्टिका जोर न देकर भीतरमे सशक होकर कि वह भी तो एक दृष्टि है, हम ऐसा जाननेसे कुछ रुकें, इसमे भी ज्ञानकी दृढता नही आती। हम दाहिने तरफकी भीतको देखें तो दाहिने तरफकी ही सारी बातें नजरमे आयेगी ना? और कोई ऐसी शका करे कि दाहिनी भीत ही क्यो देख रहे, यह भी तो है, अरे है ठीक है, उसे जान लिया, समझ लिया, हमको यहाँके देखनेकी अभिरुचि है। कितना अच्छा रग पुता है, कितने अच्छे चित्र लगे हैं तो हम इनको देख रहे है। पर, दृष्टिमे शका रखना और परकी दृष्टिका विरोध करना—ये दोनो तत्त्वज्ञानके बाधक है। तो यह जीव और पुद्गलकाय निश्चयदृष्टिसे अपने आपमे अपना ही परिणमन करता है, फिर भी व्यवहारदृष्टिसे देखा जाय तो यह अन्योन्यावगाहसे प्रतिबद्ध है, यह उस बन्धनमे है और जब यह पुद्गलकाय अपना समय पाकर वियुक्त होगा, निकलेगा, उदित होगा, तो यह सुख दुःखको देता है और आत्मा कर्मोंका फल प्राप्त करता है।

जीव और कर्मका परस्पर अवगाह व बन्धन—जीवमे मोह रागद्वेपका चिकनापन है और पुद्गल स्कधोमे भी स्वभावत स्निग्ध गुण है। यह केवल एक किसी नातेके साथ समझाने के लिए कहा गया है। कही यह बात नही है कि कर्म वर्गणाके स्निग्ध गुणके कारण जीवमे कर्मबन्ध हुआ। उनका कर्मोंकी स्निग्धताका निमित्तनैमित्तिक सम्बध नही है। वहाँ तो जीव परिणामका और उस वर्गणामे अन्त रहने वाली योग्यताका निमित्तनैमित्तिक सम्बध है, लेकिन एक बात प्रसिद्ध है व्यवहारमे—देखे हुए पुद्गल स्कधोंके बन्धनमे यह चिकना, रूखा गुणके कारण बँध जाता है, तो उस बन्धनको अलकार रूपमे भी समझनेके लिए यह कहा जाता है कि जीवमे भी द्वेपका रूखापन भरा है, रागकी चिकनाई भरी है और इस पुद्गलमे भी रूखापन और चिकनाई स्पष्ट है। लो यो बन जाता है, यह अलकारिक कथन है। तात्पर्य यह लेना कि मोह रागद्वेप विभाव परिणामोका निमित्त पाकर ये कार्माणवर्गणायें कर्मरूप हो जाती है। जैसे कि ये परमाणु परस्पर एक दूसरेमे अवगाहरूपमे प्रतिबद्ध है ऐसे ही यह जीव और कर्म परस्परमे एक दूसरेके अवगाह रूपसे प्रतिबद्ध है।

कर्मफलोपभोग—जब ये बद्ध कर्म जीवसे वियुक्त होते है अर्थात् जीव प्रदेशमे से ये कर्म उदित होते हैं, निकलते है तो इन कार्माणद्रव्योका कर्मत्व दूर होता है तो ये कर्म कहलाते

है उदित प्रच्यवमान । उदयमे आकर निकले हुए ये कर्मप्रच्यवमान और-और प्रकारसे भी होते है। निर्जराके रूपसे प्रच्यवमान और यही है उदितरूपसे प्रच्यवमान। तो जब उदयमे आकर ये निकलते है तो निश्चयसे यह जीव सुख दुःखरूप अपने आत्माको भटकाने वाला होता है और व्यवहारसे इष्ट अनिष्ट विषयका निमित्तमात्र होनेसे कहा जाता है कि ये पुद्गल वर्गणायें इस जीवको सुख दु खरूप फल दिया करती हैं। निमित्तनैमित्तिकताके कारण पदार्थमे एकका दूसरेमे कर्तृत्व भोक्तृत्व स्वामित्व आदि सम्बध बताया जाता है, वह सब उपचार कथन है। अब कर्म कर्मरूप परिणमते है निश्चयसे ऐसा होनेपर भी उस सम्बधमे जैसे कर्तृत्वकी बात कही थी कि जीव उनका कर्ता है इसी तरहसे यहाँ भी बात लो कि कर्म जीवको फल देते है, जीव कर्मके फलको भोगते है। जिस निमित्तसे फल मिला उस निमित्तपर यह व्यवहार किया जाता कि उसने फल दिया।

उपादानोपादेय भाव व निमित्तनैमित्तिक सम्बंध--गाली देने वालेने दूसरे पुरुषको यदि क्रोध उत्पन्न कर दिया तो यह उपचार कथन है कि इस गाली देने वालेने इस जीवको क्रोध उत्पन्न कर दिया। वस्तुत' बात ऐसी नही है। उस क्रोधीने अपनी क्रोधपर्यायमे अपनेको ही क्रोधी बनाया, ऐसे ही कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर जीवने जो सुख दु ख आदिक फल भोगा है उसमे ऐसा उपचार किया जाता है कि कर्मने जीवको फल दिया है। निमित्तनैमित्तिक सम्बधको कोई खण्डित नही कर सकता। और फिर भी प्रत्येक उपादान अपने आपके स्वरूप मे अपनी योग्यतासे परिणमते है, इसका भी कोई खण्डन नही कर सकता है, और इस निर्णय मे फिर यह बात घटित हो जाती है कि जीवने जीवको ही किया और जीवने कर्मको किया। कर्मने कर्मको किया, कर्मने जीवको फल भी दिया। ये दोनो बाते जिस विशाल ज्ञानमे विरोध को प्राप्त नही होती है वह एक स्याद्वादकी कृपासे ही विशाल ज्ञान प्राप्त होता है।

सुख दुःखकी विकाररूपता—इस जीवमे जो सुख दु.ख परिणाम होता है ये दोनोके दोनो विकार है, इनमे से सुख उपादेय है और दु ख हेय है, ऐसा निर्णय न करो, ये सुख दु ख दोनो ही हेय है। ससारके सुख आकुलता बिना नही भोगे जाते है। निराकुलता रूप तो एक आत्मीय सहज आनन्द है। उससे विपरीत आकुलताके उत्पादक ये हर्ष विषादरूप बाह्य इष्ट अनिष्ट विषयोकी प्रीति रूप जिसका विपरीत रस है, आत्मीय शान्तिसे विरुद्ध जिसका रस है, ऐसे सासारिक सुख दु ख यह जीव अपने स्वरूपकी दृष्टि पाये बिना भोगता चला आ रहा है।

आत्मवैभव—सबमे उत्कृष्ट वैभव क्या है ? आत्मदृष्टि। इसके मुकाबले बाहरमे कुछ और भी वैभव है क्या ? एक अपना साहसपूर्वक निर्णय कीजिए। जहाँ अपना उपयोग ... विश्राम को प्राप्त होता है वही तो एक सर्वोत्कृष्ट ग्रहण करनेकी चीज है। बाह्य वैभव जड़

सम्पदा ये सब पौद्गलिक ठाट-बाट इनमे फसकर इस जीवको चैन मिलती हो तो अपने अनुभवसे सोचो। और कभी कुछ थोडी बहुत चैन मिले तो समझिये कि बहुत बडे क्लेशसे हटकर कुछ कम क्लेशमे आये है। वस्तुत वह चैन नही है। जैसे किसीको बहुत बुखार हो, मान लो १०४ डिग्री बुखार है और उतरकर १०० डिग्री बुखार रह जाय तो वह कहता है कि अब मुझे चैन है। वस्तुत चैन नही है, अभी तो दो डिग्री बुखार है, पर वह कहता है कि अब हम चैनमे है। इस ही प्रकार ये ससारके जीव विपयोकी लालसासे दु खी होते जा रहे है। कदाचित् कोई किसी विपयमे लालसा कम हुई तो उस प्रसगमे यह व्यवहार किया जाता है कि मुझे कुछ शान्ति मिली है। वस्तुतः शान्ति तब ही है जब इच्छावोका अभाव हो जाय। ये इच्छाये इस जीवको चैन नही उत्पन्न करने देती है। किसी समय किसी क्षण इन विकारोसे उपेक्षा भाव कर देवे और उस उपेक्षा भावके कारण अपने आपके स्वरूपकी स्मृति जगे, जगेगी ही तो उस स्वरूपके अनुभवमे जो आनन्द उत्पन्न होता है वास्तविक आनन्द वह है।

अन्त कल्याण—अब यदि आप गृहस्थीके जालमे फसे है तो लोगोकी जानमे तुम फसे ही बने रहो, नही तो लोग तग करेंगे। कोई ऐसा उपाय रचेंगे लोग कि वे आपको हैरान करेंगे। तो तुम सब लोगोकी जानमे फसे तो बने रहो, लेकिन भीतरमे गुप्त होकर अपना काम कर जावो। इसी उपायमे खैर है और उपायोमे तो विपत्ति है। दूसरा उपाय करना हो तो फिर एकदम प्रकट चौडेमे आकर करो, गृहस्थीमे रहकर और बडी ऊची विरागताकी बाते, परिवारके लोगोको जनाये तो घरके लोग तो यही समझेंगे कि ऐसा कहनेकी इनकी आदत है, है कुछ नही। और इससे लाभ क्या? अपना काम अपनी समझमे गुप्तरूप से ही अपने अन्तरङ्गमे करते जाइये। इसे कौन रोकता है? अभेदभासना, स्वरूपदृष्टि सब कुछ उत्सुकता बनाये रहे और इस ही ओर अपना कदम बढाते रहे, बाहरके जीवोमे अधिक पडनेसे कुछ लाभ नही है। यह जीव अपने कियेका फल स्वय भोगता है और जिस प्रकार कर्मोका उदय हुआ है उस अनुरूप भोगता है। व्यवहारसे यह जीव कर्मफलको भोगता है, निश्चयसे अपने परिणामोको भोगता है। भोगनेके सम्बधमे दोनो दृष्टियोसे यह निर्णय बनाइये और विभावफल भोगनेसे बचनेका अन्तरङ्ग पुरुषार्थ कीजिए।

तम्हा कम्म कत्ता भावेण हि सजुदोध जीवस्स।
भोत्ता दु हवदि जीवो चेदगभावेण कम्मफल ॥६८॥

कर्तृत्व व भोक्तृत्वके व्याख्यानका उपसंहार—जीव किसका कर्ता है और किसका भोक्ता है—इन दोनो विपयोका वर्णन करके अब इस गाथामे कर्तृत्व और भोक्तृत्वकी व्याख्या का उपसहार किया गया है, जब कि निश्चय और व्यवहारनयके विभागसे यह सिद्ध हो गया

कि जीव और कर्म परस्पर एक दूसरेके उपादान कर्ता नही है। निश्चय तो एक दूसरेका उपादान कर्ता मानता ही नही है। व्यवहारनयसे भी उपादान कर्ता एक दूसरेका नही कहा गया है। इतना तो पूर्ण सुनिश्चित है। कोई द्रव्य किसी द्रव्यका उपादानकर्ता नही होता है, फिर भी यह बात भी नही टाली जा सकती है कि किसी द्रव्यमे जो विरुद्ध विभाव परिणमन होता है वह किसी परके सन्निधान बिना नही होता है, वहाँ निमित्त पाकर ही विभाव परिणति होती है।

नयविभागसे कर्तृत्व और भोक्तृत्व—इन दोनो नयविभागोसे यह निष्कर्ष निकला कि कर्म उपादान दृष्टिसे अपने परिणमनका कर्ता है। कार्माणवर्गणामे कर्मत्वरूप परिणमन का कर्ता निश्चयसे कर्म है और ये कर्म व्यवहारदृष्टिसे जीवके रागद्वेष आदिक भावोका कर्ता है। इस प्रकार कर्म अपना तो निश्चयसे और जीव परिणामोका व्यवहारसे कर्ता है। जीव निश्चयसे अपने भावोका कर्ता है और व्यवहारसे द्रव्यकर्मका कर्ता है। कर्ताके विषयमे एक दूसरेसे परस्पर सम्बन्ध जोड दिया गया है किन्तु भोक्ताके बारेमे किसी भी नयसे कर्मका जीव से सम्बन्ध नही जोडा जा सकता है। जैसे क्या यह कहा जा सकता है कि कर्म अपनेको भोक्ता है और यह कर्म किसी जीवके परिणामका भोक्ता है। नही, क्योकि कर्म अचेतन है और निश्चयसे भी कर्ममे व्यवहारसे भी परके भोक्तृत्वकी बात नही लादी जा सकती है।

जीवके अकर्तृत्व व भोक्तृत्वके सिद्धान्तकी उपपत्ति—देखो ना भैया! इसी कारण साख्यसिद्धान्तमे जीवको अकर्ता तो माना है, पर अभोक्ता नही माना है। जीव रागादिक भावोका करने वाला नही है। साख्य सिद्धान्तकी दृष्टिसे इसको निरखिये। जीव रागद्वेषादिक भावोका कर्ता नही है क्योकि रागद्वेषादिक भावोको करने वाली प्रकृति है। वह प्रकृति क्या स्वरूप रखती है? इसका स्पष्ट वर्णन तो वही नही मिलता। हाँ जैनसिद्धान्त इस प्रकृतिको एक कार्माणवर्गणाके रूपमे पुद्गलद्रव्यको एक विभाग मानता है और जैन सिद्धान्तमे प्रकृतिको व्यवहारसे रागादिक परिणामोका कर्ता कहा है। इसी मर्मके कारण एकान्ततः प्रकृति ही कर्ता है ऐसा मान लिया जा सकता है, पर जब भोगनेका प्रस्ताव आया तब उस समय कर्म को भोगने वाला नही कहा जा सकता।

दार्शनिकतामे नितान्त निराधारताका अभाव—भैया! एकदम गप्प कही फबती नही है। प्रकृतिको कर्ता कह दिया है रागादिक भावोका यह तो कुछ खपसा गया, क्योकि व्यवहारदृष्टिसे कर्म जीवके रागादिक भावोका कर्ता है। कुछ थोड़ी सी गुञ्जाइश देखकर हठ बनानेकी बात तो थोडी चल भी सकती है किन्तु जहा कुछ भी नही है, तिल भी नही है तो ताड कैसे प्रसिद्ध किया जा सकता है। और ऐसा प्रसिद्ध करनेमे बात यो नही फब सकती। मान लो कह दिया जाय कि ये कर्म सुख दु ख फलको भोगने वाले है। अच्छा ठीक है, पर

सुख दुःख फलका कर्म भोक्ता है तो यह कर्म ही करे कुछ उद्यम अगर इसे दु खसे बचना है। हमारा क्या उसमे बिगडा और सुनने वालोको भी रुचिकर नही हो रहा है कि कर्म रागादिक भावोका अथवा सुख दुःखका भोगने वाला है, इस पर कोई जरा भी दिलचस्पी विश्वास नही रख सकता। अतएव कर्म एक भी नयसे सुख दुःख परिणामको भोगने वाला नही है।

कर्तृत्वका कारण—यह कर्तृत्व जीवमे क्यो आया ? इसका कारण है सयुक्तता। अच्छे कुलके सदाचारी बालकके जैसे विरुद्ध व्यवहार करनेका साहस बन जाय तो जैसे यह बात किसी दुष्टसगके बिना नही हो पाती है इस ही प्रकार जाननहार जिसका स्वभाव है, जिसका बहुत निर्मल पवित्र कुल है ऐसा ज्ञायकस्वभाव इस आत्मतत्त्वमे विपरीत भाव आ जाय, रागद्वेष ये ही दुराचार है जीवके, तो ये दुराचार किसी परके सयोग बिना नही आ सकते है, जीवका सदाचार है केवल ज्ञातादृष्टा रहना। कोई अन्तरङ्गमे राग विरोध वाली तरग नही उठती। इसके विरुद्ध जो भी परिणमन होता है वह जीवका दुराचार है, समस्त दुराचार परप्रसगमे हुआ करते है।

विपरीत आचरण—लोग मानते है कि हम अपने घरमे रहते हैं, कमाते है, अन्याय नही करते, रोज ताजा बनाते है, कोई अभक्ष्य भी नही खाते, मौजसे रहते है, अपने कामसे काम है तो मै तो बडे सदाचारसे रहता हू। अरे किसी भी परपदार्थमे ममता होना, राग जगना यह जीवका दुराचार है। जब आध्यात्मिक दुराचार वाले जीवोका समूह जुड गया है तब उनके बीचमे दुराचारकी स्थूल और व्यावहारिक व्याख्या बनी है। हिसा करना, झूठ बोलना, कुशील सेवन करना, परिग्रहमे तृष्णाकी बुद्धि रखना, ममता करना—ये सब दुराचरण है तो ये तो दुराचरण है ही, पर इस आत्माके कुलकी बात तो निरखिये। इस आत्माके कुल मे क्या करना आत्माके योग्य है ? जो सिद्ध भगवान करते हैं, जो अरहत भगवान करते है वही योग्य काम है। इससे पहिले छद्मस्थ अवस्थामे और अविरत मिथ्यात्व अवस्थामे जो भी व्यवहार विचार उठता है वह इस ब्रह्मस्वरूपके विनाशके मुकाबलेमे सब विपरीत आचरण है। इस आत्माका यह आत्मा ही सर्वस्व है—इस ज्ञानका ज्ञान रखना ही सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ है।

आत्माका पितृत्व—आत्माका पिता आत्मा, आत्माका पुत्र आत्मा। आत्माकी रमणी आत्मा, आत्माका वैभव आत्मा। यह तो स्वय प्रभु है। पिता कहते है उसे जो रक्षा करे। पाति इति पिता। पा रक्षणे धातु है जिसका अर्थ रक्षा करना है, जो रक्षा करे उसका नाम पिता है। मेरी आत्माकी रक्षा करने वाला कोई दूसरा हो सकता है क्या ? खूब हिल-मिलकर रहकर सब तो निरख लिया होगा। आपका ज्ञान काबूमे न रहे तो आप दु खी हो जाते है। आपका ज्ञान आपके सयममे रहे तो आप दु खी नही रहते। किसी पुरुषकी चित्तवृत्ति बिगड जाय, जिसे लोग कहते है पागल होना, ऐसा पागलपन आ जाय तो उसके घरके लोग रिश्ते-

दार सब कोई कितना प्यार करके समझाते है, गोदमे बैठालकर सिरपर हाथ फेरकर अपने हृदयसे लगाकर बडी प्रेमभरी बातोसे उसका क्लेश दूर करना चाहते है, पर वहाँ क्या असर होता है ? उसका तो ज्ञान बिगड गया, पागलपन छा गया, अब वह कष्टमे है । अपना ज्ञान अपनेमे विशुद्ध रहे, निर्मल रहे, मात्सर्य नही, द्वेष नही । किसी परपदार्थमे आसक्त न हो, सावधान रहे जिसमे अपने आपकी सुध बनी रहे ऐसा ज्ञान हो तो इस आत्माको खुद शरण हो गया ।

आत्माका पुत्रत्व—आत्माका पुत्र आत्मा है । पुत्र किसे कहा है ? वश पुनाति इति पुत्र । जो वशको पवित्र करे उसे पुत्र कहते है । जो वशको पवित्र न करे उसका नाम पुत्र नही है । उसका नाम सुत रख सकते है । सूयते इति सुतः । जो पैदा हो उसे सुत कहते है । इस मुझ आत्माका वश है चित्स्वभाव, चैतन्यस्वरूप । वश उसे कहते है जो परम्परा रखता है । मेरा आत्मा इस चैतन्यभावकी परम्परा रखता है, अन्य लौकिक वशकी परम्परा नही रखता । आज इस घरमे मनुष्य है और मरकर कही घोडा, बैल हो गये तो काहेका यह वश रहा ? क्या कभी यह जीव इस चैतन्यके अन्वयका त्याग कर सकता है ? तो इसका वास्तविक वश है चैतन्य । उस चैतन्य वशको जो पवित्र करे वह है पुत्र । तो इस चैतन्य वशको कौन पवित्र कर सकता है ? मै ही कर सकता हू ।

जीवकी भावप्रधानता—देखिये यह जीव एक भावात्मक भावप्रधान पदार्थ है । जैसे इन पुद्गल ढेरोको हम हाथमे लेकर फेक सकें, दिखा सकें, इस तरह इस आत्माको प्रयोगमे नही ला सकते । यह तो एक भावस्वरूप है, और इस भावमे चेतनता बसी हुई है । स्वभाव इसका एक प्रतिभास करते रहनेका है । किसने बनाया यह ? है यह अनादिसे । किसी पदार्थका स्वरूप कोई बना नही सकता । पदार्थ स्वय अपने आपमे त्रिगुणात्मक है, समर्थ है, त्रिदेवतामयी है, उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त है । सृष्टि, सहार, सनातनता—इस प्रकार त्रिदेवतामयी पदार्थ स्वय अपने आप है । यह जीव भावप्रधाव है और चेतनाभावमे त्रिगुणात्मक है ।

भावप्रधानताके प्रसंगमे उद्देश्यपूरक अलंकारिक कथनकी भूमिका—इस प्रसगमे थोड़ा अलकारके ढगसे और उद्देश्यको लक्ष्यमे लेकर एक प्रकरण सुनिये—मान लो अपनी कल्पनामे कि दुनियामे केवल एक ही चीज है—सत् । यद्यपि यह सत् जाति अपेक्षा एक कहा गया है, व्यक्ति अपेक्षा नही । व्यक्तिकी अपेक्षासे तो सत् उतने होगे जितने कि परिणमन होगे । परिणमन जितनेमे हो जाता है पूरा उतनेमे एक सत् है । जैसे हमारा सुख परिणमन जितनेमे होता है उतना मै एक सत् हू । यो प्रत्येक अनुभवनके साथ व्यक्तिभेद है । लेकिन चाहे कुछ भी पदार्थ हो, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल कुछ भी हो [illegible] सत् । तो केवल एक दृष्टिसे सत्त्व जातिको निरखो तो सब एक सत् मात्र मालूम होते है ।

किसी दार्शनिकने तो एकान्तता मान भी डाली कि एक सत् ही सत्त्व है। सद् ब्रह्म है, है यह सब ठीक एक जाति अपेक्षा, पर एक बात समझानेके लिए उनकी थोडी देरकी बात मानकर इस विषयकी जानकारी बढायें।

षडात्मकताका एक लोकदृष्टान्त—मान लो सारे लोकमे एक ही सत् है। ठीक है रहने दो। अब यो निरखिये कि जो भी पदार्थ होता है वह सदात्मक होता है। उसमे ६ स्वरूप होते है—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। जैसे एक यह चौकी है तो चौकी यह तो नाम हुआ। और इसको अपनी बुद्धिसे ऐसा मान लिया कि जो यो यो है ना वह चौकी है, यह स्थापना हो गयी और इस चौकीकी जो कुछ पूर्वापर परिणतियाँ है उन सबको लक्ष्यमे लेकर चौकी कहते हैं यह द्रव्य हुआ और चौकीका जो परिणमन है वह भाव हुआ और चौकीका जो क्षेत्र है वह क्षेत्र है, चौकीकी जो पर्याय है परिणति है वह काल है।

षडात्मकताका प्रासंगिक रूप—अब इसे कुछ व्यवहारिकताका रूप देने के लिए इसमे यो देखिये, नाम जो शब्द कहा गया वह नाम है। जो व्यवहार चलानेका मूल हो वह नाम है। स्थापना है, जो उसमे ठहरा दे सो स्थापना। ष्ठा गतिनिवृत्तौ एक धातु है जिसका तिष्ठति वर्तमान रूप बनता है। ठहरना उस ष्ठा धातुको स्थापना माना। स्थापना मायने ठहराना, द्रव्य मायने पिंड, पदार्थ, जैसे कि किसी चीजको उठा कर बता देते है और भाव मायने एक स्वभाव जो कि पकडा नही जाता। केवल परिणाम। और क्षेत्र, काल स्पष्ट है। सो स्वयमे अभी एक सत् माना था, वह सत् सत्तात्मक हो गया। बात आज एकदम कठिन आ गई कहनेमे, लेकिन कोई बात कठिन सुनकर भी यह श्रद्धा बनाई जा सकती है कि वस्तु के अवगममे कैसे अनोखे प्रकार हुआ करते है?

षडात्मकतामे भिन्न-भिन्न प्रधानता—उस एक सत्को अब छाट लो। जो द्रव्यात्मक है वह तो है पुद्गल क्योकि पिडरूप पुद्गल ही समझमे आता है। तो द्रव्यप्रधान पदार्थ है पुद्गल, क्षेत्रप्रधान पदार्थ है आकाश, कालप्रधान पदार्थ है कालद्रव्य। यह सब अलकारिकताकी बात चल रही है। केवल मर्म पानेके लिए यह कथन किया जा रहा है। कही वह सब एक ही सत् हो और उसका यह अश निकला हो और उनसे पदार्थ बना हो, ऐसा नही है। पर मर्म जाननेके लिए बात कही जा रही है। नाम उसे कहते है जो चलाये। नामका काम है चलाना। नाम बिना कोई काम चलता भी है क्या? और लोग तो यो स्पष्ट कह भी देते है कि इनका नाम अच्छा चला। तो नामका काम चलना हुआ करता है। किसी पदार्थ का नाम न धरे तो बात कैसे चले? और चलाना काम है धर्मद्रव्यका। तो नामात्मकतामे धर्मद्रव्यका सकेत हुआ। स्थापनात्मकतामे अधर्मद्रव्यका सकेत हुआ, क्योकि ठहराना है काम अधर्मद्रव्यका। अब रह गया एक भाव। क्या जीवमे चलाने ठहरानेकी प्रधानता है? क्या

अवगाह देनेकी प्रधानता है ? जीवमे प्रधानता भावकी है ।

भावप्रधानताके वर्णनसे उपादेय शिक्षा—इस वर्णनसे हम अपने हितके लिए क्या निष्कर्ष निकाले कि हम कल्याणके लिए, शान्तिके लिए अपने आपके भावोकी प्रधानताको सोचा करें । हम कितने लम्बे चौडे है, ऐसा सोचनेसे ज्ञानानुभूति न होगी । यह जीव वर्तमान मे कैसी परिणति रखता है ऐसा सोचनेसे अनुभव न होगा, किन्तु यह मैं जीव एक चिद्भावात्मक हू । एक उस चैतन्यस्वभावरूप अपने आपमे मग्न हो तो ज्ञानानुभूति हो जायगी । ऐसा यह अपना पवित्र वश वाला आत्मा यह अपनी कलासे वशको पवित्र रख सकता है । इस कारण यह आत्मा ही आत्माका पुत्र है ।

आत्मवैभव—आत्माके गुण और उन गुणोका विकास यही आत्मवैभव है । देखिये—जब कोई चिन्ता नही रहती है, कोई परपदार्थका सकल्प-विकल्प नही रहता है उस समय निज विश्रामके कारण जो प्रकाश आनन्द प्राप्त होता है वैभव तो वही है । जिन भगवानको हम प्राय पूजते है उनमे क्या विशेषता है ? यही वैभव उनमे प्रकट हुआ है । ये जगतके मनुष्य जड वैभवके पीछे लगे हुए है । उन जड वैभवकी कल्पनावोमे ही अपना उपयोग फसाये है । हमारा वैभव तो यही एक शुद्ध चैतन्यप्रकाश है, ऐसा पवित्र उत्कृष्ट होकर भी जीव सुख दु खका भोगने वाला है, इष्ट अनिष्ट साधनोका भोगने वाला है, ये सब विपरीत आचरण पर-सयोगके बिना नही हो सकते ।

कर्ममे भोक्तृत्वका अभाव व जीवमे भोक्तृत्व—यहाँ यह सिद्धान्त स्थित हुआ कि निश्चयसे आत्मा आत्माको करने वाला है, व्यवहारसे जीवके रागादिक परिणामोका करने वाला है । जीव भी निश्चयसे अपने भावोका करने वाला है और व्यवहारसे कर्मोंका करने वाला है । यह तो करनेकी बात समाप्त की गई, अब भोगनेका प्रस्ताव लाया जा रहा है । इसमे भोगनेकी बात कहते हुए अटक लग गई । किसका भोगने वाला कहा ? कर्म अपनेको भोगने वाला है, यह भी बात खपती नही है । यद्यपि अनुभवनकी दृष्टिसे चेतन अचेतन पदार्थ सभी अपने स्वरूपका अनुभवन करते है, पर वहाँ उस अनुभवनका अर्थ परिणमन है । परमार्थ से तो जीव सुख दुःखादिकको भोगता है, जीवके भावोको भोगता है । यह भी ठीक नही बनता । तो जैसे दोनो नयोसे कर्मोंको कर्ता कहा गया था, यहाँ किसी भी नयसे कर्मको भोक्ता नही कहा जा सकता । क्योकि चैतन्यपूर्वक अनुभवका सद्भाव कर्ममे नही है । चेतनपन होने से केवल जीव ही कर्मके फलभूत और कथञ्चित् आत्माके सुख दु.ख परिणामको भोगता है । और व्यवहारसे इष्ट अनिष्ट विषयोको कथञ्चित् भोगता है ।

शुद्ध स्वरूपकी प्रतीति—इस प्रकार कर्तृत्व और भोक्तृत्वके विषयमे यह सब कुछ स्पष्ट कर दिया गया है । इसमे हम यह लक्ष्य बनाये कि न तो मेरे कर्मोंका सम्बंध है

निश्चयत , और न रागादिक परिणामोसे सम्बन्ध है निश्चयत' न सुख दु ख आदिकसे सम्बध है । कोई सीधे पर है, कोई नैमित्तिक भावसे होनेसे पर है । मैं तो एक ध्रुव शुद्ध चैतन्यस्वभावरूप हू, इस प्रतीतिमे हमे शान्तिका मार्ग मिलेगा ।

एव कत्ता भोत्ता होज्झ अप्पा सगेहि कम्मेहि ।
हिडदि पारमपार ससार मोहसछण्णो ॥६९॥

कर्मसंयुक्ततामें प्रभुता—अब कर्मसयुक्तके रूपसे प्रभुत्व गुणकी व्याख्या की जा रही है । यह जीव प्रभु है, समर्थ है, यह कर्ता है, भोक्ता है, और प्रभुताकी व्यक्तिमे इस समय कर्मोसे सहित होता हुआ मोहसे आक्रान्त होकर इस अपारससारमे भी घूम रहा है, यह भी एक जीवकी प्रभुता है । जब यह कर्मसयुक्त रहता है तब यह प्रभु अपनी कैसी प्रभुता प्रकट करता है और जब कर्मरहित होता है तब यह अपनी कैसी प्रभुता प्रकट करता है ? जैसे किसी पुरुषमे बहुत बल है, अब उस बलका प्रयोग दूसरे जीवोके सतानेमे कर रहा है, तो भी बलका माहात्म्य तो है ही और फिर कदाचित् वहाँसे मुख मोडकर जीवोकी सतोकी सेवामे रक्षामे अपना बल लगा रहा है तो यह भी बलका माहात्म्य है । बल है इसका किस ही प्रकार उपयोग किया जाय । बलका बलत्व तो बराबर है । ऐसे ही यह जीव प्रभु है, अब यह किसी ओर लग जाय । कर्मसयोगसे लग जाय तो अपार ससारमे परिभ्रमण करे ऐसी प्रभुता पाता है और कर्मरहित हो जाय तो अनन्त आनन्द भोगे, सर्वज्ञता बने, ऐसी प्रभुता पाता है ।

कर्तृत्व व भोक्तृत्वमे नयविभागकी दृष्टि—निश्चयनयसे यद्यपि यह जीव कर्मका कर्ता और कर्मका भोक्ता नही है, फिर भी व्यवहारसे यह जीव कर्मका कर्ता और कर्मका भोक्ता कहा जाता है । इन दोनो नयोका कैसा समन्वय है और कैसा मर्म निरखा जा रहा है कि जहाँ इसको भी नही मना किया जा रहा है कि परसम्बधको पाकर निमित्त पाकर यह जीव रागादिक रूप और सुख दु ख आदिक रूप परिणम रहा है, और यह भी नही मना किया जा सकता है कि यह जीव स्वय अपनी योग्यताके अनुसार अपनी ही शक्तिसे रागादिक रूप और सुख दुःख आदिक रूप परिणम रहा है । रागादिक रूप परिणमनेका नाम तो कर्तृत्व है और सुख दु ख आदिक रूप परिणमनेका नाम भोक्तृत्व है । भोगा, इसका अर्थ यही है कि वह सुख रूप परिणमा अथवा दु खरूप परिणमा । इस जीवने कुछ किया, इसका अर्थ यही तो निकला कि इसने रागद्वेष मोहरूप परिणमन किया । सो इस प्रकार यह जीव कर्मसे सयुक्त होकर अपने शुभ और अशुभ कर्मोके अनुसार, पुण्य पाप द्रव्यकर्मके अनुसार, शुभ अशुभ भावोके अनुसार यह ससारमे परिभ्रमण करता है ।

व्यक्त प्रभुता—यद्यपि निश्चयसे यह ससारमे व्याप्त नही है । ससारभावमे नही लगा हुआ है, यह तो अनन्त ज्ञानादिक गुणोका आधारभूत है, पर वर्तमान दशाको देखा जाय तो

इस स्वभावसे विपरीत जो चतुर्गतियोका ससरण है उस परिभ्रमणमे यह जीव लगा हुआ है। इसमे जो भव्य पुरुष है उनका तो ससारका अन्त आ सकेगा, पर अभव्य जनोके ससारका अत कभी न आयगा। कैसी प्रभुता और कैसी स्वय अपने आप रचना हो जाती है कि कितने प्रकारके जीव, कैसे-कैसे शरीर, कैसी-कैसी उनकी चेष्टाएँ, कैसे-कैसे विस्तार, यह सब इस जीव के कारण ही तो रहा है। तो जोवकी कैसी प्रभुता है ? इन दोनोमे प्रभुताकी शक्ति प्रकट है, पर जब कर्मबद्ध है तो इसमे कर्तृत्व और भोक्तृत्वका अधिकार प्रकट हुआ है। प्रभुता नही तो और क्या है ? व्यक्त प्रभुता है।

प्रभु और संसारीकी प्रभुता—भगवान अज्ञान और विकाररूप नही परिणम सकते, वह तो अपने शुद्ध ज्ञान और शुद्ध आनन्दरूप परिणम रहे है। यह उनकी प्रभुता है। ये मिथ्यादृष्टि जीव शुद्ध ज्ञान और आनन्दरूप नही परिणमा सकते, किन्तु अज्ञान, विकार भ्रमणरूप परिणम सकते है। भगवान तो सीधा-सादा सच्चा काम कर रहे है, पर यहाँके ससारी अज्ञानी जन टेढ़ा, कुटिल, कठिन, असम्भव काम किये जा रहे है। क्या ससारी जीवो मे प्रभुता नही है ? भगवान ही मे प्रभुता है क्या ? भगवानकी प्रभुता भगवानके ढगकी है, जैसा है तैसा ज्ञानमे आ गया, निराकुल है, निर्विकल्प है, उनका सीधा काम है, और ससारी सुभटोका काम देखिये, जो बात नही है उसे होनी करना चाहते, कितनी विडम्बना, कितने प्रकारके शरीर, प्रभुता है ना इस जीवमे, तो वह जायगी कहाँ ? संसारी जीवोकी प्रभुता इस रूपमे प्रकट हुई है।

भावसंसरण व क्षेत्रससरण—यह जीव अनादिकालसे मोहके आवरणसे ढका हुआ है, इस कारण इसका विपरीत अभिप्राय प्रकट हुआ है। और उससे सम्यग्ज्ञानकी ज्योति अस्त-मित हो गयी है। सम्यग्ज्ञान अभी प्रकट नही है सो अज्ञानी होता हुआ यह सान्त अथवा अनन्त इस ससारमे परिभ्रमण करता है। ससार नाम है निश्चयसे विभावपरिणामका। यह जीव कहाँ डोल रहा है, इस प्रश्नका उत्तर निश्चयसे यह आयगा कि यह जीव अपने विभाव मे, उपयोगमे, कल्पनामे, रागद्वेषादिक भावोमे डोल रहा है, यहाँ ही चक्कर लगाया करता है और फिर व्यवहारसे स्पष्ट समझमे आये, ऐसा परिभ्रमण बतायें तो यह ३४३ घनराजू प्रमाण लोकमे ऐसा परिभ्रमण कर रहा है कि यहाँका कोई प्रदेश ऐसा नही बचा जहाँ यह अनन्त बार उत्पन्न न हो चुका हो। ऐसा परिभ्रमण किया, और अज्ञानके वश ही रहा हो ऐसा ही परिभ्रमण करेगा। अच्छा यह तो क्षेत्रकी दृष्टिसे समझमे आया, अब और तरहसे देखिये।

द्रव्यसंसरण—इस जीवने इतना परिभ्रमण किया कि उस परिभ्रमणके कालमे ये जगतके सारे उपभोग्य परमाणु जो शरीररूप बन जाते है उन परमाणुवोको अनेक बार ग्रहण किया। न ग्रहण किया हो उनका ग्रहण किया, ग्रहण किया हो उनका भी बारबार ग्रहण

किया और ऐसा भी ग्रहण किया कि उसमे कुछ ग्रहण किया हुआ भी आया, कुछ न ग्रहण किया हुआ भी आया। यहाँ एक प्रश्न किया जा सकता कि यह जीव जब अनन्त कालसे परिभ्रमण कर रहा है तो न ग्रहण किया हुआ तो कुछ रहता ही नही, फिर अगृहीतका ग्रहण कैसा ? जो कुछ ग्रहण कर रहा है वह गृहीत ही गृहीत कर रहा है। समाधानमे यह समझना कि हम जबसे उसका एक परिवर्तन लगा रहे हैं अपनी कल्पनामे उस समयसे हिसाब लगाने पर अगृहीत बन जाता है। तो यो अनन्त बार गृहीत तो एक बार अगृहीत ग्रहण किया। फिर अनन्त बार अगृहीत, फिर एक बार गृहीत, यो अनन्ते बार गृहीत हो, फिर एक बार मिश्र। उसी प्रक्रियासे एक बार मिश्र होनेके बाद अनन्त बार अगृहीत हो तो एक बार गृहीत, फिर अनन्त बार गृहीत होनेपर मिश्र, यो अनन्त मिश्र हो लेंगे। फिर और बदल लीजिए। अनन्त बार गृहीत हुआ तो एक बार अगृहीत, यो अनन्त बार अगृहीत हुआ तो एक बार मिश्र। ऐसे ढगसे सर्व परमाणुवोको नाना विधिसे ग्रहण किया। इसमे ज्ञातव्य यही बात रख लो उसमे जो परिभ्रमण बनता है, ऐसे-ऐसे अनन्त परिवर्तन इस जीवने किये।

कालससरण—ये सब परिभ्रमण अज्ञानके कारण है। वह अज्ञान क्या ? जो प्राय अब भी करते जा रहे हैं, यह तो मेरा ही है। है किसका ? ये कुटुम्बी जन तो मेरे ही हैं, और है किसके ? उस अज्ञानसे अब भी अनेक जीव बाज नही आते है। श्रद्धामे बसाये हैं और यह मिथ्या श्रद्धान तब तक कैसे मिटे जब तक अपने आपकी विचित्रताका इसे श्रद्धान न हो जाय। अब कालके ढगसे भी सोच लीजिए। किसी उत्सर्पिणी कालसे कल्पनामे शुरू करो। अबसे अनन्त उत्सर्पिणी पहिलेकी किसी उत्सर्पिणीसे ख्याल करो। इस जीवने उत्सर्पिणी काल लगते ही पहिले समयमे जन्म लिया। इसके बाद फिर जो उत्सर्पिणी लगी उससे किसी भी समय पैदा हो वह गिनतीमे नही है। किसी उत्सर्पिणीमे फिर दूसरे समयमे पैदा हुआ, फिर किसी उत्सर्पिणीमे तीसरे समयमे पैदा हुआ वह क्रम लेना है। बीचमे तो अनन्त बार अन्य-अन्य समयोमें पैदा हुआ उसे नही लेना है। ऐसे क्रमसे उत्सर्पिणीके जितने समय है और अवसर्पिणीके जितने समय है क्रमसे उत्पन्न हो ले। अब सोच लीजिए कितना परिभ्रमण इसका हो गया। यह तो अभी एक परिवर्तन है। ऐसे न अनन्त परिवर्तन किये है। इस जीवके भ्रमण की बात कही जा रही है, क्या यह सम्भव नही है ? सम्भव है। जब अनन्त भ्रमण हो रहे हैं तो इतनी बातमे क्या सन्देह ?

भवसंसरण—अब एक और नई दृष्टि लगावो—भवभ्रमणकी। जैसे नारकी जीवोकी कमसे कम आयु १० हजार वर्षकी होती है और अधिकसे अधिक ३३ सागरकी होती है। ३३ सागरमे अनगिनते करोडो वर्ष समाये हुए है। कोई जीव १० हजार वर्षकी आयु लेकर नारकी बना। नारकी जीव मरकर तुरन्त ही नारकी नही बना करता है, ऐसा नियम है, वह तिर्यंच

या मनुष्य बने, फिर नारकी हो, अब नारकी मरकर और कुछ स्थिति लेकर बने। ज्यो ११–१२ हजार वर्ष आदि अन्य अन्य प्रकार वर्षकी आयु लेकर नारकी हो, वह गिनतीमे नही है। १० हजार वर्षमे जितने समय होते है उतनी बार १० हजार वर्षकी आयु लेकर पैदा होने लगे और फिर १० हजार वर्ष एक समय अधिककी आयु लेकर पैदा हो ले, भिन्न आयुको इस क्रममे नही गिना है, यो एक एक समय बढ बढकर आयु लेकर ३३ सागरकी आयु पूरी कर ली, तब समझ लो कितना भ्रमण हुआ। यह तो एक भवपरिवर्तन है। ऐसे ही देवगतिमे लगावो, वहाँ भी कमसे कम १० हजार वर्षकी आयु है। और भ्रमण वाले जीवमे अधिकसे अधिक ३१ सागरकी आयु है। इससे अधिक आयु वाला देव नियमसे सम्यग्दृष्टि होता है। उन्हे परिवर्तनके क्रममे नही ले सकते क्योकि उनको ग्रहण करनेसे तो खेल ही भव भ्रमणका सारा मिट जायगा। ऐसे ही वहाँ भी एक-एक समय अधिक आयु ले लेकर देव भव बदले, वहाँ भी यह नियम है कि देव मरकर तुरन्त देव नही बनता। देवगतिका जीव मरकर मनुष्य अथवा तिर्यञ्च होगा, फिर वह देव हो सकता है। यो दूसरा भवपरिवर्तन हुआ। मनुष्यकी कमसे कम आयु अतर्मुहूर्त और अधिकसे अधिक आयु ३ पल्यकी है। पल्यमे असख्यात वर्ष होते है। यह आयु भोगभूमिज मनुष्यकी है। यो ही तिर्यंचकी आयु है। वहाँ भव पूरा करे। यो एक एक भवपरिवर्तन यह पूरा हुआ। ऐसे ऐसे इस जीवने अनन्त भव परिवर्तन किया।

जीवस्वभाव व वर्तमान परिणमन—यह जीव स्वभावत अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्तशक्तिकी योग्यता रखने वाला है, किन्तु विपरीत बुद्धि करके मिथ्यात्व कषायमे ग्रस्त होकर परिभ्रमण कर रहा है। इसे रच भी विषाद अथवा लाज नही आती। इसको रागद्वेष मोह करनेकी ऐसी कुटेव पड गयी है। सम्यग्ज्ञान जगे तो सासारिक भ्रमण कर्तृत्व भोक्तृत्व इन व्यवहारोकी लाज आयगी। अज्ञानमे ही अज्ञानके कर्मोमे बुद्धिमानी मानी जाती है।

अपराध और निर्लज्जताका उदाहरण—एक घटना है कि तीन पुरुषोने मिल करके एक ही घरमे बराबरमे चोरी की। न्यायालयमे वह घटना पहुची। न्यायाधीशने सोच समझ कर उनका निर्णय दिया। एक को कह दिया कि तुझे धिक्कार है जो इस कामको किया। इतना ही दड दिया। एकको कुछ दिनोके लिए जेलमे रख दिया। और तीसरेको यह दड दिया कि इसका मुँह काला करके गधेपर चढाकर गावमे घुमाया जाय। लोगोको शका हुई कि तीनोंने एक ही अपराध किया और ऐसे भिन्न-भिन्न दण्ड क्यो दिये गए? सो सुन लीजिए जिसे धिक्कार करके छोड दिया था वह घरमे जाकर किसी टंकीमे या कुटियापे घुसकर अपना प्राण घुटाकर मर गया। इतना उसके मनमे पछतावा आ गया। अब गधे वालेकी बात सुनो—

जब मुँह काला करके गधेपर बैठाकर घुमाया जा रहा था और जब वह अपने द्वारपर पहुचा, देखा कि स्त्री खडी है तो चिल्लाकर कहता है कि पानी गरम करके रखना, थोडा और घूमनेको बाकी रह गया है। उसके लिए यह दण्ड भी कम रहा।

अपराध, विपदा और निर्लज्जता—अहो, इतना महान् कष्ट भोगा जा रहा है, शरीर का बन्धन परिवारका बन्धन, अनेक इष्ट वियोग, अनिष्ट सयोग, कल्पनावोके क्लेश, शरीरमे व्याधियाँ उत्पन्न हो जायें उनकी वेदनाए, और रोज-रोजकी भूख प्यासकी अलग वेदनाए, इतने कठिन दु ख भोगे जा रहे है और उन दु खोके भोगे जानेका अपराध केवल इतना है कि हम निजको निज परको पर जाननेका निर्णय और वृत्ति नही रखते। कहने सुननेमे तो बडा मामूली सा अपराध है और उसके फलमे इतना जाल! जाल भी भोगते जा रहे और इन क्लेशोका जो कारण है उस कारणको नही छोडना चाहते। यह स्थिति है ससारचरिभ्रमण करने वाले जीवोकी। जैसे लाल मिर्च खानेके शौकीन लोग लालमिर्च खाते भी जाते है, सी-सी भी करते जाते है, आँसू बहाते जाते है, फिर भी और लाल मिर्च लावो, यो माँगते है। इसी प्रकार ये ससारके अज्ञ जीव ऐसे कातिर हो गए है, ऐसे आधीन बन गए है, अपनेमे ऐसी विवशता मान रक्खी है कि एक शरीर छोडकर दूसरा शरीर ग्रहण किया और उस शरीरके प्रसगमे जो समागम मिला उस समागममे राग विरोध कल्पनाएँ की। मिटा, फिर कही उत्पन्न हुआ वहाँ रागद्वेष मोह, ऐसी विडम्बनाओमे यह जीव चक्र लगाता है और अपना जो शुद्ध प्रताप है उस प्रतापसे वञ्चित हो जाता है।

निराकुलताके उद्यमका कर्तव्य—हम आप सब जीव है। हम आपको ऐसी निराकुलताका यत्न करना चाहिए कि जो स्वाधीन हो और कभी मिटे नही। ऐसी निराकुलता है मोक्षमे। मोक्षका मार्ग अपनाना चाहिए। मोक्षका मार्ग है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रकी एकता। विशुद्ध सहज अपने सत्त्वके कारण जो मेरा स्वरूप है, स्वभाव है तन्मात्र मै हू ऐसा भीतरमे विनिश्चय होना चाहिए, और अपने उपयोगको ऐसे ही चिन्तनमे लगाना चाहिए और रतिरमण भी ऐसी ही भावनामे बनाना, यह है सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रकी स्थिति। ऐसा होनेका जिस ज्ञानीने प्रोग्राम बनाया है उसको ऐसा होनेमे बडी बाधायें आ रही है क्योकि अनादिसे विषय कषायकी वासनामे यह रत रहा है। जब उन विषयकषायोकी वासना दूर करनेके लिये तप व्रत सयम, अध्ययन समस्त व्यवहार करता है। यह व्यवहार भी इस दृष्टिमे धर्म है और ऐसा व्यवहार करके भी ज्ञानी पुरुष अपने मुख्य लक्ष्यको भूलता नही है। मेरा सुख मोक्षमे है और मोक्ष कैवल्यमे है ऐसा निर्णय करके अपने आपमे अपने कैवल्यस्वरूपको निरखा करता है। स्वय सहज कैसा ज्ञानप्रकाशमात्र हू, उस ज्ञानप्रकाशरूप अपनेको अनुभवा करना है। बस यही शुद्धवृत्ति इस जीवके ससार-भ्रमणके

विनाशका कारण होती है ।

उवसतपीणमोहो मग्ग जिणभासिदेण समुवगदो ।
णाणाणुमग्गचारी णिव्वाणपुर वजदि धीरो ।।७०।।

कर्मवियुक्ततामें प्रभुताका वर्णन—जब यह जीव कर्मसे वियुक्त होता है तब इसे कैसी प्रभुता प्रकट होती है ? उस सहज प्रभुताका इसमे वर्णन है । इस प्रभुताकी चर्चामे ही जागृति और अपूर्व आनन्द मिलतो है । जो सहज प्रभुता है उसके आनन्दका कोई लोकमें उपादान नही है । प्रभुता व्यक्त होनेका प्रारम्भ होता है सम्यक्त्वसे । दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृतियाँ मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ—इन ७ प्रकृतियोका उपशम हो तो उपशमसम्यक्त्व होता है । क्षयोपशम हो तो क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है । क्षय हो तो क्षायिक सम्यक्त्व होता है । आत्माके निर्मल परिणामोमे ऐसी प्रभुता है कि जैसे कहावतमें कहते है कि सिहके समक्ष स्याल हो तो रखाया हुआ मास भी उगल देता है । यो ही निर्मल परिणाम हो तो भव-भवके बाँधे हुए कर्मोंका विकट उथल-पुथल होता है और उथल-पुथल होकर वे नष्ट हो जाया करते है । यह सब करणानुयोगके ग्रन्थोसे जाना जा सकता है ।

क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धलब्धि और देशनालब्धि—इस जीवको सबसे पहिले क्षयोपशमलब्धि प्रकट हुई, कुछ विशुद्ध परिणामोका निमित्त पाकर कर्मोंमे जो अनुभाग पडे हुए थे, तीव्र थी फलदान शक्ति, उससे शिथिलता हुई, वह क्षयोपशमलब्धि है, और क्षयोपशमके कारण विशुद्ध परिणाम बढे वह विशुद्धलब्धि है । फिर ज्ञानी सतोके उपदेश मिले वह देशनालब्धि है । अब सोच लो—इन तीन लब्धियोमे से दो तो हम आप सबको मिल चुकी है । हम आपका क्षयोपशम क्या बढा नही है, विशुद्धिकी क्या हम आप लोगोमे योग्यता नही है ? देशनालब्धिकी बात सबके अपने निजी विचारोकी बात है । किसीको मिल गई, किसीको नही मिली ।

प्रायोग्यलब्धिकी विशेषता—इसके पश्चात् प्रायोग्यलब्धि होती है । अब जरा ध्यान से सुनिये—प्रायोग्यलब्धिमें कितना अद्भुत चमत्कार हो जाता है ? परिणामोकी निर्मलताका नाम लब्धि है । इस जीवके देशनालब्धि तक बहुत कोडाकोडी सागरोके कर्मोंकी स्थिति है । जब प्रायोग्यलब्धि प्रारम्भ होती है तब उसकी अन्तःकोडाकोडी सागरकी ही स्थिति रह जाती है, और फिर उसमे भी घटती जाती है, जब सात आठ सौ सागर और घट जाती है तो इस मिथ्यादृष्टि जीवमे इतनी प्रभुता प्रकट होती है इसके कि नरकायुका बध नही होता । फिर सात आठ सौ सागर और घट जायें तब तिर्यंच आयुका बध नही होता है, इसी प्रकार पृथक्त्वसागर और घटनेपर मनुष्य तथा देव आयुके भी बध रुक जाते है । फिर पृथक्त्वसागर कम होनेपर

नरकगति व गत्यानुपूर्वी बधापसरित हो जाते है। इसी तरह ३४ तरहके बधापसरणोमे पृथक्त्व सागर बध कम होता है। इतना काम भव्य भी कर लेते है और अभव्य भी कर लेते हैं। ऐसे काम अभव्य मिथ्यादृष्टि जीव कर लें, यहाँ तक तो बल चलता है। इसके बाद अभव्यके करण-लब्धि नही चलती है, अध करण और अपूर्वकरण भी नही चलता।

करणत्रयका सामर्थ्य—भैया! अध करण, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण—ये तीन परिणाम कई बार होते हैं। गुणस्थानोमे जो अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरणका नाम लिया है वह चारित्र मोहके क्षय करनेके लिए लिया है। जब जीवके उपशम सम्यक्त्व होता है तब अध करण अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण हो जाते है और ये मिथ्यात्वमे हो जाते हैं। जब यह जीव क्षयोपशम उत्पन्न करता है तब अध.करण और अपूर्वकरण दो परिणाम होते हैं। वहाँ अनिवृत्तिकरण नही होता है। अब समझ लिया जायगा कि अनिवृत्तिकरण परिणाम होनेपर एकसा परिणाम हुआ करता है। क्षयोपशम सम्यक्त्वमे एकसा परिणाम क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि जीवके नही होता। क्योकि वहाँ चल मलिन अगाढ दोप है। यहाँ अनिवृत्तिकरण नही होता। अनन्तानुबधीका विसयोजन हो तो तीन करण है दर्शनमोहका उपशम हो तो तीन करण है, दर्शनमोहका क्षय हो तो तीन करण है, सयमासयम हो तो २ करण हैं अध करण अपूर्वकरण। यहाँ भी नजर कर लो। अनिवृत्तिकरण परिणाम न होनेसे सयमासयममे भी एकसा परिणाम श्रावकका नही रहता। यह आत्मा महाव्रत धारण करे तो वहाँ २ करण होते है—अध करण व अपूर्वकरण। वहाँ पर भी विपमता होती जब चारित्रमोहका क्षय करता है तब तीन करण होते है। इन तीन करणोमे अध करण तो सातिशय अप्रमत्तविरतमे हो जाता है। अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमे होता है और अनिवृत्तिकरण नवमे गुणस्थानमे होता है। यहाँ आठवें नवमे गुणस्थानका नाम परिणामके नामपर ही रख दिया गया है। अध करणमे अनन्तगुणी विशुद्धि चलती रहती है। अपूर्वकरणमे अनन्तगुणी विशुद्धि, स्थितिघात, हीन स्थितिबध, अनुभागघात, प्रदेशनिर्जरा व अनेक अशुभ प्रकृतियोका शुभप्रकृतिमे सक्रमण होने लगता है।

अनिवृत्तिकरणकी प्रगति—जब अनिवृत्तिकरण होता है तो विकट खलबली कर्मोंमे मच जाती है। जैसे—मान लो इस समय पौने आठ बजे है और ५ मिनट बाद इसका उपशम सम्यक्त्व होगा और मान लो ३ मिनट तक उपशम सम्यक्त्व रहेगा ५० मिनटसे ५३ मिनट तक तो ५० मिनटसे ५३ मिनट तककी स्थिति वाले जितने ये ७ कर्म है सम्यक्त्व घातक इनमे जब जिसकी विसयोजना है तो वह स्थिति हटकर या तो ५० मिनटसे पहिले वाली बन जायगी या ५३ मिनटसे अगली वाली बन जायगी। वहाँ यह उपशम सम्यग्दृष्टि इतना निर्मल होता है जैसे क्षायिक सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्वघाती प्रकृतियोकी सत्ता नही है ना, ऐसे

ही उन तीन मिनटोकी सत्ता इसके भी नही है, तभी तो अनिवृत्त अर्थात् सदृश परिणाम रहता है। यो तो परकी बात कही गयी है।

आत्मविकासका वैभव—अब निजका चमत्कार देखो—सम्यक्त्वका परिणाम मिले, उससे भी बढकर और कुछ वैभव है क्या ? ये तीन लोकके हीरा जवाहरात रत्न सारेके सारे सामने आ जाये तो भी उनसे इस आत्माका क्या हित हो जायगा ? इनसे आत्माकी कोई तरक्की है क्या, शान्ति है क्या ? कुछ भी नही है। ये सारे तीन लोकके पाषाण भी इकट्ठे हो जायें तो उससे वास्तविक आनन्द नही आ सकता। किन्तु एक अपना सम्यक्त्व परिणाम जगे, अपनी दृष्टि अपने आपके सहजस्वभावको पकड ले तो उससे बढकर अमीरी जगतमे क्या है ?

ज्ञानवैभवके महत्वका एक उक्तिमे प्रदर्शन—एक साहित्यकारने लिखा है कि कोई राजा घमडमे आकर एक साधुके सामने छाती फुलाकर जा रहा था तो साधुने तो नही कहा पर साधुकी ओरसे कवि कल्पना करके कहता है एक श्लोकमे "अर्थानामीशसे त्व···।" हे राजन् ! तुम अर्थ अर्थात् धनका गर्व कर रहे हो, तुम्हारे चित्तमे यह अभिमान है कि मेरे ऐसा वैभव है अर्थ है, तुम अपनेको धनी मानकर महान समझ रहे हो तो तुम्हे कुछ पता है ? हम भी अर्थके भण्डार है। शब्दके अर्थ निकलते है ना। तुम्हारे अर्थ तो ये पत्थर है और हमारा अर्थ ज्ञानात्मक है। एक कविकी कल्पना है। तुम यदि बड़े-बडे रेशमी अच्छे वस्त्रोसे मौज माना करते हो, सतुष्ट हुआ करते हो तो यहाँ हम दिशावोके अम्बरसे अथवा बल्कलोसे अपने को तृप्त बनाये रहते है, और और भी बातें कहनेके पश्चात् फिर कहा कि यह निर्णय करलो कि दरिद्र कौन है और धनी कौन है ? जो सन्तुष्ट हो वह धनी है, जो असन्तुष्ट हो वह दरिद्र है।

आगमाभ्यासकी प्रेरणा—भैया ! अब जरा आगमके शब्दोके अर्थका संचय करिये और उन अर्थोसे सन्तुष्ट रहा करिये, इसमे अनुपम सन्तोष मिलेगा। साराका सारा तन, मन, धन, वचन सब खोकर भी यदि एक निज सहज स्वभावकी दृष्टि मिलती है तो समझो कि हमने सब कुछ पा लिया। और एक अपने सहज स्वभावकी दृष्टि खोकर बाह्यमे चाहे ६ खण्ड का वैभव भी पा लिया तो भी आपने खोया सब कुछ है, पाया कुछ नही है। यह ज्ञानी पुरुष जिसने दर्शन मोहका उपशम किया है, क्षयोपशम किया है, विपरीत आशयोसे निमुक्त हो गया है। इसी कारण इसके महती अन्तःप्रसन्नता है। यह अब निर्मम हो गया है।

ज्ञानीकी अन्तः निर्ममता—परपदार्थोमे यह मैं हू, यह मेरा है, इस प्रकारका आशय रखना सो विपरीत आशय है। मेरा तो मात्र मैं हूं। जो ज्ञानादिगुणमय है, अमूर्त है, निर्नाम है, केवल एक चैतन्यप्रकाशमात्र है, जिसका किसीसे व्यवहार नही चलता, ऐसा यह

मै चैतन्यप्रकाशमात्र आत्मतत्त्व हू। मै (नाम लेकर) यह नही हू। (समागमोका नाम लेकर) ये मेरे नही है। अरे देह तक भी मेरा नही है फिर अन्य कुछ वैभव तो मेरा होगा ही क्या ? यह जीव तो केवल कल्पनाजालोको गूथ कर अपना अमूल्य समय खो रहा है। लाभ कुछ भी नही उठा पा रहा है। ज्ञानी पुरुष जिनेन्द्र भगवानके आगमको पाकर, इस जैनशासनको पाकर इसका सदुपयोग करता है, मोहसे निवृत्त हो जाता है, इसके सम्यग्ज्ञानकी ज्योति प्रकट हो जाती है। अब इसके भय नही रहा। इस ज्ञानीके कैसी भी स्थिति गुजरो पर यह अन्त भय नही रखता। उसके निर्णयमे यह बात पडी हुई है कि ये सारे समागम रग ढग सब बीचकी बातें है। यह मै तो गुजर कर आगे जाता हू। मार्ग दिख गया, अतएव घबडाहट नही है।

मार्गनिर्णयमे भी आकुलताकी निवृत्ति—जैसे कोई मुसाफिर अँधेरी रात्रिको किसी जगलमे फस गया, रास्ता भूल गया तो अब वह कहाँ जाय, कही मार्ग ही नही सूझ रहा। एक साहस बनाकर वह वही ठहर गया, जो कुछ होगा देखा जायगा, पर जहाँका तहाँ ही वह ठहर गया। इतनेमे एक बिजली चमकी और उस बिजलीके क्षणिक प्रकाशमे उसे सामने सडक दिख गई। यह वह सडक है जिससे हमे जाना है और उस सडकसे यह पगडडी मिल रही है। एक नजरमे सब कुछ समझमे आ गया। वह बिजली क्षण भरमे ही समाप्त हो गयी फिर वही घोर अधकार छाया हुआ है, फिर भी उस मुसाफिरको रच आकुलता नही है। उसकी समझमे यह बात पडी हुई है कि वह है रास्ता, वहाँ जाना है, थोडी सी रात और गुजरनी शेष है। सबेरा होते ही इसी रास्ते से चले जायेंगे। ऐसे ही इस ज्ञानी पुरुषने सब अपना हाल जान लिया कि मै अमूर्त चैतन्यप्रकाश हू, मेरा मात्र मेरे भावोका परिणमन है। मेरा सब कुछ मै हू। मेरा भविष्य मुझमे है। इसही उपायसे हम अपने उस सहज ज्ञान और आनन्दके पदको प्राप्त कर लेंगे। सदा निराकुल रह जायेंगे। निराकुल तो मेरा स्वरूप है, सब कुछ निर्णयमे समाया है तो वर्तमानमे चाहे कितने ही झझट लगे हो, लेकिन दृष्टिमे फिर भी वह अन्तरङ्गमे तृप्त है। चाहे बहिरङ्गमे कुछ उद्वेग भी हो रहा हो।

सम्यग्दृष्टि नारकीका अन्तः प्रसाद—सम्यग्दृष्टि पुरुष नारकी भी हो और वह बाह्यमे बडे उपद्रव भोग रहा है। शरीरका दुःख, नारकियोसे मरने पिटनेका दुःख, जहाँ तिल तिल बराबर देहके टुकडे भी कर दिये जाते है फिर भी पारेकी तरह मिलकर फिर खडे हो जाते है, जिनकी बीचमे मृत्यु भी नही होती है और ऐसे बाहरी अनेक दुःख भोगकर भी सम्यग्दृष्टि नारकी अन्तरङ्गमे कैसा निराकुल रहता है ? इस मर्मको ज्ञानी पुरुष ही जान सकता है। सम्यग्दृष्टि नारकी भी दूसरे नारकियोको मारता पीटता, वह भी दूसरे नारकियो द्वारा मारा पीटा जाता, लेकिन सम्यग्दृष्टि नारकीको अन्त सक्लेश नही है और अन्य नारकी जो कृष्ण,

नील, कापोत लेश्या वाले है वे अंतः सक्लिष्ट रहा करते है।

सम्यग्दृष्टि देवोकी अन्तः निर्मलता—देवोंकी भी बात देखो–देव लोग बडे-बडे भोग साधनोके बीच रहते है। छोटेसे छोटे देवके कमसे कम ३२ देवागनाए होती है और बडे देवोके तो हजारो देवागनाएँ होती है। दूसरे उन देवोके, यहाँके मनुष्यो जैसा कोई विवाद नही है। वे खूब मनमाने भोग भोगते है। उन देवोमे भी जो सम्यग्दृष्टि देव है। वे इन भोगोके बीच रहकर भी अत्यन्त उदास रहते है। उनका झुकाव तो अपनी ओर रहा करता है। इस मर्म को ज्ञानी जन जानते है। भला बतलावो जो इस पचमकालमे कुन्दकुन्द, समतभद्र, अकलक इत्यादि ऋषि सत हो गए है। वे इस समय अब कहाँ पर होंगे, क्या कर रहे होंगे ? जिसने इन पुरुषोका चारित्र सुना है, पढा है, उनका चित्त यह कह देता होगा कि ऐसे ऋषिराजके समयमे यदि मैं होता तो उनके चरणोकी धूल अपने शिरपर लगाकर अपने जीवनको सफल समझता। कभी अवसर पाकर किन्ही-किन्ही सतोका चरित्र सुनायेगे तब यह बात घटित हो जायगी हृदयमे कि यह बिल्कुल ही युक्त बात है कि उन गुरुवोके समयमे यदि मै होता तो सब कुछ भूलकर केवल उनकी सेवा करके अपने जन्मको कृतार्थ समझता। वे कुन्दकुन्द, समतभद्र, अकलक इत्यादि क्या अब है ? अरे वे तो गुजर गए और मरण करके कहाँ पैदा हुए होगे ? अपनी रुचि और कल्पनाके अनुसार तो बतावो-? देवगतिमे वे इस समय होगे। क्या कर रहे होगे ? ठाठकी सभा लगी होगी, देव देवियाँ गान-तान कर रहे होगे। बडी धूमधामसे सगीत हो रहा होगा। सभी देव शिर हिलाहिलाकर आनन्द ले रहे होंगे और ये कुन्दकुन्द, समतभद्र, अकलक इत्यादि जीव, जो अब बडे देव है वे देव भी आनद ले रहे होंगे, मगर भीतरमे क्या गुजर रही होगी ? ज्ञानका प्रकाश होगा, सम्यक्त्वकी दृष्टि होगी और उससे हटना चाहनेकी बात मनमे सोच रहे होंगे। जबकि अन्य देवोको उसमे लगनेमे मौज आ रहा होगा। अविरत सम्यग्दृष्टि देवगतिके जीव इतने भोगके साधनोमे रहकर उससे उदास रहा करते है।

अन्तस्तपका प्रसाद—ज्ञानकी महिमा अनुपम है। हम आपका गुरु कहो, देव कहो, शास्त्र कहो, सर्वस्व, शरण, सार एक विशुद्धज्ञान है। उस सम्यग्ज्ञान ज्योतिको पाकर यह जीव कर्तृत्व और भोक्तृत्वके अधिकारको समाप्त कर देता है। वह अपने व्यवहारमे भी अकर्ता और अभोक्ताका अनुभव करता है। उनमे भली प्रकारसे प्रभुताकी शक्ति उत्पन्न हुई है, वह अब ज्ञानके मार्गसे ही अपनी चर्या बना रहे है। उनकी इस अतःतपस्याके प्रसादसे शुक्लध्यानके प्रकट हुआ है और वे उस शुक्लध्यानके प्रसादसे मोक्ष नगरमे पहुच जाते हैं। जहाँ कि विशुद्ध रागद्वेष रहित ऐसे ज्ञानानदस्वरूप आत्मतत्त्वका ही आलम्बन हो र. अपवर्ग नगरको प्राप्त होते है। अपवर्गका अर्थ है जहा धर्म अर्थ काम ये तीन वर्ग नही होते

हैं, अर्थात् सब झंझटोसे, विकल्पोसे मुक्त सर्वज्ञ सर्वदर्शी अनन्त आनन्दमय अवस्था को वे प्राप्त होते है। देखो ना—जब यह जीव कर्मसयुक्त था तो अपनी योग्यताका कैसा विपरीत विस्तार बनाया करता था और जब कर्मोंसे विमुक्त हुआ तो इसने अपने गुणोका अमित विस्तार अर्थात् अमित विकास विलास प्रकट किया है। यह प्रभु सर्वथा शुद्ध है और शान्ति के इच्छुक जीवोके लिए प्रतीक है। इस प्रकार यहाँ तक प्रभुताकी व्याख्यामे कर्मसयुक्तके रूप से पहिली गाथामे और कर्मवियुक्तपनेके रूपसे इस गाथामे इस जीवकी महिमा बतायी गई है।

एको चेव महप्पा सो दुवियप्पोत्तिलक्खणो होदि।
चदुसकमणो भणिदो पचग्गगुणप्पधाणो य ॥७१॥

जीवकी एकरूपता—अब जीवके सम्बधमे जीवकी ही विशेषताको प्रदर्शित करनेकी पद्धतिसे जीवके विकल्प कहे जा रहे है। यह जीव एक है, जैसे सब स्वर्णोमे साधारणतया पाये जाने वाले स्वर्णत्व गुणकी दृष्टिसे सब स्वर्णराशि एक है, इस ही प्रकार सब जीवोमे साधारण रूपसे पाये जाने वाले केवलज्ञानादि अनन्त गुणोके समूह रूप शुद्ध जीव जातिकी दृष्टिसे जीव एक है। जिन दार्शनिकोने एक ब्रह्म माना है उनका अभिप्राय, उनकी दृष्टि मूलमे यह रही होगी जैसे कि स्याद्वादने सग्रहनयकी अपेक्षा सर्व साधारण गुणोकी दृष्टिसे एक बताया है, फिर उस एककी घोषणाके बाद सर्व दृष्टियोसे उसे एक माना जाने लगा।

दृष्टान्तपूर्वक जाति अपेक्षा जीवके एकत्वका कथन—जैसे यहाँ कोई मनुष्य एक है तो वह हर दृष्टिसे एक है, करने वाला वही है, भोगने वाला भी वही है, उतने ही हम है। जैसे सभी मनुष्य जातिअपेक्षा एक है, इसी प्रकार यह जीव ब्रह्म भी जातिअपेक्षा एक है। जब सर्वत्र एक माना जाने लगा तो अनेक आशकाये उठने लगी। फिर ये जीव भिन्न-भिन्न अपना-अपना परिणमन कैसे कर रहे हैं? यह ऐसी रचना विभिन्न कैसे हो गयी है? सबके अनुभव अपने-अपने जुदे क्यो हो रहे है? जो एक होता है अनुभव भी उस समय एकमे ही होता है। तब उसके उत्तर भी अनेक प्रकारसे खोजे जाने लगे। यदि सग्रहनयकी दृष्टिसे जीवको एक मान लिया जाय तो उसमे आपत्ति नही है।

दृष्टान्तपूर्वक जीवकी एकरूपताका समर्थन—कोई गेहूका ढेर पडा है तो ग्राहक लोग आकर यो पूछते है कि यह गेहू किस भाव दिया है? शायद कोई बहुवचनमे नही कहता कि इन गेहुवोको किस भायमे दिया है? हालाकि गेहूके दाने करोडो रक्खे हैं, पर उन्हे एकवचन मे बोला जाता है, ऐसा क्यो है कि प्रयोजनकी दृष्टिसे, सग्रहनयकी दृष्टिसे, रूप रगकी दृष्टिसे वे एक समान है। इस कारण उनको कहनेमे एकवचनका प्रयोग होता है। ऐसे ही समस्त जीवो का जो समूह है वह स्वरूपदृष्टिसे एक है, और जो कुछ भी चमत्कार है, ढग है, पद्धति है वह सब एक है। इस कारण समस्त जीवोको कह देना कोई अनुचित नही है, पर सग्रहनयकी दृष्टि

त्यागकर व्यक्तिगत मान लिया जाय तो वहाँ आपत्ति आती है। सर्वथा एक ब्रह्म मान लेनेपर व्यवस्था बनानेके लिए अनन्त जीव मानने पडेगे। इस स्थितिमे जीवका मूल्य कुछ नही है। यह जीव इस ब्रह्मके सम्बधसे चमक रहा है। यह जीव जब ब्रह्ममे लय हो जायगा तो इसको मुक्ति हो जायगी। इस तरहसे कोई भाई जीवको मान पडे है।

स्वभावदृष्टिसे परमब्रह्मका एकत्व—ब्रह्म एक वह है चित्स्वभाव। ऐसा माननेके लिए भी जिनशासनके स्याद्वादसे इस पद्धतिसे प्रेरणा मिली है कि यह जीव स्वभावदृष्टिसे एक निर्विकल्प चैतन्यस्वभाव है। वह तो हुआ ब्रह्म, क्योकि स्वभावमात्रपर दृष्टि देनेसे व्यक्तियोका भेद उपयोगमे नही रहता। जैसे पीनेमे आने वाला जल। जल और जलका स्वभाव जब आप पीनेके प्रयोजनसे जलपर दृष्टि देंगे तो आपको वहाँ भिन्न-भिन्नपना नजर आयगा। यह पानी खारा है, यह मीठा है। तुम पानी कम लाये हो, तुम पानी बहुत लाये हो। यदि जलके स्वभावमे दृष्टि जाय तो स्वभाव नजर आयगा, व्यक्तियाँ नही। इसी प्रकार सब जीवोंके स्वभाव पर दृष्टि दी गई तो वहाँ एक अखड निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यस्वभाव दृष्टिमे आया वह दार्शनिकोंका परमब्रह्म है, जैनसिद्धान्तमे भी उसे परमब्रह्म कहा है। अब इस आत्मामे जिससे व्यवहार होता है ऐसी जो परिणतियाँ है उन परिणतियोका प्रतिनिधि माना गया जीव। जिसे आत्मद्रव्य और आत्मपर्याय कहा गया है, उसे ही वहाँ परमब्रह्म और जीव कहा गया है। इन सब जीवोको एक सर्व साधारण स्वभावदृष्टिसे देखा जाय तो वह एक है महान आत्मा। यह आत्मा ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगसे उपयुक्त है। सर्व जीवोमे देख लो ज्ञातृत्वशक्ति और दृष्टृत्वशक्ति सबमे शाश्वत पडी हुई है। जिसको एक चैतन्यस्वभावसे कहा जाता है वह सर्व साधारण है, अत जीव एक है।

सर्वथा एक जीवकी असिद्धि—जो लोग सर्वथा जीवको एक मानते है उनको इस विषयमे ऐसी आशका रखनेपर कि फिर ये भिन्न-भिन्न क्यो नजर आते है? उनकी ओरसे उत्तर यह होता है कि जैसे एक ही चन्द्रमा भिन्न-भिन्न पात्रोमे, भिन्न-भिन्न थालियोमे जिनमे पानी भरा हुआ है नाना चन्द्र नजर आते है। वास्तवमे चन्द्रमा एक है, लेकिन उस उपाधिमे चद्रमा अनेक नजर आया करते है। इसी प्रकार ब्रह्म तो एक है, जीव तो एक है, पर भिन्न-भिन्न देहोमे भिन्न-भिन्न घरोमे इस जीवका प्रकाश पहुचनेसे वह भिन्न-भिन्न जीव नजर आता है। सुननेमे तो बडा भला लगता है। चन्द्र एक है और पचासो थालियोमे पानी भरा है तो पचासो चन्द्रमा नजर आ रहे है, ऐसे ही जीव एक है और ये असख्यात देह है ना, इन देहोमे उतने ही जीव नजर आ रहे है। लेकिन यह बात तभी तक सुन्दर लगती है जब तक इसपर गम्भीरतासे विचार न किया जाय। पचासो थालियोमे पचासो चन्द्रमा नजर नही आ रहे, किन्तु एक चन्द्रबिम्बका निमित्त पाकर पचासो थालोंका पानी अपने आपमे चन्द्रबिम्बके

आकाररूपसे परिणत हो गया है। उन पचासो थालियोमे उन पचासोका पानी नजर आ रहा है और वह पानी चन्द्रका निमित्त पाकर उसके अनुकूल आकाररूप परिणम गया है, पानीमे ऐसी योग्यता है। कही गोबरके पचासो उपला रक्खे हो तो उनमे चन्द्रबिम्ब क्यो नही दीखता ? अरे उनमे ऐसी योग्यता ही नही है। पानीमे वैसी योग्यता है जिससे योग्य वातावरण पाकर उस रूप परिणम जाय, तो वहाँ एक ही चन्द्रमा भिन्न-भिन्न नजर नही आ रहा है। आकाशमे रहने वाला चन्द्रमा वही एक है, यहाँ दृष्टिमे नही आता।

जीवके एकत्वकी सिद्धिमे दृष्टान्तकी विरुद्धता—इसे स्पष्ट समझने के लिए एक और दृष्टि डालो। जैसे किसी पुरुषके सामने १० दर्पण रखे हुए है सामने अगल बगल, तो उन दसो दर्पणोमे उस पुरुषका मुख पहुच रहा है, लोग ऐसा कहते है। क्या वास्तवमे दसो दर्पणोमे उस पुरुषका मुख नजर आ रहा है ? नही। उस पुरुषके मुखका सन्निधान पाकर वे दसो दर्पण उस मुखके आकार रूपसे परिणम गए है। पुरुषका मुख नाना रूपसे नही बन गया है। उन दसो दर्पणोमे उस पुरुषका मुख नही पहुच गया। अगर उस पुरुषका मुख उन दर्पणोमे पहुच जायगा तो वे दर्पण चेतन बन जायेंगे। उस पुरुषका मुख उन दर्पणोमे नही गया, उसका मुख उसही पुरुषमे है। उसके मुखसे बाहर उसका मुख नही जाता, फिर भी उस मुखका सन्निधान पाकर दसो दर्पण उस मुखाकाररूपसे परिणम गए है। ऐसे ही चन्द्रमा पानी रूप नही परिणमा, किन्तु पानी उन पचासो थालियोका पानी चन्द्रमाका सन्निधान पाकर चन्द्रबिम्बरूप परिणम गया है।

सग्रहनयसे ही जीवके एकत्वकी सिद्धि—दूसरा कोई इस प्रकार एक ब्रह्म तुम्हे कही दिखता है प्रत्यक्ष जो नानारूप परिणम जाय ? अपने अनुभवसे विचारो। अपने आपमे कोई चेतनाशक्ति वाला जीव तत्त्व अनुभवमे आता है, ऐसे-ऐसे ये सभी जीव एक-एक अलग-अलग है। सबका अनुभव उनका अपने आपके खुदमे है, फिर भी एक स्वभावदृष्टिसे सग्रहनयकी दृष्टिसे जब निरखते है तो समस्त जीवोमे पूर्ण समानता पायी जाती है उनके स्वरूपमे। इस कारण सग्रहनयसे जीव एक है।

जीवकी द्विप्रकारता—यह आत्मा दो प्रकारका है। इस विकल्पके प्रकरणमे इस ढग से वर्णन होगा कि जीव दो प्रकार है, तीन प्रकार है, चार प्रकार हैं आदिक। कुछ विकल्पो तक वर्णन चलेगा। यहाँ बतला रहे हैं कि जीव दो प्रकारके होते हैं—एक भव्य और एक अभव्य। अरे इसमे अभी सिद्ध तो नही आये। वे तो है अनुभय। जीव दो प्रकारके है—भव्य और अभव्य, तो मुक्त जीवोमे भूतप्रज्ञापन नैगमनयकी अपेक्षा भव्यत्व स्वीकार करना होगा, यो ये जीव भव्य अभव्यके प्रकारसे दो तरहके है। अथवा ससारी और मुक्तके भेदसे जीव दो प्रकारके है। अथवा जीवका जीवत्व दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोगके भेदसे दो प्रकार दृष्ट

होता है। यहां व्यक्तित्वकी दृष्टि त्याग दी गई है और उस जीवमे ही जीवके भावकी दृष्टिसे यह विविक्ता बताई गयी है।

जीवकी त्रिलक्षणात्मकता—यह जीव त्रिलक्षणात्मक है। एक साधारण दृष्टिमे तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षणात्मकता पायी जानेसे समस्त पदार्थ इस त्रिलक्षणात्मकतासे युक्त है, जीव भी उत्पन्न होता है, विलीन होता है और वहीका वही रहता है। इसमे तो सभी पदार्थों की बात आ गई। जीवकी विशेषता क्या आई ? तो चलो, जीव यो विलक्षण है, कर्मचेतना, कर्मफलचेतना और ज्ञानचेतनासे सयुक्त है। कोई जीव कर्मचेतनासे तन्मय है अर्थात् मैं अमुक काम करूँ, ज्ञानातिरिक्त किसी भी भावके पदार्थके सम्बधसे करनेकी बुद्धि होनेका नाम कर्म-चेतना है और उस कर्मके फलमे जो सुख दुःख होता है उस फलको मै भोगता हू अथवा अन्य परपदार्थोंको भोगता हू। ऐसी बुद्धिका होना कर्मफलचेतना है, और मै मात्र ज्ञानस्वरूप हू, जाननमात्र हू, इस प्रकार जाननस्वरूपमे ही अपनी प्रतीति और अनुभव करना सो ज्ञानचेतना है। यो कोई जीव कर्मचेतनाप्रधानी है, कोई कर्मफलचेतनाप्रधानी है, कोई ज्ञानचेतनाप्रधानी है, कोई केवल ज्ञानमात्र है।-यह तो भिन्न-भिन्न जीवोकी बात हो गयी।

एक जीवमे चेतनात्रिलक्षणात्मकता—कोई बन्धु पूछे कि एक ही जीवमे तीनो बातें घटा दो तब तो उस जीवकी त्रिलक्षणता समझमे आये। चलो एक जीवमे घटावो। जैसे अवि-रत सम्यक्त्व गुणस्थान होता है उस गुणस्थानमे रहने वाला जीव अपनेको ज्ञानमात्र ही श्रद्धान करता है, तब ज्ञानचेतना हुई कि नही ? यह प्रधान है और गौणरूपसे यह जीव घर गृहस्थीमे है, अनेक कामोमे लग रहा है, उसमे भी उपयोग कभी-कभी चल रहा है ना तो लो कर्मचेतना हो गई, और उसके फलमे कभी हर्ष भी हो, कभी विषाद भी हो लो कर्मफलचेतना हो गई।

अज्ञानी जीवकी त्रिलक्षणात्मकता—कोई यहाँ हठ करे कि नही जी, तुमने एक खास अविरत सम्यक्त्व गुणस्थानको पकड लिया, हमे तो ऐसी बात बतावो कि मिथ्यादृष्टिके भी तीनो चेतना घट जायें और सिद्ध भगवानमे भी तीनो चेतना घट जाये। अच्छा लो, इसको भी सुनो। पहिले अज्ञानी जीवोकी बात देखो, प्रत्येक जीव ज्ञानस्वरूप है ना, वह चाहे अपनेको कुछ भी माने, पर उस माननेमे जो चेतनाएँ आती है, जोश आता है वह ज्ञानस्वरूप है तब ही आता है ना ? तो उन्होंने इस ज्ञानस्वरूपको ही तो किसी रूपमे चेता, वह चेतना तो इस ज्ञानस्वरूपकी है। है ना, क्या वह कभी रूप, रस, गध, स्पर्शको भी चेत लेता है, लो कर्म-चेतना और कर्मफलचेतना स्पष्ट ही है। चलो कुछ तान-तूनकर तीनो बाते यहाँ भी घट गयी। अच्छा सिद्ध भगवानमे बतावो। सिद्ध भगवानकी त्रिलक्षणता सुनो।

सिद्ध भगवंतमे चेतनात्रिलक्षणात्मकता—ज्ञानचेतना तो भगवानमे स्पष्ट है। यह प्रभु अपनेको ज्ञानरूप चेत रहे हैं, परिणम रहे है, ठीक है, ज्ञानरूप चेत रहे है ना कुछ काम कर

रहे है ना ? हाँ कर रहे है । अपनेको निरन्तर ज्ञानरूप अनुभव रहे है । यही उनका काम है ना ? इस कामरूप वे परिणाम रहे है ना, तो यही कर्मचेतना हो गई, और इस कामका फल भी उन्हे मिल रहा है कि नही ? केवल ज्ञातादृष्टा है तो ऐसे केवल ज्ञानमात्र रहनेके कार्यका उन्हे फल मिल रहा है, अनन्त आनन्द । उस अनन्त आनन्दको भोग रहे है ना, यही सिद्धका कर्मफल है तो उसे भी चेत रहे है । दो तीन बातें समझनेके प्रसगमे कर्मका अर्थ ज्ञानावरण आदिक न लेना, किन्तु प्रत्येक पदार्थ अपनी क्रियामे रहा करता है । तो सिद्ध भगवानकी जो क्रिया है, कर्म है, वह कर्म है और उसके फलमे जो फल मिलता है वह कर्मफल है ।

विशुद्धाशयीका ज्ञानविहार—जैसे एक ही लक्ष्य रखने वाला पुरुष घरमे पचासो जगह की व्यवस्था कर लेता है और अपने लक्ष्यसे चूका नही इसकी उसे प्रसन्नता रहती है । ऐसे ही मोक्षमार्गका लक्ष्य रखने वाला ज्ञानी पुरुष इन समस्त तत्त्वोको नाना रूपोसे जान रहा है, फिर भी यह अपने लक्ष्यमे सफल बना रहनेसे प्रसन्न रहता है, और कोई भक्त पुरुष भगवान की भक्ति करता है, उसमे सिद्ध भगवानका प्रेम है तो कभी भगवानकी बडी प्रशसा करके भक्ति करता है, कभी-कभी भगवानमे जब तीव्र भक्ति पहुचती है, उनके गुणोंके विलासकी दृष्टि पहुचती है तो कभी-कभी तो यो भी कह देता है कि क्या हुआ केवलज्ञान हो गया तो, वह तो तुम्हारा स्वभाव ही है, कौनसी इसमे वीरता हो गयी ? अरे स्वरूप वही है, जो था सो प्रकट हो गया, लो अभी तो बडा पुरुषार्थ बतला रहे थे और अब यो कहने लगे । अरे उसके यो कहनेमे भी पुरुषार्थको प्रशसा भरी हुई है ।

भक्तिपद्धतिया व ज्ञानविहारपद्धतियां—कभी तो यह भक्त दीनता भरे शब्दोंमे कहता है—नाथ ! बतावो, विकारोसे हटावो, मुझे इस अविकारके मार्गसे ही बढकर खीच लो अपनी ओर । मुझे अब इस ससारमे नही रहना है, कभी तो ऐसा दास बनकर प्रभुकी पुकार करता है और कभी झुझलाकर कहता कि प्रभु तुम्हारी भक्तिमे यदि कोई उन्नति नही जगती है, मेरा ठीक ठिकाना नही लगता है तो नाथ ! इसमे क्या मेरी ही बदनामी है, तुम्हारी नही है ? लोग कहेगे ना कि ये कैसे प्रभु है जो एक निष्कपट भक्तको अपनेमे समा नहीं सकते । परमात्माकी भक्तिके पचासो तरीके बना डाले, पर यहाँ दास उन सब तरीकोंमे मूल लक्ष्यको न छोडनेसे शान्त रहता है, पसन्न रहता है । कभी प्रभुसे झुझलाकर बोलनेके बाद भी यह पछतावा नही करता कि मैंने भगवानको बहुत भला बुरा कह डाला । अरे बुरा सुनाया कहाँ है, वह तो सब भक्तिके रूपमे था । यो ही तत्त्वज्ञानी पुरुष तत्त्वके सम्बधमे नाना पद्धतियोंसे सोचता है, चिन्तन करता है और उसमे वह प्रसन्न रहता है ।

अन्य प्रकारसे जीवकी त्रिलक्षणात्मकता—यह जीव चेतनाके प्रकारसे त्रिलक्षण वाला है अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन तीनो रूप होनेके कारण यह आत्मा तीन लक्षण वाला है

अथवा द्रव्य, गुण, पर्याय तीन रूपोमे यह विदित होता है, अतएव त्रिलक्षणात्मक है। है जीव एक वही, पर जिसका जीवस्वरूपके परिचयपर अधिकार हो गया है वह इस जीवको नाना प्रकारसे त्रिलक्षण रूपमें देख रहा है। यह आत्मा त्रिलक्षणस्वरूप है। अब इसके बादमे ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० के रूपमे भी वर्णन चलेगा।

ये जीव चार सक्रमण वाले है। सक्रमण, परिभ्रमण परिवर्तन—ये सब प्राय. अनर्थान्तर है। यद्यपि यह जीव शुद्ध निश्चयनयसे निर्विकार ज्ञानानन्द स्वरूप सहज सिद्ध है और सिद्धगतिके स्वभाव वाला है, फिर भी व्यवहारनयसे मिथ्यात्व, अविरत, कषायसे परिणमता हुआ यह जीव चार गतियोमे परिभ्रमण करता है। यह चार गतियोका भ्रमण इस जीवका स्वभाव नही है। इसका स्वभाव तो ऊर्ध्वगति है। जैसे अग्निकी शिखा स्वभावतः ऊपर ही चलती है इस ही प्रकार इस जीवकी विशुद्धगति ऊपरकी ओर ही होती है। वह कही तक हो, जहां तक निमित्तका सद्भाव है वहा तक ही सही, किन्तु स्वभाव है ऊर्ध्वगतिका। इस जीवका चारो गतियोमे भटकना उपाधिके सम्बन्धसे हो रहा है और अपने आपमे अपने स्वरूप की सुध न होनेसे किन्ही बाह्यमे उपयोग रखनेके कारण हो रहा है। यह जीव चार सक्रमण वाला है व्यवहार दृष्टिसे ससार अवस्थामे।

इस जीवमे ५ मुख्य गुण प्रधान है। उन ५ गुणोमे दो गुण इसके स्वभावरूपसे है क्षायिक और पारिणामिक। क्षायिक शब्दमे उपाधिके सम्बन्धसे क्षायिकताका व्यपदेश नैमित्तिकरूपसे माना गया है, किन्तु क्षायिक भावमे जो निर्मलता जगती है वह निर्मलता नैमित्तिक नही है, वह जीवके स्वभावसे उठी हुई है। और पारिणामिक तो स्वय स्वभावरूप है ही। इन दोनो भावोमे भी द्रव्यदृष्टिसे पारिणामिक भाव और पर्यायदृष्टिसे क्षायिक भाव ये दोनो स्वभावोसे सम्बन्ध रखने वाले भाव है। ससार अवस्थामे यह जीव ५ भावोसे लिपटा है।

क्या कोई जीव ऐसा भी होता है जिसमे एक भवमे ये ५ भाव हो जाते हो—औपशमिक, क्षायिक क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक? होता है, सुनिये। क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न करके जो जीव उपशम श्रेणीपर चढ़ा है उसके देखो सम्यक्त्वकी दृष्टिसे क्षायिक भाव है, चारित्रकी दृष्टिसे औपशमिक, कर्मोंका उदय चल रहा, सो औदयिक, ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे ज्ञान चल रहा है इसलिये क्षायोपशमिक भाव है और पारिणामिक सब जीवोमे रहता ही है। कोई जीव ऐसे होते है जिनमे चार भाव होते है। जैसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव जो किसी भी श्रेणीपर नही चढा उसके औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक ये चार भाव है। क्षपक श्रेणीमे रहने वाला जीव है उसके चार भाव है—द्वितीयोपशम सम्यक्त्व करके उपशम श्रेणीपर चढना हो जावे उसके चार भाव है और तीन भावोसे भरे हुए तो अनन्तानन्त जीव है। मिथ्यादृष्टि अज्ञानी इनके औदयिक भाव, क्षायोपशमिक भाव

और पारिणामिक भाव सबके बराबर बने हुए है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यय-ज्ञान, कुमति, कुश्रुत कुअवधि ये सब क्षायोपशमिक ज्ञान है। अज्ञानियोके कुज्ञान होते है। सिद्ध भगवानके दो भाव है—क्षायिक और पारिणामिक। जीवके स्वभावको देखो तो एक भाव है पारिणामिक भाव। यो यह जीव ५ भावोमे युक्त है।

छक्कापक्कमजुत्तो उवजुत्तो सत्तभङ्गसब्भावो।
अट्ठासओ णवत्थो जीवो दसट्ठाणगो भणिदो ॥७२॥

ससार अवस्थामे यह जीव ६ अपक्रमोसे युक्त है। अपक्रम कहते है विरुद्धक्रमरहित गतिको, मरणके बाद जन्मस्थानपर पहुचनेकी गतिकी जो विधि है उसको। जैसे हम आप यहा गोलमटोल चल लेते है। पूरबसे उत्तरकी ओर चल दे, जहा चाहे जैसी गति कर लेते है। मरणके बाद इस जीवकी गति यथा तथा नही हो सकती। यदि पूर्व दिशामे मरे हुए जीवका उत्तर दिशामे जन्म होना है तो वह यो ही सीधा नही चल सकता। पश्चिम दिशाकी ओर बढकर मोडा लेकर उत्तरमे जायगा। मरणके बाद जीवकी गति आकाश पक्तिकी श्रेणीके अनुसार होती है। इस महा आकाशमे एक एक सूची रूप केवल एक प्रदेशकी मोटाई रखती हुई असख्यात श्रेणियाँ है। पूरबसे पश्चिमको, दक्षिणसे उत्तरको, ऊपरसे नीचे ऐसी तीन श्रेणिया है और दो छोर होनेके कारण ६ अपक्रम हो जाते है। यह ससारी जीव ६ अपक्रमोसे सहित है। यहा यह जीवके सम्बन्धका व्याख्यान समाप्त होनेको है ना, उपसहार रूपसे ये तीन गाथाएँ है अन्तमे, जिनमें दूसरी गाथामे यह वर्णन चल रहा है कि जीवके ऐसे ऐसे विकल्प हैं, उस क्रममे जीव यो ६ विकल्पोके रूपसे भी निरखा जा रहा है।

यह जीव ७ भग सहित है। देखिये कुछ भी बात हो—एक तो वह बात और एक खिलाफ बात। प्रत्येक पदार्थ अपनी खिलाफियतको लिए हुए है। कोई चीज "है" तो उसमें "नही है" यह भी मौजूद है, वह चीज है, याने वह अपने स्वरूपसे है तो परके स्वरूपसे नही है यह भी साथ लगा है। कुछ भी आप बात कहे तो उस बातमे एक प्रतिपक्ष लगा हुआ है। क्यो जी आपकी बात सच है ना। हाँ सच है। तो आपकी बात झूठ नही है यह है कि नही ? हाँ यह भी है। सत्यका सद्भाव असत्यके निषेधके साथ जुडा हुआ है, यदि झूठ नही है ऐसा नही है तो सच ही क्या रहा ? तो यो दो अग हो गए। दोनोको एक साथ बतानेका कोई वचन नही है। प्रमाणसे भले ही देखा जाय पर वहाँ लक्षण इसके अलग है। इन दोनो को एक साथ न कहा जा सकनेसे अवक्तव्य है, यो तीन धर्म हो गए। जहाँ तीन धर्म होते हैं तो उनका सयोग किया जाय तो चार प्रकारके सयोग हो जाते है, दो दो के तीन सयोग और तीनोंका एक। अस्ति, अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य, अस्ति नास्ति और तीनोसे मिलकर अस्ति-नास्ति अवक्तव्य यो सप्तभंगकर सहित यह जीव है।

यह जीव पदार्थ अष्टास्रव है, ससार अवस्थामे ८ कर्मोंका आस्रव वाला है। मुक्त अवस्थामे ८ गुणोका आस्रव करने वाला है। निश्चयसे यह जीव वीतरागस्वरूप निश्चय सम्यक्त्व आदिक ८ गुणोका आश्रयभूत है—समकित, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघुत्व, अवगाहना, सूक्ष्मत्व, वीर्यत्व और अव्याबाधत्व। इस प्रकार ८ गुणोका आश्रयभूत है तो भी ससार अवस्थामे देखो व्यवहारदृष्टि से तो इसमे ज्ञानावरणादिक आठ कर्मोंका आस्रव बना हुआ है। इस प्रकरणमे ये एक जीवके बारेमे वर्णनके अन्तकी आखिरी चर्चायें है। जैसे कोई बडी गम्भीर समस्याको हल करनेके लिए एक बडा समूह जोडे, तो पहिले प्रयोजनभूत मुख्य-मुख्य बातोका वर्णन करके जब अन्तमे वह सभा उठनेको होती है तो थोडा सुगम दिलचस्प वातावरण ले करके समूह उठा करता है। ऐसे ही इस जीवतत्त्वके सम्बन्धमे मुख्य बातोका वर्णन करके अब कुछ विकल्पोके रूपसे इसका उपसहार किया जा रहा है।

प्रश्न—भला इतना कहनेकी कोई खास जरूरत थी क्या कि जीव क्रमसे एक भाव वाले, दो भाव वाले, ३ भाव वाले आदि है और जरूरत थी तो १० ही तक क्यो रहे, आगे क्यो नही बढे ? तो इस वर्णनमे दोनो प्रयोजन है। एक तो जीवके कुछ विकल्प बताकर यह यत्न किया है कि जीवके सम्बन्धमे कुछ और और प्रकट ज्ञान भी हो जाय और फिर मुख्य वर्णन करके एक वर्णन समाप्तिके पहिले चूलिका रूपमे वर्णन हुआ। चूलिका उसे कहते है कि पहिले कही हुई बातको भी कहना, पहिले न कही हुई बातको भी कहना और कुछ समन्वय मिलाकर उसका आखिरी कोई रूप बना देना, इसका नाम चूलिका है। यह जीव ८ गुणोका आश्रयभूत है अथवा ८ कर्मोंके आस्रवका आश्रयभूत है।

यह जीव नौ अर्थरूप है, ९ पदार्थ रूप है। जीव, अजीव, आस्रव, बध, सवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप—ये ९ प्रकारके पदार्थ बताये गए है। इन ९ अर्थोंरूप जीवको देखना है। यद्यपि यह नवार्थता उपाधिके सम्बन्ध बिना नही हुआ करती है। जिस जीवने आस्रव किया, क्या अकेला ही जीव अपने आपमे अपने विभावोका आस्रव कर लेता है ? नही। कर ले तो आस्रव स्वभाव बन जायगा। यद्यपि इस नवार्थतामे पर-उपाधि निमित्त होती है, फिर भी पदार्थका यह स्वभाव अमिट है कि प्रत्येक पदार्थ केवल अपने आपमे अपनी ही शक्ति से अपना परिणमन किया करते है। सर्वत्र निहार लो। इस दृष्टिसे जीवमे आस्रवादिको देखिये।

जैसे आप दर्पणको देख रहे हो और उस दर्पणमे अपने पीछे खडे हुए कुछ बालक भी नजर आ रहे है, किन्तु उन बालकोका सान्निध्य पाकर जो दर्पणके प्रदेश थे वे बालकोंके आकाररूप परिणम गए। वह प्रतिबिम्ब उन बालकोका सन्निधान पाये बिना नही हुआ। लेकिन क्या यह जरूरी है कि हम उन बालकोका ख्याल निरन्तर बनाये रखते हुए दर्पणको

देखें ? हमे तो उन बालको की ओर दृष्टि भी नहीं करना है, केवल दर्पण देखना है, ऐसा यत्न करें तो वह दर्पण वैसा ही दिखेगा जैसा कि प्रतिबिम्बित है। यद्यपि यह बात मानी हुई है कि बालकोका सन्निधान पाये बिना वह दर्पण प्रतिबिम्बित नहीं हुआ पर देखनेकी तो आजादी है। हम केवल दर्पणको ही निहारें तो वहाँ यह जानते रहेगे कि यह दर्पण देखो ऐसा ऐसा है, ऐसा क्यो हुआ है, इस ओर हम विचार न लाना चाहें यह हमारी मर्जी है। यह है एक निश्चयदृष्टि। हम दूसरी उपाधिका सम्बन्ध नही जोडना चाहते हैं। केवल एक ही वस्तुमे उस ही वस्तुकी बात निहारनेका नाम निश्चय है। निर् मायने निकल गया चय मायने सचय जिस दृष्टिसे उस दृष्टिका नाम है निश्चय।

जीवमे विभावोका उदय हो रहा है, आस्रव हो रहा है। आस्रव मायने आना, उदय मायने निकलना। जीवमे विभावोका उदय हो रहा है, उदय निकल रहा है, ये जीवके स्वभावके ऊपरी स्थलपर विभाव आ रहे है और इस स्वभावके ऊपरी भागपर ये विभाव बँध रहे है। ऊपरी भावका अर्थ यह न लेना कि जैसे एक चीज समूची नीचे पडी है और उसके ऊपर कोई चीज रक्खी है, यह तो जितने प्रदेशोमे स्वभाव है उतने ही प्रदेशोमे विभाव है। यहाँ ऊपरका अर्थ भावात्मक लेना है अर्थात् जीवके अन्त स्वभावमे विभाव नही पडा है, किन्तु वह एक परिणमनके रूपमे आया है। यह जीवका आस्रव है।

देखो जीवमे विभावोका आना यह आस्रव हुआ, जीवमे विभावोका बाधना सो बध है। जीवने अपने उपयोगमे उन विभावोको बाँध रक्खा है। उसे यह उपयोग हटाना नही चाहता। यही बध हुआ। देखो यहाँ एक अचरजकी बात कि जीवमे जो विभाव उत्पन्न होते है वे दूसरे क्षण नही रहते है। दूसरे क्षण अन्य विभाव हुआ, तीसरे क्षण अन्य विभाव हुआ, ये विभाव क्षण-क्षणमे नाना हुआ करते है, लेकिन यह उपयोग यही समझ रहा है कि हम उसी विभावको पकडे है, वही सर्वस्व है, उन्ही विकारोको यह भ्रान्त उपयोगमे पकडे हुए है। उपयोग विभावोको कहाँ पकड सकता है ? विभाव तो एक क्षण हुआ, दूसरे क्षण मिट गया, पर उपयोग तो जिसे जान रहा है उस जाननके अनुसार तो उन सबको पकडे हुए है मानो अथवा उस विभाव सामान्यको यह जकडे हुए है ना, यही उसका एक बध है।

जब यह जीव भेदविज्ञानी होता है और इस विविक्त स्वरूपका परिचय पाता है तब यह जानता है। ये विभाव मेरे नही है, स्वभाव नही है, औपशमिक भाव हैं। उन औपाधिक भावोसे अपने स्वरूपको न्यारा कर लिया है। कैसे न्यारा किया ? न्यारा किस जगह करें ? वहाँ इसको कुछ अलग जगह ही नही है आत्मामे कि एक ओर विभाव धर दो और एक ओर स्वभाव धर दो। इस न्यारेपनमे भी वहीका वही स्वभाव है। लक्षणकी दृष्टिसे वहाँ विभावोसे आस्रवको जुदा निरखा जा रहा है। इस भेदविज्ञानसे लो अब ये विभाव किल गए,

स्वभावमे नही घुस सकें। उपयोगकी विचित्र महिमा है। हम आप लोगोकी विजय भी एक इस सम्यग्ज्ञान उपयोगसे ही हो सकती है। तो यह सवर हो गया। ऐसा सम्वर करनेके कारण अब वे विभाव कहाँ रहेगे मायाकी छाया पाये बिना ? इन विभावोसे कोई प्यार करने वाला नही रहा। तो ये विभाव जब सूखने लगते है, झडने लगते है तो यही है जीवमे निर्जरा पदार्थ, और जब यह जीव उन विभावोसे मुक्त होकर केवल एक निजमात्र रह जाता है तो यही है जीवका मोक्ष। पुण्य पाप तो आस्रवके भेद है। जो विभाव आये थे उनमे जो साता सुखके कारणभूत है वे पुण्यभाव है और जो असाता क्लेशके कारणभूत है वे पापभाव है। इस प्रकार जीवमे ९ पदार्थोकी व्यवस्था है। इस पदार्थ व्यवस्थाको हम निश्चयदृष्टिसे देखते है तो हेय तत्त्व इस जीवके साथ नही रह सकते। और यही आत्माका एक कल्याण है। यह जीव १० स्थानक है। ससार अवस्थामे इसके १० स्थान ऐसे बन जाते है जिसमे कोई जीव न छूटे और वह हो शरीरकी दृष्टिसे तो वे १० स्थान यो बनते है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येकवनस्पति, साधारणवनस्पति, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय और पचेन्द्रिय। ये सब काय है और उन कायोमे एक दूसरेसे विशेषता है। शरीरकी विशेषतावोसे ससारी जीवके १० स्थान ये बताये है। पृथ्वीका जो शरीर है वह इन ९ से अलग जातिको लिए हुए है, जलका शरीर इन ९ से जुदा जातिको लिए हुए है। इसी प्रकार यह होते-होते १० अथवा ९ से कुछ विभिन्न रूपको लिए हुए है। यह जीव यो १० स्थानो वाला है। निश्चयसे देखा जाय तो इसमे ये १० स्थान नही है, एक शुद्ध बुद्ध चैतन्यस्वरूपमात्र है। अखण्ड अद्वैत चित्प्रकाशात्मक स्वभाव ही ऐसा है कि क्या करे क्या ? यह जानना बनाता नही है, यह ज्ञान करता नही है, किन्तु यह ऐसे ही स्वभाव वाला है कि इसका जाननपरिणमन चलता रहता है। यह जीव निश्चयसे शुद्ध एक ज्ञानानन्दस्वरूप है, लेकिन व्यवहारसे देखो तो यह इन १० स्थानोमे प्राप्त है। अब इन १० स्थानोंके विकल्प बढा-बढाकर कितने ही भावो, बढाते जावो, सैकडो जीवसमास बन जाते है। ये सब दस स्थान बताये गए है। एक दो तीन इत्यादि कहा करे, पर इन सबमे जीव तो वह एक अकेला ही है। जैसे कोई राजा बडी सजी-धजी सेनाके साथ किसी अन्य स्थानपर पयान कर रहा है तो लोग यह कहते है कि आज राजा तो दो मीलमे फैल कर रहा है। अरे राजा तो साढ़े तीन हाथका होगा, पर उस राजाके सम्बधसे जो कुछ ठाट-बाट होता है वह भी राजाका कहलाने लगा और यह राजा अब दो मीलका लम्बा-चौडा बन गया। ऐसे ही यह जीव तो केवल एक चैतन्यस्वभावरूप है, किन्तु इस जीवका सम्बध पाकर जो इतना ससारजाल बन गया है तो यह जीव अब उतने विकल्पोरूप कहलाने लगा है। जीव तो एक चैतन्यस्वरूप है। अब इसके बाद इस अधिकार की अन्तिम गाथा आयगी।

पयडिट्ठिदिग्रणुभागप्पदेसबधेहि सव्वदो मुक्को ।
उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसावज्ज गदि जति ।।७३।।

बन्धमुक्त जीवकी गति—यह जीव प्रकृतिबध, स्थितिबध, ग्रनुभागबध ग्रौर प्रदेश-बधोसे सर्वप्रकार मुक्त होकर ऊर्द्धको जाता है। न किसी दिशावोमे जाता है ग्रौर न विदि-शावोमे जाता है। जो जीव जिस स्थानसे मुक्त होता है उसके ही ठीक सीधमे लोकके ग्रत तक चला जाता है। सिद्धलोक ४५ लाख योजन प्रमाण है ग्रौर जिस स्थानसे जीव मोक्ष जा सकता है वह स्थान भी ४५ लाख योजन प्रमाण है। ढाई द्वीपका प्रमाण ४५ लाख योजन है। इससे बाहर मनुष्योका गमन नही है। किसी भी प्रकार मनुष्य ढाई द्वीपसे बाहर नही जा सकता। कोई देव मनुष्यको ले जायें तो भी मनुष्य ढाई द्वीपसे बाहर नही जा सकता।

ढाई द्वीपके सर्वप्रदेशोसे मुक्त होना—इस ढाई द्वीपमे कोई भी प्रदेश ऐसा नही बचा जिस प्रदेशसे ग्रनेक जीव मोक्ष न गए हो। लवणसमुद्र, कालोदसमुद्र बडे विस्तार वाले समुद्र है वहाँसे भी जीव मोक्ष गए है। किसी बैरी देवने उन्हे वहाँ पटक दिया हो ग्रौर उस ही समय उनके शुक्लध्यान बना, घातियाकर्मोका क्षय हुग्रा ग्रौर वहीसे सिद्ध हो गए। यो समुद्र मे भी प्रत्येक प्रदेशसे यह जीव मोक्ष गया है। पर्वतोसे भी यह जीव मोक्ष गया है। हाँ मेरू पर्वतके ऊपर घटती हुई चूलिका बनी है ना, तो शका यह हो सकती है कि उस मेरू पर्वतके ऊपरी भागसे चूलिकासे मोक्ष कैसे गए होगे? उसके ऊपर तो ठहरने योग्य स्थान ही नही है। उस चूलिकाके ऊपर सिर्फ एक बालकी मोटाई बराबर हिस्सा ग्रन्तरमे है ग्रौर उसके ऊपर इन्द्रक विमान है प्रथम स्वर्गका तब इस जगहसे मुनि मोक्ष कैसे गये होगे? उसका उत्तर यह है कि कोई मुनि ऋद्धिधारी ऋद्धिबलसे उस मेरू पर्वतपर से जा रहा है ग्रौर मेरू पर्वतके ठीक बीचमे वह हो ग्रौर वहाँ ही शुक्लध्यान बना, घातिया कर्मोका क्षय हुग्रा ग्रौर वहीमे मोक्ष चले गए तो सीध तो यही बैठाना? वहाँसे भी ग्रनेक जीव मुक्ति गये है।

चतुर्विधबन्धमुक्ति—मुक्तिका ग्रर्थ है छूट जाना। जो छूटने योग्य वस्तु हैं परपदार्थ हैं, जिनके सम्बन्धसे यह ससार ग्रवस्था बन रही है उन पर-उपाधियोसे छुटकारा पानेका नाम मुक्ति है। वह पर-उपाधि है कर्म। कर्मोमे चार प्रकारका बन्धन है—प्रकृतिका बन्धन, ग्रमुक निषेक इस जीवको इस प्रकारके फल देनेमे निमित्त होगे। उस फलकी जाति बन जाय। जैसे ज्ञानावरण ज्ञानका ग्रावरण करे, इत्यादि। तो यो उनमे प्रकृतिका बन्धन है। ये कर्म इतने दिन रहेगे। इस जीवके साथ इतने दिन बाद उदय ग्रायगा, ऐसी उनमे स्थिति पड गयी। यह स्थितिबध है। उन कर्मोमे फल देनेकी शक्ति बन जाय, यह इतनी डिग्रीका फल देगा, यह ग्रनुभाग बध है ग्रौर उन प्रदेशोका जीवप्रदेशके साथ बन्धन हो जाय, यह है प्रदेश बन्धन। यह जीव उन चार प्रकारके बन्धनोसे मुक्त होकर ऊर्द्ध लोकमे जाता है।

व्यवहारसे बन्धन और मुक्ति—यद्यपि निश्चयदृष्टिसे इसके स्वभावको निरखनेपर यह प्रतीत होता है कि इस जीवमें तो यही जीव है, परपदार्थ कहाँ लिपटे हुए हैं ? स्वभाव-दृष्टिसे निरखनेपर केवल स्वभाव ही दृष्टिगोचर होता है, लेकिन केवल इतनी ही बात तो नहीं है। जो निश्चयदृष्टिसे यहाँ देखा जा रहा है, निश्चयकी दृष्टिमें निश्चयकी बात है, किन्तु यह जीव कर्मोंसे घिरा है, विभावोंका इसमें मेल है ये सब बातें भी तो चल रही हैं। उनसे यह जीव मलिन हो रहा है, सो यह मलिनता उन उपाधियोंका बन्धन मिटाये बिना दूर न हो सकेगी। जब जीव इन बंधोंसे सर्वप्रकार मुक्त हो जाता है तो स्वाभाविक अनन्तज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्तआनन्द, अनन्तशक्तिसे सम्पन्न होकर यह जीव एक ही समयमें मोड़ो रहित गति से ऊर्ध्वको प्राप्त हो जाता है।

संसारी जीवकी विग्रहगति—जब जीव संसारअवस्थामें रहता है तो मरणके बाद जन्मस्थानपर पहुंचनेमें किसी जीवको १, किसीको २ और किसीको ३ भी मोड़े खाने पड़ते हैं। चौथा मोड खानेकी आवश्यकता नहीं रहती। इस लोकके किसी भी स्थानसे मरकर किसी भी विषम स्थानपर उत्पन्न हुआ तो भी तीन मोड़से अधिक मोड लेनेकी आवश्यकता नहीं रहती। मरणके बाद औदारिक शरीर और वैक्रियक शरीर न होनेके कारण इसकी गति यथा तथा नहीं हो पाती। आकाशकी श्रेणियोंके अनुसार गति होती है तब उन श्रेणियोंमें चलनेपर कोई स्थान ऐसा भी है कि जहाँ एक मोड कहीं-कहीं और कहीं तीन मोड लेने पड़ते हैं, किन्तु मुक्त होनेपर जीव तो जहाँसे भी मुक्त हुआ है उस ही की सीधमें जाता है। उसकी गतिमें मोडा नहीं होता। उनकी गति अविग्रहगति कहलाती है। विग्रहका अर्थ मोड भी है, विग्रह का अर्थ शरीर है। इस प्रकरणमें विग्रहका अर्थ मोड है। मोड सहित गतिको विग्रहगति कहते हैं। विग्रहरहित गतिको अविग्रहगति कहते हैं। दूसरा विग्रहगतिका अर्थ है विग्रह पानेके लिए गमन। विग्रहका अर्थ शरीर भी है। जैसे व्यवहारमें भी लोग कहते हैं उसे जिसका शरीर बड़ा तगड़ा हो कि उसका विग्रह बड़ा पुष्ट है, नया विग्रह धारण करनेके लिए जो गति होती है उसका नाम विग्रहगति है। यह सिद्धप्रभु अविग्रह होनेपर गति अविग्रह पद्धतिसे करते हैं, ये विदिशावोंमें गमन नहीं करते। जो बद्ध जीव है उसकी तो ६ गतियां हैं। कार्माणकाय-योगमें मरणके बाद जन्मके अनन्तकालमें ६ अपक्रमसे गति होती है, किन्तु मुक्त जीवके तो केवल एक स्वभावकी गति है।

मुक्त जीवकी ऊर्ध्वगतिकी प्रथम युक्ति—तत्त्वार्थसूत्रमें एक समाधान है इस प्रश्नका कि मुक्त जीव ऊपर ही क्यों जाता है ? और इसके दृष्टांत भी दिये हैं। एक उत्तर यह बताया है कि इन जीवोंके पूर्वका संस्कार है, प्रयोग है। जिन जीवोंने मुक्ति [illegible] और यदि लगाई थी, सिद्ध प्रभुका स्मरण भी उन्होंने ऊर्ध्वलोकमें ही अपना उपयोग लगाकर

किया था और उस सिद्ध लोकमे उनकी सिद्ध होकर रहनेकी चाह भी थी, पीछे वे निर्विकल्प होकर कर्मोका क्षय कर सिद्ध होते है तो अब वे उस पूर्वप्रयोगके कारण सीधे उस ही जगह पहुच जाते है। जैसे कुम्हार घडा बनाता है चक्रपर, तो वह चक्रको डडेसे २ मिनट खूब घुमाता है, घूमनेके बाद फिर उस डडेके छोड देता है, फिर भी दो-तीन मिनट तक वह चक्र घूमता ही रहता है, क्योकि इस चक्रको पूर्वका प्रयोग मिला है।

मुक्त जीवकी ऊर्ध्वगतिकी द्वितीय युक्ति—दूसरी युक्ति यह है कि मुक्त जीव चूंकि सर्वथा निःसग है। कर्मोका सग नही रहा, देहका सग नही रहा, भाररहित हो गए हैं, इस कारण उसका गमन ऊपरकी ओर होता है। जैसे जलमे कीचड इत्यादिसे भरी हुई तूँबी डाल दी जाय तो वह जलमे डूब जाती है, पर कीचड बह जानेपर वह तूबी फिर ऊपर तैरने लगती है। इस प्रकार कर्मोके भारसे सहित होनेसे यह जीव ससार-समुद्रमे गोते खा रहा है, जब सग, भार, कर्म, शरीर, विभाव ये सब दूर हो जाते हैं तो निर्भार होनेके कारण यह जीव स्वभावत ऊपर ही जायगा।

मुक्त जीवकी ऊर्ध्वगतिकी तृतीय युक्ति—तीसरी युक्ति है कि जब तक यह जीव बधमे बँधा हुआ है तब तक तो यह यही नीचे रह रहा है और जिस काल इस जीवके बधका छेद होता है तब ऊर्ध्वदशामे ही जाता है। जैसे एरेन्डाके बीजपर छिलका लगा हुआ है ऊपर, जब तक उसका छिलका साबुत है वहीका वही है और जब उसका छिलका टूटता है, अलग होनेको होता है उस समय यह बीज स्वभावसे ऊपर आ जाता है। फिर ऊपर जाकर नीचे गिरता है इसको दृष्टान्तमे नही लेना है, क्योकि दृष्टान्त एक देश हुआ करता है। जितना प्रयोजन होता है उतना ही अश लिया जाता है। जब जीवके कर्म, शरीर इत्यादिका सम्बध नही रहा तब यह जीव ऊपर दिशामे ही अपना गमन करता है।

मुक्त जीवकी ऊर्ध्वगतिकी चौथी युक्ति—चौथी युक्ति बतायी है कि जीवका इस प्रकार गमन करनेका स्वभाव ही है। जैसे अग्निकी शिखापर कोई थाली आदिका आवरण होनेसे वह यहाँ वहाँ जाय, पर निरावरण शिखाका ऊपर ही उठनेका स्वभाव है, इसी प्रकार जीवपर कर्मोका जब तक आवरण है तब तक भले ही ऊपर नीचे यहाँ वहाँ कैसा ही घूमा करे, पर जब ये सब आवरण हट जाते है तो यह स्वभावसे ऊपरको ही जाता है।

बन्धनकी सिद्धि—इस गाथामे सीधे रूपसे कहा तो इतना ही है कि यह जीव सर्व प्रकार बधोसे मुक्त होकर ऊर्द्धको ही जाता है, किन्तु इसमे कितनी ही स्थितियाँ भरी पडी हैं। प्रथम तो यही सिद्धान्त सिद्ध होता है कि यह जीव बन्धनसे बँधा हुआ था। कुछ दार्शनिक लोग इस जीवको बँधा हुआ नही मानते। यह जीव तो सदाशिव है, उसमे बन्धन नही पडा है। केवल एक प्रकृतिके सम्बधसे बन्धनका भ्रम हो गया है, लेकिन यह बात तो एकदम

विरुद्ध-प्रतीत होती है। अरे भ्रमसे बन्धन मालूम होता है तो यह भ्रम किसमे लगा हुआ है ? जो जाननहार है उसमे ही तो भ्रम लगा है। जो भ्रमसे न बधे हुएको भी बँधा हुआ निरख रहे है तो क्या भ्रम कम बन्धन है ? यही तो विकट बन्धन है। यह जीव बन्धनसे युक्त था, एक यह बात सिद्ध होती है।

जीवके अस्तित्वकी पुष्टि—बन्धनसे मुक्त होनेके बाद उसका अस्तित्व बना रहा है यह भी इस गाथासे सिद्ध होता है। कही ऐसा नही है दीपकके निर्वाणकी तरह यह आत्मा भी बुझ जाता हो। कही न रहता हो इसका नाम मुक्ति है, ऐसा नही है। यह आत्मा एक सद्‌भूत है, वह बन्धनसे मुक्त होकर भी रहता है। कहाँ रहता है वह ? सिद्ध लोकमे रहता है। वहाँ चला जाता है। बन्धनमुक्त होनेके बाद इस आत्माकी सत्ता रहती है, यह सिद्ध हो जाता है और इसकी सिद्धिके ही प्रसगसे वह ज्ञानात्मक है, सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है आदिक सभी चमत्कार उसमे प्रसिद्ध हो जाते हैं।

अलख निरञ्जन—लोग प्रभुके सम्बन्धमे यह महिमा बताया करते है कि यह अलख है, निरञ्जन है और चिदानन्दस्वरूप है, सच्चिदानन्दमय है, किन्तु इन विशेषणोका जो विस्तार है, फैलाव है उस फैलावमे जब तक रुचि नही जगती है तब तक ईश्वरका मानना, न मानना समान ही हुआ। आत्मा तो अमूर्त है तब वह इन्द्रियो द्वारा लक्ष्यमे कैसे आये ? जिसको जब लक्ष्यमे आता है तब वह उसका प्रतिपादन नही कर सकता है इस कारण यह प्रभु अलख है। भावकर्म अथवा द्रव्यकर्म व शरीर मलसे दूर हुए है वे अतएव निरञ्जन है, इसी कारण कृतकृत्य है। कुछ काम ईश्वरको करनेको नही पडा है, जहाँ कुछ करनेको पडा है वहाँ क्षोभ रहता है।

वस्तुस्वातन्त्र्यकी प्रतीतिमे शान्तिमार्गपर गमन—जब तक पदार्थमे स्वय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है ऐसी प्रतीति नही होती है तब तक हम मुक्तिके मार्गमे, शान्तिके मार्गमे बढ ही नही सकते है। अज्ञानका शल्य बहुत बडा शल्य होता है। कितनी ही भक्ति करे, कितना ही परोपकार करे, कितना ही दया दान आदिक प्रवृत्ति करे, उदारता भी दिखाये, देशके लिए अपना जीवन भी होम दे, फिर भी यदि वस्तुविषयक अज्ञान पडा हुआ है, प्रत्येक पदार्थ कितना है और वह अपने ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूपसे बना रहा करता है ऐसी स्वतन्त्रता जब तक विदित नही होती तब तक जीव परके रूपसे हटकर अपने ज्ञानप्रकाशमात्र स्वरूपमे ठहर नही सकता। और जब यह अपने स्वरूपमे न ठहरेगा, परकी ओर लगेगा तो इस जीवको प्रकृत्या अशान्ति रहेगी। इसी कारण जो शान्तिके इच्छुक पुरुष हैं वे इस ही ज्ञानमार्गमे अपना कदम बढाते हैं।

अपनी निधिकी भूलका परिणाम—भैया ! जो बात हम चाहते हैं वह हमारे स्वभाव

मे है, इसी समय है, भरपूर है, लेकिन घरमे गडी हुई निधिका पता न हो तो वह पुरुष दरिद्र की तरह व्याकुल रहा करता है, इस ही प्रकार जब हमे अपने स्वभावका अपनी प्रभुताका भान नही है तो किसी भी परपदार्थमे जो समस्त असार हैं भिन्न है उनमे इष्ट अथवा अनिष्ट बुद्धि करके हम अपनी कषायके अनुकूल उन्हे परिणमानेके लिए दीन बने रहा करते है। इतना साहस बने, सकल्प बने कि यह मैं आत्मा सबसे न्यारा केवल अपने स्वरूपमात्र हू, किसी पदार्थका अधिकारी कर्ता भोक्ता कुछ भी नही हू। जब तक वस्तुस्वरूपकी स्वतन्त्रताका भान नही होता तब तक मोक्षके मार्गमे हमारा कदम नही बढ सकता।

व्यवहारकी ज्ञेयता—यद्यपि वस्तुकी सिद्धि निश्चय और व्यवहार—दोनो नयोसे होती है, लेकिन स्थिति जाननेके लिए दोनो नय कार्यकारी है, फिर भी हम किस नयके विषयमे अपनी दृष्टि गडाये, लक्ष्य बनाये कि हम निर्विकल्प समाधिमे रत हो सकें। कुछ गम्भीर यत्न के साथ इसका निर्णय करिये। व्यवहारनय कहता है कि यह आत्मा कर्मोंसे बँधा है। ठीक है, यह बात गलत नही है, परिस्थिति ऐसी है, लेकिन साथ ही यह भी तो है कि यह आत्मा अपने ही सत्त्वके कारण केवल अपने प्रतिभास स्वरूप है। अब इन दोनोमे से हम केवल व्यवहारनयके विषयका लक्ष्य बनाकर रह जायें, देखो यह आत्मा कर्मोंसे बँधा है, कर्मके उदयसे इस जीवको सुख दुःख मिलता है और-और भी सोचते जाइए। इस चिन्तनासे आपने कौनसी निर्विकल्पता पा ली? अतएव व्यवहारनयका विषय लक्ष्यरूप बनानेके लिये नही होता, किन्तु व्यवहारनय परिस्थितिका ज्ञान कराता है। और लक्ष्यमे विघ्न विषयकषायोसे बचनेके लिए कुछ उपाय बताता है।

निश्चयका लक्ष्य—अब निश्चयनयके लक्ष्यपर दृष्टि करिये। कुछ भी अपनी परिस्थिति हो अर्थात् कर्मोंसे बँधे है, शरीरसे बँधे है, रागादिक भी हो रहे है, इन सब परिस्थितियोंके बावजूद भी निश्चयनयके विषयपर अपना उपयोग तो पहुचाइये। यह मैं आत्मा एक प्रतिभासस्वरूप हू, इस मुझ आत्माका प्रतिभास ही लक्षण है, यही स्वभाव है। स्वभाव स्वभाववान कुछ जुदे नही है। केवल यह चित्प्रकाशमात्र मैं हू। अनादि अनन्त सर्वसे विविक्त केवल अपने स्वरूपमात्र चित्स्वभाव हू। जरा गहन दृष्टिसे इस ओर मनन तो हो, फिर देखो मननसे आत्मतत्त्वमे कौनसी समृद्धि जगेगी? निर्विकल्प अखण्ड अन्तस्तत्त्वकी ओर इसकी दृष्टि जगेगी और यह उस ही समय शान्तिका अनुभव कर लेगा।

करणीय कृत्य—भैया! हम सबका यही तो काम है करनेका कि अपने बारेमे निश्चय और व्यवहारसे सभी प्रकारकी जानकारी कर लें और लक्ष्य बनायें निश्चयनयके विषयका। उसमे भी परमशुद्ध निश्चयनयके विषयका और चूंकि हम चिरकालसे विषयकषायोंके बन्धनमे बँधे चले आ रहे हैं, उनसे मुक्त होनेके लिए प्रथम व्यवहारका उपाय करें ताकि विषयकषायो

को तुरन्त रोक ले और उस अवसरमे शुद्ध ध्यानके प्रतापसे हम शांतिका मार्ग प्राप्त कर सके। यही एक मुख्य कार्य है जिससे सर्व संकटोसे मुक्त होकर हम सदाके लिए अनन्त आनन्दमे रत रहेगे।

जीव तत्त्वके अवगमका मूल प्रयोजन—जीवास्तिकायके व्याख्यानके इस अधिकारमे जो प्रथम गाथा आई थी उसमे ६ उपाधिकारोका निर्देश है। जीव, चेतयिता, उपयोगविशेषित, प्रभु, कर्ता, भोक्ता, देहमात्र, मूर्त व कर्मसयुक्त। इनके सम्बन्धमे पूर्वानुपूर्वी, पश्चादनुपूर्वी व यथातथानुपूर्वीसे उन अतराधिकारोमे जीवास्तिकायका वर्णन करके चूलिकारूपमे उसका कुछ और विवरण किया। जीव पदार्थके अवगमका प्रयोजन यह है कि हम जीव है, अपने सहज स्वरूपको पहिचानें और इसमे ही रत हो, इसमे ही सर्वकल्याण है।

पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित "पञ्चास्तिकाय प्रवचन" का यह तृतीय भाग सम्पन्न हुआ।

॥ इति पञ्चास्तिकाय प्रवचन तृतीय भाग समाप्त ॥



अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी
'सहजानन्द' महाराज विरचितम्

सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

।। शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।

[illegible] सुधाम्नि निरता गतभेदभावा प्राप्स्यन्ति चापुरचल सहज सुशर्म ।
एकस्वरूपममल परिणाममूल, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।१।।

शुद्ध चिदस्मि जपतो निजमूलमत्र, ॐ मूर्ति मूर्तिरहित स्पृशतः स्वतत्रम् ।
यत्र प्रयान्ति विलय विपदो विकल्पा, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।२।।

भिन्न समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्ण सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूर, शुद्ध चिदस्मि परमात्मतत्त्वम् ।।३।।

ज्योति पर स्वरमकर्तृ न भोक्तृ गुप्त, ज्ञानिस्ववेद्यमकल स्वरसाप्तसत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियत सततप्रकाश, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।४।।

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्य, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।
यद्दृष्टिसश्रयणजामलवृत्तितान, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।५।।

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमश भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्ट्याम् ।
आनदशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्ड, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।६।।

शुद्धान्तरङ्गसुविलासविकासभूमि, नित्य निरावरणमञ्जनमुक्तमीरम् ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेजः, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।७।।

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदित. समाधि ।
यद्दर्शनात्प्रभवति प्रभुमोक्षमार्ग, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।८।।

सहजपरमात्मतत्त्व स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्प य ।
सहजानन्दमुवन्द्य स्वभावमनुपर्यय याति ।।